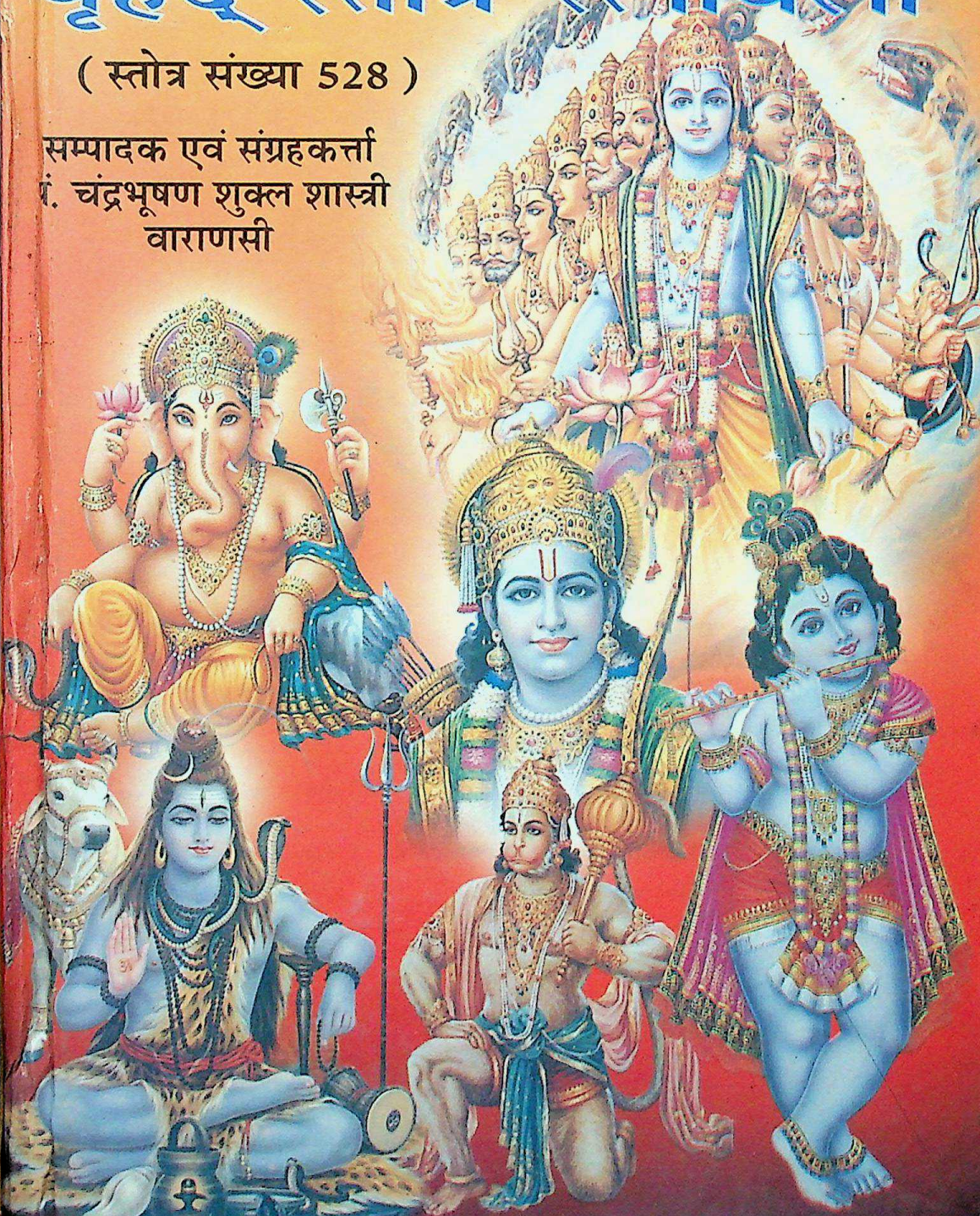


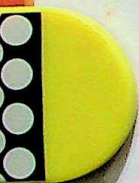
पूजा प्रकाशन द्वारा प्रकाशित

बृहद् स्तोत्र रत्नाकर बृहद् स्तोत्र रत्नावली

(स्तोत्र संख्या 528)

सम्पादक एवं संग्रहकर्ता
पं. चंद्रभूषण शुक्ल शास्त्री
वाराणसी





पूजा प्रकाशन द्वारा प्रकाशित

वृहद्-स्तोत्र-रत्नाकर

वृहद् स्तोत्र रत्नावली
(स्तोत्र संख्या - 528)



सम्पादक एवं संग्रहकर्ता
पं० चन्द्रभूषण शुक्ल शास्त्री
वाराणसी

प्रकाशकः



पूजा प्रकाशन

(सदर बाजार रेलवे स्टेशन के बराबर में, दरगाह के बाहर)
पुल कुतुब रोड, सदर बाजार, दिल्ली-110006 (भारत)

फोन : 23625241, 23626450, 9811716164

E-mail: gargbooks@yahoo.co.in, sales@poojaparakashan.com.

Website: www.poojaparkashan.com

मूल्य ₹250

प्रकाशक

: पूजा प्रकाशन

(सदर बाजार रेलवे स्टेशन के बराबर में दरगाह के बाहर)

दुकान नं.1 पुल कुतुब रोड, सदर बाजार, दिल्ली-6

दूरभाष : 23625241, 2362645 मो० : - 9811716164

E-mail : gargbooks@yahoo.co.in

sales@poojaparakashan.com

Website : www.poojaparakashan.com



मूल्य

:

250/-



प्रमुख विक्रेता

: गर्ग कम्पनी बुकसेलर

पुल कुतुब रोड, सदर बाजार, दिल्ली - 110 006



मुद्रक

: एम.एस.प्रिंटर्स, दिल्ली

चेतावनी : इसमें समाहित सारी सामग्री के सर्वाधिकार पूजा प्रकाशन के पास सुरक्षित हैं। इसलिए कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम टाइटल, अन्दर का मेटर आदि आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़ कर एवं किसी भी भाषा में छापने व प्रकाशित करने का साहस न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर वह हर्जे-खर्चे व हानि का स्वयं जिम्मेदार होगा। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद का न्यायिक क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

VAHRID - STOTRA - RATNAKER

By : Chandrabhushan Shukle Shastri

Published By : **POOJA PARKASHAN, DELHI-6 (INDIA)**

E-mail : gargbooks@yahoo.co.in / sales@poojaparkashan.com

Visit us Website : **www.poojaparkashan.com**

भूमिका

आज के युग में कर्मकाण्ड, पूजा, अनुष्ठान इत्यादि में कई बार 'स्तोत्र' की मूल कुंजी नहीं मिल पाती है मैंने कई बड़ी पुस्तके पढ़ी तथा अध्ययन किया कि कहीं ना कहीं कुछ कमी रह जाती है यह तो मैं भी नहीं कहूंगा की मुझसे गलती नहीं होती है फिर भी जिन स्तोत्रों का संग्रह मुझे पुराणिक पुस्तको प्राचीन कर्मकाण्ड एवं प्राचीन दुर्लभ्य ग्रन्थों से मिला उन सबको एक पुस्तक के रूप में जनकल्याण हेतु पूजा-प्रकाशन-दिल्ली वालो के सहयोग से कोशिश की है। हमारे भारत देश एवं विदेशों में रहने वाले भाई-बहन एवं कर्मकाण्ड पण्डितगण इस पुस्तक के माध्यम से ज्यादा से ज्यादा लाभ उठा सके यही मेरा प्रयत्न है।

इसमें प्राचीन प्रचलित, नित्यप्रति व्यवहार में आने वाले सिद्ध-स्तोत्रों का संकलन तो है ही साथ में भारत के गण्यमान्य विद्वानों द्वारा रचित स्तोत्रों का भी संकलन है मुझे उम्मीद है कि अब तक के प्रकाशित अन्य स्तोत्रों का संग्रह से भिन्न होगा।

इस मूल-पाठ-स्तोत्र पुस्तिका की शुद्धता एवं आधुनिक शैली के साथ सम्पादन किया गया है। इसमें समस्त प्रदान करने वाले सूक्ष्म दृष्टी विद्वानों एवं सन्त-महात्माओं का अभार मानता हूँ साथ ही जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है। उन विद्वान ग्रन्थ सम्पादनों के प्रति भी अपना आभार मानता हूँ।

आकर्षक साज-सज्जा आधुनिकरण व जैज्ञानिकरण कम्प्यूटर के माध्यम से साफ-सुन्दर एवं विशुद्ध मुद्रण के लिए 'पूजा प्रकाशन, दिल्ली' के संचालक 'श्री अतुल गर्ग जी' विशेष धन्यवाद के पात्र है।

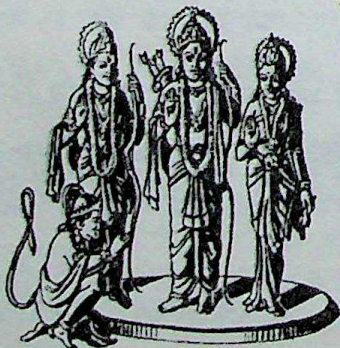
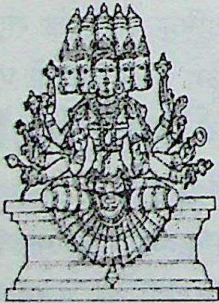
इसका संशोधन सम्पादन एवं संकलन में बड़ी सावधानी के साथ किया गया है। फिर भी मानव दोष सम्भव है त्रुटियों के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

आपका-सेवक

संकलनकर्ता

पं. चन्द्र भूषण शुक्ल शास्त्री

वाराणसी।



स्तोत्रानुक्रमणिका

क्रमाङ्कः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः	क्रमाङ्कः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः
	मङ्गलाचरणम्		27.	शिवमानसपूजास्तोत्रम्	65
	1. गणेशस्तोत्राणि		28.	शिवमानस-पूजा	66
1.	गणेशन्यासः	1	29.	शिवापराधक्षमापनस्तोत्रम्	67
2.	सङ्कष्टहरणं गणेशाष्टकम् (1)	2	30.	वेदसारशिवस्तोत्रम्	69
3.	गणेशाष्टकम् (2)	3	31.	शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् (1)	70
4.	गणेशाष्टकम् (3)	4	32.	शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् (2)	71
5.	गणेशाष्टकम् (4)	4	33.	दारिद्र्यदहन-शिवस्तोत्रम्	73
6.	गणेशकवचम्	5	34.	शिवमहिम्नस्तोत्रम्	73
7.	सङ्कष्टनाशनगणेशस्तोत्रम्	7	35.	शिवमहिम्नस्तोत्रम्	79
8.	गणेशमहिम्नः स्तोत्रम्	8	36.	शिवताण्डवस्तोत्रम्	85
9.	गणेशाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्	12	37.	शिवभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्	87
10.	गणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	13	38.	शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्	88
11.	गणेशस्तोत्रम्	29	39.	शिवषडक्षरस्तोत्रम्	89
12.	गणेशपञ्चरत्नस्तोत्रम्	31	40.	शिवस्तोत्रम्	89
13.	गणेशपञ्चचामरस्तोत्रम्	32	41.	विश्वनाथमङ्गलस्तोत्रम्	91
14.	दुण्डिराजभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्	33	42.	शिवनामावल्यष्टकम्	92
15.	गणपतिस्तवः	34	43.	चन्द्रशेखराष्टकम्	93
16.	गणेशस्तवराजः	35	44.	प्रदोषस्तोत्राष्टकम्	93
17.	महागणपतिस्तोत्रम्	36	45.	पशुपत्यष्टकम्	95
18.	एकदन्तगणेशस्तोत्रम्	38	46.	रुद्राष्टकम्	95
19.	गजाननस्तोत्रम् (1)	41	47.	लिङ्गाष्टकम्	96
20.	गजाननस्तोत्रम् (2)	42	48.	बिल्वाष्टकम्	97
21.	गजाननस्तोत्रम् (3)	45	49.	शङ्कराष्टकम् (1)	98
22.	विनायक-विनतिः	46	50.	शङ्कराष्टकम् (2)	98
23.	गणपति स्तोत्रम्	47	51.	महादेवाष्टकम्	99
24.	गणेशमानसपूजा	49	52.	विश्वनाथाष्टकम्	100
25.	गणेशबाह्यपूजा	55	53.	विश्वनाथाष्टकस्तोत्रम्	101
	2. शिवस्तोत्राणि		54.	विश्वनाथस्तवः	103
26.	शिवकवचस्तोत्रम्	60	55.	काशीविश्वनाथस्तोत्रम्	104

क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः	क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः
56.	विश्वनाथनगरीस्तोत्रम्	107	3. ब्रह्मस्तोत्राणि		
57.	शिवाष्टकम् (1)	107	87.	ब्रह्मस्तोत्रम्	143
58.	शिवाष्टकम् (2)	108	88.	परब्रह्मस्तोत्रम्	144
59.	शिवंरामाष्टकम्	109	4. विष्णुस्तोत्राणि		
60.	शिवरक्षास्तोत्रम्	110	89.	नारायणकवचम्	145
61.	अर्द्धनारीश्वरस्तोत्रम्	111	90.	नारायणहृदयस्तोत्रम्	148
62.	अर्द्धनारीनटेश्वरस्तोत्रम्	111	91.	नारायणाष्टोत्तरशतनाम	151
63.	द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणम्	112	92.	विष्णुपञ्जरस्तोत्रम्	152
64.	द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्	112	93.	विष्णुमहिम्नः स्तोत्रम्	154
65.	मृतसञ्जीवनकवचम्	113	94.	सङ्कष्टनाशनं विष्णुस्तोत्रम्	159
66.	प्रदोषस्तोत्रम्	115	95.	विष्णोरष्टनामस्तोत्रम्	160
67.	शिवस्तुतिः	116	96.	विष्णोः षोडशनामस्तोत्रम्	160
68.	शिवस्तोत्रम् (1)	118	97.	विष्णोरष्टाविंशतिनाम	161
69.	शिवस्तोत्रम् (2)	118	98.	विष्णोः शतनामस्तोत्रम्	161
70.	शिवस्तोत्रम् (3)	119	99.	विष्णुस्तवराजः	163
71.	शिवस्तोत्रम् (4)	120	100.	विष्णवष्टकम्	164
72.	शिवस्तुति	121	101.	विष्णुभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्	165
73.	वैद्यनाथाष्टकम्	122	102.	विष्णुस्तुतिः	167
74.	शिवाशिवस्तोत्रम्	123	103.	अच्युताष्टकस्तोत्रम् (1)	167
75.	गौरीषाष्टकम्	124	104.	अच्युताष्टकम् (2)	168
76.	विश्वमूर्त्यष्टकस्तोत्रम्	124	105.	विष्णुदेवाष्टकम्	169
77.	महामृत्युञ्जयध्यानम्	125	106.	मधुसूदनस्तोत्रम्	170
78.	महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्	126	107.	दीनबन्ध्वष्टकम्	171
79.	शिवाष्टकम्	127	108.	गोविन्ददामोदरस्तोत्रम्	172
80.	काशीविश्वेश्वरादिस्तोत्रम्	129	109.	गोविन्दाष्टकम्	177
81.	आत्मावीरेश्वरस्तोत्रम्	129	110.	कमलापत्यष्टकम्	178
82.	कालभैरवाष्टकम्	131	111.	रमापत्यष्टकम्	179
83.	आपदुद्धारक-वटुकभैरव	133	112.	षट्पदीस्तोत्रम्	180
84.	अनादिकल्पेश्वरस्तोत्रम्	139	113.	हरिस्तोत्रम्	180
85.	उमामहेश्वरस्तोत्रम्	140	114.	हरिनामाष्टकम्	181
86.	अष्टमूर्तिस्तोत्रम्	141	115.	हरिशरणाष्टकम्	182

क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः	क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः
116.	हरिनाममालास्तोत्रम्	182	146.	सूर्यार्यास्तोत्रम्	229
117.	हरिमीडेस्तोत्रम्	184	147.	आदित्यस्तोत्रम्	230
118.	शालिग्रामशिलास्तोत्रम्	190	6. देवीस्तोत्राणि		
119.	मुरारिपञ्चरत्नस्तोत्रम्	192	148.	भारत-विजय-स्तोत्रम्	232
120.	कमलेशमाला	193	149.	कनकधारास्तोत्रम्	233
121.	मुकुन्दमाला	194	150.	देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्	235
122.	गरुणध्वजस्तोत्रम्	196	151.	भवानीभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्	237
123.	विष्णु-स्तवनम्	198	152.	भवान्यष्टकम्	238
124.	नारायणाष्टकम्	200	153.	भवानीस्तुतिः	239
125.	नारायणतोत्रम्	201	154.	भगवतीस्तोत्रम्	239
126.	नारायणाष्टादशकम्	202	155.	भगवत्यष्टकम्	240
127.	परमेश्वरस्तुतिसारस्तोत्रम्	205	156.	त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम्	241
128.	भगवच्छरणस्तोत्रम्	207	157.	आनन्दलहरी	242
129.	जगन्नाथाष्टकम्	210	158.	सङ्कटाष्टकस्तोत्रम्	245
130.	जगन्मङ्गलकवचस्तोत्रम्	211	159.	सङ्कटास्तुतिः	247
131.	मङ्गलगीतम्	212	160.	श्रीसङ्कटासहस्रनामस्तोत्रम्	250
132.	भगवत् स्तुतिः	213	161.	विन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्	263
133.	परमेश्वरस्तोत्रम्	214	162.	विन्ध्यवासिनीस्तोत्रम्	264
134.	अभिलाषाष्टकम्	214	163.	मीनाक्षीस्तोत्रम्	265
135.	हरिहरात्मकस्तोत्रम्	215	164.	मीनाक्षीपञ्चरत्नम्	267
5. सूर्यस्तोत्राणि			165.	ललितापञ्चरत्नम्	268
136.	सूर्यकवचम्	217	166.	शीतलाष्टकम्	269
137.	सूर्यकवचस्तोत्रम्	217	167.	वाराहीनिग्रहाष्टकम्	270
138.	सूर्यस्तोत्रम् (1)	219	168.	वाराहानुग्रहाष्टकम्	271
139.	सूर्यस्तोत्रम् (2)	220	169.	कात्यायन्यष्टकम्	273
140.	सूर्यवरदस्तोत्रम्	221	170.	कालिकाकवचम्	273
141.	आदित्यहृदयस्तोत्रम्	222	171.	ताराष्टकम्	276
142.	सूर्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्	224	172.	चण्डिकाष्टकम्	277
143.	सूर्याष्टकम् (1)	226	173.	दुर्गाष्टकम्	279
144.	सूर्याष्टकम् (2)	227	174.	रात्रिसूक्तम्	280
145.	सूर्यमण्डलाष्टकम्	228	175.	सप्तश्लोकी दुर्गा	281

क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः	क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः
176.	सार्द्धश्लोकी दुर्गा	282	206.	पार्वती-पञ्चकम्	317
177.	सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्	283	207.	मातृस्तुति-रत्न-पञ्चकम्	317
178.	दुर्गा-द्वात्रिंशत्नाममाला	283	208.	श्रीस्तोत्रम्	318
179.	देव्यष्टकम्	284	209.	राधाकृपाकटाक्षस्तोत्रम्	319
180.	देवीस्तोत्रम्	285	210.	श्रीराधास्तोत्रम्	321
181.	लघुस्तोत्रम्	286	211.	राधासहस्रनामस्तोत्रम्	322
182.	दुर्गाष्टकम्	289	212.	राधाकवचम्	335
183.	दुर्गापदुद्धारस्तवराजः	290	7. गङ्गादितीर्थस्तोत्राणि		
184.	दुर्गासिद्धमन्त्रस्तोत्रम्	291	213.	गङ्गाष्टकम् (1)	337
185.	लघुसप्तशतीस्तोत्रम्	292	214.	गङ्गाष्टकम् (2)	338
186.	बन्दीमोचनस्तोत्रम्	293	215.	गङ्गाष्टकम् (3)	339
187.	अन्नपूर्णास्तोत्रम् (1)	294	216.	गङ्गाष्टकम् (4)	340
188.	अन्नपूर्णास्तोत्रम् (2)	296	217.	गङ्गास्तोत्रम्	341
189.	अन्नपूर्णाकवचम्	297	218.	गङ्गास्तवः	342
190.	श्रीपूर्णाष्टकम्	300	219.	दशहरा-गङ्गास्तुतिः	344
191.	लक्ष्मीस्तोत्रम्	301	220.	गंगालहरी	346
192.	महालक्ष्म्यष्टकम्	302	221.	अमृत लहरी	354
193.	सिद्धसरस्वतीस्तोत्रम् (1)	303	222.	यमुनाष्टकम् (1)	355
194.	सिद्धसरस्वतीस्तोत्रम् (2)	304	223.	यमुनाष्टकम् (2)	357
195.	सरस्वतीस्तोत्रम्	307	224.	नर्मदाष्टकम् (1)	358
196.	सरस्वतीकवचम्	307	225.	नर्मदाष्टकम् (2)	359
197.	सरस्वत्यष्टकम्	308	226.	पुष्कराष्टकम्	361
198.	नीलसरस्वतीस्तोत्रम्	309	227.	प्रयागराजाष्टकम्	362
199.	श्री सरस्वतीगीतिः	310	228.	सिद्धसरयूस्तोत्राष्टकम्	363
200.	सरस्वतीस्तोत्रम्	311	229.	त्रिवेणीस्तोत्रम्	364
201.	देव्या आरात्रिकम्	312	230.	मणिकर्णिकाष्टकम्	365
202.	अम्बाष्टकम्	313	231.	काशीपञ्चकम्	366
203.	श्रीदेव्याः	314	8. अवतारस्तोत्राणि		
204.	गायत्रीस्तोत्रम्	314	232.	केशवादिचतुर्विंशत्यवतार	368
205.	गायत्री-कवचम्	315	233.	मत्स्यस्तोत्रम्	369
			234.	कूर्मस्तोत्रम्	369

क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः	क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः
235.	वराहस्तोत्रम्	370	264.	रामाष्टकम् (1)	401
236.	नृसिंहस्तोत्रम्	371	265.	रामाष्टकम् (2)	402
237.	लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम्	373	266.	रामचन्द्राष्टकम्	403
238.	लक्ष्मीनृसिंहाष्टोत्तरशतनाम	374	267.	रामचन्द्रस्तुतिः	404
239.	प्रह्लादकृत-नृसिंहस्तोत्रम्	276	268.	सीतारामाष्टकम्	405
240.	नृसिंहस्तोत्रम्	379	269.	रघुनाथाष्टकम्	407
241.	श्रीनृसिंहसरस्वत्यष्टकम्	380	270.	रामप्रेमाष्टकम्	408
242.	नृसिंहसरस्वतीस्तोत्रम् (1)	381	271.	राममङ्गलशासनम्	409
243.	नृसिंहसरस्वतीस्तोत्रम् (2)	382	272.	राम-गीता	410
244.	नृसिंहस्तवः	383	10. कृष्णस्तोत्राणि		
245.	वामनस्तोत्रम्	383	273.	गर्भस्तुतिः	415
246.	दशावतारस्तोत्रम्	384	274.	कृष्णस्तोत्रम् (1)	416
247.	परशुरामाष्टविंशतिनाम	384	275.	कृष्णस्तोत्रम् (2)	417
248.	कार्तवीर्यस्तोत्रम्	385	276.	कृष्णस्तोत्रम् (3)	419
249.	कार्तिकेयस्तोत्रम्	386	277.	कृष्णस्तोत्रम् (4)	420
250.	मयूरेश्वरस्तोत्रम्	386	278.	कृष्णस्तोत्रम् (5)	421
251.	कार्तिकेयस्तोत्रम्	388	279.	कृष्णस्तोत्रम् (6)	422
252.	अश्विनीकुमारस्तोत्रम्	389	280.	कृष्णस्तोत्रम् (7)	422
253.	वेकेटेश-द्वादशनाम-स्तोत्रम्	390	281.	कृष्णाष्टकम् (1)	424
254.	वेङ्कटेश्वरमङ्गलस्तोत्रम्	390	282.	कृष्णाष्टकम् (2)	424
9. रामस्तोत्राणि			283.	कृष्णाष्टकम् (3)	424
255.	श्रीरामप्रातःस्मरणस्तोत्रम्	392	284.	कृष्णद्वादशनामस्तोत्रम्	426
256.	रामरक्षास्तोत्रम् (1)	392	285.	कृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्	426
257.	रामरक्षास्तोत्रम् (2)	395	286.	कृष्णस्तवराजः	429
258.	रामस्तोत्रम् (1)	396	287.	गोविन्दाष्टकम्	430
259.	रामस्तोत्रम् (2)	397	288.	गोपालस्तोत्रम्	432
260.	रामस्तोत्रम् (3)	398	289.	गोपालविंशतिस्तोत्रम्	433
261.	रामस्तुतिः	399	290.	गोपालहृदयस्तोत्रम्	435
262.	रामहृदयम्	400	291.	गोपालस्तुतिः	437
263.	श्रीरामस्तवराजः	401	292.	गोपालाक्षयकवचम्	438
			293.	विन्दुमाधवाष्टकम्	439

क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः	क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः
294.	गोपालकवचम्	441	15. नवग्रहस्तोत्राणि		
295.	हस्तामलकस्तोत्रम्	442	321.	सूर्याष्टकम्	476
296.	श्रीकृष्णशरणं मम्	443	322.	सूर्यमङ्गलस्तोत्रम्	476
297.	श्रीकृष्णस्तवनम्	444	323.	चन्द्रकवचम्	477
298.	गोपिकाविरहगीत	444	324.	चन्द्राष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्	477
299.	नन्दकुमाराष्टकम्	445	325.	चन्द्रमङ्गलस्तोत्रम्	478
300.	चतुःश्लोकी	446	326.	मङ्गलकवचम्	478
301.	कृष्णस्तुति	446	327.	ऋणमोचनमङ्गलस्तोत्रम्	479
302.	श्रीप्रपन्नगीतम्	446	328.	अङ्गारकस्तोत्रम्	480
303.	मधुराष्टकम्	447	329.	भौममङ्गलस्तोत्रम्	480
11. पाण्डुरङ्गस्तोत्रम्			330.	बुधकवचम्	481
304.	पाण्डुरङ्गाष्टकम्	448	331.	बुधपञ्चविंशतिनामस्तोत्रम्	481
305.	पाण्डुरङ्गस्तुति	448	332.	बुधमङ्गलस्तोत्रम्	482
12. कल्कवतारस्तोत्रम्			333.	बृहस्पतिकवचम्	483
306.	कल्किस्तोत्रम्	449	334.	बृहस्पतिस्तोत्रम्	483
13. दत्तात्रेयस्तोत्राणि			335.	बृहस्पतिमङ्गलस्तोत्रम्	483
307.	दत्तात्रेयस्तोत्रम्	450	336.	शुक्रकवचम्	484
308.	दत्तात्रेयवज्रकवचम्	451	337.	शुक्रस्तवराजः	484
309.	दत्तापराधक्षमापनस्तोत्रम्	459	338.	शुक्रमङ्गलस्तोत्रम्	485
310.	गुरुवरप्रार्थनापञ्चरत्नस्तोत्रम्	459	339.	शनिवज्रपञ्जरकवचम्	486
311.	गुर्वष्टकम्	460	340.	शनैश्चरस्तोत्रम्	487
312.	गुरुराजस्तवः	461	341.	शनिमङ्गलस्तोत्रम्	488
313.	दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्	463	342.	राहुकवचम्	488
14. हनुमत्स्तोत्राणि			343.	राहुस्तोत्रम्	489
314.	हनुमत्कवचम्	466	344.	राहुमङ्गलस्तोत्रम्	489
315.	हनुमदष्टकस्तोत्रम्	468	345.	केतुकवचम्	489
316.	हनुमदष्टकम्	469	346.	केतुपञ्चविंशतिनामस्तोत्रम्	490
317.	शत्रुञ्जयहनुमत्स्तोत्रम्	470	347.	केतुमङ्गलस्तोत्रम्	490
318.	सङ्कष्टमोचनस्तोत्रम्	472	348.	नवग्रहस्तोत्रम्	491
319.	हनुमत्स्तुतिः	473	349.	नवग्रहपीडाहरस्तोत्रम्	492
320.	वीर-विंशतिकाख्य	474	350.	एकश्लोकी-नवग्रहस्तोत्रम्	492

क्रमाङ्कः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः	क्रमाङ्कः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः
16. वेदान्तस्तोत्राणि			379.	प्रातःस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्	511
351.	वेदान्तस्तोत्रम्	493	380.	भगवद्भक्तस्मरणम्	511
352.	निर्वाणदशकम्	493	381.	एकश्लोकी-रामायण	511
353.	निर्वाणषट्कम्	494	382.	एकश्लोकी-भागवतम्	511
354.	कैवल्याष्टकम्	494	383.	एकश्लोकी-महाभारतम्	512
355.	साधनपञ्चकम्	495	384.	चतुःश्लोकी-भागवतम्	512
356.	आत्मपञ्चकम्	496	385.	सप्तश्लोकी गीता	512
357.	कौपीनपञ्चकम्	497	386.	नारद-स्तुतिः	513
358.	धन्याष्टकम्	497	387.	भृगु-स्तुतिः	513
359.	मनीषापञ्चकम्	497	388.	व्यास-स्तुतिः	513
360.	विज्ञाननौका	499	389.	शुक-स्तुतिः	514
361.	द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्	491	390.	गुरुस्तुतिः	514
362.	न्यासदशकम्	500	391.	राधा-कृष्णध्यानम्	514
363.	चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम्	501	392.	राधा-कृष्ण-युगलस्तोत्रम्	515
364.	परापूजा	503	393.	वेदव्यासाष्टकम्	516
365.	शयनस्तोत्रम्	504	394.	तुलसीकवचम्	516
366.	भ्रष्टाष्टकम्	505	395.	तुलसीस्तोत्रम्	518
367.	शिष्टस्तोत्रम्	505	396.	तुलसीमाहात्यम्	519
368.	कामनापञ्चकम्	506	397.	अश्वत्थस्तोत्रम्	520
369.	तत्त्वमसिस्तोत्रम्	507	398.	मङ्गलस्तोत्रम्	522
17. प्रकीर्णस्तोत्राणि			399.	ऋणमोचनस्तोत्रम्	523
370.	श्रीगणेशप्रातःस्मरणस्तोत्रम्	508	400.	हनुमद्रक्षा	524
371.	भगवत्प्रातः स्मरणस्तोत्रम्	508	401.	रात्रि-शयन-स्तुतिः	525
372.	ब्रह्मप्रातः स्मरणस्तोत्रम्	508	402.	पिप्पल-स्तुतिः	525
373.	श्रीविष्णुप्रातः स्मरणस्तोत्रम्	509	403.	गरुडस्तुतिः	525
374.	श्रीशिवप्रातः स्मरणस्तोत्रम्	509	404.	दीप-स्तुतिः	526
375.	श्रीरामप्रातः स्मरणस्तोत्रम्	509	405.	तुलसी-स्तुतिः	526
376.	श्रीचण्डीप्रातः स्मरणस्तोत्रम्	510	406.	हनुमत्स्तुतिः	526
377.	श्रीसूर्यप्रातः स्मरणस्तोत्रम्	510	407.	कुबेर-स्तुतिः	526
378.	प्रभाते कर-दर्शनम्	510	408.	शङ्ख-स्तुतिः	526

क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः	क्रमाङ्काः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्काः
409.	दत्तात्रेय-स्तुतिः	526	439.	श्रमिक-प्रशस्तिः	540
410.	भगवत्स्तुतिः	527	440.	त्वमेव ब्रूहि स्तोत्रम्	540
411.	नवनागस्तुतिः	527	441.	गणेश-स्तुतिः	541
412.	मुकुन्द-स्तुतिः	527	442.	सत्यरूप-स्तुतिः	541
413.	अन्नपूर्णास्तुतिः	527	443.	द्वादश-देवविशेष-स्तुतिः	541
414.	शीतलास्तुतिः	527	444.	दुःस्वप्न-नाशन-सूर्यस्तुतिः	542
415.	लेखनीस्तुतिः	528	445.	दुःस्वप्ननाशनदेव-स्मरणम्	542
416.	कालीस्तुतिः	528	446.	सूर्याश्वस्तुतिः	542
417.	महाकालीस्तुतिः	528	447.	सूर्याकिरणस्तोत्रम्	542
418.	महालक्ष्मीस्तुतिः	528	448.	ऋषिस्तुतिः	543
419.	महासरस्वतीस्तुतिः	528	449.	सप्त-चिरजीवि-स्तुतिः	543
420.	जन्मभूमिदर्शनफलम्	529	450.	पुण्यजन-स्तुतिः	543
421.	रमेशस्तोत्रम्	529	451.	हकारादि-पञ्चदेव-स्तुतिः	543
422.	ब्रह्मस्तोत्रम्	529	452.	पञ्चदेवी-स्तुतिः	543
423.	कार्तिकेयस्तोत्रम्	530	453.	पञ्चकन्यास्तुतिः	544
424.	भैरव-स्तुतिः	530	454.	सप्तर्षि-स्मरणम्	544
425.	रामचन्द्रस्तुतिः	530	455.	सप्तपुरी-स्तुतिः	544
426.	विष्णु-स्तुतिः	531	456.	राजर्षिस्तुतिः	544
427.	शिव-स्तुतिः	532	457.	अनिरुद्धादिदेव-स्तुतिः	544
428.	बुद्ध-स्तुतिः	532	458.	प्रातर्वन्दनीय-स्तुतिः	544
429.	जिन-स्तुतिः	533	459.	प्रातर्दर्शनम्	545
430.	जिनेन्द्र-स्तुतिः	533	460.	पृथ्वी-स्तुतिः	545
431.	महावीर-स्तुतिः	533	461.	दन्तधावन-स्तुतिः	545
432.	मारुतिस्तोत्रम्	533	462.	कुम्भस्तुतिः	545
433.	मृत्युष्टकम्	534	463.	षोडश-मातृका-स्तुतिः	545
434.	कोविधिः को निषेधः	535	464.	शैलपुत्री-स्तुतिः	546
435.	असज्जन-सम्पर्क-निन्दा	536	465.	ब्रह्मचारिणी-स्तुतिः	546
436.	सत्सङ्गमहत्त्वम्	536	466.	चन्द्रघण्टा-स्तुतिः	546
437.	स्थान-महिमा	537	467.	कूष्माण्डास्तुतिः	546
438.	महामारी-स्तोत्रम्	538	468.	स्कन्दमातास्तुतिः	546

क्रमाङ्कः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्कः	क्रमाङ्कः	स्तोत्राणि	पृष्ठाङ्कः
469.	कात्यायनीस्तुतिः	546	499.	शनि-स्तुतिः	554
470.	कालरात्रिस्तुतिः	546	500.	राहु-स्तुतिः	554
471.	महागौरीस्तुतिः	547	501.	केतु-स्तुतिः	554
472.	सिद्धिदास्तुतिः	547	502.	अर्द्धश्लोकी-भागवतम्	554
473.	सिद्धिलक्ष्मीस्तुतिः	547	503.	गुरुतत्त्व-विवेचनम्	554
474.	शनिस्तुतिः	547	504.	अनन्त-स्तुतिः	555
475.	शनिपत्नी-नामस्तुतिः	547	505.	वैष्णवीदेवी-स्तुतिः	555
476.	ग्रहस्तुतिः	548	506.	सिद्धशारदा-स्तुतिः	555
477.	गङ्गास्तुतिः	548	507.	अक्षमाला-स्तुतिः	556
478.	यमुना-स्तुतिः	548	508.	तीर्थाष्टकम्	557
479.	माला-स्तुतिः	548	509.	गुर्वष्टकम्	558
480.	विष्णोरेकादशनाम-स्तुतिः	548	510.	श्रीभैरवाष्टकम्	558
481.	सत्यनारायणाष्टकम्	549	511.	भगवती-स्तुतिः	559
482.	सत्यनारायण-स्तुतिः	549	512.	दशमहाविद्या-नामानि	560
483.	वेङ्कटेश-द्वादशनाम-स्तोत्रम्	550	513.	काली-स्तुतिः	560
484.	विश्वनाथनगरीस्तोत्रम्	550	514.	तारा-स्तुतिः	560
485.	मधुराष्टकम्	551	515.	षोडशी-स्तुतिः	560
486.	पाण्डुरङ्ग-स्तुतिः	551	516.	भुवनेश्वरी-स्तुतिः	561
487.	कृष्णस्तुतिः	551	517.	छिन्नमस्ता-स्तुतिः	561
488.	तीर्थ-स्तुतिः	552	518.	त्रिपुरभैरवी-स्तुतिः	561
489.	शिव-शिवा-स्तुतिः	552	519.	धूमावती-स्तुतिः	561
490.	वामन-स्तुतिः	552	520.	बगला-स्तुतिः	561
491.	इन्द्र-स्तुतिः	553	521.	मातङ्गी-स्तुतिः	562
492.	शशाङ्क-स्तुतिः	553	522.	कमलात्मिका-स्तुतिः	562
493.	रवि-स्तुतिः	553	523.	विपरित महाकाली-स्तुतिः	563
494.	चन्द्र-स्तुतिः	553	524.	ललिताम्बिका-स्तुतिः	563
495.	कुज-स्तुतिः	553	525.	ललिता-महात्रिपुरसुन्दरी	563
496.	बुध-स्तुतिः	553	526.	सीता-स्तुतिः	563
497.	गुरु-स्तुतिः	553	527.	विश्वकर्मा-स्तवः	563
498.	भृगु-स्तुतिः	554	528.	शयनकालीन-भगवत्स्मरणम्	564



स्तोत्र पाठ-विधि

प्रातःकाल उठकर भगवान् का स्मरण करने के बाद स्नान आदि नित्यक्रिया से निवृत्त होकर, दाहिने हाथ में जल लेकर, 'ॐ केशवाय नमः ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः' मन्त्र पढ़कर तीन बार आचमन तथा प्राणायाम करे और अपने शरीर-शुद्धि के निमित्त,

‘ॐ अपवितः पवितो वा सर्वावस्थां गतो पिऽवा ।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥’

इस मन्त्र को पढ़कर अपने शरीर तथा आसन पर जल छिड़के। क्योंकि शरीर, मन और वाणी इन तीनों की शुद्धि से ही कोई भी पुण्य कार्य, अनुष्ठान एवं स्तोत्र पाठ सिद्ध होता है। यदि किसी कार्य-कारणवश पूरा स्नान न हो सके, तो उपर्युक्त मन्त्र से मन्त्र-स्नान कर लेना चाहिए। पश्चात् मनःशुद्धि के लिए हाथ में जल, पुष्प अथवा केवल जल लेकर पाठ का संकल्प करे।

‘ॐ अमुकमासे, अमुकपक्षे, अमुकतिथौ, अमुकवासरे, अमुकगोत्रः, अमुकशर्म-वर्म-गुप्तनामा हं, अमुकार्यसिद्धयर्थ (अथवा परमेश्वरप्रीत्यर्थ वा स्वमनःशान्त्यर्थ) अमुकपाठं करिष्ये।’ कहकर भूमि पर जल छोड़ दें। वाणी की शुद्धता मित (थोड़ा) और सत्य बोलने से होती है। जो लोग मन्द स्वर से पाठ करते हैं, उन्हें स्तोत्र-पाठ का विशेष फल मिलता है। इसके साथ-

‘युक्ताहार-विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥’

अर्थात् आहार, विहार, सोना, जागना आदि कार्य भी यथासमय करना परम आवश्यक है। इससे स्तोत्र-पाठ का फल सद्यः प्राप्त होता है। पश्चात् जिस देवता का स्तोत्र-पाठ करना हो उसका ध्यान कर पाठ करना चाहिए।

१. ब्राह्मण अपने नाम के आगे शर्मा, क्षत्रिय वर्मा और वैश्य गुप्त लगावे।

वृहद्-स्तोत्र-रत्नाकर



॥ श्री गणेशाय नमः ॥

श्रीमङ्गलाचरणम्

लक्ष्मीं तनोतु सुतरामितरानपेक्षमं-

घ्रिद्वयं निगमशाखिशिखाप्रवालम् ।

हेरम्बमम्बुरुहडम्बरचौर्यनिघ्नं

विघ्नाद्रिभेदशतधारधरं धुरं नः ॥१॥

आनन्दमातमकरन्दमनन्तगधं

योगीन्द्रसुस्थिरमिलिन्दमपास्तबन्धम् ।

वेदान्तसूर्यकिरणैकविकासशीलं

हेरम्बपादशरदम्बुजमानतोऽस्मि ॥२॥

दन्ताञ्जलेन धरणीतलमुन्नमय्य

पातालकेलिषु धृतादिवराहलीलम् ।

उल्लाघनोत्फणफणाधरगीयमान-

क्रीडावदानमिभराजमुखं नमामः ॥३॥

वचांसि वाचस्पतिमत्सरेण साराणि लब्धुं ग्रहमण्डलीव ।

मुक्ताक्षसूत्रत्वमुपैति यस्याः सा सप्रसादाऽस्तु सरस्वती वः ॥४॥

विरिचिनारायणवन्दनीयो मानं विनेतुं गिरिशोऽपि यस्याः ।
 कृपाकटाक्षेण निरीक्षणानि व्यपेक्षते सोऽवतु वो भवानी ॥५॥
 वृन्दारका यस्य भवन्ति भृङ्गा मन्दाकिनी यन्मकरन्दबिन्दुः ।
 तवारविन्दाक्ष पदारविंदं वन्दे चतुर्वर्गचतुष्पदं तत् ॥६॥

किञ्जल्कराजिरिव नीलसरोजलग्ना

लेखेव काञ्चनमयी निकषोपलस्था ।

सौदामिनी जलदण्डलगामिनीव

पायादुरःस्थलगता कमला मुरारेः ॥७॥

मेरुरुकेसरमुदारदिगन्तपत्रमामूललम्बि चलशेषशरीरनालम् ।
 येनोद्धृतं कुवलयं सलिलात्सलोलमुत्तं-

सकार्थमिव पातु स वो वराहः ॥८॥

दैत्यास्थिपञ्जरविदारणलब्धरक्ताम्बुनिर्जरसरिद्धनजातपङ्काः ।
 बालेन्दुकोटिकुटिलाः शुकचञ्चुभासो

रक्षन्तु सिंहवपुषो नखरा हरेर्वः ॥९॥

कनकनिषभासा सीतयाऽऽलिङ्गिताङ्गो

नवकुवलयदाम श्यामवर्णाभिरामः ।

अभिनव इव विद्युन्मंडितो मेघखण्डः

शमयतु मम तापं सर्वतो रामचन्द्रः ॥१०॥

विहाय पीयूषरसं मुनीश्वरा

ममाङ्घ्रिराजीवरसं विबन्ति किम् ।

इति स्वपादाम्बुजपानकौतुकी स

गोपबालः श्रियमातनोतु वः ॥११॥

॥ इति श्रीमङ्गलाचरणम् ॥



1. गणेशस्तोत्राणि

1. गणेशन्यासः

आचम्य, प्राणायामं सङ्कल्पं च कृत्वा, दक्षिणहस्ते वक्रतुण्डाय नमः ।
वामहस्ते शूर्पकर्णाय नमः । ओष्ठे विघ्नेशाय नमः । अधरोष्ठे चिन्तामणये
नमः । सम्पुटे गजाननाय नमः । दक्षिणपादे लम्बोदराय नमः । वामपादे
एकदन्ताय नमः । शिरसि एकदन्ताय नमः । चिबुके ब्रह्मणस्पतये नमः ।
दक्षिणनासिकायां विनाकाय नमः । वामनासिकायां ज्येष्ठराजाय नमः ।
दक्षिणनेत्रे विकटाय नमः । वामनेत्रे कपिलाय नमः । दक्षिणकर्णे
धरणीधराय नमः । वामकर्णे आशापूरकाय नमः । नाभौ महोदराय नमः ।
हृदये धूम्रक्रेतवे नमः । ललाटे मयूरेशाय नमः । दक्षिणबाहौ
स्वानन्दवासकारकाय नमः । वामबाहौ सच्चित्सुखधाम्ने नमः ।

॥ इति मुद्रलपुराणोक्तो गणेशन्यासः ॥१॥

2. सङ्कष्टहरणं गणेशाष्टकम् (1)

ॐ अस्य श्रीसङ्कष्टहरणस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमहागणपतिर्देवता,
सङ्कष्टहरणार्थं जपे विनियोगः ।

ॐ ॐ ॐ काररूपं त्र्यहमिति च परं यत्स्वरूपं तुरीयं
श्रीगुण्यातीतनीलं कलयति मनसस्तेज-सिन्दूर-मूर्तिम् ।

योगन्द्रेर्ब्रह्मरन्ध्रैः सकल-गुणमयं श्रीहरेन्द्रेण सङ्गं
गं गं गं गं गणेशं गजमुखमभितो व्यापकं चिन्तयन्ति ॥१॥

3. गणेशाष्टकम् (2)

सर्वे ऊचुः

यतोऽनन्तशक्तेरनन्ताश्च जीवा यतो निर्गुणादप्रमेया गुणास्ते ।
 यतो भाति सर्वं त्रिधा भेदभिन्नं सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥१॥
 यतश्चाविरासीजगत्सर्वमेतत्तथाऽब्जासनोविश्वगोविश्वगोप्ता ।
 तथेन्द्रादये देवसङ्घा मनुष्याः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥२॥
 यो वह्नि-भानू भवो भूजलं च यतः सागरश्चन्द्रमा व्योम वायुः ।
 यतः स्थावर जङ्गमा वृक्षसङ्घाः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥३॥
 यतो दानवाः किन्नरा यक्षसङ्घा यतश्चारणावारणाः श्वापदाश्च ।
 यतः पक्षि-कीटा यतो वीरुघश्च सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥४॥
 यतो बुद्धिरज्ञाननाशो मुमुक्षोर्यतः सम्पदो भक्तिसन्तोषिकाः स्युः ।
 यतो विघ्ननाशो यतः कार्यसिद्धिः सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥५॥
 यतः पुत्रसम्पद्यतोवाञ्छितार्थोयतोऽभक्त-विघ्नास्तथा-ऽनेकरूपाः ।
 यतः शोक-मोहौ यतः काम एव सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥६॥
 यतोऽनन्तशक्तिः स शेषो बभूव धराधारणोऽनेकरूपे च शक्तः ।
 यतोऽनेकधा स्वर्गलोका हि नाना सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥७॥
 यतो वेदवाचोऽतिकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति ।
 परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः ॥८॥

श्रीगणेश उवाच

पुनरूचे गणाधीशः स्तोत्रमेतत् पठेन्नरः ।
 त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं तस्य सर्वं कार्यं भविष्यति ॥९॥
 यो जपेदष्टदिवसं श्लोकाष्टकमिदं शुभम् ।
 अष्टवारं चतुर्थ्यां तु सोऽष्टसिद्धीरवाप्नुयात् ॥१०॥
 यः पठेन्मासमात्रं तु दशवारं दिने दिने ।
 स मोचयेद् बन्धगत राजवध्यं न संशयः ॥११॥
 विद्याकामो लभेद् विद्यां पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।
 वाञ्छितांल्लभते सर्वानेकविंशतिवारतः ॥१२॥
 यो जपेत् परया भक्त्या गजाननपरो नरः ।
 एवमुक्त्वा ततो देवाश्चान्तर्धानं गतः प्रभुः ॥१३॥

॥ इति गणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥३॥

4. गणेशाष्टकम् (3)

गणपति-परिवारं चारुकेयूरहारं गिरिधरवरसारं योगिनीचक्रचारम् ।
 भव-भय-परिहारंदुःख-दारिद्र्य-दूरंगणपतिमभिवन्देवक्रतुण्डावतारम् ॥
 अखिलमलविनाशपाणिनाहस्तपाशंकनकगिरिनिकाशंसूर्यकोटिप्रकाशम् ।
 भजभवगिरिनाशमालतीतीरवासंगणपतिमभिवन्देमानसेराजहंसम् ॥२॥
 विविध-मणि-मयूखैः शोभमानंविदूरैः कनक-रचित-चित्रंकण्ठदेशेविचित्रं ।
 दधति विमलहारं सर्वदायत्नसारंगणपतिमभिवन्देवक्रतुण्डावतारम् ॥३॥
 दुरितगजममन्दं वारणीं चैव वेदं विदितमखिलनादं नृत्यमानन्दकन्दम् ।
 दधतिशशिसुवक्त्रंचाऽऽकुशंयोविशेषंगणपतिमभिवन्देसर्वदाऽऽनन्दकन्दम् ॥४॥
 त्रिनयनयुतभालेशोभमाने विशालेमुकुट-मणि-सुढालेमौक्तिकानां च जाले ।
 धवलकुसुममाले यस्य शीर्ष्णः सताले गणपतिमभिवन्देसर्वदाचक्रपाणिम् ॥५॥
 वपुषि महति रूपं पीठमादौ सुदीपं तदुपरिरसकोणं यस्यचोर्ध्वत्रिकोणम् ।
 गजमितदलपद्मसंस्थितं चारुछदमंगणपतिमभिवन्देकल्पवृक्षस्य वृन्दे ॥६॥
 वरदविशदशस्तं दक्षिणं यस्य हस्तं सद्यमभयदं तं चिन्तये चित्तसंस्थम् ।
 शबलकुटिलशुण्डं चैकतुण्डं द्वितुण्डं गणपतिमभिवन्दे सर्वदा वक्रतुण्डम् ॥७॥
 कल्पद्रुमाघःस्थिते-कामधेनु चिन्तामणिं दक्षिणपाणिशुण्डम् ।
 बिभ्राणमत्यद्भुतचित्तरूपं यः पूजयेत् तस्य समस्तसिद्धिः ॥८॥
 व्यासाऽष्टकमिदं पुण्यं गणेशस्तवनं नृणाम् ।
 पठतां दुःखनाशाय विद्यां संश्रियमश्रुते ॥९॥

॥ इति गणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥४॥

5. गणेशाष्टकम् (4)

गजवदन गणेश त्वं विभो विश्वमूर्ते! हरसि सकलविघ्नान् विघ्नराज प्रजानाम् ।
 भवति जगति पूजा पूर्वमेव त्वदीया वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥१॥
 सपदि सकलविघ्ना यान्ति दूरे दयालो तव शुचि रुचिरं स्यान्नामसङ्कीर्तनं चेत् ।
 अत इह मनुजास्त्वां सर्वकार्ये स्मरन्ति वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥२॥
 सकलदुरितहन्तुः स्वर्गमोक्षादिदातुः सुररिपुवधकर्तुः सर्वविघ्नप्रहर्तुः ।
 तव भवति कृपातोऽशेष-सम्पत्तिलाभो वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥३॥

तव गणप गुणानां वर्णन नैव शक्ता जगति सकलवन्द्या सर्वकाले ।
 तदितर मनुजानां का कथा भालदृष्टे वरदवर कृपा लो चन्द्रमौले प्रसीद ॥४॥
 बहुतरमनुजैस्ते दिव्यनाम्नां सहस्रैः स्तुतिहुतिकरणेन प्राप्यते सर्वसिद्धिः ।
 विधिरयमखिलो वै तन्त्रशास्त्रे प्रसीद्धः वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥५॥
 त्वदितरदिह नास्ते सच्चिदानन्दमूर्ते इति निगदति शास्त्रं विश्वरूपं त्रिनेत्र ।
 त्वमसि हरिरथ त्वं शङ्करस्त्वं विधाता वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥६॥
 सकलसुखद माया या त्वदीया प्रसिद्धा शशधरधरसूनो त्वं तथा क्रीडसीह ।
 नट इव बहुवेषं सर्वदा संविधाय वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥७॥
 भव इह पुरतस्ते पात्ररूपेण भर्तः बहुविधनरलीलां त्वां प्रदर्श्याशु याचे ।
 सपदि भवसमुद्रान्मां समुद्धारयस्य वरदवर कृपालो चन्द्रमौले प्रसीद ॥८॥
 अष्टकं गणनाथस्य भक्त्या यो मानवः पठेत् ।
 तस्य विघ्नाः प्रणश्यन्ति गणेशस्य प्रसादतः ॥९॥

॥ इति गणेशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥५॥

6. गणेशकवचम्

गौर्युवाच

एषोऽतिचपलो दैत्यान् बाल्येऽपि नाशयत्यहो ।
 अग्रे किं कर्म कर्तेति न जाने मुनिसत्तम ॥१॥
 दैत्य नाना-विधा दुष्टाः साधुदेवद्रुहः खलाः ।
 अतोऽस्य कण्ठे किञ्चित्त्वं रक्षार्थं बद्धुमर्हसि ॥२॥
 ध्यायेत् सिंहगतं विनायकममुं षड्बाहुकं सिद्धिदम् ।
 द्वापरे तु गजाननं युग-भुजं रक्ताङ्गरागं विभुं ।
 तुर्ये तु द्विभुजं सिताङ्गरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा ॥३॥
 विनायकः शिखां पातु परमात्मा परात्परः ।
 अतिसुन्दरकायस्तु मस्तकं सुमहोत्कटः ॥४॥
 ललाटं कश्यपः पातु भूयुगं तु महोदरः ।
 नयने भालचन्द्रस्तु गजास्यस्त्वोष्ठपल्लवौ ॥५॥
 जिह्वा पातु गणक्रीडश्चिबुकं गिरिजासुतः ।
 वाचं विनायकः पातु दन्तान् रक्षतु विघ्नहा ॥६॥

श्रवणौ पाशपाणिस्तु नासिकां चिन्तितार्थदः ।
 गणेशस्तु मुखं कण्ठं पातु देवो गणञ्जयः ॥७॥
 स्कन्धौ पातु गजस्कन्धः स्तनौ विघ्नविनाशनः ।
 हृदयं गणनाथस्तु हेरम्बो जठरं महान् ॥८॥
 धराधरः पातु पाश्र्वौ पृष्ठं विघ्नहरः शुभः ।
 लिङ्गं गुह्यं सदा पातु वक्रतुण्डो महाबलः ॥९॥
 गणक्रीडो जानु-जङ्घे ऊरू मङ्गलमूर्तिमान् ।
 एकदन्तो महाबुद्धिः पादौ गुल्फौ सदाऽवतु ॥१०॥
 क्षिप्रप्रसादनो बाहू पाणी आशाप्रपूरकः ।
 अङ्गुलीश्च नखान् पातु पद्महस्तोऽरिनाशनः ॥११॥
 सर्वोङ्गानि मयूरेशो विश्वव्यापी सदाऽवतु ।
 अनुक्तमपि यत् स्थानं धूम्रकेतुः सदाऽवतु ॥१२॥
 आमोदस्त्वग्रतः पातु प्रमोदः पृष्ठतोऽवतु ।
 प्राच्यां रक्षतु बुद्धीश! आग्नेयां सिद्धिदायकः ॥१३॥
 दक्षिणस्यामुमापुत्रो नैऋत्यां तु गणेश्वरः ।
 प्रतीच्यां विघ्नहर्ताऽव्याद वायव्यां गजकर्णकः ॥१४॥
 कौबेर्यो निधिपः पायादीशान्यामीशनन्दनः ।
 दिवाऽव्यादेकदन्तस्तु रात्रौ सन्ध्यासु विघ्नहृत् ॥१५॥
 राक्षसा-ऽसुर-वेताल-ग्रह-भूत-पिशाचतः ।
 पाशाङ्कुशधरः पातु रजः सत्त्व-तमः-स्मृति ॥१६॥
 ज्ञानं धर्मं च लक्ष्मीं च लज्जां कीर्तिं तथा कुलम् ।
 वपुर्धनं च धान्यं च गृह-दाराः सुतान् सखीन् ॥१७॥
 सर्वायुधधरः पौत्रान् मयूरेशोऽवतात् सदा ।
 कपिलोऽजाविकः पातु गजाश्वाद् विकटोऽवतु ॥१८॥
 भूर्जपत्रे लिखित्वेदं यः कण्ठे धारयेत् सुधीः ।
 न भयं जायते तस्य यक्षरक्षः-पिशाचतः ॥१९॥
 त्रिसन्ध्यं जपते तस्य वज्रसारतनुर्भवेत् ।
 यात्राकाले पठेद् यस्तु निर्विघ्नेन फलं लभेत् ॥२०॥
 युद्धकाले पठेत् यस्तु विजयं चाप्नुयाद् ध्रुवम् ।
 मारणोच्चाटना-ऽऽकर्ष-स्तम्भ-मोहन-कर्मणि ॥२१॥

सप्तवारं जपेदेतद् दिनानामेकविंशतिम् ।
 तत्तत्फलमवाप्नोति साधको नाऽत्र संशयः ॥२२॥
 एकविंशतिवारं च पठेत् तावद्-दिनानि यः ।
 कारागृहगतं सद्यो राज्ञा वध्यं च मोचयेत् ॥२३॥
 राजदर्शनवेलायां पठेदेतत् त्रिवारतः ।
 स राजानं वशं नीत्वा प्रकृतीश्च सभां जयेत् ॥२४॥
 इदं गणेशकवचं कश्यपेन समीरितम् ।
 मुद्गलाय च तेनाथ माण्डव्याय महर्षय ॥२५॥
 मह्यं स प्राह कृपया कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
 न देयं भक्तिहीनाय देयं श्रद्धावते शुभम् ॥२६॥
 अनेनाऽस्य कृता रक्षा न बाधाऽस्य भवेत् क्वचित् ।
 राक्षसा-ऽसुर-बेताल-दैत्य-दानवसम्भवाः ॥२७॥

॥ इति गणेशकवचं सम्पूर्णम् ॥६॥

7. सङ्कष्टनाशनं गणेशस्तोत्रम्

नारद उवाच

प्रणम्य शिरसा देवं गौरीपुत्रं विनायकम् ।
 भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुः-कामा-ऽर्थसिद्धये ॥१॥
 प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम् ।
 तृतीयं कृष्ण-पिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम् ॥२॥
 लम्बोदरं पञ्चमं च षष्ठं विकटमेव च ।
 सप्तमं विघ्नराजं च धूम्र वर्णं तथाऽष्टकम् ॥३॥
 नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम् ।
 एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम् ॥४॥
 द्वादशैतानि नामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
 न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं परम् ॥५॥
 विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
 पुत्रार्थी लभते पुत्रान् मोक्षार्थी लभते गतिम् ॥६॥
 जपेद् गणपतिस्तोत्रं षड्भिर्मासैः फलं लभेत् ।
 संवत्सरेण सिद्धिं च लभते नाऽत्र संशयः ॥७॥

अष्टानां ब्राह्मणानां च लिखित्वा यः समर्पयेत् ।
तस्य विद्या भवेत् सर्वा गणेशस्य प्रसादतः ॥८॥

॥ इति सङ्कष्टनाशनं गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥७॥

8. गणेशमहिम्नः स्तोत्रम्

अनिर्वाच्यं रूपं स्तवन-निकरो यत्र गणित-
स्तथा वक्ष्ये स्तोत्रं प्रथमपुरुषस्याऽत्र महतः ।
यतो जातं विश्वं स्थितमपि सदा यत्र विलयः
स कीदृग् गीर्वाणः सुनिगमनुतः श्रीगणपतिः ॥१॥
गणेशा गाणेशाः शिवमिति च शैवाश्च विबुधा
रविं सौरा विष्णुं प्रथमपुरुषं विष्णुभजकाः ।
वदन्त्येके शक्ता जगदुदयमूलां परशिवां
न जाने किं तस्मै नम इति परं ब्रह्म सकलम् ॥२॥
तथेशं योगज्ञा गणपतिमिमं कर्म निखिलं
समीमांसा वेदान्तिन इति परं ब्रह्म सकलम् ।
अजां साङ्ख्यो ब्रूते सकलगुणरूपां च सततं
प्रकर्तारं न्यायस्त्वथ जगति बौद्धा धियमिति ॥३॥
कथं ज्ञेयो बुद्धेः परतर इयं बाह्यसरणि-
र्यथा धीर्यस्य स्यात् स च तदनुरूपो गणपतिः ।
महत्कृत्य तस्य स्वयमपि महान् सूक्ष्ममणुवद्
ध्वनिर्ज्योतिर्बिन्दुर्गगनसदृशः किञ्च सदसत् ॥४॥
अनेकास्योऽपाराक्षि-करचरणोऽनन्त-हृदय
स्तथा नानारूपो विविधवदनः श्रीगणपतिः ।
अनन्ताह्वः शक्त्या विविध-गुणकर्मैक-समये
त्वसंख्यातानन्ताभिमत-फलदोऽनेकविषये ॥५॥
न यस्याऽन्तो मध्यो न च भवति चादिः सुमहता-
मलिप्तः कृत्वेत्थं सकलमपि खं वत्स च पृथक् ।
स्मृतः संस्मर्तृणां सकलहृदयस्थः प्रियकरो
नमस्तस्मै देवाय च सकलबन्धाय महते ॥६॥

गणेशाद्यं बीजं दहन-वनिता-पल्लवयुतं
 मनुश्रैकार्णोऽयं द्रणवसहितोऽभोष्टफलदः ।
 सविन्दुश्चाङ्गाद्यं गणकऋषिछन्दोऽस्य च निचृत्
 स देवः प्राग्बीजं वियदपि च शक्तिर्जपकृताम् ॥७॥
 गकारो हेरम्ब! सगुण इति पुंनिर्गुणमयो
 द्विधाऽप्येको जातः प्रकृतिपुरुषो ब्रह्म हि गणः ।
 स चेशश्चोत्पत्ति-स्थिति-लयकरोऽयं प्रथमको
 यतो भूतं भव्यं भवति पतिरीशो गणपतिः ॥८॥
 गकारः कण्ठोर्ध्वं गजमुखसमो मर्त्यसदृशो
 णकारः कण्ठाधो जठरसदृशाकार इति च ।
 अधोभागः कट्यां चरण इति हीशोऽस्य च तनु-
 विभातीत्यं नाम त्रिभुवनसमं भूर्भुवः स्वः ॥९॥
 गणेशेति त्र्यर्णात्मकमपि वरं नाम सुखदं
 सकृत्प्रोच्चैरुच्चारितमिति नृभिः पावनकरम् ।
 गणेशस्यैकस्य प्रतिजपकरस्यास्य सुकृतं
 न विज्ञानो नाम्नः सकलमहिमा कीदृशविधः ॥१०॥
 गणेशेत्याहं यः प्रवदति मुहुस्तस्य पुरतः
 प्रपश्यंस्तद्वक्त्रं स्वयमपि गणस्तिष्ठति तथा ।
 स्वरूपस्य ज्ञानं त्वमुक इति नाम्नाऽस्य भवति
 प्रबोधः सुप्तस्य त्वखिलमिह सामर्थ्यममुना ॥११॥
 गणेशो विश्वेऽस्मिन् स्थित इह च विश्वं गणपतौ
 गणेशो यत्रास्ते धृति-मतिरनैश्वर्यमखिलम् ।
 समुक्तं नामैकं गणपतिपदं मङ्गलमयं
 तदेकास्यं दृष्टेः सकल-विबधास्येक्षण-समम् ॥१२॥
 बहुक्लेशैर्व्याप्तः स्मृत उत गणेशे च हृदये
 क्षणात् क्लेशान् मुक्तो भवति सहसा त्वभ्रचयवत् ।
 वने विद्यारम्भे युधि रिपुभये कुत्र गमने
 प्रवेशे प्राणान्ते गणपतिपदं चाऽऽशु विशति ॥१३॥
 गणाध्यक्षो ज्येष्ठः कपिल अपरो मङ्गलनिधि-
 र्दयालुर्हेरम्बो वरद इति चिन्तामणिरजः ।

वरानीशो दुण्ढिर्गजवदननामा शिवसुतो
 मयूरेशो गौरीतनय इति नामानि पठति ॥१४॥
 महेशोऽयं विष्णुः सकविरविरिन्दुः कमलजः
 क्षितिस्तोयं वह्निः श्वसन इति खं त्वद्रिरुदधिः ।
 कुजस्तारः शुक्रो गुरुरुदुबुधोऽगुश्च धनदो
 यमः पाशो काव्यः शनिरखिलरूपो गणपतिः ॥१५॥
 मुखं वह्निः पादौ हरिरपि विधाता प्रजननं
 रविर्नेत्रे चन्द्रो हृदयमपि कामोऽस्य मदनः ।
 करौ शक्रः कट्यामवनिरुदरं भाति दशनं
 गणेशस्यासन् वै ऋतुमयबपुश्चैव सकलम् ॥१६॥
 अनर्ध्यालङ्कारैररुण-वसनैर्भूषित-तनुः
 करीन्द्रास्यः सिंहासनमुपगतो भाति बुधराट् ।
 स्मितः स्यात्तन्मध्येऽप्युदित-रविबिम्बोपम-रुचिः
 स्थिता सिद्धिर्वामे मतिरितरगा चामरकरा ॥१७॥
 समन्तात्तस्यासन् प्रवरमुनिसिद्धाः सुरगणाः
 प्रशंसन्तीत्यग्रे विविधनुतिभिः साऽञ्जलिपुटाः ।
 विडौजाद्यैर्ब्रह्मादिभिरनुवृतो भक्तनिकरै-
 र्गणक्रीडामोद-प्रमुद-विकटाद्यैः सहचरैः ॥१८॥
 वशित्वावद्यष्टाष्टादश-दिगखिलाल्लोलमनुवाग्
 धृतिः पादूः खड्गोऽञ्जनरसबलाः सिद्धय इमाः ।
 सदा पृष्ठे तिष्ठन्त्यनिमिषदृशस्तन्मुखलया
 गणेशं सेवन्तेऽत्यतिनिकटसूपायनकराः ॥१९॥
 मृगाङ्गास्या रम्भाप्रभृतिगणिका यस्य पुरतः
 सुसङ्गीतं कुर्वन्त्यपि कुतुकगन्धर्वसहिताः ।
 मुदा पारो नाऽत्रेत्यनुपमपदे दोर्विगलिता
 स्थिरं जातं चित्तं चरणमवलोक्यास्य विमलम् ॥२०॥
 हरेणाऽयं ध्यातस्त्रिपुरमथने चाऽसुरवधे
 गणेशः पार्वत्या बलिविजयकालेऽपि हरिणा ।
 विधात्रा संसृष्टावुरगपतिना क्षोणिधरणे
 नरैः सिद्धौ मुक्तौ त्रिभुनविजये पुष्पधनुषा ॥२१॥

अयं सुप्रासादे सुर इव निजानन्दभुवने
 महान् श्रीमानाद्यो लघुतरगृहे रङ्गसदृशः ।
 शिवद्वारे द्वास्थो नृप इव सदा भूपतिगृहे
 स्थितो भूत्वोमाङ्के शिशुगणपतिर्लालनपरः ॥२२॥
 अमुष्मिन् सन्तुष्टे गजवदन एवापि विबुधे
 ततस्ते सन्तुष्टास्त्रिभुवनगताः स्युर्बुधगणाः ।
 दयालुर्हैरम्बो न च भवति यस्मिंश्च पुरुषे
 वृथा सर्वं तस्य प्रजननमतः सान्द्रतमसि ॥२३॥
 वरेण्यो भूशुण्डिर्भृगु-गुरु-कुजा-मुद्गलमुखाः
 ह्यपारास्तद्भक्ता जप-हवन-पूजा-स्तुतिपराः ।
 गणेशोऽयं भक्तप्रिय इति च सर्वत्र गदितं
 विभक्तिर्यत्रास्ते स्वयमपि सदा तिष्ठति गणः ॥२४॥
 मृदुः काश्चिद्धातोश्छद-विलिखिता वाऽपि दूषदः
 स्मृता व्याजान्मूर्तिः पथि यदि बहिर्येन सहसा ।
 अशुद्धोऽद्धा द्रष्टा प्रवदति तदाह्वा गणपतेः
 श्रुतः शुद्धी मर्त्यो भवति दुरिताद् विस्मय इति ॥२५॥
 बहिर्द्वारस्योर्ध्वं गजवदन-वर्ष्मेन्धनमयं
 प्रशस्तं वा कृत्वा विविध-कुशलैस्तत्र निहतम् ।
 प्रभावात्तन्मूर्त्या भवति सदनं मङ्गलमयं
 त्रिलोक्यानन्दस्तां भवति जगतो विस्मय इति ॥२६॥
 सिते भाद्रे मासे प्रतिशरदि मध्याह्नसमये
 मृदो मूर्तिं कृत्वा गणपतितिथौ ढुण्ढिसदृशीम् ।
 समर्चन्त्युत्साहः प्रभवति महान् सर्वसदने
 विलोक्यानन्दस्तां प्रभवति नृणां विस्मय इति ॥२७॥
 तथा ह्येकः श्लोको वरयति महिम्नो गणपतेः
 कथं स श्लोकेऽस्मिन् स्तुति इति भवेत् संप्रपठिते ।
 स्मृतं नामास्यैकं सकृदिदमनन्ताह्वयसमं
 यतो यस्यैकस्य स्तवनसदृशं नाऽन्यपरम् ॥२८॥

गजवदन विभो यद्-वर्णितं वैभवं ते
 त्विह जनुषि ममेत्थं चारु तद्दर्शयाशु।
 त्वमसि च करुणायाः सागरः कृत्स्नदाता-
 ऽप्यति तव भृतकोऽहं सर्वदा चिन्तकोऽस्मि ॥२९॥
 सुस्तोत्रं प्रपठतु नित्यमेतदेव स्वानन्दं प्रतिगमनेऽप्ययं सुमार्गः।
 राञ्चिन्त्यंस्वमनसिसत्पदारविन्दंसप्याग्रेस्तवनफलंनतोः करिष्ये ॥३०॥
 गणेशदेवस्य महात्म्यमेतद् यः श्रावयेन् वाऽपि पठेच्च तस्य।
 क्लेशालयंयान्तिलभेच्च शीघ्रं स्त्री-पुत्र-विद्यार्थ-गृहं च मुक्तिम् ॥३१॥

॥ इति गणेशमहिम्नः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥८॥

१. गणेशाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

यम उवाच

गणेश हेरम्ब गजाननेति महोदर स्वानुभवप्रकाशिन्!।
 वरिष्ठ! सिद्धिप्रिय! बुद्धिनाथ! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१॥
 अनेकविघ्नान्तक वक्रतुण्ड स्वसंज्ञवासिंश्च चतुर्भुजेति।
 कवीश देवान्तकनाशकारिन्! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥२॥
 महेशसूनो गजदैत्यशत्रो वरेण्यसूनो विकट त्रिनेत्र!।
 परेश पृथ्वीधर एकदन्त वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥३॥
 प्रमोद मोदेति नरान्तकारे षडूर्भिहन्तर्गजकर्ण दुण्ढे!।
 द्वन्द्वारिसिन्धो स्थिरभावकारिन्! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥४॥
 विनायक ज्ञानविधातशत्रो पराशरस्यात्मज विष्णुपुत्र!।
 अनादिपूजाऽऽखुग सर्वपूज्य! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥५॥
 विद्येज्य लम्बोदर धूम्रवर्ण मयूरपालेति मयूरवाहिन्!।
 सुराऽसुरैः सेवितपादपद्म वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥६॥
 वरिन्महाखूध्वज शूर्पकर्ण शिवाज सिंहस्थ अनन्तवाह!।
 दितौज विघ्नेशर शेषनाभे वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥७॥
 अणोरणीयो महतो महीयो रवेर्ज योगेशज ज्येष्ठराज!।
 गुहाग्रज ब्रह्मण पार्श्वपुत्र वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥८॥

वर-प्रदातरदितेश्च सूनो परात्परं ज्ञानद तारवक्त्र!।
 गुहाग्रज ब्रह्मण पार्श्वपुत्र वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१॥
 सिन्धोश्च शत्रो परशुप्रयाणे शमीश पुष्पप्रिय विघ्नहारिन्!।
 दूर्वाभरैरर्चित देवदेव वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१०॥
 धियः प्रदातश्च शमीप्रियेति सुसिद्धिदातश्च सुशान्तिदातः।
 अमेयमायामितबिक्रमेति वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥११॥
 द्विधा-चतुर्थीप्रिय कश्यपाच्च धनप्रद ज्ञानपदप्रकाशिन्!।
 चिन्तामणे चित्तविहार-कारिन्! वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१२॥
 यमस्य शत्रो ह्याभिमानशत्रो विधर्जहन्तः कपिलस्य सूनो!।
 विदेह स्वानन्दज योगयोग वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१३॥
 गणस्य शत्रो कपिलस्य शत्रो समस्तभावज्ञ च भालचन्द्र!।
 अनादिमध्यान्तमय प्रचारिन् वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१४॥
 विभो जगद्रूप गणेश भूमन् पुष्टे पते आखुगतेति बोधः।
 कर्तुश्च पातुश्च तु संहरेति वदन्तमेवं त्यजत प्रभीताः ॥१५॥
 इदमष्टोत्तरशतं नाम्नां तस्य पठन्ति ये।
 शृण्वन्ति तेषु वै भीताः कुरुध्वं मा प्रवेशनम् ॥१६॥
 भुक्त-मुक्तिप्रदं दुण्ढेर्धन-धान्य-प्रवर्धनम्।
 ब्रह्मभूतकरं स्तोत्रं जपन्तं नित्यमादरात् ॥१७॥
 यत्र कुत्र गणेशस्य चिह्नयुक्तानि वै भटाः।
 धामानि तत्र संभीताः कुरुध्वं मा प्रवेशनम् ॥१८॥

इति गणेशाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् ॥९॥

10. गणेशसहस्रनामस्तोत्रम्

व्यास उवाच

कथं नाम्नां सहस्रं स्वं गणेश उपदिष्टवान्!।
 शिवायैतन्ममाचक्ष्व लोकानुग्रहतत्पर ॥१॥

ब्रह्मोवाच

देव एवं पुरारातिः पुरत्रय-जयोद्यमे।
 अनर्चनाद् गणेशस्य जातो विघ्नाकुलः किल ॥२॥

मनसा स विनिर्धार्य ततस्तद्विघ्नकारणम् ।
 महागणपतिं भक्त्या समभ्यर्च्य यथाविधि ॥३॥
 विघ्न-प्रशमनोपायमपृच्छदपराजितः ।
 सन्तुष्टः पूजया शम्भोर्महागणपतिः स्वयम् ॥४॥
 सर्वविघ्नैकहरणं सर्वकामफलप्रदम् ।
 ततस्तस्मै स्वकं नाम्नां सहस्रमिदमब्रवीत् ॥५॥

ॐ अस्य श्रीमहागणपति-सहस्रनामस्तोत्र-मन्त्रस्य
 महागणपतिर्ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, महागणपतिर्देवता, गं बीजम्, हुं शक्तिः,
 स्वाहा कीलकम्, चतुर्विध-पुरुषार्थ-सिद्ध्यर्थं जपादौ विनियोगः ।
 न्यासः— ॐ गां अंगुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः । ॐ गीं तर्जनीभ्यां नमः,
 शिरसे नमः । ॐ गूं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै नमः । ॐ गैं अनामिकाभ्यां
 नमः, कवचाय नमः । ॐ गौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, नेत्रत्रयाय नमः । ॐ
 गः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट् । इति न्यासः ॥

ध्यानम्

पञ्चवक्त्रो दशभुजो भालचन्द्रः शशिप्रभः ।
 मुण्डमालः सर्पभूषो मुकुटाङ्गदभूषणः ॥
 अग्न्यर्क-शशिनो भाभिस्तिरस्कुर्वन् दशायुधः ॥
 मानसोपचारैः सम्पूज्य, लं पृथिव्यात्मकं गन्धं कल्पयामि नमः, इत्यादि ।

श्रीमहागणपतिरुवाच

ॐ गणेश्वरो गणक्रीडो गणनाथो गणाधिपः ।
 एकदंष्ट्रो वक्रतुण्डो गजवक्त्रो महोदरः ॥१॥
 लम्बोदरो धूम्रवर्णो विकटो विघ्ननायकः ।
 सुमुखो दुर्मुखो बुद्धो विघ्नराजो गजाननः ॥२॥
 भीमः प्रमोद आमोदः सुरानन्दो मदोत्कटः ।
 हेरम्बः शम्बरः शम्भुर्लम्बकर्णो महाबलः ॥३॥
 नन्दनोऽलम्पटोऽभीरुर्मघनादो गणञ्जयः ।
 विनायको विरूपाक्षो घोरशूरो वरप्रदः ॥४॥
 महागणपतिर्बुद्धिप्रियः क्षिप्रप्रसादनः ।
 द्रप्रियो गजाध्यक्ष उमापुत्रोऽघनाशनः ॥५॥

कुमारगुरुरीशानपुत्रो मूषकवाहनः ।
 सिद्धिप्रियः सिद्धिपतिः सिद्धिविनायकः ॥६॥
 अविघ्नस्तुम्बरुः सिंहवाहनो मोहिनीप्रियः ।
 कटङ्कटो राजपुत्रः शालकः सम्मितोऽमितः ॥७॥
 कूष्माण्ड-साम-सम्भूतिर्दुर्जयो घूर्जयो जयः ।
 भूपतिर्भुवनपतिर्भूतानां पतिरव्ययः ॥८॥
 विश्वकर्ता विश्वमुखो विश्वरूपो निधिर्घृणिः ।
 कविः कवीनामृषभो ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पतिः ॥९॥
 ज्येष्ठराजो निधिपतिर्निधिप्रियपतिप्रियः ।
 हिरण्य-पुरान्तस्थः सूर्यमण्डलमध्यगः ॥१०॥
 कराहति-ध्वस्त-सिन्धु-सलिलः पूषदन्तभिः ।
 उमाङ्गकेलि-कुतुकी मुक्तिदः कुलपालनः ॥११॥
 किरीटी कुण्डली हारी वनमाली मनोमयः ।
 वैमुख्यहत-दैत्यश्रीः पादाहति-जितक्षितिः ॥१२॥
 सद्योजात-स्वर्णमुञ्ज-मेखली दुर्निमित्तहृत् ।
 दुःस्वप्नहृत्प्रसहनो गुणी नादप्रतिष्ठितः ॥१३॥
 सुरूपः सर्वनेत्राधिवासो वीरासनाश्रयः ।
 पीताम्बरः खण्डरदः खण्डेन्दुकृतशेखरः ॥१४॥
 चित्राङ्कश्यामदशनो भालचन्द्रश्चतुर्भुजः ।
 योगाधिपस्तारकस्थः पुरुषो गजकर्णकः ॥१५॥
 गणाधिराजो विजयस्थिरो गजपतिध्वजी ।
 देवदेवः स्मरणप्राणदीपको वायुकीलकः ॥१६॥
 विपश्चिद्वरदो नादोन्नादभिन्नबलाहकः ।
 वराहरदो मृत्युञ्जयो व्याघ्राजिनाम्बरः ॥१७॥
 इच्छाशक्तिधरो देवत्राता दैत्यविमर्दनः ।
 शम्भुवक्त्रोद्भवः शम्भुकोपहा शम्भुहास्यभूः ॥१८॥
 शम्भुतेजाः शिवाशोकहारो गौरीसुखावहः ।
 उमाङ्गमलजो गौरीतेजोभूः स्वर्धुनीभवः ॥१९॥
 यज्ञकायो महानदो गिरिवर्ष्मा शुभाननः ।
 सर्वात्मा सर्वदेवात्मा ब्रह्ममूर्धा ककुत्स्थतिः ॥२०॥

ब्रह्माण्ड-कुम्भश्चिदव्योम-भालः सत्यशिरोरुहः ।
 जगज्जन्म-लयोन्मेष-निमेषो-ऽग्न्यर्क-सोमदृक् ॥२१॥
 गिरीन्द्रैकरदो धर्माऽधर्मोष्ठः सामबृंहितः ।
 ग्रहर्क्षदशनो वाणीजिह्वो वासवनासिकः ॥२२॥
 कुलाचलांसः सोमार्कघण्टो रुद्रशिरोधरः ।
 नदीनदभुजः सर्पागुलोकः तारकानखः ॥२३॥
 भूमध्यसंस्थितकरो ब्रह्मविद्यामदोत्कटः ।
 व्योमनाभिः श्रीहृदयो मेरुपृष्ठोऽर्णवोदरः ॥२४॥
 कुक्षिस्थ-यक्ष-गन्धर्व-रक्ष-किन्नर-मानुषः ।
 पृथ्वीकटि सृष्टिलिङ्गः शैलोरुर्दस्त्रजानुकः ॥२५॥
 पातालजङ्घो मुनिपात्कालांगुष्ठस्त्रयीतनुः ।
 ज्योतिर्मण्डललांगूलो हृदयालाननिश्चलः ॥२६॥
 हृत्पद्म-कर्णिकाशालि-वियत्केलि-सरोवरः ।
 सद्भक्त-ध्यान-निगडः पूजावारोनिवारितः ॥२७॥
 प्रतापी कश्यपसुतो गणपो विष्टपी बली ।
 यशस्वी धार्मिकः स्वोजाः प्रथमः प्रथमेश्वरः ॥२८॥
 चिन्तामणिद्वीपपतिः कल्पद्रुमवनालयः ।
 रत्नमण्डप-मध्यस्थो रत्नसिंहासनाश्रयः ॥२९॥
 तीव्राशिरोधृतपदो ज्वालिनीमौलिलालितः ।
 नन्दा-ऽऽनन्दितपीठश्री-भोगदा-भूषितासनः ॥३०॥
 सकामदायिनीपीठः स्फुरदुग्रासनाश्रयः ।
 तेजोवतीशिरोरत्नं सत्यानित्यावतंसितः ॥३१॥
 सविघ्ननाशिनीपीठः सर्वशक्त्यम्बुजाश्रयः ।
 लिपिपद्मासनाधारो वह्निधामत्रयाश्रयः ॥३२॥
 उन्नतप्रपदो गूढगुल्फः संवृतपार्ष्णिकः ।
 पीनजङ्घः शिलष्ट्रजानुः स्थूलोरुः प्रोन्नमत्कटिः ॥३३॥
 निम्नाभिः स्थूलकुक्षिः पीनवक्षा बृहद्भुजः ।
 पीनस्कन्धः कम्बुकण्ठो लम्बोष्ठो लम्बनासिकः ॥३४॥
 भग्नवाम-रदस्तुङ्ग-सव्यदन्तो महाहनुः ।
 ह्रस्वनेत्रत्रयः शूर्पकर्णो नबिडमस्तकः ॥३५॥

स्तबकाकार-कुम्भाग्रो	रत्नमौलिर्निरङ्कुशः ।
सर्पहारकटीसूत्रः	सर्पयज्ञोपवीतवान् ॥३६॥
सर्पकोटीरकटकः	सर्पग्रैवेयकाङ्गदः ।
सर्पकक्षयोदराबन्धः	सर्पराजोत्तरीयकः ॥३७॥
रक्तो रक्ताम्बरवरो	रक्तमाल्यविभूषणः ।
रक्तेक्षणो रक्तकरो	रक्तताल्वोष्ठपल्लवः ॥३८॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरः	श्वेतमाल्यविभूषणः ।
श्वेतातपत्ररुचिरः	श्वेतचामरवीजितः ॥३९॥
सर्वावयव-सम्पूर्ण-सर्वलक्षण-लक्षितः	।
सर्वाभरण-शोभाढ्यः	सर्वशोभा-समन्वितः ॥४०॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यः	सर्वकारणकारणम् ।
सर्वदैककरः शाङ्गी बीजापुरी गदाधरः ॥४१॥	
इक्षुचापधरः शूली चक्रपाणिः सरोजभृत् ।	
पाशी धृतोत्पलः शालीमञ्जरीभृत् स्वदन्तभृत् ॥४२॥	
कल्पवल्लीधरो विश्वाभयदैककरो वशी ।	
अक्षमालाधरो ज्ञान-मुद्रावान् मुद्गरायुधः ॥४३॥	
पूर्णपात्रो कम्बुधरो विधृतालिसमुद्गकः ।	
मातुलिङ्गधर-श्वेतकलिकाभृत् कुठारवान् ॥४४॥	
पुष्करस्थ-स्वर्णघटी-पूर्णरत्नाभिवर्षकः ।	
भारतीसुन्दरीनाथो विनायकरतिप्रियः ॥४५॥	
महालक्ष्मीप्रियतमः सिद्धलक्ष्मीमनोरमः ।	
रमारमेशपूर्वाङ्गो दक्षिणोमामहेश्वरः ॥४६॥	
महीवराहवामाङ्गो रतिकन्दर्पपश्चिमः ।	
आमोद-मोदजननः सप्रमोद-प्रमोदनः ॥४७॥	
समेधित-समृद्धिश्री-ऋद्धि-सिद्धि-प्रवर्तकः ।	
दत्तसौमुख्य-सुमुखः कान्तिकन्दलिताश्रयः ॥४८॥	
मदनावत्याश्रिताङ्घ्रिः कृत्तदौर्मुख्यदुर्मुखः ।	
विघ्नसम्पल्लवोपघ्नः सेवोन्निद्रमदद्रवः ॥४९॥	
विघ्नकृन्निघ्नचरणो द्राविणीशक्तिसत्कृतः ।	
तीव्राप्रसन्ननयनो ज्वालिनीपालितैकदृक् ॥५०॥	

मोहिनीमोहनी	भोगदायिनीकान्तिमण्डितः ।	
कामिनीकान्त-वक्तश्रीरधिष्ठित-वसुन्धरः		॥५१॥
वसुन्धरा-मदोन्नद्ध-महाशंख-निधिप्रभुः		।
नमद्वसुमतीमौलि-महापद्मनिधिप्रभुः		॥५२॥
सर्वसद्गुरुसंसेव्यः	शोचिष्केश-हृदाश्रयः ।	
ईशानमूर्धा	देवेन्द्रशिखा	पवननन्दनः ॥५३॥
अग्र-प्रत्यग्र-नयनो	दिव्यास्त्राणां	प्रयोगवित् ।
ऐरावतादि-सर्वाशा-वारणावरणप्रियः		॥५४॥
वज्राद्यस्त्रपरीवारो	गणचण्डसमाश्रयः ।	
जयाऽजयपरीवारो	विजयाऽविजयावहः ॥५५॥	
अजितार्चित-पादाब्जो	नित्याऽनित्यावतंसितः ।	
विलासिनीकृतोल्लासः	शौण्डीसौन्दर्यमण्डितः ॥५६॥	
अनन्तानन्तसुखदः	समङ्गलसुमङ्गलः ।	
इच्छाशक्ति-ज्ञानशक्ति-क्रियाशक्ति-निषेवितः		॥५७॥
सुभगासंश्रितपदो	ललिताललिताश्रयः ।	
कामिनीकामनः	काम-मालिनी-केलिलालितः ॥५८॥	
सरस्वत्याश्रयो	गौरीनन्दनः	श्रीनिकेतनः ।
गुरुगुप्तपदो	वाचासिद्धो	वागीश्वरीपतिः ॥५९॥
नलिनीकामुको	वामारामो	ज्येष्ठामनोरमः ।
रौद्रिमुद्रितपादाब्जो	हुम्बीजस्तुङ्गशक्तिकः ॥६०॥	
विश्वादिजननत्राणः	स्वहाशक्तिः	सकीलकः ।
अमृताब्धिकृतावासो	मदधूर्णितलोचनः ॥६१॥	
उच्छिष्टगण	उच्छिष्टगणेशो	गणनायकः ।
सर्वकालिक-संसिद्धि-नित्यशैवो	दिगम्बरः ॥६२॥	
अनपायो-ऽनन्तदृष्टि-रप्रमेयो-ऽजरामरः		।
अनाविलोऽप्रतिरथोऽह्यच्युतोऽमृतमक्षरन्		॥६३॥
अप्रक्तर्क्योऽक्षयोऽजय्योऽनाधारोऽनामयोऽमलः		।
अमोघसिद्धिरद्वैतमघोरोऽप्रमिताननः		॥६४॥
अनाकरोऽब्धि-भूम्यग्नि-बलघ्नोऽव्यक्तलक्षणः		।
आधारपीठ	आधार	आधाराधेयवर्जितः ॥६५॥

आखुकेतन	आशापूरक	आखुमहारथः ।
इक्षुसागरमध्यस्थ	इक्षुभक्षणलालसः ॥६६॥	
इक्षुचापातिरेकश्री-रिक्षुचाप-निषेवितः		।
इन्द्रगोपसमानश्रीरिन्द्रनीलसमद्युतिः		॥६७॥
इन्दीवरदलश्याम	इन्दुमण्डलनिर्मलः ।	
इध्मप्रिय	इडाभाग	इराधामेन्दिराप्रियः ॥६८॥
इक्ष्वाकुविघ्नविध्वंशी	इतिकर्तव्यतेप्सितः ।	
ईशानमौलिरीशान	ईशानसुत	ईतिहा ॥६९॥
ईषणात्रयकल्पान्त	ईहामात्रविवर्जितः ।	
उपेन्द्र	उडुभृन्मौलिरुण्डेरकबलिप्रियः ॥७०॥	
उन्नतानन	उत्तुङ्ग	उदारत्रिदशाग्रणीः ।
ऊर्जस्ववनूष्मलद	ऊहापोह-दुरासदः ॥७१॥	
ऋग्-यजुः-साम-सम्भूति-ऋद्धि-सिद्धिप्रदायकः		।
ऋजुचित्तैकसुलभ	ऋणत्रयविमोचकः ॥७२॥	
लुप्तविघ्नः स्वभक्तानां	लुप्तशक्तिः	सुरद्विषाम् ।
लुप्तश्रीर्विमुखार्चानां	लूता-विस्फोटनाशनः ॥७३॥	
एकारपीठमध्यस्थ	एकपादकृतासनः ।	
एजिताखिल-दैत्यश्रीरेधिताखिल-संश्रयः		॥७४॥
ऐश्वर्यनिधिरैश्वर्य-मैहिका-ऽऽमुष्मिकप्रदः		।
ऐरम्मद-समोन्मेष	ऐरावतनिभाननः ॥७५॥	
ओङ्कारवाच्य	ओङ्कार	ओजस्वानोषधीपतिः ।
औदार्यनिधिरौद्धत्यधुर्य	औन्नत्यनिस्वनः ॥७६॥	
अङ्कुशः	सुरनागानामङ्कुशः	सुरविद्विषाम् ।
अःसमस्तविसर्गान्तपदेषु	परिकीर्तितः ॥७७॥	
कमण्डलुधरः	कल्पः	कपर्दी कलभाननः ।
कर्मसाक्षी	कर्मकर्ता	कर्माऽकर्मफलप्रदः ॥७८॥
कदम्बगोलकाकारः	कूष्माण्डगणनायकः ।	
कारुण्यदेहः	कपिलः	कथकः कटिसूत्रभृत् ॥७९॥
खर्वः	खड्गप्रियः	खड्ग-खान्तान्तस्य-खनिर्मलः ।
खल्वाटशृङ्गनिलयः	खट्वाङ्गी	खदुरासदः ॥८०॥

गुणाढ्यो गहनो गस्थो गद्यपद्यसुधारणवः ।
 गद्यगानप्रियो गर्जो गीतगीर्वाणपूर्वजः ॥८१॥
 गुह्याचाररतो गुह्यो गुह्यागमनिरूपितः ।
 गुहाशयो गुहाब्धिस्थो गुरुगम्यो गुरोर्गुरुः ॥८२॥
 घण्टाघर्घरिकामाली घटकुम्भो घटोदरः ।
 चण्डश्चण्डेश्वर-सुहृच्चण्डीश-श्चण्डविक्रमः ॥८३॥
 चराऽचरपति-श्चिन्तामणि-चर्वणलालसः ।
 छन्दश्छन्दोवपुश्छन्दो दुर्लक्ष्यश्छन्दविग्रहः ॥८४॥
 जगद्योनि-जगत्साक्षी जगदीशो जगन्मयः ।
 जपो जपपरो जप्यो जिह्वासिंहासनप्रभुः ॥८५॥
 झलझलोल्लसद्धान-झङ्कारि-भ्रमराकुलः ।
 टङ्कार-स्फार-संरावष्टङ्कारि-मणिनूपुरः ॥८६॥
 ठद्वयीपल्लवान्तस्थ-सर्वमन्त्रैक-सिद्धिदः ।
 डिण्डिमण्डो डाकिनीशो डामरो डिण्डिमप्रियः ॥८७॥
 ढक्कानिनाद-मुदितो ढौको ढुण्ढिबिनायकः ।
 तत्त्वानां परमं तत्त्वं तत्त्वपदं-निरूपितः ॥८८॥
 तारकान्तरसंस्थान-स्तारकस्तारकान्तकः ।
 स्थाणुः स्थाणुप्रियः स्थाता स्थावरं जङ्गमं जगत् ॥८९॥
 दक्षयज्ञप्रमथनो दाता दानवमोहनः ।
 दयावान् दिव्यविभवो दण्डभृद्दण्डनायकः ॥९०॥
 दन्तप्रभिन्नाभ्रमालो दैत्यवारणदारणः ।
 दंष्ट्रालग्नद्विपघटो देवार्थनृगजाकृतिः ॥९१॥
 धन्य-धान्यपति-र्धन्यो धनदो धरणीधरः ।
 ध्यानैकप्रकटो ध्येयो ध्यानं ध्यानपरायणः ॥९२॥
 नन्द्यो नन्दिप्रियो नादो नादमध्य-प्रतिष्ठितः ।
 निष्कलो निर्मलो नित्यो नित्याऽनित्यो निरायमः ॥९३॥
 परं व्योम परं धाम परमात्मा परं पदम् ।
 परात्परः पशुपतिः पशुपाशविमोचकः ॥९४॥
 पूर्णानन्द परानन्दः पुराणपुरुषोत्तमः ।
 पद्मप्रसन्ननयनः प्रणताज्ञानमोचनः ॥९५॥

प्रमाण-प्रत्ययातीतः प्रणतार्तिनिवारणः ।
 फलहस्तः फणिपति फेत्कारः फाणितप्रियः ॥१६॥
 बाणार्चिताङ्घ्रियुगलो बालकेलि-कुतूहली ।
 ब्रह्म ब्रह्मार्चितपदो ब्रह्मचारी बृहस्पतिः ॥१७॥
 बृहत्तमो ब्रह्मपरो ब्रह्मण्यो ब्रह्मवित्-प्रियः ।
 बृहन्नादाग्रयचीत्कारो ब्रह्माण्डावलिमेखलः ॥१८॥
 भ्रूक्षेपदत्तलक्ष्मीको भर्गो भद्रो भयापहः ।
 भगवान् भक्तिसुलभो भूतिदो भूतिभूषणः ॥१९॥
 भव्यो भूतालयो भोगदाता भूमध्यगोचरः ।
 मन्त्रो मन्त्रपतिर्मन्त्री मदमत्तमनोरमः ॥२०॥
 मेखलावान् मन्दगतिर्मतिमत्कमलेक्षणः ।
 महाबल महावीर्यो महाप्राणो महामनाः ॥२०१॥
 यज्ञो यज्ञपतिर्यज्ञगोप्ता यज्ञफलप्रदः ।
 यशस्करो योगगम्यो याज्ञिको याजकप्रियः ॥२०२॥
 रसो रसप्रियो रस्यो रञ्जको रावणार्चितः ।
 रक्षारक्षाकरो रत्नगर्भो राज्यसुखप्रदः ॥२०३॥
 लक्ष्यं लक्ष्यप्रदो लक्ष्यो लयस्थो लङ्कप्रियः ।
 लानप्रियो लास्यपरो लाभकृल्लोकविश्रुतः ॥२०४॥
 वरेण्यो वह्निवदनो वन्द्यो वेदान्तगोचरः ।
 विकर्ता विश्वतश्चक्षुर्विधाता विश्वतोमुखः ॥२०५॥
 वामदेवो विश्वनेता वज्रिवज्रनिवारणः ।
 विश्वबन्धन-विष्कम्भाधारो विश्वेश्वरप्रभुः ॥२०६॥
 शब्दब्रह्म शमप्रायः शम्भुशक्तिगणेश्वरः ।
 शास्ता शिखाग्रनिलयः शरण्यः शिखरीश्वरः ॥२०७॥
 षडृतुकुसुमस्रग्वी षडाधारः षडक्षरः ।
 संसारवैद्यः सर्वज्ञः सर्वभेषजभेषजम् ॥२०८॥
 सृष्टि-स्थिति-लयक्रीडः सुरकुञ्जरभेदनः ।
 सिन्दूरितमहाकुम्भः सदसद्व्यक्तिदायकः ॥२०९॥
 साक्षी समुद्रमथनः स्वसंवेद्यः स्वदक्षिणः ।
 स्वतन्त्र सत्यसङ्कल्पः सामगानरतः सुखी ॥२१०॥

हंसो हस्तिपिशाचीशो हवनं हव्यकव्यभुक् ।
 हव्यो हुतप्रियो हर्षो हल्लेखामन्त्रमध्यगः ॥१११॥
 क्षेत्राधिपः क्षमाभर्ता क्षमापरपरायणम् ।
 क्षिप्रक्षेमकरः क्षेमानन्दः क्षोणीसुरद्रुमः ॥११२॥
 धर्मप्रदोऽर्थदः कामदाता सौभाग्यवर्धनः ।
 विद्याप्रदो विभवदो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥११३॥
 आभिरूप्यकरो वीरश्रीपदो विजयप्रदः ।
 सर्ववश्यकरो गर्भदोषहा पुत्रपौत्रदः ॥११४॥
 मेधादः कीर्तिदः शोकहारी दौर्भाग्यनाशनः ।
 प्रतिवादिमुखस्तम्भो रुष्टचित्तप्रसादनः ॥११५॥
 पराभिचारशमनो दुःखभञ्जनकारकः ।
 लवस्त्रुटिः कला काष्ठा निमेषस्तत्परः क्षणः ॥११६॥
 घटी मुहूर्तः प्रहरो दिवा नक्तमहर्निशम् ।
 पक्षो मासोऽयनं वर्षं युगं कल्पो महालयः ॥११७॥
 राशिस्तारा तिथिर्योगो वारः करणमंशकम् ।
 लग्नं होरा कलाचक्रं मेरुः सप्तर्षयो ध्रुवः ॥११८॥
 राहुर्मन्दः कविर्जीवो बुधो भौमः शशी रविः ।
 कालः सृष्टि स्थितिर्विश्वं स्थावरं जङ्गमं च यत् ॥११९॥
 भूरापो-ऽग्नि-र्मरुद्-व्योमा-ऽहंकृतिः प्रकृतिः पुमान् ।
 ब्रह्मा विष्णुः शिवो रुद्र ईशः शक्तिः सदाशिवः ॥१२०॥
 त्रिदशाः पितरः सिद्धा यक्षा रक्षांसि किन्नराः ।
 साद्धया विद्याधरा भूता मनुष्या पशवः खगाः ॥१२१॥
 समुद्राः सरितः शैला भूतं भव्यं भवोद्भवः ।
 साङ्ख्यं पातञ्जलं योगः पुराणानि श्रुतिः स्मृतिः ॥१२२॥
 वेदाङ्गानि सदाचारी मीमांसा न्यायविस्तरः ।
 आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्व काव्यनाटकम् ॥१२३॥
 वैखानसं भागवतं सात्वतं पाञ्चरात्रकम् ।
 शैवं पाशुपतं कालामुखं भैरवशासनम् ॥१२४॥
 शक्तिं वैनायकं सौरं जैनमार्हतसंहिता ।
 सदसद्व्यक्तमव्यक्तं सचेतनमचेतनम् ॥१२५॥

बन्धो मोक्षः सुखं भोगो-ऽयोगः सत्यमणुर्महान् ।
 स्वस्ति हुंफट् स्वधा स्वाहा श्रीषड्-वौषड्-वषण्णमः ॥१२६॥
 ज्ञानं विज्ञानमानन्दो बोधः संविच्छमो यमः ।
 एक एकाक्षराधार एकाक्षरपरायणः ॥१२७॥
 एकाग्रधीरेकवीर एकाऽनेकस्वरूपधृक् ।
 द्विरूपो द्विभुजो द्वयक्षो द्विरदो द्विपरक्षकः ॥१२८॥
 द्वैमातुरो द्विवदनो द्वन्द्वातीतो द्वयातिगः ।
 त्रिधामा त्रिकरस्त्रेता-त्रिवर्ग-फलदायकः ॥१२९॥
 त्रिगुणात्मा त्रिलोकादि-स्त्रिशक्तीश-स्त्रिलोचनः ।
 चतुर्बाहुश्चतुर्दन्तश्चतुरात्मा चतुर्मुखः ॥१३०॥
 चतुर्विधोपायमय-श्चतुर्वर्णाश्रमाश्रयः ।
 चतुर्विध-वचोवृत्ति-परिवृत्ति-प्रवर्तकः ॥१३१॥
 चतुर्थीपूजनप्रीत-श्चतुर्थीतिथिसम्भवः ।
 पञ्चाक्षरात्मा पञ्चात्मा पञ्चास्यः पञ्चकृत्यकृत् ॥१३२॥
 पञ्चाधारः पञ्चवर्णः पञ्चाक्षरपरायणः ।
 पञ्चतालः पञ्चकरः पञ्चप्रणवभावितः ॥१३३॥
 पञ्चब्रह्ममयस्फूर्तिः पञ्चावरणवारितः ।
 पञ्चभक्ष्यप्रियः पञ्चबाणः पञ्चशिवात्मकः ॥१३४॥
 षट्कोणपीठः षट्चक्रधामा षड्ग्रन्थिभेदकः ।
 षडध्वान्तविध्वंसी षडङ्गुलमहाहृदः ॥१३५॥
 षण्मुखः षण्मुखभ्राता षड्शक्तिपरिवारितः ।
 षड्वैरिवर्गविध्वंसी षडूर्मिभयभञ्जनः ॥१३६॥
 षट्तरकदूरः षट्कर्मनिरतः षड्रसाश्रयः ।
 सप्तपातालचरणः सप्तद्वीपोरुमण्डलः ॥१३७॥
 सप्तस्वर्लोकमुकुटः सप्तसप्तिवरप्रदः ॥
 सप्ताङ्गराज्यसुखदः सप्तर्षिगणमण्डितः ॥१३८॥
 सप्तच्छन्दोनिधिः सप्तहोता सप्तस्वराश्रयः ।
 सप्ताब्धिकेलिकासारः सप्तमातुनिषेवितः ॥१३९॥
 सप्तच्छन्दोमोदमदः सप्तच्छन्दोमखप्रभुः ।
 अष्टमूर्ति-ध्येयमूर्तिरष्टप्रकृति-कारणम् ॥१४०॥

अष्टाङ्गयोगफलभूरष्टपत्राम्बुजासनः	।
अष्टशक्ति-समृद्धश्रीरष्टैश्वर्य-प्रदायकः	॥१४१॥
अष्टपीठोपपीठश्रीरष्टमातृसमावृतः	।
अष्टभैरव-सेव्योऽष्ट-वसुवन्द्यो-ऽष्टमूर्तिभृत्	॥१४२॥
अष्टचक्रःस्फूर्तिरष्टद्रव्यं-हविःप्रियः	।
नवनागासनाभ्यासी	नवनिध्यनुशासिता ॥१४३॥
नवद्वारपुराधारो	नवधारनिकेतनः ।
नवनारायणस्तुत्यो	नवदुर्गानिषेवितः ॥१४४॥
नवनाथमहानाथो	नवनागविभूषणः ।
नवरत्नविचित्राङ्गो	नवशक्तिशिरोद्धृतः ॥१४५॥
दशात्मको दशभुजो	दशदिक्पतिवन्दितः ।
दशाध्यायो दशप्राणो	दशेन्द्रिय-नियामकः ॥१४६॥
दशाक्षर-महामन्त्रो	दशाशाव्यापिविग्रहः ।
एकादशादिभिः रुद्रैः स्तुत	एकादशाक्षरः ॥१४७॥
द्वादशोदण्डदोर्दण्डो	द्वादशान्तनिकेतनः ।
त्रयोदशभिदाभिन्न-विश्वेदेवाधिदैवतम्	॥१४८॥
चतुर्दशेन्द्रवरद-श्रुतुर्दशमनु-प्रभुः	।
चतुर्दशादि-विद्याढ्य-श्रुतुर्दश-जगत्प्रभुः	॥१४९॥
सामपञ्चदशः पञ्चदशीशीतांशुनिर्मलः	।
षोडशाधारनिलयः	षोडशस्वरमातृकः ॥१५०॥
षोडशान्तपदावासः	षोडशेन्दुकलात्मकः ।
कलासप्तदशी सप्तदशः सप्तदशाक्षरः	॥१५१॥
अष्टादशद्वीपपतिरष्टादशपुराणकृत्	।
अष्टादशौषधीसृष्टिरष्टादशविधिस्मृतः	॥१५२॥
अष्टादशललिपिव्यष्टि-समष्टि-ज्ञान-कोविदः	।
एकविंशः पुमानेक-विंशत्यङ्गुलि-पल्लवः	॥१५३॥
चतुर्विंशति-तत्त्वात्मा	पञ्चविंशाख्यपूरुषः ।
सप्तविंशतितारेशः	सप्तविंशतियोगकृत् ॥१५४॥
द्वात्रिंशद्-भैरवाधीश-श्रुतुस्त्रिंशन्महाहृदः	।
षट्त्रिंशत्तत्त्वसम्भूतिरष्टात्रिंशत्कलातनुः	॥१५५॥

नमदेकोनपञ्चाशन्-मरुद्वर्ग-निरर्गलः	।
पञ्चाशदक्षरश्रेणी	पञ्चाशद्रुविग्रहः ॥१५६॥
पञ्चाशद्विष्णुशक्तीशः	पञ्चाशन्मातृकालयः ।
द्विपञ्चाशद्वपुःश्रेयो	त्रिषष्ट्यक्षरसंश्रयः ॥१५७॥
चतुःषष्ट्यर्णनिर्णेता	चतुःषष्टिकलानिधिः ।
चतुःषष्टिमहासिद्ध-योगिनीवृन्द-वन्दितः	॥१५८॥
अष्टषष्टि-महातीर्थ-क्षेत्रभैरवभावनः	।
चतुर्नवति-मन्त्रात्मा	षण्णवत्यधिकप्रभुः ॥१५९॥
शतानन्द	शतधृतिः
शतानीकः	शतमखः
सहस्रपत्रनिलयः	सहस्रफणभूषणः ।
सहस्रशीर्षापुरुषः	सहस्राक्षः
सहस्रनामसंस्तुत्यः	सहस्राक्षबलापहः ।
दशसाहस्रफणभृत्-फणिराज-कृतासनः	॥१६२॥
अष्टाशीतिसहस्राद्य-महर्षिस्तोत्र-यन्त्रितः	।
लक्षाधीशप्रियाधारो	लक्षाधारमनोमयः ॥१६३॥
चतुर्लक्षजपप्रीत-श्चतुर्लक्षप्रकाशितः	।
चतुरशीतिलक्षाणां	जीवानां
कोटिसूर्यप्रतीकाशः	कोटिचन्द्रांशुनिर्मलः ।
शिवाभवाध्युष्टकोटि-विनायक-धुरन्धरः	॥१६५॥
सप्तकोटि-महामन्त्र-मन्त्रितावयवद्युतिः	।
त्रयस्त्रिंशत्कोटिसुर-श्रेणिप्रणतपादुकः	॥१६६॥
अनन्त-नामानन्तश्रीरनन्ता-ऽनन्त-सौख्यदः	ॐ ॥१६७॥
पुनः ऋष्यादिक-न्यासम्, उत्तरन्यासं मानसपूजां च कृत्वा,	
इति वैनायकं नाम्नां सहस्रमिदमीरितम् ।	
इदं ब्राह्मे मुहूर्ते यः पठति प्रत्यहं नरः	॥१॥
करस्थं तस्य सकलमैहिकाऽऽमुष्मिकं सुखम् ।	
आयुरारोग्यमैश्वर्यं धैर्यं शौर्यं बलं यशः	॥२॥
मेधा प्रज्ञा धृतिः कान्तिः सौभाग्यमतिरूपता ।	
सत्यं दया क्षमा शान्ति-र्दाक्षिण्यं धर्मशालिता	॥३॥

जगत्संयमनं विश्वसंवादो वादपाटवम् ।
 सभापाण्डित्यमौदार्यं गाम्भीर्यं ब्रह्मवर्चसम् ॥४॥
 औनन्त्यं च कुलं शीलं प्रतापो वीर्यमार्यता ।
 ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं स्थैर्यं विश्वातिशायिता ॥५॥
 धन-धान्या-ऽभिवृद्धिश्च सकृदस्य जपाद् भवेत् ।
 वश्यं चतुर्विधं नृणां जपादस्य प्रजायते ॥६॥
 राज्ञो राजकलत्रस्य राजपुत्रस्य मन्त्रिणः ।
 जप्यते यस्य वश्यार्थं स दासस्तस्य जायते ॥७॥
 धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षाणामनायासेन साधनम् ।
 शाकिनी-डाकिनी-रक्षो-यक्षोरग-भयापहम् ॥८॥
 साम्राज्यसुखदं चैव समस्त-रिपुमर्दनम् ।
 समस्त-कलहध्वंसि-दग्धबीज-प्ररोहणम् ॥९॥
 दुःस्वप्ननाशनं क्रुद्धस्वामि-चित्त-प्रसादनम् ।
 षट्कर्माऽष्ट-महासिद्धि-त्रिकालज्ञान-साधनम् ॥१०॥
 परकृत्याप्रशमनं परचक्रविमर्दनम् ।
 सङ्ग्रामरङ्गे सर्वेषामिदमेकं जयावहम् ॥११॥
 सर्ववन्ध्यात्वदोषघ्नं गर्भरक्षैककारणम् ।
 पठ्यते प्रत्यहं यत्र स्तोत्रं गणपतेरिदम् ॥१२॥
 देशे तत्र न दुर्भिक्षमीतयो दुरितानि च ।
 न तद्गृहं जहाति श्रीर्यत्राऽयं पठ्यते स्तवः ॥१३॥
 क्षय-कुष्ठ-प्रमेहार्श-भगन्दर-विसूचिकाः ।
 गुल्मं प्लीहानमश्मानमतिसारं महोदरम् ॥१४॥
 कासं श्वासं गुदावर्तं शूलं शोफादिसम्भवम् ।
 शिरोरोगं वर्मिं हिक्कां गण्डमालामरोचकम् ॥१५॥
 वात-पित्त-कफ-द्वन्द्व-त्रिदोष-जनित-ज्वरम् ।
 आगन्तुविषमं शीतमुष्णं चैकाहिकादिकम् ॥१६॥
 इत्याद्युक्तमनुक्तं वा रोगं दोषादिसम्भवम् ।
 सर्वं प्रशमयत्याशु स्तोत्रस्याऽस्य सकृज्जपः ॥१७॥
 सकृत्पाठेन संसिद्धः स्त्रीशूद्रपतितैरपि ।
 सहस्रनाममन्त्रोऽयं जपितव्यः शुभाप्तये ॥१८॥

महागणपतेः स्तोत्रं सकामः प्रजपन्निदम् ।
 इच्छया सकलान् भोगाननुभूयेह पार्थिवान् ॥१९॥
 मनोरथफलै-दिव्यै-व्योमयानै-र्मनोरमैः ।
 चन्द्रेन्द्र-भास्करोपेन्द्र-ब्रह्म-शर्वादिसद्गुणैः ॥२०॥
 कामरूपः कामगतिः कामतो विचरन्निह ।
 भुक्त्वा यथेप्सितान् भोगानभीष्टान् सहबन्धुभिः ॥२१॥
 गणेशानुचरो भूत्वा महागणपतेः प्रियः ।
 नन्दीश्वरादि-सानन्दी नन्दितः सकलैर्गणैः ॥२२॥
 शिवाभ्यां कृपया पुत्रनिर्विशेषं च लालितः ।
 शिवभक्तः पूर्णकामो गणेश्वरवरात् पुनः ॥२३॥
 जातिस्मरो धर्मपरः सार्वभौमोऽभिजायते ।
 निष्कामस्तु जपन्नित्यं भक्त्या विघ्नेशतत्परः ॥२४॥
 योगसिद्धिं परां प्राप्य ज्ञान-वैराग्य-संस्थितः ।
 निरन्तरोदितानन्दे परमानन्दसंविदि ॥२५॥
 विश्वोत्तीर्णे परेपारे पुनरावृत्तिवर्जिते ।
 लीनो वैनायके घाम्नि रमते नित्यनिर्वृतः ॥२६॥
 यो नामभिर्हुनेदेतैरर्चयेत् यूजयेन्नरः ।
 राजानो वश्यतां यान्ति रिपवो यान्ति दासताम् ॥२७॥
 मन्त्राः सिध्यन्ति सर्वेऽपि सुलभास्तस्य सिद्ध्यः ।
 मूलमन्त्रादपि स्तोत्रमिदं प्रियतरं मम ॥२८॥
 नभस्ये मासि शुक्लायां चतुर्थ्या मम जन्मनि ।
 दूर्वाभिर्नामभिः पूजा तर्पणं विधिवच्चरेत् ॥२९॥
 अष्टद्रव्यैर्विशेषण जुहुयाद् भक्तिसंयुतः ।
 तस्येप्सितानि सर्वाणि सिध्यन्त्यत्र न संशयः ॥३०॥
 इदं प्रजप्तं पठितं पाठितं श्रावितं श्रुतम् ॥३१॥
 व्याकृतं चर्चितं ध्यातं विसृष्टमभिनन्दितम् ।
 इहाऽमुत्र च सर्वेषां विश्वैश्वर्यं प्रदायकम् ॥३२॥
 स्वच्छन्दचारिणाऽप्येष येनाऽयं धार्यते स्तवः ।
 स रक्ष्यते शिवोद्भूतैर्गणैरध्युष्टकोटिभिः ॥३३॥

पुस्तके लिखितं यत्र गृहे स्तोत्रं प्रपूजयेत् ।
 तत्र सर्वोत्तमा लक्ष्मीः सन्निधत्ते निरन्तरम् ॥३४॥
 दानैरशेषैरखिलैर्व्रतैश्च तीर्थैरशेषैरखिलैर्मखैश्च ।
 न तत्फलं विन्दति यद्गणेशं सहस्रनाम्नां स्मरणेन सद्यः ॥३५॥
 एतन्नाम्नां सहस्रं पठति दिनमणो प्रत्यहं प्रोजिहाने ।
 सायं मध्यदिने वा त्रिषवणमथवा सन्ततं वा जनो यः ।
 स स्यादैश्वर्यधुर्यः प्रभवति च सतां कीर्तिमुच्चैस्तनोति ।
 प्रत्यूहं हन्ति विश्वं वशयति सुचिरं वर्धते पुत्र-पौत्रैः ॥३६॥
 अकिञ्चनोऽपि मत्प्राप्तिश्चिन्तको नियताशनः ।
 जपेत्तु चतुरो मासान् गणेशार्चनतत्परः ॥३७॥
 दरिद्रतां समुन्मूल्य सप्तजन्मानुगामपि ।
 लभते महतीं लक्ष्मीमित्याज्ञा पारमेश्वरी ॥३८॥
 आयुष्यं वीतरोगं कुलमतिविमलं सम्पदश्चार्तदानाः
 कीर्तिर्नित्यावदाता भणितिरभिनवाकान्तिरव्याधिभव्या ।
 पुत्रा सन्तः कलत्रं गुणवदभिमतं यद्यदेतच्च सत्यं
 नित्यं यः स्तोत्रमेतत् पठति गणपतेस्तस्य हस्ते समस्तम् ॥३९॥
 ॐ गणञ्जयो गणपतिर्हैरम्बो धरणीधरः ।
 महागणपतिर्लक्षप्रदः क्षिप्रप्रसादनः ॥४०॥
 अमोघसिद्धिरमृतो मन्त्रश्चिन्तामणिर्निधिः ।
 सुमङ्गलो बीजमाशापूरको वरदः शिवः ॥४१॥
 काश्यपो नन्दनो वाचासिद्धो दुण्ढिविनायकः ।
 मोदकैरेभिरत्रैकविंशत्या नामभिः पुमान् ॥४२॥
 यः स्तौति मद्गतमनो मदाराधनतत्परः ।
 स्तुतो नाम्नां सहस्रेण तेनाऽहं नाऽत्र संशयः ॥४३॥
 नमो नमः सुरवर-पूजिताङ्घ्रये
 नमो नमो निरुपममङ्गलात्मने ।
 नमो नमो विपुलपदैकसिद्धये
 नमो नमः करिकलभाननाय ते ॥४४॥

॥ इति गणेशसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०॥

11. गणेशस्तोत्रम्

अधुना शृणु देवस्य साधनं योगदं परम् ।
 साधयित्वा स्वयं योगी भविष्यसि न संशयः ॥१॥
 स्वानन्दः स्वविहारेण संयुक्तश्च विशेषतः ।
 सर्वसंयोगकारित्वाद् गणेशो मायया युतः ॥२॥
 विहारेण विहीनश्चाऽयोगो निर्मायिकः स्मृतः ।
 संयोगाभेद-हीनत्वाद् भवहा गणनायकः ॥३॥
 संयोगाऽयोगयोर्योगः पूर्णयोगस्त्वयोगिनः ।
 प्रह्लादगणनाथस्तु पूर्णो ब्रह्ममयः परः ॥४॥
 योगेन तं गणाधीशं प्राप्नुवन्तश्च दैत्यपः ।
 बुद्धिः सा पञ्चधा जाता चित्तरूपा स्वभावतः ॥५॥
 तस्य माया द्विधा प्रोक्ता प्राप्नुवन्तीह योगिनः ।
 तं विद्धि पूर्णभावेन संयोगाऽयोगवर्जितः ॥६॥
 क्षिप्तं मूढं च विक्षिप्तमेकाग्रं च निरोधकम् ।
 पञ्चधा चित्तवृत्तिश्च सा माया गणपस्य वै ॥७॥
 क्षिप्तं मूढं च चित्तं च यत्कर्मणि च विकर्मणि ।
 संस्थितं तेन विश्वं वै चलति स्व-भावतः ॥८॥
 अकर्मणि च विक्षिप्तं चित्तं जानीहि मानद ! ।
 तेन मोक्षमवाप्नोति शुक्लगत्या न संशयः ॥९॥
 एकाग्रमष्टधा चित्तं तदेवैकात्मधारकम् ।
 संप्रज्ञात-समाधिस्थं जानीहि साधुसत्तम् ॥१०॥
 निरोधसंज्ञितं चित्तं निवृत्तिरूपधारकम् ।
 असंप्रज्ञातयोगस्थं जानीहि योगसेवया ॥११॥
 सिद्धिर्नानाविधा प्रोक्ता भ्रान्तिदा तत्र सम्मता ।
 माया स गणनाथस्य त्यक्तव्य ! योगसेवया ॥१२॥
 पञ्चधा चित्तवृत्तिश्च बुद्धिरूपा प्रकीर्तिता ।
 सिद्ध्यर्थं सर्वलोकश्च भ्रमयुक्ता भवन्त्यतः ॥१३॥
 धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षाणां सिद्धिर्भिन्ना प्रकीर्तिता ।
 ब्रह्मभूतकरी सिद्धिस्त्यक्तव्या पञ्चधा सदा ॥१४॥

मोहदा सिद्धिरत्यन्तमोहधारकतां गता ।
 बुद्धिश्चैव स सर्वत्र ताभ्यां खेलति विघ्नपः ॥१५॥
 बुद्ध्या यद् बुद्ध्यते तत्र पश्चान् मोहः प्रवर्तते ।
 अतो गणेशभक्त्या स मायया वर्जितो भवेत् ॥१६॥
 पञ्चधा चित्तवृत्तिश्च पञ्चधा सिद्धिमादरात् ।
 त्यक्त्वा गणेशयोगेन गणेशं भज भावतः ॥१७॥
 ततः स गणराजस्य मन्त्रं तस्मै ददौ स्वयम् ।
 गणानां त्वेति वेदोक्तं स विधिं मुनिसत्तम् ॥१८॥
 तेन सम्पूजितो योगी प्रह्लादेन महात्मना ।
 ययौ गृत्समदो दक्षः स्वर्गलोकं विहायसा ॥१९॥
 प्रह्लादश्च तथा साधुः साधयित्वा विशेषतः ।
 योगं योगीन्द्रमुख्यं स शान्तिसद्धारकोऽभवत् ॥२०॥
 विरोचनाय राज्यं स ददौ पुत्राय दैत्यपः ।
 गणेशभजने योगी स सक्तः सर्वदाऽभवत् ॥२१॥
 सगुणं विष्णुरूपं च निर्गुणं ब्रह्मवाचकम् ।
 गणेशेन धृतं सर्वं कलांशेन न संशयः ॥२२॥
 एवं ज्ञात्वा महायोगी प्रह्लादोऽभेदमाश्रितः ।
 हृदि चिन्तामणिं ज्ञात्वाऽभजदन्यभावनः ॥२३॥
 स्वल्पकालेह दैत्येन्द्रः शान्तियोगपरायणः ।
 शान्तिं प्राप्तो गणेशेनैकभावोऽभवतत्परः ॥२४॥
 शापश्चैव गणेशेन प्रह्लादस्य निराकृतः ।
 न पुनर्दुष्टसङ्गेन भ्रान्तोऽभून्मयि मानदः ॥२५॥
 एवं मदं परित्यज्य ह्येकदन्तसमाश्रयात् ।
 असुरोऽपि महायोगी प्रह्लादः स बभूव ह ॥२६॥
 एतत् प्रह्लादमाहात्म्यं यः शृणोति निरोत्तमः ।
 पठेद् वा तस्य सततं भवेदीप्सितदायकम् ॥२७॥

॥ इति गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११॥

12. गणेशपञ्चरत्नस्तोत्रम्

मुदा करात्तमोदकं सदा विमुक्तिसाधकं
 कलाधरावतंसकं विलासिलोकरञ्जकम् ।
 अनायकैकनायकं विनाशितेभदैत्यकं
 नताऽशुभा-ऽऽशुनाशकं नमामि तं विनायकम् ॥१॥
 नतेतरातिभीकरं नवोदितार्कभास्वरं
 नमत्सुरारिनिर्जरं नताधिकापदुद्धरम् ।
 सुरेश्वरं निधीश्वरं गजेश्वरं गणेश्वरं
 महेश्वरं तमाश्रये परात्परं निरन्तरम् ॥२॥
 समस्तलोकशङ्करं निरस्तदैत्यकुञ्जरं
 दरेतरोदरं वरं वरेभ-वक्त्रमक्षरम् ।
 कृपाकरं क्षमाकरं मुदाकरं यशस्करं
 मनस्करं नमस्कृतां नमस्करोमि भास्वरम् ॥३॥
 अकिञ्चिनार्तिमार्जनं चिरन्तनोक्तिभाजनं
 पुरारिपूर्वनन्दनं सुरारि-गर्व-चर्वणम् ।
 प्रपञ्चनाश-भीषणं धनञ्जयादिभूषणं
 कपोलदानवारणं भजे पुराणवारणम् ॥४॥
 नितान्त-कान्तदन्त-कान्तिमन्त-कान्तकात्मज -
 मचिन्त्यरूपमन्तहीनमन्तरायकृन्तनम् ।
 हृदन्तरे निरन्तरं वसन्तमेव योगिनां
 तमेकदन्तमेव तं विचिन्तयामि सन्ततम् ॥५॥
 महागणेशपञ्चरत्नमादरेण योऽन्वहं
 प्रगायति प्रभातके हृदि स्मरन् गणेश्वरम् ।
 अरोगतामदोषतां सुसाहितीं सुपुत्रतां
 समाहितायुरष्टभूतिमभ्युपैति सोऽचिरात् ॥६॥

॥ इति गणेशपञ्चरत्नस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥१२॥

13. गणेशपञ्चामरस्तोत्रम्

ललाट-पट्टलुण्ठितामलेन्दु-रोचिरुद्भटे -
 वृताति-वर्चस्वरोत्सरत्किरीट-तेजसि
 फटाफटत्फटत्स्फुरत्फणाभयेन भोगिनां
 शिवाङ्कतः शिवाङ्कमाश्रयच्छिशौ रतिर्मम ॥१॥
 अदभ्र-विभ्रम-भ्रमद्-भुजाभुजङ्गफूत्कृती -
 निर्जाङ्कमानिनीषतो निशम्य नन्दिनः पितुः ।
 त्रसत्सुसंकुचन्तमम्बिका-कुचान्तरं यथा
 विशन्तमद्य बालचन्द्रभालबालकं भजे ॥२॥
 विनादिनन्दिने सविभ्रमं पराभ्रमन्मुख-
 स्वमातृवेणिमागतां स्तनं निरीक्ष्य सम्भ्रमात् ।
 भुजङ्ग-शङ्कया परेत्यपित्र्यमङ्कमागतं
 ततोऽपि शेषफूत्कृतैः कृतातिचीत्कृतं नुमः ॥३॥
 विजृम्भमाणनन्दि-घोरघोण-घुर्धुरध्वनि -
 प्रहास-भासिताशमम्बिका-समृद्धि-वर्धिनम् ।
 उदित्वर-प्रसृत्वर-क्षरत्तर-प्रभाभर -
 प्रभातभानु-भास्वरं भवस्वसम्भवं भजे ॥४॥
 अलङ्गृहीत-चामरामरीजनातिवीजन -
 प्रवातलोलि-तालकं नवेन्दुभालबालकम् ।
 विलोलदुल्ललल्ललाम-शुण्डदण्ड-मण्डितं -
 सतुण्ड-मुण्डमालि-वक्रतुण्डमीड्यमाश्रये ॥५॥
 प्रफुल्ल-मौलिमाल्य-मल्लिकामरन्द-लेलिहा -
 मिलन् निलिन्द-मण्डलीच्छलेन यं स्तवीत्यलम् ।
 त्रयोसमस्तवर्णमालिका शरीरिणीव तं
 सुतं महेशितुर्मतङ्गजाननं भजाम्यहम् ॥६॥
 प्रचण्ड-विघ्न-खण्डनैः प्रबोधने सदोद्धुरः
 समर्द्धि-सिद्धिसाधनाविधा-विधानबन्धुरः ।
 सबन्धुरस्तु मे विभूतये विभूतिपाण्डुरः
 पुरस्सरः सुरावलेर्मुखानुकारिसिन्धुरः ॥७॥

अराल-शैलबालिका-ऽलकान्तकान्त-चन्द्रमो-
 जकान्तिसौध-माधयन् मनोऽनुराधयन् गुरोः ।
 सुसाध्य-साधवं धियां धनानि साधयन्नय-
 नशेषलेखनायको विनायको मुदेऽस्तु नः ॥८॥
 रसाङ्गयुङ्-नवेन्दु-वत्सरे शुभे गणेशितु-
 स्तिथौ गणेशपञ्चचामरं व्यधादुमापतिः ।
 पतिः कविव्रजस्य यः पठेत् प्रतिप्रभातकं
 स पूर्णकामनो भवेदिभानन-प्रसादभाक् ॥९॥
 छात्रत्वे वसता काश्यां विहितेयं यतः स्तुतिः ।
 ततश्छात्रैरधीतेयं वैदुष्यं वर्द्धयेद्विया ॥१०॥

॥ इति गणेशपञ्चचामरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३॥

14. ढुण्ढिराजभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्

उमाङ्गोद्भवं दन्तिवक्त्रं गणेशं भजे कङ्कणैः शोभितं धूम्रकेतुम् ।
 गले हारमुक्तावलीशोभितं तं नमो ज्ञानरूपं गणेशं नमस्ते ॥१॥
 गणेशैकदन्तं शुभं सर्वकार्ये स्मरन् मन्मुखं ज्ञानदं सर्वसिद्धिम् ।
 मनश्चिन्तितं कार्यसिद्धिर्भवेत्तं नमो बुद्धिकल्पं गणेशं नमस्ते ॥२॥
 कुठारं धरन्तं कृतं विघ्नराजं चतुर्भिर्नखैरेकन्दतैकवर्णम् ।
 इदं देवरूपं गणं सिद्धिनाथं नमो भालचन्द्रं गणेशं नमस्ते ॥३॥
 शिरः सिन्दुरं कुङ्कुमं देहवर्णं शुभैर्भादिकं प्रीयते विघ्नराजम् ।
 महासङ्कटच्छेदने धूम्रकेतुं नमो गौरिपुत्रं गणेशं नमस्ते ॥४॥
 तथा पातकं छेदितुं विष्णुनाम तथा ध्यायतां शङ्करं पापनाशम् ।
 यथा पूजितं षण्मुखं शोकनाशं नमो विघ्ननाशं गणेशं नमस्ते ॥५॥
 सदा सर्वदा ध्यायतामेकदन्तं सदा पूजितं सिन्दुरारक्तपुष्पैः ।
 सदा चर्चितं चन्दनैः कुङ्कुमाक्तं नमो ज्ञानरूपं गणेशं नमस्ते ॥६॥
 नमो गौरिदेह-मलोत्पन्न तुभ्यं नमो ज्ञानरूपं नमः सिद्धिपं तम् ।
 नमो ध्यायतामर्चतां बुद्धिदं तं नमो गौर्यपत्यं गणेशं नमस्ते ॥७॥
 भुजङ्गप्रयातं पठेद् यस्तु भक्त्या प्रभाते नरस्तन्मयैकाग्रचित्तः ।
 क्षयं यान्ति विघ्ना दिशः शोभयन्तं नमो ज्ञानरूपं गणेशं नमस्ते ॥८॥

॥ इति श्रीढुण्ढिराजभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥१४॥

15. गणपतिस्तवः

ऋषिरुवाच

अजं निर्विकल्पं निराहारमेकं निरानन्दमानन्दमद्वैतपूर्णम् ।
 परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥१॥
 गुणातीतमानं चिदानन्दरूपं चिदाभासकं सर्वगं ज्ञानगम्यम् ।
 मुनिध्येयमाकाशरूपं परेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥२॥
 जगत्कारणं कारणज्ञानरूपं सुरादिं सुखादिं गुणेशं गणेशम् ।
 जगद्-व्यापिनं विश्ववन्द्यं सुरेशं परब्रह्मरूपं गणेशं भजेम ॥३॥
 रजोयोगतो ब्रह्मरूपं श्रुतिज्ञं सदा कार्यसक्तं हृदाऽचिन्त्यरूपम् ।
 जगत्कारणं सर्वविद्यानिदानं परब्रह्मरूपं गणेशं नता स्मः ॥४॥
 सदा सत्ययोग्यं मुदा क्रीडमानं सुरारीन् हरन्तं जगत्पालयन्तम् ।
 अनेकावतारं निजज्ञानहारं सदा विश्वरूपं गणेशं नमामः ॥५॥
 तमोयोगिनं रुद्ररूपं त्रिनेत्रं जगद्भारकं तारकं ज्ञानहेतुम् ।
 अनेकागमैः स्वं जनं बोधयन्तं सदा सर्वरूपं गणेशं नमामः ॥६॥
 नमः स्तोमहारं जनाऽज्ञानहारं त्रयीवेदसारं परब्रह्मसारम् ।
 मुनिज्ञानकारं विदूरे विकारं सदा ब्रह्मरूपं गणेशं नमामः ॥७॥
 निजैरोषधीस्तर्पयन्तं कराद्यैः सुरौघान् कलाभिः सुधास्राविणीभिः ।
 दिनेशांशु-सन्तापहारं द्विजेशं शशाङ्क-स्वरूपं गणेशं नमामः ॥८॥
 प्रकाशस्वरूपं नमो वायुरूपं विकारादिहेतुं कलाधारभूतम् ।
 अनेकक्रिया-ऽनेकशक्तिस्वरूपं सदा शक्तिरूपं गणेशं नमामः ॥९॥
 प्रधानस्वरूपं महत्तत्त्वरूपं धराचारिरूपं दिगीशादिरूपम् ।
 असत्-सत्-स्वरूपं जगद्धेतुरूपं सदा विश्वरूपं गणेशं नता-स्मः ॥१०॥
 त्वदीये मनः स्थापयेदङ्घ्रियुग्मे स नो विघ्नसङ्घातपीडां लभेत ।
 लसत्सूर्यबिम्बे विशाले स्थितोऽयं जनोध्वान्तपीडां कथं वा लभेत ॥११॥
 वयं भ्रामिताः सर्वथाऽज्ञानयोगादलब्धस्तवाङ्घ्रिं बहून् वर्षपूगान् ।
 इदानीमवाप्तस्तवैव प्रसादात् प्रपन्नान् सदा पाहि विश्वम्भराद्य ॥१२॥
 एवं स्तुतो गणेशस्तु सन्तुष्टोऽभून् महामुने ।
 कृपया परयोपेतोऽभिधातुमुपचक्रमे ॥१३॥

इति गणपतिस्तवः सम्पूर्णः ॥१५॥

16. गणेशस्तवराजः

भगवानुवाच

गणेशस्य स्तवं वक्ष्ये कलौ झटिति सिद्धिदम् ।

न न्यासो न च संस्कारो न होमो न च तर्पणम् ॥१॥

न मार्जनं च पञ्चाशत्सहस्रजपमात्रतः ।

सिद्ध्यत्यर्चनतः पञ्चशत-ब्राह्मणभोजनात् ॥२॥

अस्य श्रीगणेशस्तवराजमन्त्रस्य भगवान् सदाशिवऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहागणपतिर्देवता, श्रीमहागणपतिप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

विनायकैक-भावना समर्चना-समर्पितं

प्रमोदकैः प्रमोदकैः प्रमोद-मोद-मोदकम् ।

यदर्पितं सदर्पितं नवान्यधान्यनिर्मितं

न-कण्डितं न खण्डितं न खण्डमण्डनं कृतम् ॥१॥

सजातिकृद्-विजातिकृत्-स्वनिष्ठभेदवर्जितं -

निरञ्जनं च निर्गुणं निराकृतिं ह्यनिष्क्रियम्)

सदात्मकं चिदात्मकं सुखात्मकं परं पदं

भजामि तं गजाननं स्वमाययात्तविग्रहम् ॥२॥

गणाधिप! त्वमष्टमूर्तिरीशसूनुरीश्वर-

स्त्वम्बरं च शम्बरं धनञ्जयः प्रभञ्जनः ।

त्वमेव दीक्षितः क्षितिर्निशाकरः प्रभाकर-

श्वराऽचर-प्रचार-हेतुरन्तराय-शान्तिकृत् ॥३॥

अनेकदं तमाल-नीलमेकदन्त-सुन्दरं

गजाननं नमोऽगजानना-ऽमृताब्धि-चन्द्रिरम् ।

समस्त-वेदवादसत्कला-कलाप-मन्दिरं -

महान्तराय-कृत्तमोऽर्कमाश्रितोऽन्दरुं परम् ॥४॥

सरत्तहेम-घण्टिका-निनाद-नूपुरस्वनै -

र्मदङ्ग-तालनाद-भेदसाधनानुरूपतः ।

धिमि-द्धिमि-त्तथोङ्ग-थोङ्ग-थैयि-थैयिशब्दतो -

विनायकः शशाङ्कशेखरः प्रहृष्य नृत्यति ॥५॥

सदा नमामि नायकैकनायकं

कलाकलाप-कल्पना-निदानमादिपूरुषम् ।

गणेश्वरं गुणेश्वरं महेश्वरात्मसम्भवं
 स्वपादपद्म-सेविना-मपार-वैभवप्रदम् ॥६॥
 भजे प्रचण्ड-तुन्दिलं सदन्दशूकभूषणं
 सनन्दनादि-वन्दितं समस्त-सिद्धसेवितम् ।
 सुराऽसुरौकयोः सदा जयप्रदं भयप्रदं
 समस्तविघ्न-घातिनं स्वभक्त-पक्षपातिनम् ॥७॥
 कराम्बुजात-कङ्कणः पदाब्ज-किङ्किणोगणो
 गणेश्वरो गुणार्णवः फणीश्वराङ्गभूषणः ।
 जगत्त्रयान्तराय-शान्तिकारकोऽस्तु तारको
 भवार्णवस्थ-घोरदुर्गहा चिदेकविग्रहः ॥८॥
 यो भक्तिप्रवणश्चरा-ऽचर-गुरोः स्तोत्रं गणेशाष्टकं
 शुद्धः संयतचेतसा यदि पठेन्नित्यं त्रिसन्ध्यं पुमान् ।
 तस्य श्रीरतुला स्वसिद्धि-सहिता श्रीशारदा सर्वदा
 स्यातां तत्परिचारिके किल तदा काः कामनानां कथाः ॥९॥

॥ इति गणेशस्तवराजः सम्पूर्णः ॥१६॥

17. महागणपतिस्तोत्रम्

योगं योगविदां विधूत-विविध-व्याससङ्गशुद्धाशय-
 प्रादुर्भूत-सुधारस-प्रसृमर-ध्यानास्पदाध्यासिनाम् ।
 आनन्दप्लवमान-बोधमधुरा-ऽऽमोदच्छटामेदुरं
 तं भूमानमुपास्महे परिणतं दन्तावलास्यात्मना ॥१॥
 तारश्री-परशक्तिकामरसुधा-रूपानुगं यं विदु-
 स्तस्मै स्यात् प्रणतिर्गुणाधिपतये यो रागिणाऽभ्यर्थ्यते ।
 आमन्त्र्य प्रथमं वरेति वरदेत्यार्त्तेन सर्वं जनं
 स्वामिन् मे वशमानयेति सततं स्वाहादिभिः पूजितः ॥२॥
 कल्लोलाञ्जल-चुम्बिताम्बुद-तताविक्षुद्रवाम्भोनिधौ
 द्वीपे रत्नमये सुरद्रुमवनामोदैकमेदस्विनि ।
 मूले कल्पतरोर्महामणिमये पीठेऽक्षराम्भोरूहे
 षट्कोणाकलित-त्रिकोणरचना-सत्कीर्णकेऽमुं भजे ॥३॥

चक्रप्रास-रसाल-कार्मुक-गदा-सद्बीजपुरद्विज -
 ब्रीह्यग्रोत्पल-पाशपङ्कजकरं शुण्डाग्रजाग्रदघटम् ।
 आश्लिष्टं प्रियया सरोजकरया रत्नस्फुरद् भूषया
 माणिक्यप्रतिमं महागणपतिं विश्वेशमाशास्महे ॥४॥
 दानाम्भ-परिमेदुर-प्रसृमर-व्यालम्बिरोलम्बभृत् -
 सिन्दूरारुण-गण्डमण्डलयुग-व्याजात् प्रशस्तिद्वयम् ।
 त्रैलोक्येष्ट-विधानवर्णसुभगं यः पद्मरागोपमं
 धत्ते स श्रियमातनोतु सततं देवो गणानां पतिः ॥५॥
 भ्राम्यन् मन्दरघूर्णनापरवश-क्षीराब्धिबीचिच्छटा-
 सच्छायाश्चल-चामर-व्यतिकर-श्रीगर्वसर्वङ्गुषाः ।
 दिक्कान्ताघन-सारचन्दनरसा-सारांश्रयन्तां मनः
 स्वच्छन्दप्रसर-प्रलिप्तवियतो हेरम्बदन्तत्विषः ॥६॥
 मुक्ताजालकरम्बित-प्रविकसन्-माणिक्यपुञ्जच्छटा-
 कान्ताः कम्बुकदम्ब-चुम्बितघनाम्भोज-प्रवालोपमाः ।
 ज्योत्स्नापूर-तरङ्ग-मन्थरतरत्-सन्ध्यावयस्याश्विरं -
 हेरम्बस्य जयन्ति दन्तकिरणाकीर्णाः शरीरत्विषः ॥७॥
 शुण्डाग्राकलितेन हेमकलशेनावर्जितेन क्षरन्
 नानारत्नचयेन साधकजनान् सम्भावयन् कोटिशः
 दानामोद-विनोदलुब्ध-मधुप-प्रोत्सारणाविर्भवत् -
 कर्णान्दोलनखेलनो विजयते देवो गणग्रामणीः ॥८॥
 हेरम्बं प्रणमामि यस्य पुरतः शाण्डिल्यमूले श्रिया
 बिभ्रत्याम्बुरुहे समं मधुरिपुस्ते शङ्खचक्रे वहन् ।
 न्यग्रोधस्य तले सहाद्रिसुतया शम्भुस्तथा दक्षिणे
 बिभ्राणः परशुं त्रिशूलमितया देव्या धरण्या सह ॥९॥
 पश्चात् पिप्पलमाश्रितो रतिपतिर्देवस्य रत्योत्पले
 बिभ्रत्या सममैक्षवं धनुरिपून् पौष्पान् वहन् पञ्च च ।
 वामे चक्रगदाधरः स भगवान् क्रीडः प्रियङ्गोस्तले
 हस्तोद्यच्छकशालिमञ्जरिकया देव्या धरण्या सह ॥१०॥
 षट्कोणाश्रिषु षट्सु षड्गजमुखाः पाशांकुशाभीवरान्
 बिभ्राणाः प्रमदासखाः पृथुमहाशोणाश्म-पुञ्जत्विषः ।

आमोदः पुरतः प्रमोदसुमुखौ तं चाऽभितो दुर्मुखः
 पश्चात् पार्श्वगतोऽस्य विघ्न इति यो यो विघ्नकर्तेति च ॥११॥
 आमोदादिगणेश्वर-प्रियतमास्तत्रैव नित्यं स्थिताः
 कान्ताश्लेष-रसज्ञ-मन्थरदृशः सिद्धिः समृद्धिस्ततः ।
 कान्तिर्या मदनावतीत्यपि तथा कल्पेषु या गीयते
 साऽन्या याऽरि मदद्रवा तदपरा द्राविण्यशूः पूजिताः ॥१२॥
 आशिलोष्ठौ वसुधेत्यथो वसुमती ताभ्यां सितालोहितौ
 वर्षन्तो वसुपार्श्वयोर्विलसतस्तौ शङ्खपद्मौ निधी ।
 अङ्गान्यन्वथ मातरश्च परितः शुक्रादयोब्जाश्रया-
 स्तद्बाह्यो कुलिशादयः परिपतत्कालानलज्योतिषः ॥१३॥
 इत्थं विष्णु-शिवादि-तत्त्वतनवे श्रीवक्रतुण्डाय हुं-
 काराक्षिप्त-समस्तदैत्य-पृतनाव्राताय दीप्तत्विषे ।
 आनन्दैक-रसावबोध्वलहरी-विध्वस्तशर्वोर्मये -
 सर्वत्र प्रथमानमुग्धमहसे तस्मै परस्मै नमः ॥१४॥
 सेवाहेवाकिदेवा-सुरनरनिकर-स्फार-कोटीर-कोटी -
 कोटिव्याटीकमान-द्युमणिसममणि-श्रेणिभावेणिकानाम् ।
 राजन्नीराजनश्री-मुखचरणनख-द्योतविद्योतमानः -
 श्रेयः स्थेयः स देयान् मम विमलदृशो बन्धुरं सिन्धुरास्यः ॥१५॥
 एतेन प्रकटरहस्यमन्त्रमाला-गर्भेण स्फुटतरसंविदा स्तवेन ।
 यः स्तौति प्रचुरतरं महागणेशं तस्येस्यं भवति वशंवदा त्रिलोकी ॥१६॥

॥ इति महागणपतिस्तोत्र समाप् ॥१७॥

18. एकदन्तगणेशस्तोत्रम्

महासुरं सुशान्तं वै दृष्ट्वा विष्णुमुखाः सुराः ।
 भृग्वादयश्च मुनय एकदन्तं समाययुः ॥१॥
 प्रणम्य तं प्रपूज्यादौ पुनस्तं नेमुरादरात् ।
 तुष्टुवुर्हर्षसंयुक्ता एकदन्तं गणेश्वरम् ॥२॥

देवर्षय ऊचुः

सदात्मरूपं सकलादि-भूतममायिनं सो-ऽहमचिन्त्यबोधम् ।
 अनादि-मध्यान्त-विहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥३॥

अनन्त-चिद्रूप-मयं गणेशं ह्यभेद-भेदादि-विहीनमाद्यम् ।
 हृदि प्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥४॥
 विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम् ।
 सदा निरालम्ब-समाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥५॥
 स्वबिम्बभावेन विलासयुक्तं बिन्दुस्वरूपा रचिता स्वमाया ।
 तस्यां स्ववीर्यं प्रददाति यो वै तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥६॥
 त्वदीय-वीर्येण समर्थभूता माया तया संरचितं च विश्वम् ।
 नादात्मकं ह्यात्मतया प्रतीतं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥७॥
 त्वदीय-सत्ताधरमेकदन्तं गणेशमेकं त्रयबोधितारम् ।
 सेवन्त आपुस्तमजं त्रिसंस्थास्तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥८॥
 ततस्त्वया प्रेरित एव नादस्तेनेदमेवं रचितं जगद् वै ।
 आनन्दरूपं समभावसंस्थं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥९॥
 तदेव विश्वं कृपया तवैव सम्भूतमाद्यं तमसाविभातम् ।
 अनेकरूपं ह्यजमेकभूतं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१०॥
 ततस्त्वया प्रेरितमेव तेन सृष्टं सुसूक्ष्मं जगदकेसंस्थम् ।
 सत्त्वात्मकं श्वेतमनन्तमाद्यं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥११॥
 तदेव स्वप्नं तपसा गणेशं स-सिद्धिरूपं विविधं वभूव ।
 सदैकरूपं कृपया तवाऽपि तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१२॥
 सम्प्रेरितं तच्च त्वया हृदिस्थं तथा सुसृष्टं जगदंशरूपम् ।
 तेनैव जाग्रन्मयमप्रमेयं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१३॥
 जाग्रत्स्वरूपं रजसा विभातं विलोकितं तत्कृपया यदैव ।
 तदा विभिन्नं भवदेकरूपं तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१४॥
 एवं च सृष्ट्वा प्रकृतिस्वभावात्तदन्तरे त्वं च विभासि नित्यम् ।
 बुद्धिप्रदाता गणनाथ एकस्तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१५॥
 त्वदाज्ञया भान्ति ग्रहाश्च सर्वे नक्षत्ररूपाणि विभान्ति खे वै ।
 आधारहीनानि त्वया धृतानि तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१६॥
 त्वदाज्ञया सृष्टिकरो विधाता त्वदाज्ञया पालक एव विष्णुः ।
 त्वदाज्ञया संहरते हरोऽपि तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१७॥
 यदाज्ञया भूर्जलमध्यसंस्था यदाज्ञयाऽऽपं प्रवहन्ति नद्यः ।
 सीमां सदा रक्षति वै समुद्रस्तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१८॥

यदाज्ञया देवगणो दिविष्ठो ददाति वै कर्मफलानि नित्यम् ।
 यदाज्ञया शैलगणोऽचलो वै तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥१९॥
 यदाज्ञया शेष इलाधरो वै यदाज्ञया मोहप्रदश्च कामः ।
 यदाज्ञया कालधरोऽर्यमा च तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥२०॥
 सर्वान्तरे संस्थितमेकगूढं यदाज्ञा सर्वमिदं विभाति ।
 यदाज्ञया वाति विभाति वायुर्यदाज्ञयाऽग्निर्जठरादिसंस्थः ।
 यदाऽया वै सचराऽचरं च तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥२१॥
 सर्वान्तरे संस्थितमेकगूढं यदाज्ञया सर्वमिदं विभाति ।
 अनन्तरूपं हृदि बोधकं वै तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥२२॥
 यं योगिनो योगबलेन साध्यं कुर्वन्ति तं कः स्तवनेन स्तौति ।
 अतः प्रणामेन सुसिद्धिदोऽस्तु तमेकदन्तं शरणं ब्रजामः ॥२३॥

गृत्समद उवाच

एवं स्तुत्वा च प्रह्लादं देवाः समुनयश्च वै ।
 तूष्णींभावं प्रपद्यैव ननृतुर्हर्षसंयुताः ॥२४॥
 स तानुवाच प्रीतात्मा ह्येकदन्तः स्तवैव वै ।
 जगाद तान् महाभागान् देवर्षीन् भक्तवत्सलः ॥२५॥

एकदन्त उवाच

प्रसन्नोऽस्मि च स्तोत्रेण सुराः सर्षिगणाः किल ।
 वृणुध्वं वरदोऽहं वो दास्यामि मनसीप्सितम् ॥२६॥
 भवत्कृतं मदीयं वै स्तोत्रं प्रीतिप्रदं मम ।
 भविष्यति न सन्देहः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२७॥
 यं यमिच्छति तं तं वै दास्यामि स्तोत्रपाठतः ।
 पुत्र-पौत्रादिकं सर्वं लभते धन-धान्यकम् ॥२८॥
 गजा-ऽश्वादिकमत्यन्तं राज्यभोगं लभेद् ध्रुवम् ।
 भुक्तिं मुक्तिं च योगं वै लभते शान्तिदायकम् ॥२९॥
 मारणोच्चाटनादीनि राज्यबन्धादिकं च यत् ।
 पठतां शृण्वतां नृणां भवेच्च बन्धहीनता ॥३०॥
 एकविंशतिवारं च श्लोकांश्चैकविंशतिम् ।
 पठते नित्यमेवं च दिनानि त्वेकविंशतिम् ॥३१॥
 न तस्य दुर्लभं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु वै भवेत् ।
 असाध्यं साधयेन् मर्त्यः सर्वत्र विजयी भवेत् ॥३२॥

नित्यं यः पठते स्तोत्रं ब्रह्मभूतः स वै नरः ।
 तस्य दर्शनतः सर्वे देवाः पूता भवन्ति वै ॥३३॥
 एवं तस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टा देवतर्षयः ।
 ऊचुः करपुटाः सर्वे भक्तियुक्ता गजाननम् ॥३४॥
 ॥ इत्येकदन्त-गणेशस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥१८॥

19. शङ्करादिकृतं गजाननस्तोत्रम् (1)

देवा ऊचुः

गजाननाय पूर्णाय सांख्यरूपमयाय ते ।
 विदेहेन च सर्वत्र संस्थिताय नमो नमः ॥१॥
 अमेयाय च हेरम्ब परशुधारकाय ते ।
 मूषकवाहनायैव विश्वेशाय नमो नमः ॥२॥
 अनन्तविभवायैव परेशां पररूपिणे ।
 शिवपुत्राय देवाय गुहाग्रजाय ते नमः ॥३॥
 पार्वतीनन्दनायैव देवानां पालकाय ते ।
 सर्वेषां पूज्यदेहाय गणेशाय नमो नमः ॥४॥
 स्वानन्दवासिने तुभ्यं शिवस्य कुलदैवत ।
 विष्णवादीनां विशेषेण कुलदेवाय ते नमः ॥५॥
 योगाकाराय सर्वेषां योगशान्तिप्रदाय च ।
 ब्रह्मेशाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मभूतप्रदाय ते ॥६॥
 सिद्धि-बुद्धिपते नाथ! सिद्धि-बुद्धिप्रदायिने ।
 मायिने मायिकेभ्यश्च मोहदाय नमो नमः ॥७॥
 लम्बोदराय वै तुभ्यं सर्वोदरगताय च ।
 अमायिने च मायाया आधाराय नमो नमः ॥८॥
 गजः सर्वस्य बीजं यत्तेन चिह्नेन विघ्नपः ।
 योगिनस्त्वां प्रजानन्ति तदाकारा भवन्ति ते ॥९॥
 तेन त्वं गजवक्त्रश्च किं स्तुमस्तवां गजानन ।
 वेदादयो विकुण्ठाश्च शङ्कराद्याश्च देवपाः ॥१०॥
 शुक्रादयश्च मेषाद्याः स्तोतुं शक्ता भवन्ति नः ।
 तथापि संस्तुतोऽसि त्वं स्फूर्त्या त्वद्दर्शनात्मना ॥११॥

एवमुक्त्वा प्रणेमुस्तं गजाननं शिवादयः ।
स तानुवाच प्रीतात्मा भक्तिभावेन तोषितः ॥१२॥

गजानन उवाच

भवत्कृतमिदं स्तोत्रं मदीयं सर्वदं भवेत् ।
पठते शृण्वते चैव ब्रह्मभूत-प्रदायकम् ॥१३॥

इति गजाननस्तोत्रं समाप्तम् ॥१९॥

20. देवर्षिकृतं गजाननस्तोत्रम् (2)

देवर्षय ऊचुः

विदेहरूपं भवबन्धहारं सदा स्वनिष्ठं स्वसुवप्रदन्तम् ।
अमेयसांख्येन च लक्ष्यमीशं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१॥
मुनीन्द्रवन्द्यं विधि बोधहीनं सुबुद्धिदं सुबुद्धिरं प्रशान्तम् ।
विकारहीनं सकलाङ्गकं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥२॥
अमेयरूपं हृदि संस्थितं तं ब्रह्माऽहमेकं भ्रमनाशकारम् ।
अनादि-मध्यान्तमपाररूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥३॥
जगत्प्रमाणं जगदीशमेवमगम्यमाद्यं जगदादिहीनम् ।
अनात्मनां मोहप्रदं पुराणं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥४॥
न पृथ्विरूपं न जलप्रकाशनं न तेजसंस्थं न समीरसंस्थम् ।
न खे गतं पञ्चविभूतिहीनं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥५॥
न विश्वगं तैजसगं न प्राज्ञं समष्टि-व्यष्टिस्थ-मनन्तगं तम् ।
गुणैर्विहीनं परमार्थभूतं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥६॥
गुणेशगं नैव च बिन्दुसंस्थं न देहिनः बोधमयं न दुण्ढी ।
सुयोगहीनं प्रवदन्ति तत्स्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥७॥
अनागतं ग्रैवगतं गणेशं कथं तदाकारमयं वदामः ।
तथापि सर्वं प्रतिदेहसंस्थं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥८॥
यदि त्वया नाथ! धृतं न किञ्चित्तदा कथं सर्वमिदं भजामि ।
अतो महात्मानचिन्त्यमेवं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥९॥
सुसिद्धिदं भक्तजनस्य देवं सकामिकानामिह सौख्यदं तम् ।
अकामिकानां भवबन्धहारं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१०॥
सुरेन्द्रसेव्यं ह्यसुरैः सुसेव्यं समानभावेन विराजयन्तम् ।
अनन्तबाहुं मूषकध्वजं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥११॥

सदा सुखानन्दमयं जले च समुद्रजे इक्षुरसे निवासम् ।
 द्वन्द्वस्य यानेन च नाशरूपे गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१२॥
 चतुःपदार्था विविधप्रकाशस्तदेव हस्तं सुचतुर्भुजं तम् ।
 अनाथनाथं च महोदरं वै गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१३॥
 महाखुमारूढमकालकालं विदेहयोगेन च लभ्यमानम् ।
 अमायिनं मायिकमोहदं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१४॥
 रविस्वरूपं रविभासहीन हरिस्वरूपं परिबोधहीनम् ।
 शिवस्वरूपं शिवभासनाशं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१५॥
 महेश्वरीस्थं च सुशक्तिहीनं प्रभुं परेशं परवन्द्यमेवम् ।
 अचालकं चालकबीजरूपं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१६॥
 शिवादि-देवैश्च खगैश्च वन्द्यं नरैर्लता-वृक्ष-पशुप्रमुख्यैः ।
 चराऽचरैर्लोक-विहीनमेवं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१७॥
 मनोवचोहीनतया सुसंस्थं निवृत्तिमात्रं ह्यजमव्ययं तम् ।
 तथाऽपि देवं पुरसंस्थितं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१८॥
 वयं सुधन्या गणपस्तवेन तथैव मर्त्यार्चनस्तथैव ।
 गणेशरूपाश्च कृतास्त्वया तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥१९॥
 गजाख्यबीजं प्रवदन्ति वेदास्तदेव चिह्नेन च योगिनस्त्वाम् ।
 गच्छन्ति तेनैव गजाननं तं गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥२०॥
 पुराणवेदाः शिवविष्णुकाद्यामराः शुकाद्या गणपस्तवे वै ।
 विकुण्ठिताः किं च वयं स्तवामो गजाननं भक्तियुतं भजामः ॥२१॥

मुद्गल उवाच

एवं स्तुत्वा गणेशानं नेमुः सर्वे पुनः पुनः ।
 तानुत्थाप्य वचो रम्यं गजानन उवाच ह ॥२२॥

गजानन उवाच

वरं ब्रूत महाभाग देवाः सर्षिगणाः परम् ।
 स्तोत्रेण प्रीतिसंयुक्तो दास्यामि वाञ्छितं परम् ॥२३॥
 गजाननवचः श्रुत्वा हर्षयुक्ता सुरर्षयः ।
 जगुस्तं भक्तिभावेन साश्रुनेत्राः प्रजापते ॥२४॥

देवर्षय ऊचुः

यदि गजानन स्वामिन्! प्रसन्नो वरदोऽसि मे।
 तदा भक्तिं दृढो देहि लोभहीनां त्वदीयकाम् ॥२५॥
 लोभासुरस्य देवेश! कृता शान्तिसुखप्रदा।
 तया जगदिदं सर्वं वरयुक्तं कृतं त्वया ॥२६॥
 अधुना देवदेवेश! कर्मयुक्ता द्विजातयः।
 भविष्यन्ति धरायां वै वयं स्वस्थानगास्तथा ॥२७॥
 स्व-स्वधर्मरताः सर्वे कृतास्त्वया गजानन!।
 अतः परं वरं दुण्ढे यांचमानः किमप्यहो! ॥२८॥
 यदा ते स्मरणं नाथ करिष्यामो वयं प्रभो।
 तदा सङ्कटहीनान् वै कुरु त्वं भो गजानन! ॥२९॥
 एवमुक्त्वा प्रणोमुस्तं गजाननमनामयम्।
 तानुवाच च प्रीत्यात्मा भक्ताधीनः स्वभावतः ॥३०॥

गजानन उवाच

यद्यच्च प्रार्थितं देवा मुनयः सर्वमञ्जसा।
 भविष्यति न सन्देहो मत्स्मृत्या सर्वदा हि वः ॥३१॥
 भवत्कृतं मदीयं वै स्तोत्रं सर्वत्र सिद्धिदम्।
 भविष्यति विशेषेण मम भक्ति-प्रदायकम् ॥३२॥
 पुत्र-पौत्र-प्रदं पूर्णं धन-धान्य-प्रवर्धनम्।
 सर्वसम्पत्करं देवाः पठनाच्छ्रवणानृणाम् ॥३३॥
 मारणोच्चाटनादीनि नश्यन्ति स्तोत्रपाठतः।
 परकृत्य च विप्रेन्द्रा अशुभं नैव बाधते ॥३४॥
 संग्रामे जयदं चैव यात्राकाले फलप्रदम्।
 शत्रूच्चाटनादिषु च प्रशस्तं तद् भविष्यति ॥३५॥
 कारागृहगतस्यैव बन्धनाशकरं भवेत्।
 असाध्यं साधयेत् सर्वमनेनैव सुरर्षयः ॥३६॥
 एकविंशतिवारं वै चैकविंशद्दिनावधिम्।
 प्रयोगं यः करोत्वेव सर्वसिद्धिभाक् स भवेत् ॥३७॥
 धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षाणां ब्रह्मभूतस्य दायकम्।
 भविष्यति न सन्देहः स्तोत्रं मद्भक्तिवर्धनम् ॥३८॥
 एवमुक्त्वा गणाधीशस्तत्रैवान्तरधीयत।

इति गजाननस्तोत्र सम्पूर्णम् ॥२०॥

21. गजाननस्तोत्रम् (3)

देवर्षय ऊचुः

नमस्ते गजवक्त्राय गजाननसुरूपिणे ।
 पाराशरसुतायैव वत्सलासूनवे नमः ॥१॥
 व्यासभ्रात्रे शुकस्यैव पितृव्याय नमो नमः ।
 अनादिगणनाथाय स्वानन्दावासिने नमः ॥२॥
 रजसा सृष्टिकर्त्रे ते सत्त्वतः पालकाय वै ।
 तमसा सर्वसंहर्त्रे गणेशाय नमो नमः ॥३॥
 सुकृते पुरुषस्यापि रूपिणे परमात्मने ।
 बोधाकाराय वै तुभ्यं केवलाय नमो नमः ॥४॥
 स्वसंवेद्याय देवाय योगाय गणपाय च ।
 शान्तिरूपाय तुभ्यं वै नमस्ते ब्रह्मनायक ॥५॥
 विनायकाय वीराय गजदैत्यस्य शत्रवे ।
 मुनिमानसनिष्ठाय मुनीनां पालकाय च ॥६॥
 देवरक्षकरायैव विघ्नेशाय नमो नमः ।
 वक्रतुण्डाय धीराय चैकदन्ताय ते नमः ॥७॥
 त्वयाऽयं निहतो दैत्य गजनामा महाबलः ।
 ब्रह्माण्डे मृत्युसंहीनो महाश्चर्यं कृतं विभो! ॥८॥
 हते दैत्येऽधुना कृत्स्नं जगत्सन्तोषमेष्यति ।
 स्वाहा-स्वधायुतं पूर्णं स्वधर्मस्थं भविष्यति ॥९॥
 एवमुक्त्वा गणाधीश सर्वे देवर्षयस्ततः ।
 प्रणम्य तूष्णीभावं ते सम्प्राप्ता विगतज्वराः ॥१०॥
 कर्णौ सम्पीड्य गणप-चरणे शिरसो ध्वनिः ।
 मधुरः प्रकृतस्तैस्तु तेन तुष्टो गजाननः ॥११॥
 तानुवाच मदीया ये भक्ताः परमभाविताः ।
 तैश्च नित्यं प्रकर्तव्यं भवद्भिर्नमनं यथा ॥१२॥
 तेभ्योऽहं परमप्रीतो दास्यामि मनसीप्सिताम् ।
 एतादृशं प्रियं मे च नमनं नाऽत्र संशयः ॥१३॥
 एवमुक्त्वा स तान् सर्वान् सिद्धि-बुद्ध्यादि-संयुतः ।
 अन्तर्दधे ततो देवा मुनयः स्वस्थलं ययुः ॥१४॥

॥ इति गजाननस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२१॥

22. विनायक-विनतिः

हेरम्बमम्बामवलम्बानं लम्बोदरं लम्ब-वितुण्ड-मुण्डम् ।
 उत्सङ्गमारोपयितुं ह्यपर्णां हसन्तमन्तर्हरिरूपमीडे ॥१॥
 मिलिन्द-वृन्द-गुञ्जनोल्लसत्कपोलं-मण्डलं-
 श्रुति-प्रचालन-स्फुरत्समीरवीजिताननम् ।
 वितुण्ड-शुण्डमण्डल-प्रसार-शोभिविग्रहं-
 निवारिताघ-विघ्नराशिमङ्कलालयं भजे ॥२॥
 गजेन्द्र-मौक्तिकालि-लग्न-कम्बुकण्ठ-पीठकं-
 सुवर्णवल्लि-मण्डली-विधानबद्ध-दन्तकम् ।
 प्रमोदि-मोदकाञ्चितं करण्डकं कराम्बुजे
 दधानमम्बिकामनो विनोद-मोद-दायकम् ॥३॥
 गभीर-नाभि-तुन्दिलं सुपीत-पाट-धौतकं
 प्रतप्त-हाटकोपवीत-शोभिताङ्ग-संग्रहम् ।
 सुरा-ऽसुरार्चिताङ्घ्रिकं शुभक्रिया-सहायकं
 महेशचित्त-चायकं विनायकं नमाम्यहम् ॥४॥
 गजाननं गणेश्वरं गिरीशजाकुमारकं
 महेश्वरात्मजं मुनीन्द्रमानसाधिधावकम् ।
 मतिप्रकर्ष-मण्डितं सुभक्त-चित्त-मोदकं
 भजज्जनालिघोर-विघ्नघातकं भजाम्यहम् ॥५॥
 लसल्ललाट-चन्द्रकं क्रियाकृतेऽस्ततन्द्रकं
 महेन्द्रवन्द्य-पादुकं षडाननाग्रजानुजम् ।
 अहिं निवार्य मूषकाधिरक्षकं मयूरकं
 विलोक्य सुप्रसन्नमानसं गणाधिपं भजे ॥६॥
 हरिं निरीक्ष्य भीतिचञ्चलाक्षमेत्य मातरं
 निजावनाय पार्श्वमागतां विलोक्य सत्त्वरम् ।
 तदीय-वक्षसि प्रविश्य सुस्थिरं परे वरे
 नमामि सेवकालिशोक-शोषकं निरन्तरम् ॥७॥
 निलिम्प-लोकमण्डली-प्रपूर्ण-पूजनीयकं-
 सुभक्त-भक्तिभावना विभाविताखिलप्रदम् ।

प्रभूत-भूति-भावकं दुरुह-दुःख-पावकं
 व्रजेश्वरांश-सम्भवं विधुप्रभासितालिकम् ॥८॥
 गिरीन्द्र-नन्दिनी-कराम्बुज-प्रसाधिताऽलकं -
 विलोक-शुण्ड-चुम्बितोग्र-भालचन्द्र-बालकम् ।
 निजाखु-खेलनापरं कखन्त-मस्तचापलं
 नमामि सिद्धि-बुद्धि-हस्त-चालि-पञ्चचामरम् ॥९॥
 विनायकस्य विनतिं पठतां शृण्वतां सताम् ।
 सिद्धि-बुद्धि-प्रदां सन्ति मङ्गलानि पदे पदे ॥१०॥

॥ इति विनायक-विनतिः समाप्तः ॥२२॥

23. गणपतिस्तोत्रम्

जेतुं यस्त्रिपुरं हरेण हरिणा व्याजाद्वलिं बध्नाता
 स्रष्टुं वारिभवोद्भवेन भुवनं शेषेण धर्तुं धराम् ।
 पार्वत्या महिषासुरप्रथमने सिद्धाधिपैः सिद्धये
 ध्यातः पञ्चशरेण विश्वजितये पायात् स नागाननः ॥१॥
 विघ्नव्याकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः
 विघ्नोतुङ्गगिरिप्रिभेदनपविर्विघ्नान्बुधेर्वाडवो ।
 विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः ॥२॥
 खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
 प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम् ।
 दन्ताघातविधारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
 वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम् ॥३॥
 गजाननाय महसे प्रत्यूहतिमिरच्छिदे ।
 अपारकरुणापूरतरङ्गितदृशे नमः ॥४॥
 अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम् ।
 अनेकदन्तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे ॥५॥
 श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः
 क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरनरतिलकं रत्नसिंहासनस्थम् ।
 दोर्भिः पाशाङ्कुशाब्जाभयवरमनसं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रं
 ध्यायेच्छान्तयर्थमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम् ॥६॥

आवाहये तं गणराजदेवं रक्तोत्पलाभासमशेषवन्द्यम् ।
 विघ्नान्तकं विघ्नहरं गणेशं भजामि रौद्रं सहितं च सिद्धया ॥७॥
 यं ब्रह्म वेदान्तविदो वदन्ति परं प्रधानं पुरुषं तथाऽन्ये ।
 विश्वोद्भूतेः कारणमीश्वरं वा तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥८॥
 विघ्नेश वीर्याणि विचित्रकाणि वन्दीजनैर्मार्गधकैः स्मृतानि ।
 श्रुत्वा समुत्तिष्ठ गजानन त्वं ब्राह्मो जगन्मङ्गलकं कुरुष्व ॥९॥
 गणेश हेरम्ब गजाननेति महोदर स्वानुभवप्रकाशिन् ।
 वरिष्ठ सिद्धिप्रिय बुद्धिनाथ वदन्त एवं त्यजत प्रभीतीः ॥१०॥
 अनेकविघ्नान्तक वक्रतुण्ड स्वसंज्ञवासिंश्च चतुर्भुजेति ।
 कवीश देवान्तकनाशकारिन् वदन्त एवं त्यजत प्रभीतीः ॥११॥
 अनन्तचिद्रूपमयं गणेशं ह्यभेदभेदादिविहीनमाद्यम् ।
 हृदि प्रकाशस्य धरं स्वधीस्थं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१२॥
 विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकम् ।
 सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१३॥
 यदीयवीर्येण समर्थभूता माया तया संरचितं च विश्वम् ।
 नागात्मकं ह्यात्मतया प्रतीतं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१४॥
 सर्वान्तरे संस्थितमेकमूढं यदाज्ञया सर्वमिदं विभाति ।
 अनन्तरूपं हृदि बोधकं वै तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१५॥
 यं योगिनो योगबलेन साध्यं कुर्वन्ति तं कः स्तवनेन नौति ।
 अतः प्रणायमेन सुसिद्धिदोऽस्तु तमेकदन्तं शरणं व्रजामः ॥१६॥
 देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः ।
 विघ्नान् हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥१७॥
 एकदन्तं महाकायं लम्बोदरगजाननम् ।
 विघ्ननाशकरं देवं हेरम्बं प्रणयाम्यहम् ॥१८॥
 यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
 तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥१९॥

॥ इति श्रीगणपतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२३॥

24. गणेशमानसपूजा

गृत्समद उवाच

विघ्नेशवीर्याणि विचित्रकाणि बन्दीजनैर्मागधकैः स्मृतानि ।
 श्रुत्वा समुत्तिष्ठ गजानन त्वं ब्राह्मैर्जगन्मङ्गलकं कुरुष्व ॥१॥
 एवं मया प्रार्थित-विघ्नराजश्चित्तेन चोत्थाय बहिर्गणेशः ।
 तं निर्गतं वीक्ष्य नमन्ति देवाः शम्भ्वादयो योगिमुखास्तथाऽहम् ॥२॥
 शौचादिकं ते परिकल्पयामि हेरम्ब वै दन्तविशुद्धिमेवम् ।
 वस्त्रेण सम्प्रोक्ष्य मुखारविन्दं देवं सभायां विनिवेशयामि ॥३॥
 द्विजादिसर्वैरभिवन्दितं च शुकादिभिर्मोद-समोदकाद्यैः ।
 सम्भाष्य चालोक्य समुत्थितं तं सुमण्डपं कल्प्य निवेशयामि ॥४॥
 रत्नैः सुदीप्तैः प्रतिबिम्बितं तं पश्यामि चित्तेन विनायकं च ।
 तत्रासनं रत्नसुवर्णयुक्तं सङ्कल्प्य देवं विनिवेशयामि ॥५॥
 सिद्ध्या च बुद्ध्या सह विघ्नराज! पाद्यं कुरु प्रेमभरेण सर्वैः ।
 सुवासितं नीरमथो गृहाण चित्तेन दत्तं च सुखोष्णभावम् ॥६॥
 ततः सुवस्त्रेण गणेशपादौ सम्प्रोक्ष्य दूर्वादिभिरर्चयामि ।
 चित्तेन भावप्रिय दीनबन्धो मनो विलीनं कुरु ते पदाब्जे ॥७॥
 कर्पूर-एलादि-सुवासितं तु सुकल्पितं तोयमथो गृहाण ।
 आचम्य तेनैव गजानन! त्वं कृपाकटाक्षेण विलोकयाशु ॥८॥
 प्रवाल-मुक्ताफल-हारकाद्यैः सुसंस्कृतं ह्यन्तरभावकेन ।
 अनर्घ्यमर्घ्यं सफलं कुरुष्व मया प्रदत्तं गणराज दुण्ढे ॥९॥
 सौधं त्रियुक्तं मधुपर्कमाद्यं सङ्कल्पितं भावयुतं गृहाण ।
 पुनस्तथाऽऽचम्य विनायक त्वं भक्तांश्च भक्तेश सुरक्षयाशु ॥१०॥
 सुवासितं चम्पक-जातिकाद्यैस्तैलं मया कल्पितमेव दुण्ढे ।
 गृहाण तेन प्रविमर्दयामि सर्वाङ्गमेव तव सेवनाय ॥११॥
 ततः सुखोष्णेन जलेन चाऽहमनेकतीर्थाहतकेन दुण्ढम् ।
 चित्तेन शुद्धेन च स्नापयामि स्नानं मया दत्तमथो गृहाण ॥१२॥
 ततः पयः स्नानमचिन्त्यभावं गृहाण तोयस्य तथा गणेश ।
 पुनर्दधिसनानमनामयत्वं चित्तेन दत्तं च जलस्य चैवम् ॥१३॥

ततो घृतस्नानमपारवन्द्य सुतीर्थजो विघ्नहर प्रसीद ।
 गृहाण चित्तेन सुकल्पितं तु ततो मधुस्नानमथो जलस्य ॥१४॥
 सुशर्करायुक्तमथो गृहाण स्नानं मया कल्पितमेव दुण्डे ।
 ततो जलस्नानमघापहर्तुं विघ्नेश मायां हि निवारयाशु ॥१५॥
 सुदक्षपङ्कस्तमथो गृहाण स्नानं परेशाधिपते ततश्च ।
 कौमण्डलीसम्भवजं कुरुष्व विशुद्धमेवं परिकल्पितं तु ॥१६॥
 ततस्तु सूक्तैर्मनसा गणेशं सम्पूज्य दूर्वादिभिरल्पभावैः ।
 अपारकैर्मण्डलभूतब्रह्मणस्पत्यादिकैस्तं ह्यभिषेचयामि ॥१७॥
 ततः सुवस्त्रेण तु प्रोज्झनं त्वं गृहाण चित्तेन मया सुकल्पितम् ।
 ततो विशुद्धेन जलेन दुण्डे ह्याचान्तमेवं कुरु विघ्नराज ॥१८॥
 अग्रौ विशुद्धे तु गृहाण वस्त्रे ह्यनर्घमौल्ये मनसा मया ते ।
 दत्ते परिच्छाद्य निजात्मदेहं ताभ्यां मयूरेश जनाश्च रक्ष ॥१९॥
 आचम्य विघ्नेश पुनस्तथैव चित्तेन दत्तं सुखमुत्तरीयम् ।
 गृहाण भक्तप्रतिपालक त्वं नमो यथा तारकसंयुतं तु ॥२०॥
 यज्ञोपवीतं त्रिगुणस्वरूपं सौवर्णमेवं ह्यहिनाथभूतम् ।
 भावेन दत्तं गुणनाथ तत्त्वं गृहाण भक्तोद्धरकारणाय ॥२१॥
 आचान्तमेवं मनसा प्रदत्तं कुरुष्व शुद्धेन जलेन दुण्डे ।
 पुनश्च कौमण्डलकेन पाहि विश्वं प्रभो खेलकरं सदा ते ॥२२॥
 उद्यद्दिनेशाभमथो गृहाण सिन्दूरकं ते मनसा प्रदत्तम् ।
 सर्वाङ्गसंलेपनमादराद् वै कुरुष्व हेरम्ब च तेन पूर्णम् ॥२३॥
 सहस्रशीर्षं मनसाश्रयं त्वद्दत्तं किरीटं तु सुवर्णजं वै ।
 अनेकरत्नैः खचितं गृहाण ब्रह्मेश ते मस्तकशोभनाय ॥२४॥
 विचित्ररत्नैः कनकेन दुण्डे युतानि चित्तेन मया परेश ।
 दत्तानि नानापदकुण्डलानि गृहाण शूर्पश्रुतिभूषणाय ॥२५॥
 शुण्डाविभूषार्थमनन्तखेलिन् सुवर्णजं कञ्चुकमागृहाण ।
 रत्नैश्च युक्तं मनसा मया यद्दत्तं प्रभो ततः सफलं कुरुष्व ॥२६॥
 सुवर्णरत्नैश्च युतानि दुण्डे सदैकदन्ताभरणानि कल्प्य ।
 गृहाण चूडाकृतये परेश दत्तानि दन्तस्य च शोभनार्थम् ॥२७॥
 रत्नैः सुवर्णेन कृतानि तानि गृहाण चत्वारि मया प्रकल्प्य ।
 सम्भूषय त्वं कटकानि नाथ चतुर्भुजेषु ह्यज विघ्नहारिन् ॥२८॥

विचित्ररत्नैः खचितं सुवर्ण-सम्भूतकं गृह्य मया प्रदत्तम् ।
 तथाङ्गुलीष्वांगुलिकं गणेश चित्तेन संशोभय तत्परेश ॥३९॥
 विचित्ररत्नैः खचितानि दुण्डे केयूराणि ह्यथ कल्पितानि ।
 सुवर्णजानि प्रथमाधिनाथ दत्तानि च बाहुषु त्वम् ॥३०॥
 प्रवाल-मुक्ताफल-रत्नजांस्त्वं सुवर्णसूत्रैश्च गृहाण कण्ठे ।
 चित्तेन दत्ता विविधाश्च माला उरोदरे शोभय विघ्नराज ॥३१॥
 चन्द्रं ललाटे गणनाथ पूर्णं बृद्धि-क्षयाभ्यां तु विहीनमाद्यम् ।
 संशोभय त्वं वरसंयुतं ते भक्तप्रियत्वं प्रकटीकुरुष्व ॥३२॥
 चिन्तामणिं चिन्तितदं परेश हृददेशं ज्योतिमयं कुरुष्व ।
 मणिं सदानन्दसुखप्रदं च विघ्नेश दीनानथ पालयस्व ॥३३॥
 नाभौ फणीशं च सहस्रशीर्षं संवेष्टनेनैव गणाधिनाथ ।
 भक्त सुभूष कुरु भूषणेन वरप्रदानं सफलं परेश ॥३४॥
 कटीतटे रत्नसुवर्णयुक्तां काञ्चीं सुचित्तेन च धारयामि ।
 विघ्नेश ज्योतिर्गणदीपनं ते प्रसीद भक्तं कुरु मां दयाब्धे ॥३५॥
 हेरम्ब ते रत्नसुवर्णयुक्ते सुनूपुरे मञ्जिरके तथैव ।
 सुकिङ्किणीनादयुते सुबुद्ध्या सुपादयोः शोभय मे प्रदत्ते ॥३६॥
 इत्यादि-नानाविध-भूषणानि तवेच्छया मानसकल्पितानि ।
 सम्भूषयाम्येव त्वदङ्गकेषु विचित्रधातुप्रभवाणि दुण्डे ॥३७॥
 सुचन्दनं रक्तममोघवीर्यं सुघर्षितं ह्याष्टकगन्धमुख्यैः ।
 युक्तं मया कल्पितमेकदन्त गृहाण ते त्वङ्गविलेपनार्थम् ॥३८॥
 लिम्बेषु वैचित्र्यमथाष्टगन्धैरङ्गेषु तेऽहं प्रकरोमि चित्रम् ।
 प्रसीद चित्तेन विनायक त्वं ततः सुरक्तं रविमेव भाले ॥३९॥
 घृतेन वै कुङ्कुमकेन रक्तान् सुतन्दुलांस्ते परिकल्पयामि ।
 भाले गणाध्यक्ष गृहाण पाहि भक्तान् सुभक्तिप्रिय दीनबन्धो ॥४०॥
 गृहाण भो चम्पकमालतीनि सुपङ्कजानि स्थलपङ्कजानि ।
 चित्तेन दत्तानि च मल्लिकानि पुष्पाणि नानाविधवृक्षजानि ॥४१॥
 पुष्पोपरि त्वं मनसा गृहाण हेरम्ब मन्दारशमीदलानि ।
 मया सुचित्तेन प्रकल्पितानि ह्यपारकाणि प्रणवाकृते तु ॥४२॥
 दूर्वाङ्कुरान् वै मनसा प्रदत्तांस्त्रिपञ्चपत्रैर्युतकांश्च स्निग्धान् ।
 गृहाण विघ्नेश्वर संख्यया त्वं हीनांश्च सर्वोपरि वक्रतुण्ड ॥४३॥

दशाङ्गभूतं मनसा मया ते धूपं प्रदत्तं गणराज दुण्डे ।
 गृहाण सौरभ्यकरं परेश सिद्धया च बुद्ध्या सह भक्तपाल ॥४४॥
 दीपं सुबर्त्या युतमादरात्ते दत्तं मया मानसकं गणेश ।
 गृहाण नानाविधजं घृतादि-तैलादि-सम्भूतममोघदृष्टे ॥४५॥
 भोज्यं तु लेह्यं गणराज पेयं चोष्यं च नानाविध-षड्रसाढ्यम् ।
 गृहाण नैवेद्यमथो मया ते सुकल्पितं पुष्टिपते महात्मन् ॥४६॥
 सुवासितं भोजनमध्यभागे जलं मया दत्तमथो गृहाण ।
 कमण्डलुस्थं मनसा गणेश पिबस्व विश्वादिक्तृप्तिकारिन् ॥४७॥
 ततः करोद्वर्तनकं गृहाण सौगन्ध्ययुक्तं मुखमार्जनाय ।
 सुवासितेनैव सुतीर्थजेन सुकल्पितं नाथ गृहाण दुण्डे ॥४८॥
 पुनस्तथाऽऽचम्य सुवासितं च दत्तं मया तीर्थजलं पिबस्व ।
 प्रकल्प्य विघ्नेश ततः परं ते सम्प्रोज्जनं हस्तमुखे करोमि ॥४९॥
 द्राक्षादि-रम्भाफल-चूतकानि खार्जूर-कार्कन्धुक-दाडिमानि ।
 सुस्वादयुक्तानि मया प्रकल्प्य गृहाण दत्तानि फलानि दुण्डे ॥५०॥
 पुनर्जलेनैव करादिकं ते सक्षालयामि मनसा गणेश ।
 सुवासिदं तोयमथो पिबस्य मया प्रदत्तं मनसा परेश ॥५१॥
 अष्टाङ्गयुक्तं गणनाथ दत्तं ताम्बूलकं ते मनसा मया वै ।
 गृहाण विघ्नेश्वर भावयुक्तं सदाऽसकृत्तुण्डविशोधनार्थम् ॥५२॥
 ततो मया कल्पितके गणेश महासने रत्नसुवर्णयुक्ते ।
 मन्दार-कूर्पासकयुक्त-वस्त्रैरनर्घ्य-सञ्छादितके प्रसीद ॥५३॥
 ततस्त्वदीयावरणं परेश सम्पूजयामि मनसा यथावत् ।
 नानोपचारैः परमप्रियैस्तु त्वत्प्रीतिकामोर्थमनाथबन्धो ॥५४॥
 गृहाण लम्बोदर दक्षिणां ते ह्यसंख्यभूतां मनसा प्रदत्ताम् ।
 सौवर्ण-मुद्रादिक-मुख्यभावां पाहि प्रभो विश्वमिदं गणेश ॥५५॥
 राजोपचारान् विविधान् गृहाण हस्त्यश्च-छत्रादिकमादराद् वै
 चित्तेन दत्तान् गणनाथ दुण्डे ह्यणरसंख्यान् स्थिरजङ्गमांस्ते ॥५६॥
 दानस्य नानाविधरूपकांस्ते गृहाण दत्तान् मनसा मया वै ।
 पदार्थभूतान् स्थिर-जङ्गमांश्च हेरम्ब मां तारय मोहभावात् ॥५७॥
 मन्दारपुष्पाणि शमीदलानि दुर्वाङ्कुरांस्ते मनसा ददामि ।
 हेरम्ब लम्बोदर दीनपाल गृहाण भक्तं कुरु मां पदे ते ॥५८॥

ततो हरिद्रामविरं गुलालं सिन्दूरकं ते परिकल्पयामि ।
 सुवासितं वस्तुसुवासभूतैर्गृहाण ब्रह्मेश्वर-शोभनार्थम् ॥५९॥
 ततः शुकाद्याः शिव-विष्णुमुख्या इन्द्रादयः शेषमुखास्तथाऽन्ये ।
 मुनीन्द्रकाः सेवकभावयुक्ताः सभासनस्थं प्रणमन्ति दुण्ढम् ॥६०॥
 वामाङ्गके भक्तियुता गणेशं सिद्धिस्तु नानाविधसिद्धिभिस्तम् ।
 अत्यन्तभावेन सुसेवते तु मायास्वरूपा परमार्थभूता ॥६१॥
 गणेश्वर दक्षिणभागसंस्था बुद्धिः कलाभिश्च सुबोधिकाभिः ।
 विद्याभिरेवं भजते परेशा मायासु सांख्यप्रदचित्तरूपा ॥६२॥
 प्रमोदमोदाः खलु पृष्ठभागे गणेश्वरं भावयुतो भजन्ते ।
 भक्तेश्वरा मुद्गलशम्भुमुख्याः शुकादयस्तस्य पुरो भजन्ते ॥६३॥
 गन्धर्वमुख्या मधुरं जगुश्च गणेशगीतं विविधस्वरूपम् ।
 नृत्यं कलायुक्तमथो पुरस्ताच्छत्रुस्तथा ह्यप्सरसो विचित्रम् ॥६४॥
 इत्यादि-नानाविध-भावयुक्तैः संसेवितं विघ्नपतिं भजामि ।
 चित्तेन ध्यात्वा तु निरञ्जनं वै करोमि नानाविधदीपयुक्तम् ॥६५॥
 चतुर्भुजं पाशधरं गणेशं तथाङ्कुशं दन्तयुतं तमेवम् ।
 त्रिनेत्रयुक्तं त्वभयङ्करं तं महोदरं चैकरदं गजास्यम् ॥६६॥
 सर्वोपवीतं गणकर्णधारं विभूतिभिः सेवितपादपद्मम् ।
 ध्याये गणेशं विविधप्रकारैः सुपूजितं शक्तियुतं परेशम् ॥६७॥
 ततो जपं वै मनसा करोमि स्वमूलमन्त्रस्य विधानयुक्तम् ।
 असंख्यभूतं गणराजहस्ते समर्पयाम्येव गृहाण दुण्ढे ॥६८॥
 आरार्तिकां कर्पूरकादिभूतामपारदीपां प्रकरोमि पूर्णाम् ।
 चित्तेन लम्बोदरं तां गृहाण ह्यज्ञानध्वान्तौघहरा निजानाम् ॥६९॥
 वेदेषु वैघ्नश्वरकैः सुमन्त्रैः सुमन्त्रितं पुष्पदलं प्रभूतम् ।
 गृहाण चित्तेन मया प्रदत्तमपारवृत्त्या त्वथ मन्त्रपुष्पम् ॥७०॥
 अपारवृत्त्या स्तुतिमेकदन्तं गृहाण चित्तेन कृतां गणेश ।
 युक्तां श्रुतिस्मार्तभवैः पुराणैः सर्वैः परेशाधिपते मया ते ॥७१॥
 प्रदक्षिणा मानसकल्पितारता गृहाण लम्बोदर भावयुक्ताः ।
 सख्याविहीना विविधस्वरूपा भक्तान् सदा रक्ष भवार्णवाद् वै ॥७२॥
 नतिं ततो विघ्नपते गृहाण साष्टाङ्गकाद्या विविधत्वरूपाम् ।
 संख्याविहीनां मनसा कृतां ते सिद्ध्या च बुद्ध्या परिपालयाशु ॥७३॥

न्यूनातिरिक्तं तु मया कृतं चेत्तदर्थमन्ते मनसा गृहाण ।
 दूर्वाकुरान् विघ्नपते प्रदत्तान् सम्पूर्णमेवं कुरु पूजनं मे ॥७४॥
 क्षमस्व विघ्नाधिपते मदीयान् सदापराधान् विविधस्वरूपान् ।
 भक्तिं मदीयां सफलां कुरुष्व सम्प्रार्थयामि मनसा गणेश ॥७५॥
 ततः प्रसन्नेन गजानेन दत्तं प्रसादं शिरसाऽभिवन्द्य ।
 स्वमस्तके तं परिधारयामि चित्तेन विघ्नेश्वरमानतोऽस्मि ॥७६॥
 उत्थाय विघ्नेश्वर एव तस्मादतस्ततस्त्वन्तरधानशक्त्या ।
 शिवादयस्तं प्रणिपत्य सर्वे गताः सुचित्तेन च चिन्तयामि ॥७७॥
 सर्वान्नमस्कृत्य ततोऽहमेव भजामि चित्तेन गणाधिपं तम् ।
 स्वस्थानमागत्य महानुभावैर्भक्तैर्गणेशस्य च खेलयामि ॥७८॥
 एवं त्रिकालेषु गणाधिपं तं चित्तेन नित्यं परिपूजयामि ।
 तेनैव तुष्टः प्रददातु भावं विघ्नेश्वरो भक्तिमयं तु मह्यम् ॥७९॥
 गणेशपादोदकपानकं च ह्यच्छिष्टगन्धस्य सुलेपनं तु ।
 निर्माल्य-सन्धारणकं सुभोज्यं लम्बोदरस्यास्तु हि मुक्तशेषम् ॥८०॥
 यद्यत्करोम्येव तदेव दीक्षा गणेश्वरस्यास्तु सदा गणेश ।
 प्रसीद नित्यं तव पादभक्तं कुरुष्व मां ब्रह्मपते दयालो ॥८१॥
 ततस्तु शय्यां परिकल्पयामि मन्दार-कूर्पासक-वस्त्रयुक्ताम् ।
 सुवास-पुष्पादिभिरर्चिता ते गृहाण निद्रां कुरु विघ्नराज ॥८२॥
 सिद्ध्या च बुद्ध्या सहितं गणेश सुनिद्रितं वीक्ष्य तथाऽहमेव ।
 गत्वा स्ववासं च करोमि निद्रां ध्यात्वा हृदि ब्रह्मपतिं तदीयम् ॥८३॥
 एतादृशं सौख्यमयोधशक्ते देहि प्रभो मानसजं गणेशम् ।
 मह्यं च तेनैव कृतार्थरूपो भवामि भक्त्या रसलालसोऽहम् ॥८४॥

गार्ग्य उवाच

एवं नित्यं महाराज गृत्समाद्रो महायशाः.
 चकार मानसीं पूजां योगीन्द्राणां गुरुः स्वयम् ॥८५॥
 य एतां मानसीं पूजां करिष्यति नरोत्तमः ।
 पठिष्यति सदा सोऽपि गाणपत्यो भविष्यति ॥८६॥
 श्रावयिष्यति यो मर्त्यः श्रोष्यते भावसंयुतः ।
 स क्रमेण महीपाल ब्रह्मभूतो भविष्यति ॥८७॥
 यद्यदिच्छति तत्तद् वै सफलं तस्य जायते ।
 अन्ते स्वानन्दगः सोऽपि योगिवन्द्यो भविष्यति ॥८८॥

॥ इति गणेशमानसपूजा समाप्ता ॥२४॥

25. गणेशवाह्यपूजा

ऐल उवाच

बाह्यपूजां वद विभो! गृत्समदप्रकीर्तिताम्।
येन मार्गेण विघ्नेशं भजिष्यसि निरन्तरम्॥१॥

गार्ग्य उवाच

आदौ च मानसीं पूजां कृत्वा कृतसमदो मुनिः।
बाह्यां चकार विधिवत्तां शृणुष्व सुखप्रदाम्॥२॥
हृदि ध्यात्वा गणेशानं परिवारादिसंयुतम्।
नासिकारन्ध्रमार्गेण तं बाह्याङ्गं चकार ह॥३॥
आदौ वैदिकमन्त्रः स गणानां त्वेति सम्पठन्।
पश्चाच्छ्लोक समुच्चार्य पूजयामास विघ्नपम्॥४॥

गृत्समद उवाच

चतुर्बाहं त्रिनेत्रं च गजास्यं रक्तवर्णकम्।
पाशाऽङ्कुशादि-संयुक्तं मायायुक्तं प्रचिन्तयेत्॥५॥
आगच्छ ब्रह्मणां नाथ सुरा-ऽसुर-वरार्चित।
सिद्धि-बुद्ध्यादि-संयुक्त! भक्ति-ग्रहणलालस!॥६॥
कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं तवागमनतः प्रभो।
विघ्नेशाऽनुगृहीतोऽहं सफलो मे भवोऽभवत्॥७॥
रत्नसिंहासनं स्वामिन् गृहाण गणनायक।
तत्रोपविश्य विघ्नेश रक्ष भक्तान् विशेषतः॥८॥
सुवासिताभिरद्भिश्च पादप्रक्षालनं प्रभो!।
शीतोष्णाम्भः करोमि ते गृहाण पाद्यमुत्तमम्॥९॥
सर्वतीर्थाहतं तोयं सुवासितं सुवस्तुभिः।
आचमनं च तेनैव कुरुष्व गणनायक॥१०॥
रत्न-प्रवाल-मुक्ताद्यैरनर्घ्यैः संस्कृतं प्रभो।
अर्घ्यं गृहाण हेरम्ब द्विरदानं तोषकम्॥११॥
दधि-मधु-घृतैर्युक्तं मधुपर्कं गजानन।
गृहाण भावसंयुक्तं मया दत्तं नमोऽस्तु ते॥१२॥
पाद्ये च मधुपर्के च स्नाने वस्त्रोपधारणे।

उपवीते भोजनान्ते पुनराचमनं कुरु ॥१३॥
 चम्पकाद्यै-र्गणाध्यक्ष वासितं तैलमुत्तमम् ।
 अभ्यङ्गं कुरु सर्वेश! लम्बोदर! नमोऽस्तु ते ॥१४॥
 यक्ष-कर्दमकाद्यैश्च विघ्नेश भक्तवत्सल! ।
 उद्वर्तनं कुरुष्व त्वं मया दत्तैर्महाप्रभो ॥१५॥
 नानातीर्थजलैर्दुण्डे! सुखोष्णभावरूपकैः ।
 कमण्डलूद्भवैः स्नानं कुरु दुण्डे समर्पितैः ॥१६॥
 कामधेनु-समुद्भूत पयः परमपावनम् ।
 तेन स्नानं कुरुष्व त्वं हेरम्ब परमार्थवित् ॥१७॥
 पञ्चामृतानां मध्ये तु जलैः स्नानं पुनः पुनः ।
 कुरु त्वं सर्वतीर्थेभ्यो गङ्गादिभ्यः समाहृतैः ॥१८॥
 दधि धेनुपयोद्भूतं मलापहरणं परम् ।
 गृहाण स्नानकार्यार्थं विनायक दयानिधे ॥१९॥
 धेनुदुग्धोद्भवं दुण्डे घृतं सन्तोषकारकम् ।
 महामलापघातार्थं तेन स्नानं कुरु प्रभो ॥२०॥
 सारघं संस्कृतं पूर्णं मधु मधुरसोद्भवम् ।
 गृहाण स्नानकार्यार्थं विनायक नमोऽस्तु ते ॥२१॥
 इक्षुदण्डसमुद्भूतां शर्करां मलनाशिनीम् ।
 गृहाण गणनाथ त्वं तया स्नानं समाचर ॥२२॥
 यक्षकर्दमकाद्यैश्च स्नानं कुरु गणेश्वर ।
 अन्त्यं मलहरं शुद्धं सर्वसौगन्ध्यकारकम् ॥२३॥
 ततो गन्धाक्षतादींश्च दूर्वाङ्कुरान् गजानन ।
 समर्पयामि स्वल्पांस्त्वं गृहाण परमेश्वर ॥२४॥
 ब्रह्मणस्पत्यसूक्तैश्च ह्येकविंशतिवारकैः ।
 अभिषेकं करोमि ते गृहाण द्विरदानन ॥२५॥
 तत आचमनं देव सुवासितजलेन च ।
 कुरुष्व गणनाथ त्वं सर्वतीर्थभवेन वै ॥२६॥
 वस्त्रयुग्मं गृहाण त्वमनर्घ्यं रक्तवर्णकम् ।
 लोकलज्जाहरं चैव विघ्ननाथ नमोऽस्तु ते ॥२७॥

उत्तरीयं सुचित्रं वै नभस्ताराङ्कितं यथा ।
 गृहाण सर्वसिद्धीश मया दत्तं सुभक्तितः ॥२८॥
 उपवीतं गणाध्यक्ष गृहाण च ततः परम् ।
 त्रैगुण्यमयरूपं तु प्रणवग्रन्थिबन्धनम् ॥२९॥
 ततः सिन्दूरकं देव गृहाण गणनायक ।
 अङ्गलेपनभावार्थं सदानन्दविवर्धनम् ॥३०॥
 नानाभूषणकानि त्वमङ्गेषु विविधेषु च ।
 भासुरस्वर्णरत्नैश्च निर्मितानि गृहाण भो ॥३१॥
 अष्टगन्ध-समायुक्तं गन्धं रक्तं गजानन ।
 द्वादशाङ्गेषु ते दुण्डे लेपयामि सुचित्रवत् ॥३२॥
 रक्तचन्दनसंयुक्तानथ वा कुङ्कुमैर्युतान् ।
 अक्षतान् विघ्नराज त्वं गृहाण भालमण्डले ॥३३॥
 चम्पकादि-सुवृक्षेभ्यः सम्भूतानि गजानन ।
 पुष्पाणि शमी-मन्दार-दूर्वादीनि गृहाण च ॥३४॥
 दशाङ्गं गुग्गुलं धूपं सर्वसौरभकारकम् ।
 गृहाण त्वं मया दत्तं विनायक महोदर ॥३५॥
 नानाजातिभवं दीपं गृहाण गणनायक ।
 अज्ञानमलजं दोषं हरन्तं ज्योतिरूपकम् ॥३६॥
 चतुर्विधात्रसम्पन्नं मधुरं लड्डुकादिकम् ।
 नैवेद्यं ते मया दत्तं भोजनं कुरु विघ्नप ॥३७॥
 सुवासितं गृहाणेदं जलं तीर्थसमाहृतम् ।
 भुक्तिमध्ये च पानार्थं देवदेवेश ते नमः ॥३८॥
 भोजनान्ते करोद्वर्तं यक्षकर्मकेन च ।
 कुरुष्व त्वं गणाध्यक्ष पिब तोयं सुवासितम् ॥३९॥
 दाडिमं खर्जुरं द्राक्षां रम्भादीनि फलानि वै ।
 गृहाण देवदेवेश नानामधुरकाणि तु ॥४०॥
 अष्टाङ्गं देव ताम्बूलं गृहाण मुखवासनम् ।
 असकृद्विघ्नराज त्वं मया दत्तं विशेषतः ॥४१॥
 दक्षिणां काञ्चनाद्यां तु नानाधातुसमुद्भवाम् ।
 रत्नाद्यैः संयुतां दुण्डे गृहाण सकलप्रिय ॥४२॥

राजोपचारकाद्यानि गृहाण गणनायक ।
 दानानि तु विचित्राणि मया दत्तानि विघ्नप ॥४३॥
 तत आभरणं तेऽहमर्पयामि विधानतः ।
 विविधैरुपचारैश्च तेन तुष्टो भव प्रभो ॥४४॥
 ततो दुर्वाङ्कुरान् दुण्ढे एकविंशतिसंख्यकान् ।
 गृहाण कार्यसिद्ध्यर्थं भक्तवात्सल्यकारणात् ॥४५॥
 नानादीपसमायुक्तं नीराजनं गजानन ।
 गृहाण भावसंयुक्तं सर्वाज्ञानादिनाशन ॥४६॥
 गणानां त्वेति मन्त्रस्य जपं साहस्रकं परम् ।
 गृहाण गणनाथ त्वं सर्वसिद्धिप्रदो भव ॥४७॥
 आर्तिक्यं च सुकर्पूरं नानादीपमयं प्रभो ।
 गृहाण ज्योतिषां नाथ तथा नीराजयाम्यहम् ॥४८॥
 पादयोसते तु चत्वारि नाभौ द्वे वदने प्रभो ।
 एकं तु सप्तवारं वै सर्वाङ्गेषु निरञ्जनम् ॥४९॥
 चतुर्वेदभवैर्मन्त्रैर्गाणपत्यैर्गजानन ।
 मन्त्रितानि गृहाण त्वं पुष्पपत्राणि विघ्नप ॥५०॥
 पञ्चप्रकारकैः स्तोत्रैर्गाणपत्यैर्गणाधिप ।
 स्तौमि त्वां तेन सन्तुष्टो भव भक्तिप्रदायक ॥५१॥
 एकविंशतिसंख्यं वा त्रिसंख्यं वा गजानन ।
 प्रादक्षिण्यं गृहाण त्वं ब्रह्मन् ब्रह्मेशभावन ॥५२॥
 साष्टाङ्गां प्रणतिं नाथ एकविंशतिसम्मिताम् ।
 हेरम्ब सर्वपूज्य त्वं गृहाण तु मया कृताम् ॥५३॥
 न्यूनातिरिक्तभावार्थं किञ्चिद् दुर्वाङ्कुरान् प्रभो ।
 समर्पयामि तेन त्वं साङ्गां पूजां कुरुष्व ताम् ॥५४॥
 त्वया दत्तं स्वहस्तेन निर्माल्यं चिन्तयाम्यहम् ।
 शिखायां धारयाम्येव सदा सर्वप्रदं च तत् ॥५५॥
 अपराधानसंख्यातान् क्षमस्व गणनायक ।
 भक्तं कुरु च मां दुण्ढे तव पादप्रियं सदा ॥५६॥
 त्वं माता त्वं पिता मे वै सुहृत्सम्बन्धिकादयः ।
 त्वमेव कुलदेवश्च सर्वं त्वं मे न संशयः ॥५७॥

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिभिर्देह-वाङ्-मनसैः कृतम् ।
 सांसर्गिकेण यत्कर्म गणेशाय समर्पये ॥५८॥
 बाह्यं नानाविधं पापं महोग्रं तल्लयं व्रजेत् ।
 गणेशपादतीर्थस्य मस्तके धारणात् किल ॥५९॥
 पादोदकं गणेशस्य पीतं मर्त्येण तत्क्षणात् ।
 सर्वान्तर्गतजं पापं नश्यति गणनातिगम् ॥६०॥
 गणेशोच्छिष्टगन्धं वै द्वादशाङ्गेषु चर्चयेत् ।
 गणेशतुल्यरूपः स दर्शनात् सर्वपापहा ॥६१॥
 यदि गणेशपूजादौ गन्धभस्मादिकं चरेत् ।
 अथवोच्छिष्टगन्धं तु नो चेत्तत्र विधिं चरेत् ॥६२॥
 द्वादशाङ्गेषु विघ्नेशं नाममन्त्रेण चाऽर्चयेत् ।
 तेन सोऽपि गणेशेन समो भवति भूतले ॥६३॥
 आदौ गणेश्वर मूर्ध्नि ललाटे विघ्ननायकम् ।
 दक्षिणे कर्णमूले तु वक्रतुण्डं समर्चयेत् ॥६४॥
 वामे कर्णस्य मूले वै चैकदन्तं समर्चयेत् ।
 कण्ठे लम्बोदरं देवं हृदि चिन्तामणिं तथा ॥६५॥
 बाहौ दक्षिणके चैव हेरम्ब बामबाहुके ।
 विकटं नाभिदेशे तु विघ्नाथं समर्चयेत् ॥६६॥
 कुक्षौ दक्षिणगायां तु मयूरेशं समर्चयेत् ।
 वामकुक्षौ गजास्यं वै पृष्ठे स्वानन्दवासिनम् ॥६७॥
 सर्वाङ्गलेपनं शस्तं चित्रितं चाऽष्टगन्धकैः ।
 गाणेशानां विशेषेण सर्वभद्रस्य कारणात् ॥६८॥
 ततोच्छिष्टं तु नैवेद्यं गणेशस्य भुनज्यहम् ।
 भुक्ति-मुक्तिप्रदं पूर्णं नानापापनिकृन्तनम् ॥६९॥
 गणेशस्मरणेनैव करोमि कालखण्डनम् ।
 गाणपत्यैश्च संवासः सदाऽस्तु मे गजानन ॥७०॥

गार्ग्य उवाच

एवं गृत्समदश्चैव चकार बाह्यपूजनम् ।
 त्रिकालेषु महायोगी सदा भक्तिसमान्वितः ॥७१॥
 तथा कुरु महीपाल गाणपत्यो भविष्यसि ।
 यथा गृत्समदः साक्षात्तथा त्वमपि निश्चितम् ॥७२॥



2. शिवस्तोत्राणि

26. शिवकवचस्तोत्रम्

अस्य शिवकवच-स्तोत्र-मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप्, छन्दः, श्रीसदाशिवरुद्रो देवता, ह्रीं क्लीं बीजम्, श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थं शिवकवच-स्तोत्रजपे विनियोगः ।

न्यासः

ॐ नमो भगवते ज्वलज्वाला-मालिने ॐ ह्रां सर्वशक्तिधाम्ने
ईशानात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्वालामालिने ॐ
नरं रिं नित्यतृप्तिधाम्ने तत्पुरुषात्मने तर्जनीभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते
ज्वलज्वालामालिने ॐ मं रुं अनादिशक्तिधाम्ने अघोरात्मने मध्यमाभ्यां
नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्वालामालिने ॐ शिं रें स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने
वामदेवात्मने अनामिकाभ्यां नमः । ॐ नमो भगवते ज्वलज्वालामालिने
ॐ वां रौं अलुप्तशक्तिधाम्ने सद्योजातात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ नमो
भगवते ज्वलज्वालामालिने ॐ यं रः अनादिशक्तिधाम्ने सर्वात्मने
करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः ।

ध्यानम्

वज्रदंष्ट्रं त्रिनयनं कालकण्ठमरिन्दमम् ।
सहस्रकरमत्युग्रं वन्दे शम्भुमुमापतिम् ॥१॥
अथाऽपरं सर्वपुराणगुह्यं निःशेषपापौधहरं पवित्रम् ।
जयप्रदं सर्वविपत्-प्रमोचनं वक्ष्यामि शैवं कवचं हिताय ते ॥२॥

ऋषभ उवाच

नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् ।
वक्ष्ये शिवमयं वर्म सर्वरक्षाकरं नृणाम् ॥३॥
शुचौ देशे समासीनो यथावत् कल्पितासनः ।
जितेन्द्रियः जितप्राणाश्चिन्तयेच्छिवमव्ययम् ॥४॥

हृत्पुण्डरीकान्तर-सन्निविष्ट स्वतेजसा व्याप्तनभोऽवकाशम् ।
 अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत् परानन्दमयं महेशम् ॥५॥
 ध्यानावधूताऽखिलकर्मबन्धश्चिरं चिदानन्दनिमग्नचेताः ।
 षडक्षर-न्यास-समाहितात्मा शैवेन कुर्यात् कवचेन रक्षाम् ॥६॥
 मां पातु देवोऽखिल-देवतात्मा संसारकूपे पतितं गभीरे ।
 यन्नाम दिव्यं वरमन्त्रमूलं धुनोतु मे सर्वमघं हृदिस्थम् ॥७॥
 सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्तिज्योतिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ।
 अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ॥८॥
 यो भूस्वरूपेण बिभर्ति विश्वं पायात् स भूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्तिः ।
 योऽपांस्वरूपेण नृणां करोति सञ्जीवनं सोऽवतु मां जलेभ्यः ॥९॥
 कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा सर्वाणि यो नृत्यतु भूरिलीलः ।
 स कालरुद्रोऽवतु मां दवाग्नेर्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ॥१०॥
 प्रदीप्त-विद्युत-कनकावभासो विद्यावराभीति-कुठारपाणिः ।
 चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यां स्थितं रक्षतु मामजस्रम् ॥११॥
 कुठार-वेदाङ्कुश-पाश-शूल-कपाल-ढक्क-ऽक्षण-गुणान्दधानः ।
 चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥१२॥
 कुन्देन्दु-शङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमाला-वरदाभयाङ्कः ।
 त्र्यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावः सद्योऽधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥१३॥
 वराक्ष-माला-ऽभय-टङ्कहस्तः सरोज-किञ्चल्प-समानवर्णः ।
 त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां पायादुदीच्यां दिशि वामदेवः ॥१४॥
 वेदाभयेष्टाङ्कुश-पाश-टङ्क-कपाल-ढक्काक्षक-शूलपाणिः ।
 सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान् मामीशान ऊर्ध्वं परमप्रकाशः ॥१५॥
 मूर्धानमव्यान् मम चन्द्रमौलिर्भालं ममाऽव्यादथ भालनेत्रः ।
 नेत्रे ममाऽव्याद् भगनेत्रहारी नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ॥१६॥
 पायाच्छ्रुतौ मे श्रुतिगीतकीर्तिः कपोलमव्यात् सततं कपाली ।
 वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ॥१७॥
 कण्ठं गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः पाणिद्वयं पातु पिनाकपाणिः ।
 दोर्मूलमव्यान् मम धर्मबाहुर्वक्षःस्थलं दक्षमखान्तकोऽव्यात् ॥१८॥

ममोदरं पातु गिरीन्द्रधन्वा मध्यं ममाऽव्यान् मदनान्तकारी ।
 हेरम्बतातो मम पातु नाभिं पायात् कटीं धूर्जटिरीश्वरो मे ॥१९॥
 ऊरुद्वयं पातु कुवेरमित्रो जानुद्वयं मे जगदीश्वरोऽव्यात् ।
 जङ्घायुगं पुङ्गवकेतुरव्यात् पादौ ममाऽव्यात् सुरवन्द्यपादः ॥२०॥
 महेश्वरः पातु दिनादियामे मां मध्ययामेऽवतु वामदेवः ।
 त्रिलोचनः पातु तृतीययामे वृषध्वजः पातु दिनान्त्ययामे ॥२१॥
 पायान्निशादौ शशिशेखरो मां गङ्गाधरो रक्षतु मां निशीथे ।
 गौरीपतिः पातु निशावसाने मृत्युञ्जयो रक्षतु सर्वकालम् ॥२२॥
 अन्तः स्थितं रक्षतु शङ्करो मां स्थाणुः सदा पातु वहिः स्थितं माम् ।
 तदन्तरे पातु पतिः पशूनां सदाशिवो रक्षतु मां समन्तात् ॥२३॥
 तिष्ठन्तमव्याद् भुवनैकनाथः पायाद् व्रजन्तं प्रमथाधिनाथः ।
 वेदान्तवेद्योऽवतु मां निषण्णं मामव्यः पातु शिवः शयानम् ॥२४॥
 मार्गेषु मां रक्षतु नीलकण्ठः शैलादि-दुर्गेषु पुरत्रयारिः ।
 अरण्यवासादि महाप्रवासे पायान् मृगव्याध उदारशक्तिः ॥२५॥
 कल्पान्तकाटोप-पटुप्रकोप-स्फुटा-ऽवृहासोच्चलिताण्डकोशः ।
 घोरारिसेनार्णव-दुर्निवार-महाभयाद् रक्षतु वीरभद्रः ॥२६॥
 पत्त्यश्च-मातङ्ग-रथावरूढ-सहस्र-लक्षायुत-कोटिभीषणम् ।
 अक्षौहिणीनां शतमाततायिना छिन्द्यान् मृडो घोरकुठारधारया ॥२७॥
 निहन्तु दस्यून् प्रलयानलार्चि-ज्वलत्त्रिशूलं त्रिपुरान्तकस्य ।
 शार्दूल-सिंहर्क्ष-वृकादिहिस्त्रान् सन्नासयत्वीशधनुः पिनाकः ॥२८॥
 दुःस्वप्न-दुःशकुन-दुर्गति-दौर्मनस्य-दुर्भिक्ष-दुर्व्यसनदुःसह-दुर्यशांसि ।
 उत्पात-तापविषभीतिमसदग्रहार्तिव्याधींश्च नाशयतु मे जगतामधीशः ॥२९॥

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सर्वमन्त्रस्वरूपाय
 सर्वयन्त्राधिष्ठिताय सर्वतन्त्रस्वरूपाय सर्वतत्त्वविदूराय ब्रह्मरुद्रावतारिणे
 नीलकण्ठाय पार्वतीमनोहर-प्रियाय सोमसूर्याग्निलोचनाय भस्मोद्भूलित-
 विग्रहाय महामणिमुकुटधारणाय माणिक्यभूषणाय सृष्टि-स्थिति-
 प्रलयकाल-रौद्रावतारायदक्षा-ऽध्वर-ध्वंसकाय महाकालभेदनाय-
 मूलाधारैक-निलयाय तत्त्वातीताय गङ्गाधराय सर्वदेवाधिदेवाय
 षडाश्रयाय वेदान्तसाराय त्रिवर्गसाधनाया-ऽनन्तकोटि-

ब्रह्माण्डनायकायाऽनन्त-वासुकि-तक्षक-कर्कोटक-शङ्खलिक-
 पद्ममहापद्मेत्यष्ट-महानागकुल-भूषणाय प्रणवस्वरूपाय
 चिदाकाशायाऽऽकाशादिक्स्वरूपाय ग्रहनक्षत्र-मालिने सकलाय
 कलङ्करहिताय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे
 सकललोकैकसंहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकसाक्षिणे
 सकलनिगम-गुह्याय सकलवेदान्त-पारगाय सकललोकैकवरप्रदाय
 सकललोकैकशङ्कराय शशाङ्क-शेखराय शाश्वतनिजावासाय
 निराभासाय निरामयाय निर्मलाय निर्लोभाय निर्मदाय निश्चिन्ताय
 निरहङ्काराय निरङ्कुशाय निष्कलङ्काय निर्गुणाय निष्कामाय निरुपद्रवाय
 निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरन्तकाय निष्प्रपञ्चाय निःसङ्गाय
 निर्द्वन्द्वाय निराधाराय निरागाय निष्क्रोधाय निर्मलाय निष्पापाय निर्भयाय
 निर्विकल्पाय निर्भेदाय निष्क्रियाय निस्तुलाय निःसंशयाय निरञ्जनाय
 निरुपमविभवाय नित्य-शुद्ध-बुद्ध-परिपूर्ण-सच्चिदानन्दाद्वयाय
 परमशान्तस्वरूपाय तेजोरूपाय तेजोमयाय जय, जय रुद्र महारौद्र
 भद्रावतार महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर
 खट्वाङ्ग-खड्ग-चर्म-पाशाङ्कुश-डमरु-शूल-चाप-बाण-गदा-शक्ति-
 भिन्दिपाल-तोमर-मुसल-मुद्गर-पाश-परिघ भुशुण्डी-शतघ्नी-
 चक्राद्यायुध-भीषणकर-सहस्रमुखदंष्ट्रा करालवदन-विकटाट्टहास-
 विस्फारित-ब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रबलय नागेन्द्र
 चर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विश्वरूप विरूपाक्ष विश्वेश्वर
 वृषभवाहन विषविभूषण विश्वतोमुख सर्वतोरक्ष रक्ष मां ज्वल-ज्वल
 महामृत्यूपमृत्युभय नाशय नाशय चोरभयमुत्सा-दयोत्सादय विषसर्पभयं
 शमय शमय चोरान् मारय मारय मम शत्रून् च्छाटोच्छाटय त्रिशूलेन
 विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि
 खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः सन्ताडय
 सन्ताडय रक्षांसि भीषय भीषयाऽशेष-भूतानि विद्रावय विद्रावय
 कूष्माण्ड-वेताल-मारीच-ब्रह्मराक्षस-गणान् सन्त्रासय सन्त्रासय
 मामभयं कुरु कुरु विव्रस्तं मामाश्वासयाऽऽश्वासय नरक-महाभयान्
 मामुद्धरोद्धर सञ्जीवय सञ्जीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्याययाप्यायय

दुःखातुरं मामानन्दयाऽऽनन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाऽऽच्छादय
मृत्युञ्जय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते ॥२९॥

ऋषभ उवाच

इत्येतत् कवचं शैवं वरदं व्याहतं मया ।
सर्वबाधा-प्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम् ॥३०॥
यः सदा धारयेन् मर्त्यः शैवं कवचमुत्तमम् ।
न तस्य जायते क्वाऽपि भयं शम्भोरनुग्रहात् ॥३१॥
क्षीणाऽऽयुः प्राप्तमृत्युर्वा महारोग-हतोऽपि वा ।
सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥३२॥
सर्वदारिद्र्यशमनं सौमङ्गल्य-विवर्धनम् ।
यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि पूज्यते ॥३३॥
महापातक-सङ्घातैर्मुच्यते चोपपातकैः ।
देहान्ते मुक्तिमाप्नोति शिववर्माऽनुभावतः ॥३४॥
त्वमपि श्रद्धया वत्स! शैवं कवचमुत्तमम् ।
धारयस्व मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥३५॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ऋषभो योगी तस्मै पार्थिवसूनवे ।
ददौ शङ्खं महारावं खड्गं चाऽरि-निषूदनम् ॥३६॥
पुनश्च भस्म सम्मन्त्र्य तदङ्गं परितोऽस्पृशत् ।
गजानां षट्सहस्रस्य त्रिगुणस्य बलं ददौ ॥३७॥
भस्मप्रभावात् सम्प्राप्त-बलैश्वर्य-धृति-स्मृतिः ।
स राजपुत्रः शुशुभे शरदर्क इव श्रिया ॥३८॥
तमाह प्राञ्जलिं भूयः स योगी नृपनन्दनम् ।
एष खड्गो मया दत्तस्तपोमन्त्रानुभावितः ॥३९॥
शितधारमिमं खड्गं यस्मै दर्शयसे स्फुटम् ।
स सद्यो म्रियते शत्रुः साक्षान्मृत्युरपि स्वयम् ॥४०॥
अस्य शङ्खस्य निर्हादं ये शृण्वन्ति तवाहिताः ।
ते मूर्च्छिताः पतिष्यन्ति न्यस्तशस्त्रा विचेतनाः ॥४१॥

खड्ग-शङ्खाविमौ दिव्यौ परसैन्यविनाशनौ ।
 आत्मसैन्यस्य पक्षाणां शौर्य-तेजो-विवर्धनौ ॥४२॥
 एतयोश्च प्रभावेण शैवेन कवचेन च ।
 द्विषट्सहस्रनागानां बलेन महताऽपि च ॥४३॥
 भस्मधारण-सामर्थ्याच्छत्रुसैन्यं विजेष्यसि ।
 प्राप्य सिंहासनं पित्र्यं गोप्ताऽसि पृथिविमिमाम् ॥४४॥
 इति भद्रायुषं सम्यगनुशास्य समाकृतम् ।
 ताभ्यां सम्पूजितः सोऽथ योगी स्वैरगतिर्ययौ ॥४५॥
 ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे शिवकवचं समाप्तम् ॥२६॥

27. शिवमानस-पूजा-स्तोत्रम्

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं
 नानारत्न-विभूषितं मृगमदा-मोदाङ्कितं चन्दनम् ।
 जाती-चम्पक-बिल्वपत्र-रचितं पुष्पं च धूपं तथा
 दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥१॥
 सौवर्णं नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं
 भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पानकम् ।
 शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूर-खण्डोज्ज्वलं
 ताम्बूल मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु ॥२॥
 छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
 वीणा-भेरि-मृदङ्ग-काहल-कला-गीतं च नृत्यं तथा ।
 साष्टाङ्गप्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत् समस्तं मया
 सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥३॥
 आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
 पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
 सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
 यद्यत् कर्म करोमि ततदखिलं शम्भो तवाऽऽराधनम् ॥४॥
 करचरणकृतं वाक्-कायजं कर्मजं वा
 श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।

विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो! ॥५॥

॥ इति शिवमानसपूजास्तोत्र सम्पूर्णम् ॥२७॥

28. शिवमानस-पूजा

ॐ प्रत्यक्प्रणवधीवृत्या हृदगृहान्तः प्रवेशनम्।
मण्डुपान्तः प्रवेशोऽयं पूजार्थं तव शङ्कर ॥१॥
गुरुवाक् येषु विश्वासः स्थितिरासनसंस्थितिः।
सर्वसङ्कल्पसन्त्यागः सङ्कल्पस्तव पूजने ॥२॥
सर्वाधारस्त्वमेवेति निश्चयः पीठपूजनम्।
ध्यानध्यातृध्येयबाधो ध्यानमानन्दकारणम् ॥३॥
दृश्यप्रमार्जनं चित्तान्निर्माल्यस्य विसर्जनम्।
अहं ब्रह्मेत्यखण्डा या वृत्तिधाराभिषेचनम् ॥४॥
पृथिव्यात्मकता दृष्टिस्तव गन्धसमर्पणम्।
बोधो पशमवैराग्यं त्रिदल बिल्वमर्पये ॥५॥
आकाशात्मकताबोधः कुसु मर्पणमीश्वर।
जगदाकाशपुष्पाभमिति पद्मं समर्पये ॥६॥
वायुतेजोमयत्वं ते धूपदीपावनुत्तमौ।
दृश्यासम्भवबोधेन निजानन्देन तृपतता ॥७॥
सर्वतः प्रीतिजनकं नैवेद्यं विनिवेदये।
जलात्मकत्वबुद्धिस्तु पीयूषं तेऽर्पये पिब ॥८॥
कर्तव्येष्वप्रसक्तिस्तु हस्तप्रक्षालनं तव ॥९॥
दुर्वासनापरित्यागस्ताम्बूलस्य समर्पणम्।
वाचां विसर्जनं देव दक्षिणा श्रुतिसम्मता ॥१०॥
फलाभिसन्धिराहित्यं फलार्पणमनुत्तमम्।
अहमेव परं ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥११॥
एवं निदिध्यासवाक्यं स्तुतिः प्रियकरी तव।
नामरूपाणि न त्वत्तो भिन्नानीति मतिस्तु या ॥१२॥
तव पुष्पाञ्जलिः शम्भो सर्वतोत्कीर्णपुष्पकः।
स्वप्रकाशात्मबुद्धिस्तु महानीराजनं तव ॥१३॥

प्रादक्षिण्यं सर्वतस्ते व्यासबुद्धिः स्मृतं शिव।
 त्वमेवाऽहमिति स्थित्या लीनता प्रणतिस्तव॥१४॥
 शुद्धसत्त्वस्याभिवृद्धिश्छत्रं तापापनोदनम्।
 रजस्तमस्तिरस्कारश्चामारान्दोलने तव॥१५॥
 निजानन्दपरो धूर्णदोलनान्दोलने तव।
 धन्योऽहं कृतकृत्योऽहमिति गानं तव प्रियम्॥१६॥
 निरङ्कुशं महातृपत्या नर्तनं ते मुदे शिव।
 नानाविधैः शब्दजालैर्जृम्भणं वाद्यमुत्तमम्॥१७॥
 शब्दातिगत्वबुद्धिस्तु कल्याणमिति डिण्डिमः।
 वेगवत्तरगङ्गाऽसौ मनोऽश्वस्ते समर्पितः॥१८॥
 अहंभावमहामत्तगजेन्द्रो भूरिलक्षणः।
 तत्र देहाद्यनारोपनिष्ठा दृढतरोऽङ्कुशः॥१९॥
 अद्वैतबोधदुर्गोऽयं यत्र शत्रुर्न कश्चन।
 जनतारामविस्तारो रमस्वात्र यथासुखम्॥२०॥
 कल्पनासम्परित्यागो महाराज्यं समर्पयेत्।
 भोक्तृत्वाध्यासराहित्यं वरं देहि सहस्रधा॥२१॥
 अखण्डा तव पूजेयं सदा भवतु सर्वतः।
 आत्मत्वात्तव मे सर्वं पूजैवाऽस्ति न चाऽन्यथा॥२२॥
 इमां पूजां प्रतिदिनं यः पठेद्यत्र-कुत्रचित्।
 सद्यः शिवमयो भूत्वा मुक्तश्चरति भूतले॥२३॥

॥ इति शिवमानस-पूजा सम्पूर्णम् ॥२८॥

29. शिवापराध-क्षमापनस्तोत्रम्

आदौ कर्मप्रसङ्गात् कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां
 विण्मूत्रामेध्यमध्ये क्लथयति नितरां जाठरो जातवेदाः।
 यद्यद् वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥१॥
 शल्ये दुःखातिरेकान् मललुलितवपुः स्तन्यपाने पिपासा
 नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति।
 नानारोगादि-दुःखाद्गुदन-परवशः शङ्करं न स्मरामि
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥२॥

प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभिर्मर्मसिन्धौ
 दष्टो नष्टो विवेकः सुत-धन-युवति-स्वादसौख्ये निषण्णः ।
 शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढं
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥३॥
 वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विगत-गति-मतिश्चा-ऽऽधिदैवादि-तापैः
 पापै रोगैर्वियोगैस्त्वनव-सितवपुः प्रौढिहीनं च दीनम् ।
 मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेध्यानशून्यं
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥४॥
 नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपद-गहन-प्रत्यवायाकुलाख्यं
 श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गे सुसारे ।
 ज्ञातो धर्मो विचारैः श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥५॥
 स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहतं गाङ्गतोयं
 पूजार्थं वा कदाचिद् बहुतरंगहनात् खण्डबिल्वीदलानि ।
 नाऽऽनीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पैस्त्वदर्धं
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥६॥
 दुग्धैर्मध्वाज्य-युक्तैर्दधिसितसहितः स्नापितं नैव लिङ्गं
 नो लिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितैः पूजितं न प्रसूनैः ।
 धूपैः कर्पूर-दीपैर्विविधरसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः ।
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥७॥
 ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो
 हव्यं ते लक्षसंख्यैर्हुतवहवदने नाऽर्पितं बीजमन्त्रैः ।
 नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रत-जप-नियमै रुद्रजाप्यैर्न वेदैः
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥८॥
 स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत् कुण्डले सूक्ष्ममार्गे
 शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे ज्योतिरूपेऽपराख्ये ।
 लिङ्गज्ञे ब्रह्मावाक्ये सकलतनुगतं शङ्करं न स्मरामि
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥९॥
 नग्नो निःसङ्गशुद्धस्त्रिगुणाविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो
 नासाग्रे न्यस्तदृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित् ।

उन्मन्याऽवस्थया त्वां विगतकलिमलं शङ्करं न स्मरामि
 क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥१०॥
 चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
 सपैर्भूषित-कण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।
 दन्तित्वकृत-सुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
 मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥११॥
 किं वाऽनेन धनेन वाजि-करिभिः प्राप्तेन राज्येन किं
 किं वा पुत्र-कलत्र-मित्र-पशुभिर्देहेन गेहेन किम् ।
 ज्ञात्वैतत् क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः
 स्वात्मार्थं गुरुवाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम् ॥१२॥
 आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिन याति क्षयं यौवनं
 प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः ।
 लक्ष्मीस्तोय-तरङ्ग-भङ्ग-चपला विद्युच्चलं जीवितं
 तस्मात् मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाऽधुना ॥१३॥
 करचरणकृतं वाक्-कायजं कर्मजं वा
 श्रवण-नयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
 विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
 जय जय करुणाऽब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥१४॥
 ॥ इति शिवापराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२९॥

30. वेदसारशिवस्तोत्रम्

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्
 जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गावारि महादेवमेकं स्मरामि स्मरारिम् ॥१॥
 महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम् ।
 विरूपाक्षमिन्द्रर्क-वह्निं त्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ॥२॥
 गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
 भवं भास्वरं भस्मना भूषिताङ्गं भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ॥३॥
 शिवाकान्त शम्भो शशाङ्गार्धमौले महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन् ।
 त्वमेको जगद्-व्यापको विश्वरूप प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ॥४॥
 परात्मानमेकं जगद्-बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम् ।
 यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥५॥

न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते नतन्द्रा न निद्रा ।
 न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्याऽस्ति मूर्तिस्त्रिमूर्ति तमीडे ॥६॥
 अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
 तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥७॥
 नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते!!
 नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ॥८॥
 प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र ।
 शिवाकान्त शान्त स्मरारे पुरारे त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ॥९॥
 शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन् ।
 काशीपते करुणया जगदेतदेकस्त्वं हंसिपासि विदधासिमहेश्वरोऽसि ॥१०॥
 त्वत्तो जगद् भवतिदेव भवस्मरारे त्वय्येवतिष्ठति जगन्मृडविश्वनाथ ।
 त्वय्येव गच्छतिलयं भवदेतदीशलिङ्गात्मकंहरचराऽचरविश्वरूपिन् ॥११॥

॥ इति वेदसारशिवस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥३०॥

31. शिवाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् (1)

देवा ऊचुः

जय शम्भो विभो रुद्र स्वयम्भो जय शङ्कर! ।
 जयेश्वर जयेशान जय सर्वज्ञ कामद! ॥१॥
 नीलकण्ठ जय श्रीद श्रीकण्ठ जय धूर्जटे! ।
 अष्टमूर्तेऽनन्तमूर्ते महामूर्ते जयानघ! ॥२॥
 जय पापहरानङ्ग-निःसङ्गाभङ्ग-नाशन! ।
 जय त्वं त्रिदशाधार त्रिलोकेश त्रिलोचन! ॥३॥
 जय त्वं त्रिपथाधार त्रिमार्ग त्रिभिरूर्जित! ।
 त्रिपुरारे त्रिधामूर्ते जयैक-त्रिजटात्मक ॥४॥
 शशिशेखर शूलेन पशुपाल शिवाप्रिय! ।
 शिवात्मक शिव श्रीद सुहृच्छीशतनो जय ॥५॥
 सर्व सर्वेश भूतेश गिरिश त्वं गिरीश्वर! ।
 जयोगरूप भीमेश भव भर्ग जय प्रभो ॥६॥

जय दक्षाऽध्वर-ध्वंसिन्नन्धक-ध्वंसकारक!।
 रुण्डमालिन् कपालिंस्त्वं भुजङ्गाजिनभूषण!॥७॥
 दिगम्बर दिशानाथ व्योमकेश चितांपते!।
 जयाधार निराधार भस्माधार धराधर!॥८॥
 देवदेव महादेव देवतेशादिदैवत।
 वह्निवीर्य जय स्थाणो जयायोनिजसम्भव॥९॥
 भव शर्व महाकाल भस्माङ्ग सर्पभूषण।
 त्र्यम्बक स्थपते वाचांपते भो जगतांपते॥१०॥
 शिपिविष्ट विरूपाक्ष जय लिङ्ग वृषध्वज।
 नीललोहित पिङ्गाक्ष जय खट्वाङ्गमण्डन॥११॥
 कृत्तिवास अहिर्बुध्न्य मृडानीश जटाम्बुभृत्।
 जगद्भ्रातर्जगन्मातर्जगत्तात जगद्गुरो॥१२॥
 पञ्चवक्त्र महावक्त्र कालवक्त्र गजास्यभृत्।
 दशबाहो महाबाहो महावीर्य महाबल॥१३॥
 अघोरघोरवक्त्र त्वं सद्योजात उमापते।
 सदानन्द महानन्द नन्दमूर्ते जयेश्वर॥१४॥
 एवमष्टोत्तरशतं नाम्नां देवकृतं तु ये।
 शम्भोर्भक्त्या स्मरन्तीह शृण्वन्ति च पठन्ति च॥१५॥
 न तापास्त्रिविधास्तेषां न शोको न रुजादयः।
 ग्रहगोचरपीडा च तेषां क्वाऽपि न विद्यते॥१६॥
 श्रीः प्रज्ञा-ऽऽरोग्यमायुष्यं सौभाग्यं भाग्यमुन्नतिम्।
 विद्यां धर्मे मतिः शम्भोर्भक्तिस्तेषां न संशयः॥१७॥

॥ इति शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३१॥

32. शिवाऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् (2)

शिवो महेश्वरः शम्भु पिनाकी शशिशेखरः।
 वामदेवो विरूपाक्षः कपर्दी नीललोहितः॥१॥
 शङ्करः शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभः।
 शिपिविष्टोऽम्बिकानाथः श्रीकण्ठी भक्तवत्सलः॥२॥

भवः शर्वस्त्रिलोकेशः शितिकण्ठः शिवाप्रियः ।
 उग्रः कपाली कामारिरन्धकासुरसूदनः ॥३॥
 गङ्गाधरो ललाटाक्षः कालकालः कृपानिधिः ।
 भीमः परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधरः ॥४॥
 कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तकः ।
 वृषाङ्गी वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥५॥
 सामप्रियः स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वरः ।
 सर्वज्ञः परमात्मा च सोम-सूर्या-ऽग्नि-लोचनः ॥६॥
 हविर्यज्ञमयः सोमः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः ।
 विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथः प्रजापतिः ॥७॥
 हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघः ।
 भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रियः ॥८॥
 कृतिवासाः पुरारातिर्भगवान् प्रथमाधिपः ।
 मृत्युञ्जयः सूक्ष्मतनुर्जगद्वयापी जगद्गुरुः ॥९॥
 व्योमकेशो महासेन-जनकश्चारुविक्रमः ।
 रुद्रो भूतपतिः स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बरः ॥१०॥
 अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विकः शुद्धविग्रहः ।
 शाश्वतः खण्डपरशू रजः पाशविमोचनः ॥११॥
 मृडः पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्ययो हरिः ।
 पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हरः ॥१२॥
 भगनेत्रभिदव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
 अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारकः परमेश्वरः ॥१३॥

॥ इति शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३२॥

33. दारिद्र्य-दहन-शिवस्तोत्रम्

विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय ।
 कर्पूरकान्तिधवलाय जटाधराय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥१॥
 गौरिप्रियाय रजनीशकलाधराय कालान्तकाय भुजगाधिपकङ्कणाय ।
 गङ्गाधराय गजराज-विमर्दनाय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥२॥
 भक्ति-प्रियाय भव-रोग-भयापहाय उग्राय दुर्गभव-सागरतारणाय ।
 ज्योतिर्मयाय गुणनामसूनृत्यकाय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥३॥
 चर्माम्बराय शवभस्मविलेपनाय भालेक्षणाय मणिकुण्डलमण्डिताय ।
 मञ्जीरपादयुगलाय जटाधराय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥४॥
 पञ्चाननाय फणिराजविभूषणाय हेमांशुकाय भुवनत्रयमण्डिताय ।
 आनन्दभूमिवरदाय तमोमयाय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥५॥
 भानुप्रियाय भवसागरतारणाय कालान्तकाय कमलासनपूजिताय ।
 नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥६॥
 रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय नागप्रियाय नरकार्णवतारणाय ।
 पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥७॥
 मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय ।
 मातङ्गचर्मवसनाय महेश्वराय दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥८॥
 वसिष्ठेन कृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम् ।
 सर्वसम्पत्करं शीघ्रं पुत्र-पौत्रादि-वर्धनम् ।
 त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात् ॥९॥

॥ इति दारिद्र्य-दहन-शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३३॥

34. शिवमहिम्नस्तोत्रम्

पुष्पदन्त उवाच

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
 स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
 अथाऽवाच्यः सर्वः स्वमति-परिणामावधि गृणन्
 ममाऽप्येषः स्तोत्रे हर! निरपवादः परिकरः ॥१॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्-मनसयो-
 रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
 स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
 पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥
 मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवत-
 स्तव ब्रह्मन्! किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
 मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
 पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन! बुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥
 तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदय रक्षा-प्रलयकृत्
 त्रयीवस्तु-व्यस्तं त्रिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
 अभव्यानामस्मिन् वरद! रमणीयामरणीं
 विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥
 किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
 किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
 अतर्क्यैश्वर्यं त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
 कुतर्कोऽयं कांश्चिन् मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥
 अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
 मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
 अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
 यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर! संशेरत इमे ॥६॥
 त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
 प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
 रुचीनां वैचित्र्यादृजु-कुटिल-नानापथजुषां
 नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥
 महोक्षः खट्वाङ्ग परशुरजिनं भस्म फणिनः
 कपालं चेतीयत्तव वरद! तन्त्रोपकरणम् ।
 सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भूप्रणिहितां
 न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णां भ्रमयति ॥८॥

ध्रुवं कश्चित् सर्व सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
 परो ध्रौव्याऽध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
 समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन! तैर्विस्मित इव
 स्तुवञ्जिहेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९॥
 तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः
 परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
 ततो भक्ति-श्रद्धा-भरगुरु-गृणद्भयां गिरिश! यत्
 स्वयं तस्थे तस्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥
 अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
 दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
 शिरःपद्मश्रेणी-रचित-चरणाम्भोरुहबलेः
 स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर! विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥
 अमुष्य त्वत्सेवा-समधिगत-सारं भुजवनं
 बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
 अलभ्या पातालेऽप्यलस-चलिताङ्गुष्ठ-शिरसि
 प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥
 यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद! परमोच्चैरपि सती-
 मधश्चक्रे बाणः परिजन-विधेयस्त्रिभुवनः ।
 न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
 र्न कस्याऽप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥
 अकाण्ड-ब्रह्माण्ड-क्षय-चकित-देवासुरकृपा -
 विधेयस्याऽऽसीद् यस्त्रिनयनविषं संहतवतः ।
 स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
 विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभय-भङ्ग-व्यसनिनः ॥१४॥
 असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
 निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः
 स पश्यन्तीश! त्वामितर-सुरसाधरणमभूत्
 स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

मही पादघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
 पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघ-रुग्ण-ग्रहगणम् ।
 मुहुर्द्यौर्दोस्थं यात्यनिभृत-जटा-ताडित-तटा
 जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभूता ॥१६॥
 वियद्व्यापी तारागण-गृणित-फेनोद्गम-रुचिः
 प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
 जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
 त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम! दिव्यं तव वपुः ॥१७॥
 रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
 रथाङ्गे चन्द्राऽर्को पथचरणपाणिः शर इति ।
 दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
 विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥
 हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
 यैदेकोने तस्मिन्निज-मुदहरन्नेत्रकमलम् ।
 गतो भक्त्युद्रेकः परिणमतिमसौ चक्रवपुषा
 त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर! जागर्ति जगताम् ॥१९॥
 क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
 क्वं कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
 अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
 श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा कृतपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥
 क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृताम्
 ऋषीणामात्विज्यं शरणद! सदस्याः सुरगणाः ।
 क्रतुमेषस्त्वत्तः क्रतुफल-विधान-व्यसनिनो
 ध्रुवं कर्तुः श्रद्धा-विधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥
 प्रजानाथं नाथ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
 गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
 धनुष्पाणेयार्तिं दिवमपि सपत्राकृतममुं
 त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमहाय तृणवत्
 पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
 यदि स्त्रैणं देवो यमनिरत-देहार्ध-घटना-
 दवैति त्वामद्भावत वरद! मुग्धा युवतयः ॥२३॥
 स्मशानेष्वक्रीडा स्मरहर! पिशाचाः सहचरा-
 श्रिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
 अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
 तथाऽपि स्मर्तृणां वरद! परमं गङ्गलमसि ॥२४॥
 मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
 प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलात्सङ्गितदृशः ।
 यदालोक्याह्लादं हृद इव निमज्ज्यामृतमये
 दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपियमिनस्तत्किलभवान् ॥२५॥
 त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
 स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
 परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
 न विद्मस्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥
 त्रयीं तिस्रो वृतीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
 नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
 तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
 समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद! गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥
 भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महान्-
 स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
 अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
 प्रियायाऽस्मै धाम्ने प्रविहित-नमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥
 नमो नेदिष्ठाय प्रियदव! दविष्ठाय च नमो
 नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर! महिष्ठाय च नमः ।
 नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन! यविष्ठाय च नमो
 नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥२९॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
 प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
 जनसुखकृते सत्त्वोद्विक्तौ मृडाय नमो नमः
 प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥
 कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
 क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
 इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
 वरद! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥
 असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
 सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
 लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
 तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति ॥३२॥
 असुर-सुर-मुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले
 ग्रंथित-गुण-महिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
 सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
 रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥
 अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
 पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
 स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
 प्रचुरतधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥
 महेशान्नाऽपरो देवो महिम्नो नाऽपरा स्तुतिः ।
 अघोरान्नाऽपरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५॥
 दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
 महिम्नस्तव पाठस्य कलां नाऽर्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥
 कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
 शशिधर-वरमौले-दैवदेवस्य दासः ।
 सगुरु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
 स्तवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥
 सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
 पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नाऽन्यचेताः ।

व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
 स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३८॥
 आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्व-भाषितम् ।
 अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥
 तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर!
 यादृशोऽसि महादेव! तादृशाय नमो नमः ॥
 एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥
 श्रीपुष्पदन्त-मुख-पङ्कज-निर्गतेन -
 स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरिप्रियेण ।
 कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
 सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥३९॥
 इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
 अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४०॥

॥ इति शिवमहिम्नस्तोत्रं समाप्तम् ॥३४॥

35. शिवमहिम-स्तोत्रम्

श्रीविष्णुरुवाच

महेशानन्ताद्य त्रिगुणरहितामेय विमल
 स्वराकारापारमितगुणगणाकरि निवृत्ते ।
 निराधाराधारमरवर निराकार परम
 प्रभापूराकारावर पर नमो वेद्य शिव ते ॥१॥
 नमो वेदावेद्याखिलजगदुपादान नियतं
 स्वतन्त्रासामन्तानवधुतिनिजाकारविरते ।
 निवर्तन्ते वाचः शिवभजनमप्राप्य मनसा
 यतोऽशक्ताः स्तोतुं सकृदपि गुणातीत शिव ते ॥२॥
 त्वदन्यद्वस्त्वेकं नहि भव समस्तत्रिभुवने
 विभुस्त्वं विश्वात्मा न च परममस्तीश भवतः ।

ध्रुवं मायातीतस्त्वमसि सततं ना त्र विषयो
 न ते कृत्यं सत्यं क्वचिदपि विपर्येति शिव ते ॥३॥
 त्वयैवेमं लोकं निखिलममलं व्याप्य सततं
 तथैवान्यां लोकस्थितिमनघ देवोत्तम विभो।
 त्वयैवैतत्सृष्टं जगदखिलमीशान भगवन्
 क्लासो यं कश्चित्तव शिव नमो वेद्य शिव ते ॥४॥
 जगत्सृष्टेः पूर्वं यदभवदुमाकान्त सततं
 त्वया लीलामात्रं तदपि सकलं रक्षितमभूत्।
 तदेवाग्रे भालप्रकटनयनाद्भुतकरा-
 जगद्गन्धवास्थास्य त्यज हर नमो वेद्य शिव ते ॥५॥
 विभूतीनामन्तो भव न भवतो भूतिविलसन्
 निजाकार श्रीमन् गुणगणसीमाप्यवगता।
 अतद्व्यावृत्त्याऽब्दा त्वयि सकलवेदाश्च चकिता
 भवन्तेवासामप्रकृति क नमो वर्ष शिव ते ॥६॥
 विरङ् रूपं यत्तं सकलनिगमागोचरभूत्
 तदेवेदं रूपं भवति किमिदं भिन्नमथवा।
 न जाने देवेश त्रिनयन सुराध्यचरण
 त्वमोङ्कारो वेदस्त्वमसि हि नमो घोर शिव ते ॥७॥
 यदन्तस्तत्त्वज्ञा मुनिवरगणा रूपमनघं
 तवेदं सञ्चिन्त्य स्वमनसि सदासन्नविहताः।
 ययुर्दिव्यानन्दं तदिदमथवा किं तु न तथा
 किमेतज्जानेऽहं शरणद नमः शर्व शिव ते ॥८॥
 तथा शक्त्या सृष्ट्वा जगदथ च संरक्ष्य बहुधा
 ततः संहृत्यैतन्निवसति तदाधारमथवा।
 इदं ते किं रूपं निरुपम न जाने हर विभो
 विसर्ग को वा ते तमपि हि नमो भव्य शिव ते ॥९॥
 तवानन्तान्याहुः शुचिपरमरूपाणि निगमा
 स्तदन्तर्भूतं सत्सदसनिरुक्तं पदमपि।
 निरुक्तं छन्दोभिर्निलयनमिदं वा निलयनं
 न विज्ञातं ज्ञातं सकृदपि नमो ज्येष्ठ शिव ते ॥१०॥

तवाभूत्सत्यं चानृतमपि च सत्यं कृतमभू-
 दृतं सत्यं सत्यं तदपि चयथा रूपमखिलम्।
 यतः सत्यं सत्यानृतमपि नमो रुद्र शिव ते॥११॥
 तवामेयं मेयं यदपि तदमेयं विरचितं
 न वाऽमेयं मेयं रचितमपि मेयं विरचितम्।
 न मेयं नामेयं परमपि नमो देव शिव ते॥१२॥
 तवाहारं हारं विदितमविहारं विरहसं
 न वाहारं हारं हर हरसि हारं न हरिस।
 न वाहारं हारं परतर विहारं न परतरं
 परं पारं जाने न हि खलु नमो विश्व शिव ते॥१३॥
 तदेतत्तत्त्वं ते सकलमपि तत्त्वेन विदितं
 न ते तत्त्वं तत्त्वं विदितमपि तत्त्वेन विदितम्।
 न चैतत्तत्त्वं चेन्नियतमपि तत्त्वं किमु भवे
 न ते तत्त्वं तत्त्वं तदपि च नमो वेद्य शिव ते॥१४॥
 इदं रूप सदसदमलं रूपमपि चे-
 न्न जाने रूपं ते तरतमविभिन्नं परतरम्।
 यतो नान्यद्रूपं नियतमपि वेदैर्निगदितं
 न जाने सर्वात्मन् क्वचिदपि नमोऽनन्त शिव ते॥१५॥
 महद्भूतं भूतं यदपि न च भूतं तव विभो
 सदा भूतं भूतं किमु न भवतो भूतविषये।
 यदा भूते भूतं भवति हि न भव्यं भगवतो
 भवाभूतं भाव्यं भवसि न नमो ज्येष्ठ शिव ते॥१६॥
 न ते भूताभूतास्तव यदपि भूता विभुतया।
 यतो भूता भूतास्तव तु न हि भूतात्मकतया
 न वा भूता भूताः क्वचिदपि नमो भूत शिव ते॥१७॥
 न ते माया माया त्वयि वर न मायामयपि।
 यदा माया माया त्वयि न खलु मायमयतया
 न मायामाया वा परमथ नमस्ते शिव नमः॥१८॥

यतन्तः संवेद्यं विदितमपि वेदैर्न विदितं
 न वेद्यं वेद्यं चेन्नियममपि वेद्यं न विदितम्।
 तदेवेदं वेद्यं विदितमपि वेदान्तनिकरैः
 करावेद्यं वेद्यं जितमिति नमोऽतर्क्य शिव ते॥१९॥
 शिवं सेव्यं भाव शिवमतिशिवाकारमशिवं
 न सत्यं शैवं तच्छिवमिति शिवं सेव्यमनिशम्।
 शिवं शान्त मत्वा शिवपरमतत्त्वं शिवमयं
 न जाने रूपत्वं शिवमिति नमो वेद्य शिव ते॥२०॥
 यदज्ञात्वा तत्त्वं सकलमपि संसारपतितं
 जगज्जन्मावृत्तिं दहति सततं दुःखनिलयम्।
 तदेतज्ज्ञात्वैवावहति च निवृत्तिं परतरां
 न जाने तत्तत्त्वं परमिति नमो वेद्य शिव ते॥२१॥
 न वेदं यद्रूपं निगमविषयं मङ्गलकरं
 न दृष्टं केनापि ध्रुवमिति न जाने शिव विभो।
 ततश्चित्ते शम्भो न हि मम विषादोऽधविकृतिः
 प्रयत्नाल्लब्धेऽस्मिन्न किमपि कामः पूर्ण शिव ते॥२२॥
 तवाकर्ण्यगूढं यदपि परतत्त्वं श्रुतिपरं
 तदेवातीतं सन्नयनपदवीं नात्र तनुते।
 कदाचित्किञ्चिद्वा स्फुरति कतिधा चेतसि तव
 स्फुरद्रूपं भव्यं भवहर परावेद्य शिव ते॥२३॥
 त्वमिन्दुर्भानुस्त्वं हुतभुगसि वायुश्च सलिलं
 त्वमेवाकाशोऽसि क्षितिरसि तथाऽऽत्मासि भगवन्।
 ततः सर्वाकारस्त्वमसि भवतो भिन्नमनघान्
 नतस्त्यं सत्यं त्रिनयन नमोऽनन्त शिव ते॥२४॥
 विधुं धत्से नित्यं शिरसि मृदुकण्ठोऽपि गरलं
 नवं नागाहारं भसितममलं भासुरतनुम्।
 करे शूलं भाले ज्वलनमनिशं तत्किमिति ते
 न तत्त्वं जानेऽहं भवहर नमः कूर्प शिव ते॥२५॥

तवापाङ्गः शुद्धो यदि भवति भव्ये शुभकरः
 कदाचित्कस्मिंश्चिल्लघुतरनरे विप्रभवति।
 स एवैताँल्लोकान् रचयितुमलं सापि च महान्
 कृपाधारोऽयं ते सुखयति नमोऽनन्त शिव ते॥२६॥
 भवन्तं देवेशं शिवमितरगीर्वाणसदृशं
 प्रमादाद्यं कश्चिद्यदि यदपि चित्तेऽपि मनुते।
 स दुःखं लब्ध्वाऽन्ते नरकमपि याति ध्रुवमिदं
 ध्रुवं देवाराध्यामितगुण नमोऽनन्त शिव ते॥२७॥
 प्रदोषे रत्नाढ्ये मृदुलतरसिंहासनवरे
 भवानीमारूढामसकृदपि संवीक्ष्य भवता।
 कृतं सम्यङ् नाट्यं प्रथितमित वेदोऽपि भवति
 प्रभावः को वाऽयं तव हर नमो दीप शिव ते॥२८॥
 श्मशाने सञ्चारः किमु शिव न ते क्वापि गमनं
 यतो विश्वं व्याप्याखिलमपि सदा तिष्ठति भवान्।
 विभुं नित्यं - शुद्धं शिवमुपहतं व्यापकमिति
 श्रुतिः साक्षाद्वक्ति स्वयमपि नमः शुद्ध शिव ते॥२९॥
 धनुर्मैरुः शेषो धनुवरगुणौ यान्तमवनि-
 स्तवैवेदं चक्रं निगमनिकरा वाजिनिकराः।
 पुरो लक्ष्यं यन्ता विधिरिषुहरिश्चेति निगमः
 किमेवं त्वन्वेष्ट्यो निगदति नमः पूर्ण शिव ते॥३०॥
 मृदुः सत्त्वं त्वेतद्भवमनघयुक्तं च रजसा
 तमोयुक्तं शुद्धं हरमपि शिवं निष्कलमिति।
 वदत्येको वेदस्त्वमसि यदुपास्यं ध्रुवमिदं
 त्वमोङ्काराकारो ध्रुवमिति नमोऽनन्त शिव ते॥३१॥
 जगत्सुप्तिं बोधं व्रजति भवतो निर्गतमपि
 प्रवृत्तिं व्यापारं पुनरपि सुषुप्तिं च सकलम्।
 त्वदन्यं त्वत्प्रेक्ष्यं व्रजति शरणं नेति निगमो
 वदत्यद्वा शर्वं शिव इति नमः स्तुत्य शिव ते॥३२॥

त्वमेवालोकानामधिपतिरुमानाथजगतां

शरण्यः प्राप्यस्त्वं जलनिधिरिवानन्तपयसाम् ।
त्वदन्यो निर्वाणं तट इतिच निर्वाणयतिर-
प्यतः सर्वोत्कृष्टस्त्वमसि हि नमो नित्य शिव ते ॥३३॥

तवैवांशो भानुस्तपति विधुरप्येति पवनः
पवत्येषोऽग्निश्च ज्वलति सलिलं च प्रवहति ।
तवाज्ञाकारित्वं सकलसुरवर्गस्य सततं
त्वमेकः स्वातन्त्र्यं वहसि हि नमोऽनन्त शिव ते ॥३४॥

स्वतन्त्रोऽयं सोमः सकलभुवनैकप्रभुरयं
नियन्ता देवानामपि हर नियन्तासिन परः ।
शिवः शुद्धो मायारहित इति वेदोऽपि वदति
स्वयं तामाशास्य त्रयहर नमोऽनन्त शिव ते ॥३५॥

नमो रुद्रानन्तामरवर नमः शङ्कर विभो
नमो गौरीनाथ त्रिनयन शरण्याडि-घ्नकमल ।
नमः शर्वः श्रीमन्ननघ महदैश्वर्यनिलय
स्मरारे पापारे जय जय नमः सेव्य शिव ते ॥३६॥

महादेवाभेयानघगुणगणग्रामसवतन्
नमो भूयो भूयः पुनरपि नमस्ते पुनरपि ।
पुराराते शम्भो पुनरपि नमस्ते शिव ते ॥३७॥

कदाचिद्गुण्यन्ते निविडनियता वृष्टिकणिकाः
कदाचित्तत्क्षेत्राण्यपि सिकतलेशं कुशलिना ।
अनन्तैराकल्पं शिव गुणगणाश्चारुरसनै-
र्न शक्यं ते नूनं गणयितुमुषिऽत्वापि सततम् ॥३८॥

मया विज्ञायैषाऽनिशमपि कृता जेतुमनसा
सकामेनामेया सततमपराधा बहुविधाः ।
त्वयैते क्षन्तव्याः क्वचिदपि शरीरेण वचसा
कृतैर्नैतैर्नूनं शिव शिव कृपासागर विभो ॥३९॥

प्रमादाद्ये केचिद्वततमपराधा विधिहताः
कृताः सर्वे तेऽपि प्रशममुपयान्तु स्फुटतरम् ।

शिवः श्रीमच्छम्भो शिव शिव महेशेति च जपन
 क्वचिलिङ्गाकारे शिव हर वसामि स्थिरतरम् ॥४०॥
 इति स्तुत्वा शिवं विष्णुः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।
 निर्विण्णो न्यवसन्नूनं कृताञ्जलिपुटः स्थिरम् ॥४१॥
 तदा शिवः शिवं रूपमादायोवाच सर्वगः ।
 भाषयन्नखिलान् भूतान् घनगम्भीरया गिरा ॥४२॥
 मदीयं रूपममलं कथं ज्ञेयं भवादृशैः ।
 यत्तु वेदैरविज्ञातमित्युक्त्वाऽन्तर्दधे शिवः ॥४३॥
 ततः पुनर्विधिस्त तपस्तप्तुं समारभत् ।
 विष्णुश्च शिवतत्त्वस्य ज्ञानार्थमतियत्नतः ॥४४॥
 यादृशी शिव मे वाञ्छा पूजयित्वा वदाम्यहम् ।
 नाऽन्यो मयाऽर्च्यो देवेषु विना शम्भु सनातनम् ॥४५॥
 त्वयाऽपि शाङ्करं लिङ्गं पूजनीयं प्रयत्नतः ।
 विहायैवान्यदेवानां पूजनं शेष सर्वदा ॥४६॥

॥ इति शिवमहिम्नस्तोत्रं समाप्तम् ॥३५॥

36. शिवताण्डवस्तोत्रम्

जटाकटाह-सम्भ्रमभ्रमन्निलिम्प-निर्झरी -
 विलोलवीचि-वल्लरी-विराजमानमूर्धनि ।
 धगद्-धगद्-धगज्ज्वलल् ललाटपट्टपावके
 किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥१॥
 धराधरेन्द्र-नन्दिनी-विलासबन्धुबन्धुर -
 स्फुरद् दिगन्तसन्तति-प्रमोदमान-मानसे ।
 कृपाकटाक्ष-घोरणी-निरुद्ध-दुर्धरापदि -
 क्वचिच्चिदम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ॥२॥
 जटाभुजङ्गपिङ्गल-स्फुरत्फणामणिप्रभा -
 कदम्बकुङ्कुमद्रव-प्रलिप्त-दिग्वधूमुखे ।
 मदान्ध-सिन्धुरस्फुरत्-त्वगुत्तरीयमेदुरे -
 मनोविनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि ॥३॥

सहस्रलोचन-प्रभृत्यशेष-लेखशेखर -
 प्रसूनधूलिधोरणी-विधूसराङ्घ्रिपीठभूः ।
 भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः
 श्रियै चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ॥४॥
 ललाट-चत्वरज्वलद् धनञ्जय-स्फुलिङ्गभा -
 निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम् ।
 सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं
 महाकपालि सम्पदे शिरो जटालमस्तु नः ॥५॥
 कराल-भालपट्टिका-धगद्धगद्धगज्ज्वलद् -
 धनञ्जयाधरीकृत-प्रचण्डपञ्चसायके ।
 धराधरेन्द्र-नन्दिनी-कुचाग्र-चित्रपत्रक -
 प्रकल्पनैक-शिल्पिनि त्रिलोचने मतिर्मम ॥६॥
 नवीनमेघ-मण्डली-निरुद्धदुर्धरस्फुरत् -
 कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबन्धुकन्धरः ।
 निलिम्प-निर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः
 कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ॥७॥
 प्रफुल्लनीलपङ्कज-प्रपञ्चकालिमच्छटा -
 विडम्बिकण्ठकन्धरा-रुचिप्रबन्धकन्धरम् ।
 स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं
 यजच्छिदा-ऽन्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥८॥
 अखर्व-सर्वमङ्गला-कलाकदम्बमञ्जरी -
 रसप्रवाहमाधुरी-विजृम्भणामधुव्रतम् ।
 स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
 गजान्तका-ऽधकान्तकं तमन्तकान्तजं भजे ॥९॥
 जयत्वदभ्र-विभ्रम-भ्रमद्भुजङ्गमस्फुरद् -
 धगद्धगद्विनिर्गमत्-कराल-भालहव्यवाट् ।
 धिमिद्धिमिद्धिमि-ध्वनन् मृदङ्गमुद्गमङ्गल-
 ध्वनिक्रमप्रवर्तित-प्रचण्डताण्डवः शिवः ॥१०॥
 दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो -
 गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्-विपक्ष-पक्षयोः ।

तृणारविन्दचक्षुषोः

प्रजामहीमहेन्द्रयोः

समं प्रवर्तयन् मनः कदा सदाशिवं भजे ॥११॥

कदा निलिम्पनिर्झरी-निकुञ्जकोटरे वसन्

विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन्।

विमुक्तलोललोचना-ललाल-भाल-लग्नकः -

शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥१२॥

इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं

पठन् स्मरन् ब्रुवन्नरो विशुद्धिमेति सन्ततम्।

हरे गुरौ स भक्तिमाशु याति नाऽन्यथा गतिं

विमोहनं हि देहिनां तु शङ्करस्य चिन्तनम् ॥१३॥

पूजाऽवसानसमये

दशवक्त्रगीतं

यः शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे।

तस्य स्थिरां

रथ-गजेन्द्र-तुरङ्गयुक्तां

लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥१४॥

॥ इति शिवताण्डवस्तोत्र सम्पूर्णम् ॥३६॥

37. शिवभुजङ्गप्रयातं स्तोत्रम्

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गखण्डं चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम्।

लसद्दन्तकाण्डं विपद्भृङ्गवण्डं शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्रतुण्डम् ॥१॥

अनाद्यन्तमाद्यं परं तत्त्वमर्थं चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयम्।

हरिर्ब्रह्ममृगं परब्रह्मरूपं मनोवागतीतं महः शैवमीडे ॥२॥

स्वशक्त्यादि-शक्त्यन्तसिंहासनस्थं मनोहारि-सर्वाङ्ग-रत्नादिभूषम्।

जटाहीन्दुगङ्गास्थिशय्यकर्मौलिं परं शक्तिमित्रं नुमः पञ्चवक्त्रम् ॥३॥

शिवेशान-तत्पुरुषाघोरवामादिभि-र्ब्रह्मभि-र्हन्मुखैः षड्भिरङ्गैः।

अनौपम्यषट्त्रिंशतं तत्त्वविद्यामतीतं परं त्वा कथं वेत्ति को वा ॥४॥

प्रवाल-प्रवाह-प्रभाशोणधर्म मरुत्त्वन्मणि-श्रीमहःश्याममर्धम्।

गुणस्यूतमेकं वपुश्चैकमन्तः स्मरामि स्मरापत्ति-सम्पत्तिहेतुम् ॥५॥

स्वसेवा-समायात-देवासुरेन्द्र-नमन्मौलि-मन्दार-मालाभिषिक्तम्।

नमस्यामिशम्भो पदाम्भोरुहं ते भवाम्भोधिपोतं भवानीविभाव्यम् ॥६॥

जगन्नाथ मन्नाथ गौरीसनाथ प्रपन्नाऽनुकम्पिन् विपन्नार्तिहारिन् ।
 महः स्तोममूर्त समस्तैकबन्धो नमस्ते नमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु ॥७॥
 महादेव देवेश देवादिदेव स्मरारे पुरारे यमारे हरेति ।
 ब्रुवाणः स्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं ततो मे दयाशील देव प्रसीद ॥८॥
 विरूपाक्ष विश्वेशविद्यादिकेश त्रयीमूलशम्भो शिव त्र्यम्बक त्वम् ।
 प्रसीद स्मर त्राहि पश्यावपुष्य क्षमस्वाऽऽप्नुहीतिक्षपा हि क्षिपामः ॥९॥
 त्वदन्यः शरण्यः प्रपन्नस्य नेति प्रसीद स्मरन्नेव हन्तास्तु दैन्यम् ।
 न चेत्ते भवेद् भक्तवात्सल्यहानिस्ततो मे दयालो दयां सन्निधेहि ॥१०॥
 अयं दानकालस्त्वहं दानपात्रं भवान्नाथ दाता त्वदन्यं न याचे ।
 भवद्भक्तिमेव स्थिरां देहिमह्यं कृपाशील शम्भो कृतार्थोऽस्मि तस्मात् ॥११॥
 पशुं वेत्सि चेन्मां त्वमेवाऽधिरूढः कलङ्गीतिवा मूर्ध्निधत्से त्वमेव ।
 द्विजिह्वः पुनः सोऽपिते कण्ठभूषा त्वदङ्गीकृताः शर्व सर्वेऽपिधन्याः ॥१२॥
 न शक्नोमि कर्तुं परद्रोहलेशं कथं प्रीयसे त्वं न जाने गिरीश ।
 तदा हि प्रसन्नोऽसिकस्याऽपिकान्ता सुतद्रोहिणो वा पितृद्रोहिणो वा ॥१३॥
 स्तुतिं ध्यानमर्चा यथावद् विधातुं भजन्नप्यजानन् महेशावलम्बे ।
 वसन्तं सुतं त्रातुमग्रे मृकण्डोर्यमप्राणनिर्वापणं त्वत्पदाब्जम् ॥१४॥
 अकण्ठे कलङ्कादनङ्गे भुजङ्गादपाणौ कपालादभालेऽनलाक्षात् ।
 अमौलौ शशाङ्कादवामे कलत्रादहं देवमन्यं न मन्ये न मन्ये ॥१५॥

॥ इति शिवभुजङ्गप्रयातस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३७॥

38. शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
 नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥१॥
 मन्दाकिनी-सलिल-चन्दन-चर्चिताय नन्दीश्वर-प्रमथनाथ-महेश्वराय ।
 मन्दारपुष्प-बहुपुष्प-सुपूजिताय तस्मै मकाराय नमः शिवाय ॥२॥
 शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-सूर्याय दक्षाऽध्वर-नाशकाय ।
 श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय ॥३॥
 वसिष्ठ-कुम्भोद्भव-गौतमार्य-मुनीन्द्र-देवाऽर्चित-शेखराय ।
 चन्द्रार्क-वैश्वानर-लोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय ॥४॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
 दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय ॥५॥
 पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
 शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥६॥

इति शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३८॥

39. शिवषडक्षरस्तोत्रम्

ॐकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
 कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥
 नमन्ति ऋषयो देवा नमन्त्यप्सरसां गणः ।
 नरा नमन्ति देवेशं नकाराय नमो नमः ॥२॥
 महादेवं महात्मानं महाध्यानं परायणम् ।
 महापापहरं देवं मकाराय नमो नमः ॥३॥
 शिवं शान्तं जगन्नाथं लोकानुग्रहकारकम् ।
 शिवमेकपदं नित्यं शिकाराय नमो नमः ॥४॥
 वाहनं वृषभो यस्य वासुकिः कण्ठभूषणम् ।
 वामे शक्तिधरं देवं यकाराय नमो नमः ॥५॥
 यत्र यत्र स्थितो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
 यो गुरुः सर्वदेवानां यकाराय नमो नमः ॥६॥
 षडक्षरमिदं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
 शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥७॥

॥ इति शिवषडक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३९॥

40. शिवस्तोत्रम्

जय शङ्कर पार्वतीपते मृड शम्भो शशिखण्डमण्डन ।
 मदनान्तक भक्तवत्सल प्रियकैलास दयासुधाम्बुधे ॥१॥
 सदुपाय-कथास्वपण्डितो हृदये दुःखशरेण खण्डितः ।
 शशिखण्ड-शिखण्ड-मण्डनं शरणं यामि शरण्यमीश्वरम् ॥२॥
 महतः परितः प्रसर्पतस्तमसो दर्शनभेदिनो भिदे ।
 दिननाथ इव स्वतेजसा हृदयव्योम्नि मनांगुदेहि नः ॥३॥

न वयं तव चर्मचक्षुषा पदवीमप्युपवीक्षितुं क्षमा ।
 कृपयाऽभयदेन चक्षुषा सकलेनेश विलोकयाशु नः ॥४॥
 स्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता न हि वक्तुमीशसा ।
 मधुरं हि पयः स्वभावतो ननु कीदृक् सित-शर्करान्वितम् ॥५॥
 सविषोऽप्यमृतायते भवाञ्छवमुण्डाभरणोऽपि पावनः ।
 भव एव भवान्तकः सतां समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥६॥
 अपि शूलधरो निरामयो दृढवैराग्यरतोऽपि रागवान् ।
 अपि भैक्ष्यचरो महेश्वरश्चरितं चित्रमिदं हि ते प्रभो ॥७॥
 वितरत्यभिवाञ्छितं दृशा परिदृष्टः किल कल्पपादपः ।
 हृदये स्मृत एव धीमते नमतेऽभीष्टफलप्रदो भवान् ॥८॥
 सहस्रैव भुजङ्गपाशवान् विनिगृह्णाति न यावदन्तकः ।
 अभयं कुरु तावदाशु मे गतजीवस्व पुनः किमौषधैः ॥९॥
 सविषैरिव भोगपन्नगैर्विषयैरेभिरलं परिक्षतम् ।
 अमृतैरिव सम्भ्रमेण मामभिषिञ्चाशु दयावलोकनैः ॥१०॥
 मुनयो बहवोऽद्य धन्यतां गमिताः स्वाभिमतार्थदर्शिनः ।
 करुणाकर येन तेन मामवसन्नं ननु पश्य चक्षुषा ॥११॥
 प्रणमाम्यथ यामि चाऽपरं शरणं कं कृपणाभयप्रदम् ।
 विरहीव विभो प्रियामयं परिपश्यामि भवन्मयं जगत् ॥१२॥
 बहवो भवताऽनुकम्पिताः किमितीशान न माऽनुकम्पसे ।
 दधता किमु मन्दराचलं परमाणुः कमठेन दुर्धरः ॥१३॥
 अशुचिं यदि माऽनुमन्यसे किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते ।
 उत शाठ्यमसाधुसङ्गिनं विषलक्ष्मासि न किं द्विजिह्वधृक् ॥१४॥
 क्व दृशं विदधामि किं करोम्यनुतिष्ठामि कथं भयाकुलः ।
 क्व नु तिष्ठसि रक्ष रक्ष मां मयि शम्भो शरणागतोऽस्मि ते ॥१५॥
 विलुठास्यवनौ किमाकुलः किमुरो हन्मि शिरशिच्छनञ्चि वा ।
 किमु रोदिमि रारटीमि किं कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो ॥१६॥
 शिव सर्वग शर्व शर्मदं प्रणतो देव दयां कुरुष्व मे ।
 नम ईश्वर नाथ दिक्पते पुनरेवेश नमो नमोऽस्तु ते ॥१७॥

शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका ।
 शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नाऽन्यदुपैनि दैवतम् ॥१८॥
 उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं जपतः शम्भुसमीपवर्तिनः ।
 अभिवाञ्छितभाग्यसम्पदः परमायुः प्रददाति शङ्करः ॥१९॥
 उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं प्रजपेद्यस्तु शिवस्य सन्निधौ ।
 शिवलोकमवाप्य सोऽचिरात् सह तेनैव शिवेन मोदते ॥२०॥

॥ इत्युपमन्युकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४०॥

41. श्रीविश्वनाथमंगलस्तोत्रम्

गङ्गाधरं शशिकिशोरधरं त्रिलोकी रक्षाधरं नितिल-चन्द्रधरं त्रिधारम् ।
 भस्मावधूलनधरं गिरिराजकन्या- दिव्यावलोकनधरं वरदं प्रपद्ये ॥१॥
 काशीश्वरं सकल-भक्त-जनार्तिहारं विश्वेश्वरं प्रणतपालन-भव्यभारम् ।
 रामेश्वरं विजयदान-विधानधीरं गौरीश्वरं वरदहस्तधरं नमामः ॥२॥
 गङ्गोत्तमाङ्गकलितं ललितं विशालं तन् मङ्गलं गरलनीलगलं ललामम् ।
 श्रीमुण्डमाल्य-वलयोज्ज्वल-मञ्जुलीलं लक्ष्मीश्वरार्चित-पदाम्बुजमाभजामः ॥३॥
 दारिद्र्य-दुःखदहनं कमनं सुराणां दीनार्ति-दावदहनं दमनं रिपूणाम् ।
 दानं श्रियां प्रणमनं भुवनाधिपानां मानं सतां वृषभवाहनमामनामः ॥४॥
 श्रीकृष्णचन्द्रशरणं रमणं भवान्याः शश्वत्प्रपन्नभरणं धरणं धरायाः ।
 संसार-भार-हरणं करुणं वरेण्यं सन्ताप-तापकरणं करवै शरण्यम् ॥५॥
 चण्डी-पिचण्डिल-वितुण्ड-धृताभिषेकं श्रीकार्तिकेय-कलनृत्यकलावलोकम् ।
 नन्दीश्वरास्य-वरवाद्य-महोत्सवाढ्यं सोल्लस-हास-गिरिजं गिरिशन्तमीडे ॥६॥
 श्रीमोहिनी-निबिड-रागभरोपगूढं योगेश्वरेश्वर-हृदम्बुज-वासरासम् ।
 सम्मोहनं गिरिसुताञ्जित-चन्द्रचूडम् श्रीविश्वनाथमधिनाथमुपैमि नित्यम् ॥७॥
 आपद् विनश्यति समृध्यति सर्वसम्पद् विजाः प्रयान्ति विलयं शुभमभ्युदेति ।
 योग्याङ्गनामिरतुलोत्तमपुत्रलाभो विश्वेश्वरस्तवमिमं पठतो जनस्य ॥८॥
 वन्दी विमुक्तिमधिगच्छति तूर्णमेति स्वास्थ्यं रुजार्दित उपैति गृहं प्रवासी ।
 विद्या यशो विजय इष्ट-समस्त-लाभः सम्पद्यतेऽस्य पठनात् स्तवनस्य सर्वम् ॥९॥

कन्या वरं सुलभते पठनादमुष्य स्तोत्रस्य धान्य-धनवृद्धि-सुखं समिच्छन् ।
 किं च प्रसीदति विभुः परमो दयालुः श्रीविश्वनाथ इह संभजतोऽस्य साम्ब ॥१०॥
 काशीपीठाधिनाथेन शङ्कराचार्यभिक्षुणा । महेश्वरेण ग्रथिता स्तोत्र-माला शिवार्पिता ॥११॥

॥ इति श्रीविश्वनाथमंगलस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४१॥

42. शिवनामावल्याष्टकम्

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे स्थाणो गिरीशगिरिजेश महेश शम्भो ।
 भूतेश भीतभयसूदन मामनाथं संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥१॥
 हे पार्वती-हृदय-वल्लभ चन्द्रमौले भूताधिप प्रमथनाथ गिरीशजाप ।
 हे वामदेव भव रुद्र पिनाकपाणे संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥२॥
 हे नीलकण्ठ वृषभध्वज पञ्चवक्त्र लोकेश शेषवलयं प्रमथेश शर्व ।
 हे धूर्जटे पशुपते गिरिजापते मां संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥३॥
 हे विश्वनाथ शिव शङ्कर देवदेव गङ्गाधर प्रमथनायक नन्दिकेश ।
 विश्वेश्वरान्धकरिपो हरलोकनाथ संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥४॥
 वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश वीरेश दक्षमखकाल विभो गणेश ।
 सर्वज्ञ सर्वहृदयैकनिवास नाथ संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥५॥
 श्रीमन् महेश्वर कृपामय हे दयालो हे व्योमकेशशितिकण्ठगणाधिनाथ ।
 भस्माङ्गरागनृकपाल-कलापमाल संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥६॥
 कैलास-शैल-विनिवास वृषाकपे हे मृत्युञ्जय त्रिनयन त्रिजगन्निवास ।
 नारायण प्रिय मदापह शक्तिनाथ संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥७॥
 विश्वेश विश्वभव-नाशित-विश्वरूप विश्वात्मक त्रिभुवनैक-गुणाभिवेश ।
 हे विश्वबन्धु करुणामय दीनबन्धो संसार-दुःख-गहनाज्जगदीश रक्ष ॥८॥
 गौरीविलासभुवनाय महेश्वराय पञ्चाननाय शरणागतरक्षकाय ।
 शर्वाय सर्वजगतामधिपाय तस्मै दारिद्र्य-दुःखदहनाय नमः शिवाय ॥९॥

॥ इति शिवनामावल्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥४२॥

43. चन्द्रशेखराष्टकस्तोत्रम्

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम् ।

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥१॥

रत्नसानु-शरासनं रजतादि-शृङ्गनिकेतनं सिञ्जिनीकृत-पद्मगेश्वरमच्युतानन-सायकम् ।
क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥२॥
पञ्चपादप-पुष्पगन्ध-पदाम्बुजद्वय-शोभितं भाललोचन-जातपावक-दग्धमन्मथ-विग्रहम् ।
भस्मदिग्ध-कलेवरं भव-नाशनं भवमव्ययं चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥३॥
मत्तवारण-मुख्यचर्मकृतोत्तरीय-मनोहरं पङ्कजासन-पद्मलोचन-पूजिताङ्घ्रि-सरोरुहम् ।
देवसिन्धुतरङ्गसीकर-सिक्त-शुभ्रजटाधरं चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥४॥
यक्ष-राजसखं भगाक्षहरं भुजङ्ग-विभूषणं शैल-राजसुता-परिष्कृत-चारुवाम-कलेवरम् ।
क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥५॥
कुण्डलीकृत-कुण्डलेश्वर-कुण्डलं वृषवाहनं नारदादि-मुनीश्वर-स्तुत-वैभवं भुवनेश्वरम् ।
अन्धकान्तक-माश्रिता-ऽमरपादपं शमनान्तकं चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥६॥
भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचम् ।
भुक्ति-मुक्ति-फलप्रदं सकलाघसङ्घनिर्बहणं चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥७॥
भक्तवत्सलमर्चितं निधिमक्षयं हरिदम्बरं सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनुत्तमम् ।
सोमवारिद-भूताशन-सोमपा-निलखाकृतिं चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥८॥
विश्वसृष्टि-विधायिनं पुनरेव पालनतत्परं संहरन्तमपि प्रपञ्चमशेषलोक-निवासिनम् ।
क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथ-समन्वितं चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥९॥
मृत्युभीत-मृकण्डसूनुकृतस्तवं शिवसन्निधौ यत्र कुत्र च यः पठेन्न हि तस्य मृत्युभयं भवेत् ।
पूर्णमायु रोगितामखिलार्थसम्पदमादरं चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः ॥१०॥

॥ इति श्रीचन्द्रशेखराष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४३॥

44. प्रदोषस्तोत्राष्टकम्

सत्यं	ब्रवीमि	परलोकहितं	ब्रवीमि
सारं	ब्रवीम्युपनिषद्	हृदयं	ब्रवीमि ।
संसारमुल्बणमसारमवाप्य		जन्तोः	
सारोऽयमीश्वरपदाम्बुरुहस्य		सेवा ॥१॥	

ये नाऽर्चयन्ति गिरिशौ समये प्रदोषे
 ये नाऽर्चितं शिवमपि प्रणमन्ति चाऽन्ये ।
 एतत् कथां श्रुतिपुटैर्न पिबन्ति मूढा-
 स्ते जन्म-जन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः ॥२॥
 ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य
 कुर्वन्त्यनन्य-मनसोऽङ्घ्रि-सरोजपूजाम् ।
 नित्यं प्रवृद्ध-धन-धान्य-कलत्र-पुत्र-
 सौभाग्य-सम्पदधिकास्त इहैव लोके ॥३॥
 कैलाशशैलभुवने त्रिजगज्जनित्रीं
 गौरीं निवेश्य कनकार्चितरत्नपीठे ।
 नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
 देवाः प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे ॥४॥
 वाग्देवी धृतवल्लकी शतमुखो वेणुं दधत् पद्मज-
 स्तालोन्निद्रकरो रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता ।
 विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवा समन्तात् स्थिताः
 सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम् ॥५॥
 गन्धर्व-यक्ष-पतंगोरग-सिद्ध-साध्य-
 विद्याधरा-ऽमरवराप्सरसां गणांश्च ।
 येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सहभूतवर्गाः
 प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः ॥६॥
 अतः प्रदोषे शिव एक एव
 पूज्योऽथ नाऽन्ये हरिपद्मजाद्याः ।
 तस्मिन् महेशे विधिनेज्यमाने
 सर्वे प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः ॥७॥
 एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः ।
 प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न दानाद्यैः सुकर्मभिः ॥८॥
 अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ।
 तद्दोषपरिहारार्थं शरणं यातु शङ्करम् ॥९॥

॥ इति प्रदोषस्तोत्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥४४॥

45. पशुपत्यष्टकम्

पशुपतीन्दुपतिं धरणीपतिं भुजगलोकपतिं च सतीपतिम् ।
 प्रणत-भक्त जनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥१॥
 न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम् ।
 अवति कोऽपि नकालवशं गतं भजतरे मनुजा गिरिजापतिम् ॥२॥
 मुरज-डिण्डिम-वाद्य-विलक्षणं मधुर-पञ्चमनाद-विशारदम् ।
 प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥३॥
 शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम् ।
 अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥४॥
 नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् ।
 चितिरजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥५॥
 मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजिफलप्रदम् ।
 प्रलयदग्ध-सुराऽसुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥६॥
 मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरण-जन्म-जरा-भय-पीडितम् ।
 जगदुदीक्ष्यं समीपभयाकुलं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥७॥
 हरिविरञ्चि-सुराधिप-पूजितं यमजनेश-धनेश-नमस्कृतम् ।
 त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥८॥
 पशुपतेरिदमष्टकमद्भुतं विरचितं पृथिवीपतिसूरिणा ।
 पठति संश्रृणुते मनुजः सदा शिवपुरीं वसते लभते मुदम् ॥९॥

॥ इति पशुपत्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥४५॥

46. श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम् ।
 अजं निगुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥१॥
 निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम् ।
 करालं महाकालकालं कृपालं गुणागारसंसारपारं नतोऽहम् ॥२॥
 तुषाराद्रिसङ्काशगौरं गभीरं मनोभूतकोटिप्रभाश्री शरीरम् ।
 स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारुगंगा लसद्बालबालेन्दु कण्ठे भुजङ्गा ॥३॥

चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालं प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुम् ।
 मृगाधीश चर्माम्बरं मुण्डमालं प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि ॥४॥
 प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशमखंडं भजे भानुकोटिप्रकाशम् ।
 त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिं भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ॥५॥
 कलातीत-कल्याणकल्पान्तकारी सदा सज्जनानन्ददाता पुरारिः ।
 चिदानन्दसन्दोहमोहापहारी प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारिः ॥६॥
 न यावदुमानाथपादारविन्दं भजन्तीह लोके परे वा नाराणाम् ।
 न तावत्सुखं शान्तिसन्तापनाशं प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवास ॥७॥
 न जानामि योगं जपं नैव पूजां नतोऽहं सदा सर्वदा देव तुभ्यम् ।
 जराजन्मदुःखौघतातप्यमानं प्रभो पाहि शापान्नमामीश शम्भो ॥८॥
 रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये ।
 ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ॥९॥

॥ इति श्रीरुद्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥४६॥

47. लिंगाष्टकम्

ब्रह्ममुरारि-सुरार्चितलिङ्गं निर्मल-भासित-शोभित-लिङ्गम् ।
 जन्मज-दुःखविनाशक-लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥१॥
 देवमुनि-प्रवरार्चित-लिङ्गं कामदहं करुणाकरलिङ्गम् ।
 रावणदर्प-विनाशन-लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥२॥
 सर्वसुगन्धि-सुलेपितलिङ्गं बुद्धिविवर्धन-कारणलिङ्गम् ।
 सिद्ध-सुरा-ऽसुरवन्दितलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥३॥
 कनक-महामणि-भूषितलिंगं फणिपति-वेष्टित-शोधितलिङ्गम् ।
 दक्षसुयज्ञ-विनाशकलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥४॥
 कुंकुम-चन्दनलेपितलिंगं पङ्कजहार-सुशोभितलिङ्गम् ।
 सञ्चित-पाप-विनाशनलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥५॥
 देवगणार्चित-सेवितलिंगं भावैर्भक्तिभिरेव च लिङ्गम् ।
 दिनकरकोटि-प्रभाकरलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥६॥
 अष्टदलोपरि वेष्टितलिंगं सर्वसमुद्भव-कारणलिङ्गम् ।
 अष्टदरिद्र-विनाशितलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥७॥

सुरगुरु-सुरवर-पूजितलिंगं सुरवनपुष्प-सदार्चितलिङ्गम् ।
 परात्परं परमात्मकलिंगं तत्प्रणमामि सदाशिव लिङ्गम् ॥८॥
 लिङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
 शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥९॥

॥ इति श्रीलिंगाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४७॥

48. बिल्वाष्टकम्

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम् ।
 त्रिजन्मपाप-संहारमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥१॥
 त्रिशाखैर्बिल्वपत्रैश्च ह्यच्छिद्रः कोमलैः शुभैः ।
 शिवपूजां करिष्यामि ह्येकबिल्वं शिवार्पणम् ॥२॥
 अखण्डबिल्वपत्रेण पूजिते नन्दिकेश्वरे ।
 शुद्धयन्तिसर्वपापेभ्यो ह्येकबिल्वं शिवार्पणम् ॥३॥
 शालिग्रामशिलामेकां विप्राणां जातु अर्पयेत् ।
 सोमयज्ञ-महापुण्यमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥४॥
 दन्तिकोटिसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
 कोटिकन्या-महादानमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥५॥
 लक्ष्म्याः स्तनत उत्पन्नं महादेवस्य च प्रियम् ।
 बिल्ववृक्षं प्रयच्छामि ह्येकबिल्वं शिवार्पणम् ॥६॥
 दर्शनं बिल्ववृक्षस्य स्पर्शनं पापनाशनम् ।
 अघोरपापसंहारमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥७॥
 मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
 अग्रतः शिवरूपाय ह्येकबिल्वं शिवार्पणम् ॥८॥
 बिल्वाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात् ॥९॥

॥ इति बिल्वाष्टकं सम्पूर्णम् ॥४८॥

49. शङ्कराष्टकम् (1)

शीर्षजटागणभारं गरलाहारं समस्तसंहारम् ।
 कैलासाद्रिविहारं पारं भववारिधेरहं वन्दे ॥१॥
 चन्द्रकलोज्ज्वलभालं कण्ठव्यालं जगत्त्रयीपालम् ।
 कृतनरमस्तकमालं कालं कालस्य कोमलं वन्दे ॥२॥
 कोपेक्षण-हतकामं स्वात्मारामं नगेन्द्रजावामम् ।
 संसृतिशोक-विरामं श्यामं कण्ठेन कारणं वन्दे ॥३॥
 कटितट-विलसित-नागं खण्डितयागं महाद्भुतत्यागम् ।
 विगतविषयरसरागं भागं यज्ञेषु बिभ्रतं वन्दे ॥४॥
 त्रिपुरादिक-दनुजान्तं गिरिजाकान्तं सदैव संशान्तम् ।
 लीलाविजित-कृतान्तं भान्तं स्वान्तेषु देहिनां वन्दे ॥५॥
 सुरसरिदाप्लुतकेशं त्रिदशकुलेशं हृदालयावेशम् ।
 विगताशेषक्लेशं देशं सर्वेष्टसम्पदां वन्दे ॥६॥
 करतल-कलितपिनाकं विगतजराकं सुकर्मणां पाकम् ।
 परपदवीतवराकं नाकमपूगवन्दितं वन्दे ॥७॥
 भूति-विभूषित-कायं दुस्तरमायं विवर्जितापायम् ।
 प्रथमसमूहसहायं सायंप्राप्तनिर्नन्तरं वन्दे ॥८॥
 यस्तु पदाष्टकमेतद् ब्रह्मानन्देन निर्मितं नित्यम् ।
 पठति समाहितचेताः प्राप्नोत्यन्ते स शैवमेव पदम् ॥९॥

॥ इति शङ्कराष्टकं सम्पूर्णम् ॥४९॥

50. शङ्कराष्टकम् (2)

हे वामदेव शिवशङ्कर दीनबन्धो काशीपते पशुपते पशुपाशनाशिन् ।
 हे विश्वनाथ भवबीज जनार्तिहारिन् संसार-दुःख गहनाज्जगदीश रक्ष ॥१॥
 हे भक्तवत्सल सदाशिव हे महेश हे विश्वतात जगदाश्रय हे पुरारे ।
 गौरीपते मम पते मम प्राणनाथ संसार-दुःख गहनाज्जगदीश रक्ष ॥२॥
 हे दुःख-भञ्जकविभो गिरिजेशशूलिन् हे वेदशास्त्रविनिवेद्य जनैकबन्धो ।
 हे व्योमकेश भुवनेश जगद्-विशिष्ट संसार-दुःख गहनाज्जगदीश रक्ष ॥३॥

हे धूर्जटे गिरिश हे गिरिजार्धदेह हे सर्वभूतजनक प्रथमेश देव ।
 हे सर्वदेव-परिपूजित-पादपद्म संसार-दुःख गहनाज्जगदीश रक्ष ॥४॥
 हे देवदेव वृषभध्वज नन्दिकेश काशीपते गणपते गजचर्मवास ।
 हे पार्वतीश परमेश्वर रक्ष शम्भो संसारदुःखगहनाद् दहनाच्चशश्वत् ॥५॥
 हे वीरभद्र भववैद्य पिनाकपाणे हे नीलकण्ठमदनान्त शिवाकलत्र ।
 वाराणसीपुरपते भवभीतिहारिन् संसार-दुःख गहनाज्जगदीश रक्ष ॥६॥
 हे कालकाल मृड शर्व सदासहाय हे भूतनाथ भवबाधक हे त्रिनेत्र ।
 ये यज्ञशासक यमान्तक योगि-वन्द्य संसार-दुःख गहनाज्जगदीश रक्ष ॥७॥
 हे वेदवेद्य शशिशेखर हे दयालो हे सर्वभूतप्रतिपालक शूलपाणे ।
 हे चन्द्रसूर्य शिखिनेत्र चिदेकरूप संसार-दुःख गहनाज्जगदीश रक्ष ॥८॥

श्रीशङ्कराष्टकमिदं योगानन्देन निर्मितम् ।

सायं प्रातः पठेन्नित्यं सर्वपापविनाशकम् ॥९॥

॥ इति शङ्कराष्टकं सम्पूर्णम् ॥५०॥

51. महादेवाष्टकम्

शिवं शान्तं शुद्धं प्रकटमकलङ्कं श्रुतिनुतं
 महेशानं शम्भु सकल-सुर-संसेव्यचरणम् ।
 गिरीशं गौरीशं भवभयहरं निष्कलमजं
 महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥१॥
 सदा सेव्यं भक्तेर्हृदि हृदि वसन्तं गिरिशय-
 मुमाकान्तं क्षान्तं करधृतपिनाकं भ्रमहरम् ।
 त्रिनेत्रं पञ्चास्यं दशभुजमनन्तं शशिधरं
 महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥२॥
 चिताभस्मालिप्तं भुजग-मुकुटं विश्वसुखदं
 धनाध्यक्षस्याङ्गं त्रिपुरवधकर्तारमनघम् ।
 करोटीखट्वाङ्गे ह्य रसि च दधानं सृतिहरं
 महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥३॥
 सदोत्साहं गङ्गाधरमचलमानन्दकरणं
 पुरारातिं भात रतिपतिहरं दीप्तवदनम् ।

जटाजूटैर्जुष्टं रसमुख-गणेशानपितरं
 महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥४॥
 वसन्तं कैलासे सुरमुनिसभायां हि नितरां
 ब्रुवाणं सद्धर्मं निखिलमनुजानन्दजनकम् ।
 महेशानी साक्षात् सनकमुनि-देवर्षिसहिता
 महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥५॥
 शिवां स्वे वामाङ्गे गुहगणपतिं दक्षिणभुजे
 गले कालं व्यालं जलधिगरलं कण्ठविवरे ।
 ललाटे श्वेतेन्दु जगदपि दधानं च जठरे
 महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥६॥
 सुराणां दैत्यानां बहुलमनुजानां बहुविधं
 तपःकुर्वाणानां झटिति फलदातारमखिलम् ।
 सुरेशं विद्येशं जलनिधिसुताकान्तहृदयं
 महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥७॥
 वसानं वैयाघ्रीं मृदुलललितां कृत्तिमजरां
 वृषारूढं सृष्ट्यादिषु कमलजाद्यात्मवपुषम् ।
 अतर्क्यं निर्मायं तदपि फलदं भक्तसुखदं
 महादेवं वन्दे प्रणतजनतापोपशमनम् ॥८॥
 इदं स्तोत्रं शम्भोर्दुरितदलनं धान्यधनदं
 हृदि ध्यात्वा शम्भुं तदनु रघुनाथेन रचितम् ।
 नरः सायं प्रातः पठति नियतं तस्य विपदः ।
 क्षयं यान्ति स्वर्गं व्रजति सहसा सोऽपि मुदितः ॥९॥

॥ इति महादेवाष्टकं समाप्तम् ॥५१॥

52. विश्वनाथाष्टकम्

गङ्गातरङ्ग-रमणीय-जटाकलापं गौरीनिरन्तर-विभूषित-वामभागम् ।
 नारायणप्रियमनङ्गमदापहारं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥१॥
 वाचामगोचरमनेकगुणस्वरूपं वागीश-विष्णु-सुरसेवित-पादपीठम् ।
 वामेन विग्रहवरेण कलत्रवन्तं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥२॥

भूताधिपं भुजग-भूषण-भूषितांगं व्याघ्राजिनाम्बरधरं जटिलं त्रिनेत्रम् ।
 पाशाङ्कशा-भयवरप्रद-शूलपाणिं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥३॥
 शीतांशु-शोभित-किरीट-विराजमानं भालेक्षणानल-विशोषित-पञ्चबाणम् ।
 नागाधिपा-रचित-भासुरकर्णपूरं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥४॥
 पञ्चाननं दुरितमत्त-मतंगजानां नागान्तकं दनुजपुंगव-पन्नगानाम् ।
 दावानलं मरण-शोक-जराटवीनां वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥५॥
 तेजोमयं सगुण-निर्गुणमद्वितीय मानन्दकन्दमपराजितमप्रमेयम् ।
 नागात्मकं सकल-निष्कलमात्मरूपं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥६॥
 आशां विहाय परिहृत्य परस्य निन्दां पापे मतिं च सुनिवार्य मनः समाधौ ।
 आदाय हृत्कमलमध्यगतं परेशं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥७॥
 रागादिदोषरहितं स्वजनानुरागं वैराग्यशान्तिनिलयं गिरिजासहायम् ।
 माधुर्य-धैर्य-सुभगं गरलाभिरामं वाराणसीपुरपतिं भज विश्वनाथम् ॥८॥
 वाराणसीपुरपतेः स्तवनं शिवस्य व्याख्यातमष्टकमिदं पठते मनुष्यः ।
 विद्यां श्रियं विपुल-सौख्यमनन्तकीर्तिं सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥९॥

विश्वनाथाष्टकमिदं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।

शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥१०॥

॥ इति विश्वनाथाष्टकं सम्पूर्णम् ॥५२॥

53. विश्वनाथाष्टकस्तोत्रम्

आदिशम्भु-स्वरूप-मुनिवर-चन्द्रशीश-जटाधरं
 मुण्डमाल-विशाललोचन-वाहनं वृषभध्वजम् ।
 नागचन्द्र-त्रिशूलडमरू भस्म-अंगविभूषणम्
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥१॥
 गङ्गसङ्ग-उमाङ्गवामे-कामदेव-सुसेवितं
 नादबिन्दुज-योगसाधन-पञ्चवक्त्रत्रिलोचनम् ।
 इन्दु-बिन्दुविराज-शशिधर-शङ्करं सुरवन्दितं
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥२॥

ज्योतिलिंग-स्फुलिंगफणिमणि-दिव्यदेवसुसेवितं
 मालतीसुर-पुष्पमाला-कञ्ज-धूप-निवेदितम् ।
 अनलकुम्भ-सुकुम्भझलकत-कलशकञ्चनशोभितं
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥३॥
 मुकुटक्रीट-सुकनककुण्डलरञ्जितं मुनिमण्डितं
 हारमुक्ता-कनकसूत्रित-सुन्दरं सुविशेषितम् ।
 गन्धमादन-शैल-आसन-दिव्यज्योतिप्रकाशनं
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥४॥
 मेघडम्बरछत्रधारन-चरनकमल-विलासितं
 पुष्परथ-परमदनमूरति-गौरिसङ्गसदाशिवम् ।
 क्षेत्रपाल-कपाल-भैरव-कुसुम-नवग्रहभूषितं
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥५॥
 त्रिपुरदैत्य-विनाशकारक-शङ्करं फलदायकं
 रावणादृशकमलमस्तक-पूजितं वरदायकम् ।
 कोटिमन्मथमथन-विषधर-हारभूषण-भूषितं
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥६॥
 मथितजलधिज-शेषविलगित-कालकूटविशोषणं
 ज्योतिविगलितदीपनयन-त्रिनेत्रशम्भु-सुरेश्वरम् ।
 महादेवसुदेव-सुरपतिसेव्य-देवविश्वम्भरं
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥७॥
 रुद्ररूपभयङ्करं कृतभूरिपान-हलाहलं
 गगनवेधित-विश्वमूल-त्रिशूलकरधर-शङ्करम् ।
 कामकुञ्जर-मानमर्दन-महाकाल-विश्वेश्वरं
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥८॥
 ऋतुवसन्तविलास-चहुँदिशि दीप्यते फलदायकं
 दीव्यकाशिकधामवासी-मनुजमंगलदायकम् ।
 अम्बिकातट-वैद्यनाथं शैलशिखरमहेश्वरम् ।
 श्रीनीलकण्ठ-हिमाद्रिजलधर-विश्वनाथविश्वेश्वरम् ॥९॥

शिवस्तोत्र-प्रतिदिन-ध्यानधर-आनन्दमय-प्रतिपादितं
 धन-धान्य-सम्पत्ति-गृहविलासित-विश्वनाथ-प्रसादजम् ।
 हर-धाम-चिरगण-संगशोभित-भक्तवर-प्रियमण्डितं
 आनन्दवन-आनन्दछवि-आनन्द-कन्द-विभूषितम् ॥१०॥

॥ इति विश्वनाथाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ १५३ ॥

54. विश्वनाथस्तवः

भवानीकलत्रं हरं शूलपाणिं शरण्यं शिवं सर्पहारं गिरीशम् ।
 अज्ञानान्तकं भक्तविज्ञानदं ते भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥१॥
 अजं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं गुणज्ञं दयाज्ञानसिन्धुं प्रभुं प्राणनाथम् ।
 विभुं भावगम्यं भवं नीलकण्ठं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥२॥
 चिताभस्मभूषार्चिताभासुराङ्गं श्मशानालयं त्र्यम्बकं मुण्डमालम् ।
 कराभ्यां दधानं त्रिशूलं कपालं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥३॥
 अघघ्नं महाभैरवं भीमद्रष्टुं निरीहं तुषाराचलाभागगौरम् ।
 गजारिं गिरौ संस्थितं चन्द्रचूडं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥४॥
 विधुं भालदेशे विभातं दधानं भुजङ्गेशसेव्यं पुरारिं महेशम् ।
 शिवासंगृहीतार्द्धं देहं प्रसन्नं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥५॥
 भवानीपतिं श्रीजगन्नाथनाथं गणेशं गृहीतं बलीवर्दयानम् ।
 सदा विघ्नविच्छेदहेतुं कृपालुं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥६॥
 अगम्यं नटं योगिभिर्दण्डपाणिं प्रसन्नाननं व्योमकेशं भयञ्जम् ।
 स्तुतं ब्रह्ममायादिभिः पादकुञ्जं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥७॥
 मृडं योगमुद्राकृतं ध्याननिष्ठं धृतं नागयज्ञोपवीतं त्रिपुण्ड्रम् ।
 ददानं पदाम्भोजनम्राय कामं भजेऽहं मनोऽभीष्टदं विश्वनाथम् ॥८॥
 मृडस्य स्वयं यः प्रभाते पठेन्ना हृदिस्थः शिवस्तस्य नित्यं प्रसन्नः ।
 चिरस्थं धनं मित्रवर्गं कलत्रं सुपुत्रं मनोऽभीष्टमोक्षं ददाति ॥९॥
 योगीशमिश्रमुखपङ्कजनिर्गतं यो विश्वेश्वराष्टकमिदं पठति प्रभाते ।
 आसाद्यशङ्करपदाम्बुजयुग्मभक्तिं भुक्त्वा समृद्धिमिहयाति शिवान्तिकेऽन्ते ॥१०॥

॥ इति विश्वनाथस्तवः समाप्तः ॥ १५४ ॥

55. श्रीकाशीविश्वनाथस्तोत्रम्

कण्ठे यस्य लसत्करालगरलं गंगाजलं मस्तके
 वामांगे गिरिराजराजतनया जाया भवानी सती ।
 नन्दिस्कन्दगणाधिराज-सहिता श्रीविश्वनाथप्रभुः
 काशीमन्दिरसंस्थितोऽखिलगुरुर्देयात् सदा मंगलम् ॥१॥
 यो देवैरसुरैर्मुनीन्द्रतनयैर्गन्धर्वयक्षोरगै-
 नांगैर्भूतलवासिभिर्द्विजवरैः संसेवितः सिद्ध्ये ।
 या गङ्गोत्तरवाहिनी परिसरे तीर्थैरसंख्यैर्वृता
 सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी देयात् सदा मंगलम् ॥२॥
 तीर्थानां प्रवरा मनोरथकरी संसारपारापरा-
 नन्दा नन्दिगणेश्वरैरुपहिता देवैरशेषैः स्तुता ।
 या शम्भोर्मणिकुण्डलैकणिका विष्णोस्तपोदीर्घिका
 सेयं श्रीमणिकर्णिका भगवती देयात् सदा मंगलम् ॥३॥
 एषा धर्मपताकिनी तटरुहासेवावसन्नाकिनी
 पश्यन् पातकिनी भगीरथतपःसाफल्यदेवाकिनी ।
 प्रेमारूढपताकिनी गिरिसुता सा केकरास्वाकिनी
 काश्यामुत्तरवाहिनी सुरनदी देयात् सदा मंगलम् ॥४॥
 विघ्नावास-निवास-कारणमहा-गण्डस्थलालम्बितः
 सिन्दूरारुणपुञ्जचन्द्रकिरण-प्रच्छादिनागच्छविः ।
 श्रीविश्वेश्वरवल्लभो गिरिजया सानन्दकानन्दितः
 स्मेरास्यस्तव दुण्ढिराजमुदितो देयात् सदा मंगलम् ॥५॥
 केदारः कलशेश्वरः पशुपतिधर्मेश्वरो मध्यमो
 ज्येष्ठेशो पशुपश्च कन्दुकशिवो विघ्नेश्वरो जम्बुकः ।
 चन्द्रेशो ह्यमृतेश्वरो भृगुशिवः श्रीवृद्धकालेश्वरो
 मध्येशो मणिकर्णिकेश्वरशिवो देयात् सदा मंगलम् ॥६॥
 गोकर्णस्त्वथ भारभूतनुदनः श्रीचित्रगुप्तेश्वरो
 यक्षेशस्तिलपर्णसङ्गमशिवो शैलेश्वरः कश्यपः ।
 नागेशोऽग्निशिवो निधीश्वरशिवोऽगस्तीश्वरस्तारक-
 ज्ञानेशोऽपि पितामहेश्वरशिवो देयात् सदा मंगलम् ॥७॥

ब्रह्माण्डं सकलं मनोषितरसै रत्नैः पयोभिर्हरं
 खेलैः पूरयते कुटुम्बनिलयान् शम्भोर्विलासप्रदा ।
 नानादिव्यलताविभूषितवपुः काशीपुराधीश्वरी
 श्रीविश्वेश्वरसुन्दरी भगवती देयात् सदा मंगलम् ॥८॥
 या देवी महिषासुरप्रमथनी या चण्डमुण्डापहा
 या शुम्भासुररक्तबीजदमनी शक्रादिभिः संस्तुता ।
 या शूलासिधनुः शराभयकरा दुर्गादिसंदक्षिणा-
 माश्रित्याश्रित-विघ्नशं समयतु देयात् सदा मंगलम् ॥९॥
 आद्या श्रीर्विकटा ततस्तु विरजा श्रीमङ्गला पार्वती
 विख्याता कमला विशालनयना ज्येष्ठा विशिष्टानना ।
 कामाक्षी च हरिप्रिया भगवती श्रीघण्टघण्टादिका
 मौर्या षष्टिसहस्रमातृसहिता देयात् सदा मंगलम् ॥१०॥
 आदौ पञ्चनदं प्रयागमपरं केदारकुण्डं कुरु-
 क्षेत्रं मानसकं सरोऽमृतजलं शावस्य तीर्थं परम् ।
 मत्स्योदर्यथ दण्डखाण्डसलिलं मन्दाकिनी जम्बुकं
 घण्टाकर्ण-समुद्रकूपसहितो देयात् सदा मंगलम् ॥११॥
 रेवाकुण्डजलं सरस्वतिजलं दुर्वासकुण्डं ततो
 लक्ष्मीतीर्थलवाङ्कुशस्य सलिलं कन्दर्पकुण्डं तथा ।
 दुर्गाकुण्डमसीजलं हनुमतः कुण्टप्रतापोर्जितः
 प्रज्ञानप्रमुखानि वः प्रतिदिनं देयात् सदा मङ्गलम् ॥१२॥
 आद्यः कूपवरस्तु कालदमनः श्रीवृद्धकूपोऽपरो
 विख्यातस्तु पराशरस्तु विदितः कूपः सरो मानसः ।
 जैगीषव्यमुनेः शशाङ्कनृपतेः कूपस्तु धर्मोद्भवः
 ख्यातः सप्तसमुद्रकूपसहितो देयात् सदा मङ्गलम् ॥१३॥
 लक्ष्मीनायक-बिन्दुमाधव-हरिर्लक्ष्मीनृसिंहस्ततो
 गोविन्दस्त्वथ गोपिकाप्रियतमः श्रीनारदः केशवः ।
 गङ्गाकेशव-वामनाख्यतदनु श्वेतो हरिः केशवः
 प्रह्लादादि-समस्तकेशवगणो देयात् सदा मंगलम् ॥१४॥
 लोलाकौ विमलार्कमायुखरविः संवर्तसंज्ञो रवि-
 विख्यातो द्रुपदुःखखोल्कमरुणः प्रोक्तोत्तराकौ रविः ।

गंगार्कस्त्वथ वृद्धवृद्धिविबुधा काशीपुरीसंस्थिताः

सूर्या द्वादशसंज्ञकाः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥१५॥

आद्यो दुण्ढिविनायको गणपतिश्चिन्तामणिः सिद्धिदः

श्येनाविघ्नपतिस्तु वक्रवदनः श्रीपाशपाणिः प्रभुः ।

आशापक्षविनायकाप्रषकरो मोदादिकः षड्गुणो

लोलाकारादिविनायकाः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥१६॥

हेरम्बो नलकूबरो गणपतिः श्रीभीमचण्डीगणो

विख्यातो मणिकर्णिकागणपतिः श्रीसिद्धिदो विघ्नपः ।

मुण्डश्चण्डमुखश्च कष्टहरणः श्रीदण्डहस्तो गणः

श्रीदुर्गाख्यगणाधिपः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥१७॥

आद्यो भैरवभीषणस्तदपः श्रीकालराजः क्रमा-

च्छ्रीसंहारकभैरवस्त्वथ रुरुश्रोन्मत्तको भैरवः ।

क्रोधश्चण्डकपालभैरववरः श्रीभूतनाथादयो

ह्यष्टौ भैरवमूर्तयः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥१८॥

आयातोऽम्बिकया सह त्रिनयनः सार्धं गणैर्नन्दितां

काशीमाशुविशन् हरः प्रथमतो वार्षध्वजेऽवस्थितः

आयाता दश धेनवः सुकपिला दिव्यैः पयोभिर्हरं

ख्यातं तद्वृषभध्वजेन कपिलं देयात् सदा मंगलम् ॥१९॥

आनन्दाख्यवनं हि चम्पकवनं श्रीनैमिषं खाण्डवं

पुण्यं चैत्ररथं त्वशोकविपिनं रम्भावनं पावनम् ।

दुर्गारण्यमथोऽपि कैरववनं वृन्दावनं पावनं

विख्यातानि वनानि वः प्रतिदिनं देयात् सदा मंगलम् ॥२०॥

अलिकुलदलनीलः कालदंष्ट्राकरालः सजलजलदनीलो व्यालयज्ञोपवीतः ।

अभयवरदहस्तो डामरोद्दामनादः सकलदुरितभक्षो मंगलं वो ददातु ॥२१॥

अर्धांगे विकटा गिरीन्द्रतनयो गौरी सती सुन्दरी

सर्वांगे विलसद्विभूतिधवलः कालो विशालेक्षणः ।

वीरेशः सहनन्दिभृंगिसहितः श्रीविश्वनाथः प्रभुः

काशीमन्दिरसंस्थितोऽखिलगुरुर्देयात् सदा मंगलम् ॥२२॥

यः प्रातः प्रयतः प्रसन्नमनसा प्रेमप्रमोदाकुलः
 ख्यातं तत्र विशिष्टपादभुवनेशेन्द्रादिभिर्यत् स्तुतम्।
 प्रातः प्राङ्मुखमासानोत्तमगतो ब्रूयाच्छ्रणोत्पादरात्
 काशीवासमुखान्यवाप्य सततं प्रीते शिवे धूर्जटिः ॥२३॥

॥ इति काशीविश्वनाथस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥५५॥

56. विश्वनाथनगरीस्तोत्रम्

यत्र देवपतिदेहिनां मुक्तिरेव भवतीति निश्चितम्।
 पूर्वपुण्यनिचयेन लभ्यते विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥१॥
 स्वर्गतः सुखकरी दिवौकसां शैलराजनयाऽतिवल्लभा।
 ढुण्ढि-भैरव-विदारितविघ्ना विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥२॥
 यत्र तीर्थमलं मणिकर्णिका सा सदाशिवसुखप्रदायिनी।
 या शिवेन रचिता निजायुधैर्विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥३॥
 सर्वदा अमरवृन्दवन्दिता गजेन्द्रमुखवारितविघ्ना।
 कालभैरवकृतैकशासना विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥४॥
 यत्र मुक्तिरखिलैस्तु जन्तुभिर्लभ्यते मरणमान्नतः शुभा।
 साऽखिलामरगणस्पृहणीया विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥५॥
 उरगं तुरगं खगं मृगं वा करिणं प्रसरिणं खरं नरं वा।
 सकृदाप्लुत एव देवदद्यां लहरी किं न हरं चरीकरीति ॥६॥

॥ इति विश्वनाथनगरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥५६॥

57. शिवाष्टकम् (1)

प्रभुं प्राणनाथं विभु विश्वनाथं जगन्नाथनाथं सदानन्दभाजाम्।
 भवद्भव्यभूतेश्वरं भूतनाथं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥१॥
 गले रुण्डमालं तनौ सर्पजालं महाकालकालं गणेशाधिपालम्।
 जटाजूटभङ्गोत्तरङ्गैर्विशालं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥२॥
 मुदामाकरं मण्डनं मण्डयन्तं महामण्डलं भस्मभूषाधरं तम्।
 अनादिं ह्यपारं महामोहमारं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥३॥

तटाधोनिवासं महाट्टाट्टहासं महापापनाशं सदा सुप्रकाशम् ।
 गिरीशं गणेशं सुरेशं महेशं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥४॥
 गिरीन्द्रात्मजासंगृहीतार्धदेहं गिरौ संस्थितं सर्वदासन्नगेहम्
 परब्रह्म-ब्रह्मादिभिर्वन्द्यमानं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥५॥
 कपालं त्रिशूलं कराभ्यां दधानं पदाम्भोजनम्राय कामं ददानम् ।
 बलीवर्दयानं सुराणां प्रधानं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥६॥
 शरच्चन्द्रगात्रं गुणानन्दमात्रं त्रिनेत्रं पवित्रं धनेशस्य मित्रम् ।
 अपर्णाकलत्रं चरित्रं विचित्रं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥७॥
 हरं सर्पहारं चिताभूविहारं भवं वेदसारं सदा निर्विकारम् ।
 श्मशाने वसन्तं मनोजं दहन्तं शिवं शङ्करं शम्भुमीशानमीडे ॥८॥
 स्तवं यः प्रभाते नरः शूलपाणेः पठेत् सर्वदा भर्गभावानुरक्तः ।
 स पुत्रं धनं धान्यमित्रं कलत्रं विचित्रः समासाद्य मोक्षं प्रयाति ॥९॥

॥ इति शिवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥५७॥

58. शिवाष्टकम् (2)

तस्मै नमः परमकारणकारणाय दीप्तोज्ज्वलज्ज्वलितपिङ्गललोचनाय ।
 नागेन्द्रहारकृतकुण्डलभूषणाय ब्रह्मेन्द्रविष्णुवरदाय नमः शिवाय ॥१॥
 श्रीमत्प्रसन्नशशिपन्नगभूषणाय शैलेन्द्रजावदनचुम्बितलोचनाय ।
 कैलाशमन्दरमहेन्द्रनिकेतनाय लोकत्रयार्तिहरणाय नमः शिवाय ॥२॥
 पद्मावदातमणिकुण्डलगोवृषाय कृष्णागरुप्रचुरचन्दनचर्चिताय ।
 भस्मानुषक्तविक्चोत्पलमल्लिकाय नीलाब्जकण्ठसदृशाय नमः शिवाय ॥३॥
 लम्बत्सपिङ्गलजटामुकुटोत्कटाय दंष्ट्रकरालविकटोत्कटभैरवाय ।
 व्याघ्राजिनाम्बरधराय मनोहराय त्रैलोक्यनाथमिताय नमः शिवाय ॥४॥
 दक्षप्रजापतिमहामखनाशनाय क्षिप्रं महात्रिपुरदानवघातनाय ।
 ब्रह्मोर्जितोर्ध्वगकरोटिनिकृन्तनाय योगाय योगनमिताय नमः शिवाय ॥५॥
 संसारसृष्टिघटनापरिवर्तनाय रक्षः पिशाचगणसिद्धसमाकुलाय ।
 सिद्धोरगग्रहगणेन्द्रनिषेविताय शार्दूलचर्मवसनाय नमः शिवाय ॥६॥
 भस्माङ्गराग कृतरूपमनोहराय सौम्यावदातवनमाश्रितमाश्रिताय ।
 गौरीकटाक्षनयनार्धनिरीक्षणाय गोक्षीरधारधवलाय नमः शिवाय ॥७॥

आदित्यसमोवरुणानिलसेविताय यज्ञाग्निहोत्रवरधूमनिकेतनाय ।
 ऋक्सामवेदमुनिभिः स्तुतिसंयुताय गोपाय गोपनमिताय नमः शिवाय ॥८॥
 शिवाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
 शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥९॥

॥ इति शिवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥५८॥

59. शिवरामाष्टकम्

शिव हरे शिव राम सखे प्रभो त्रिविधतापनिवारण हे विभो ।
 अज जनेश्वर यादव पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥१॥
 कमललोचन राम दयानिधे हर गुरो गजरक्षक गोपते ।
 शिवतनो भव शङ्कर पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥२॥
 स्वजनरञ्जन मङ्गल-मन्दिरं भजति तं पुरुषं परमं पदम् ।
 भवति तस्य सुखं परमाद्भुतं शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥३॥
 जय युधिष्ठिर-वल्लभ भूपते जय जयाऽर्जितपुण्यपयोनिधे ।
 जय कृपामय कृष्ण नमोऽस्तु ते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥४॥
 भवविमोचन माधव मापते सुकविमानसहंस शिवारते ।
 जनकजारत राघव रक्ष मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥५॥
 अवनिमण्डलमङ्गल मापते जलदसुन्दर राम रमापते ।
 निगम-कीर्ति-गुणार्णव गोपते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥६॥
 पतित-पावन-नाममयी लता तव यशो विमलं परिगीयते ।
 तदपि माधव मां किमुपेक्षसे शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥७॥
 अमरतापरदेव रमापते विजयतस्तव नाम धनोपमम् ।
 मयि कथं करुणार्णव जायते शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥८॥
 हनुमतः प्रिय चापकर प्रभो सुरसरिद्धृतशेखर हे गुरो ।
 मम विभो किमु विस्मरणं कृतं शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥९॥
 नरहरेति परं जनसुन्दरं पठित यः शिवरामकृतस्तवम् ।
 विशति रामरमाचरणाम्बुजे शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥१०॥
 प्रातरुत्थाय यो भक्त्या पठेदेकाग्रमानसः ।
 विजयो जायते तस्य विष्णुसान्निध्यमाप्नुयात् ॥११॥

॥ इति शिवरामाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥५९॥

60. शिवरक्षास्तोत्रम्

अस्य श्रीशिवरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः, श्रीसदाशिवो देवता, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थं शिवरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः ।

चरितं देवदेवस्य महादेवस्य पावनम् ।
 अपारं परमोदारं चतुर्वर्गस्य साधनम् ॥१॥
 गौरीविनायकोपेतं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रकम् ।
 शिवं ध्यात्वा दशभुजं शिवरक्षां पठेन्नरः ॥२॥
 गंगाधरः शिरः पातु भालमर्धेन्दुशेखरः ।
 नयने मदनध्वंसी कर्णौ सर्पविभूषणः ॥३॥
 घ्राणं पातु पुरारातिमुखे पातु जगत्पतिः ।
 जिह्वां वागीश्वरः पातु कन्धरां शितिकन्धरः ॥४॥
 श्रीकण्ठः पातु मे कण्ठं स्कन्धौ विश्वधुरन्धरः ।
 भुजौ भूभारसंहर्ता करौ पातु पिनाकधृक् ॥५॥
 हृदयं शङ्करः पातु जठरं गिरिजापतिः ।
 नाभिं मृत्युञ्जयः पातु कटीं व्याघ्राजिनाम्बरः ॥६॥
 सक्थिनी पातु दीनार्तशरणागतवत्सलः ।
 ऊरू महेश्वरः पातु जानुनी जगदीश्वरः ॥७॥
 जंघे पातु जगत्कर्ता गुल्फौ पातु गणाधिपः ।
 चरणौ करुणासिन्धुः सर्वाङ्गानि सदाशिवः ॥८॥
 एतां शिवबलोपेतां रक्षां यः सुकृतिः पठेत् ।
 सभुक्त्वा सकलान् कामान् शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥९॥
 ग्रह-भूत-पिशाचाद्यास्त्रैलोक्ये विचरन्ति ये ।
 दूरादाशु पलायन्ते शिव-नामाभिरक्षणात् ॥१०॥
 अभयङ्करनामेदं कवचं पार्वतीपतेः ।
 भक्त्या बिभर्ति यः कण्ठे तस्य वश्यं जगत्त्रयम् ॥११॥
 इमां नारायणः स्वप्ने शिवरक्षां यथाऽऽदिशत् ।
 प्रातरुत्थाय योगीन्द्रो याज्ञवल्क्यस्तथाऽलिखत् ॥१२॥

॥ इति शिवरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥६०॥

61. अर्धनारीश्वरस्तोत्रम् ।

मन्दारमाला-कुलितलकायै कपालमालाङ्कितशेखराय ।
 दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥१॥
 एकः स्तनस्तुंगतरः परस्य वार्तामिव प्रष्टुमगान्मुखाग्रम् ।
 यस्याः प्रियार्धस्थितिमुद्वहन्त्याः सा पातु वः पर्वतराजपुत्री ॥२॥
 यस्योपवीतगुण एव फणावृतैकवक्षोरुहः कुचपटीयति वामभागे ।
 तस्यै ममाऽस्तु तमसामवसानसीम्ने चन्द्रार्धमौलिशिरसे महसेनमस्या ॥३॥
 स्वेदार्द्रवामकुच-मण्डनपत्रभंग-संशोषि-दक्षिणकरांगुलिभस्मरेणुः ।
 स्त्री-पुं-नपुंसकपदव्यतिलङ्घिनी वः शम्भोस्तनुः सुखयतु प्रकृतिश्चतुर्थी ॥४॥

॥ इत्यर्धनारीश्वरस्तोत्रं समाप्तम् ॥६१॥

62. अर्धनारीनटेश्वरस्तोत्रम् ।

चाम्पेय-गौरार्ध-शरीरकायै कर्पूरगौरार्धशरीरकाय ।
 धम्मिल्लकायै च जटाधराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥१॥
 कस्तूरिका-कुंकुम-चर्चितायै चितारजः-पुञ्ज-विचर्चिताय ।
 कृतस्मरायै विकृतस्मराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥२॥
 चलत्-क्वणत्-कङ्कणनूपुरायै पादाब्जराजत्फणिनूपुराय ।
 हेमांगदायै भुजगांगदाय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥३॥
 विशालनीलोत्पललोचनायै विकासिपङ्केरुहलोचनाय ।
 समेक्षणायै विषमेक्षणाय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥४॥
 मन्दरामालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितकन्धराय ।
 दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥५॥
 अम्भोधर-श्यामल-कुन्तलायै तडित्प्रभाताम्रजटाधराय ।
 निरीश्वरायै निखिलेश्वराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥६॥
 प्रपञ्चसृष्ट्युन्मुखलास्यकायै समस्तसंहारकताण्डवाय ।
 जगज्जनन्यै जगदेकपित्रे नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥७॥
 प्रदीप्तरत्नोज्ज्वलकुण्डलायै स्फुरन्महापन्नगभूषणाय ।
 शिवान्वितायै च शिवान्वितायै च नमः शिवाय ॥८॥

एतत् पठेदष्टकमिष्टदं यो भक्त्या स मान्यो भुवि दीर्घजीवी ।
प्राप्नोति सौभाग्यमनन्तकालं भूयात्सदा तस्य समस्तसिद्धिः ॥९॥

॥ इति अर्धनारीनटेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥६२॥

63. द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणम्

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम् ॥१॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥२॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घूसृणेशं शिवालये ॥३॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं-प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरेणन विनश्यति ॥४॥

॥ इति द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणं समाप्तम् ॥६३॥

64. द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रम्

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चन्द्रकलावतंसम् ।
भक्तिप्रदानाय कृपावतीर्णं तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये ॥१॥
श्रीशैलशृङ्गे विबुधातिसंगे तुलाद्रितुंगेऽपि मुदा वसन्तम् ।
तमर्जुनं मल्लिकपूर्वमेकं नमामि संसारसमुद्रसेतुम् ॥२॥
अवन्तिकायां विहितावतानं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम् ।
अकालमृत्योः परिरक्षणार्थं वन्दे महाकालमहासुरेशम् ॥३॥
कावेरिकानमर्दयोः पवित्रे समागमे सज्जनतारणाय ।
सदैव मान्धातृवरे वसन्तमोङ्कारमीशं शिवमेकमीडे ॥४॥
पूर्वोत्तरे प्रज्वलिकानिधाने सदा वसन्तं गिरिजासमेतम् ।
सुराऽसुराराधिपतपादपद्मं श्रीवैद्यनाथं तमहं नमामि ॥५॥
याम्ये सदङ्गे नगरेऽधिरम्ये विभूषिताङ्गं विविधैश्च भोगैः ।
सद्भक्तिमुक्तिप्रदमीशमेकं श्रीनागनाथं शरणं प्रपद्ये ॥६॥
महाद्रिपार्श्वे च तटे रमन्तं सम्पूज्यमानं सततं मुनीन्द्रैः ।
सुराऽसुरैर्यक्षमहोरगाद्यैः केदारमीशं शिवमेकमीडे ॥७॥

सह्याद्रिशीर्षे विमले वसन्तं गोदावरीतीरपवित्रदेशे ।
 यदर्शनात् पातकमाशु नाशं प्रयाति तं त्र्यम्बकमीशमीडे ॥८॥
 सुताम्रपर्णीजलराशियोगे निबध्य सेतुं विशिखैरसंख्यैः ।
 श्रीरामचन्द्रेण समर्पितं तं रामेश्वराख्यं नियतं नमामि ॥९॥
 यं डाकिनी-शाकिनकासमाजे निषेव्यमाणं पिशिताशनैश्च ।
 सदैव भीमादिपदप्रसिद्धं तं शङ्करं भक्तहितं नमामि ॥१०॥
 सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
 वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥११॥
 इलापुरे रम्यविशालकेऽस्मिन् समुल्लसन्तं च जगद्वरेण्यम् ।
 वन्दे महोदारतरस्वभावं घृणेश्वराख्यं शरणं प्रपद्ये ॥१२॥
 ज्योतिर्मयद्वादशलङ्गकानां शिवात्मनां प्रोक्तमिदं क्रमेण ।
 स्तोत्रं पठित्वा मनुजोऽतिभक्त्या फलं तदालोक्य निजं भजेच्च ॥१३॥

॥ इति द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥६४॥

65. मृतसञ्जीवनकवचम्

एवमाराध्य गौरीशं देवं मृत्युञ्जयेश्वरम् ।
 मृतसञ्जीवनं नाम्ना कवचं प्रजपेन् सदा ॥१॥
 सारात् सारतरं पुण्यं गुह्याद् गुह्यतरं शुभम् ।
 महादेवस्य कवचं मृतसञ्जीवनाभिधम् ॥२॥
 समाहितमना भूत्वा शृणुष्व कवचं शुभम् ।
 श्रुत्वैतद् दिव्यकवचं रहस्यं कुरु सर्वदा ॥३॥
 बराभयकरो यज्वा सर्वदेवनिषेवितः ।
 मृत्युञ्जयो महादेवः प्राच्यां पातु मां सर्वदा ॥४॥
 दधान शक्तिमभयां त्रिमुखः षड्भुजः प्रभुः ।
 सदाशिवोऽग्निरूपी मामाग्नेय्यां पातु सर्वदा ॥५॥
 अष्टादशभुजोपेतो दण्डाभयकरो विभुः ।
 यमरूपी महादेवो दक्षिणस्यां सदाऽवतु ॥६॥
 भङ्गाभयकरो धीरो रक्षोगणनिषेवितः ।
 रक्षोरूपी महेशो मां नैऋत्यां सर्वदाऽवतु ॥७॥

पाशाभयभुजः सर्वरत्नाकरनिषेवितः ।
 वरुणात्मा महादेव पश्चिमो मां सदाऽवतु ॥८॥
 गदाभयकरः प्राणनायक सर्वदागतिः ।
 वायव्यां मारुतात्मा मां शङ्करः पातु सर्वदा ॥९॥
 शङ्खाभयकरस्यो मां नायकः परमेश्वरः ।
 सर्वात्मन्तरदिग्भागे पातु मां शङ्कर प्रभुः ॥१०॥
 शूलाभयकरः सर्वविद्यामधिनायकः ।
 ईशानात्मा तथैशान्यां पातु मां परमेश्वरः ॥११॥
 ऊर्ध्वभागे ब्रह्मरूपी विश्वात्माऽधः सदाऽवतु ।
 शिरो मे शङ्कर पातु ललाटं चन्द्रशेखरः ॥१२॥
 भ्रूमध्यं सर्वलोकेशस्त्रिनेत्रो लोचनेऽवत ।
 भ्रूयुग्मं गिरिशः पातु कर्णौ पातु महेश्वरः ॥१३॥
 नासिकां मे महादेव ओष्ठौ पातु वृषध्वजः ।
 जिह्वां मे दक्षिणामूर्तिर्दन्तान् मे गिरिशोऽवतु ॥१४॥
 मृत्युञ्जयो मुखं पातु कण्ठं मे नागभूषणः ।
 पिनाकी मत्करौ पातु त्रिशूली हृदयं मम ॥१५॥
 पञ्चवक्त्रः स्तनौ पातु उदरं जगदीश्वरः ।
 नाभिं पातु विरूपाक्षः पार्श्वौ मे पार्वतीपतिः ॥१६॥
 कटिद्वयं गिरीशो मे पुष्टं मे प्रमथाधिपः ।
 गुह्यं महेश्वरः पातु ममोरु पातु भैरवः ॥१७॥
 जानुनी मे जगद्धर्ता जंघे मे जगदम्बिका ।
 पादौ मे सततं पातु लोकवन्द्यः सदाशिवः ॥१८॥
 गिरीशः पातु मे भार्या भवः पातु सुतान् मम ।
 मृत्युञ्जयो ममाऽयुष्यं चित्तं मे गणनायकः ॥१९॥
 सर्वाङ्गं मे सदा पातु कालकालः सदाशिवः ।
 एतत्ते कवचं पुण्यं देवतानां च दुर्लभम् ॥२०॥
 मृतसञ्जीवनं नाम्ना महादेवेन कीर्तितम् ।
 सहस्रावर्तनं चाऽस्या पूजयन्नामीरितम् ॥२१॥

यः पठेच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेत् सुसमाहितः ।
 स कालमृत्युं निर्जित्य सदाऽऽयुष्यं समश्नुते ॥२२॥
 हस्तेन वा यदा स्पृष्ट्वा मृतं सञ्जीवयत्यसौ ।
 आधयो व्याधयस्तस्य न भवन्ति कदाचन ॥२३॥
 कालमृत्युमपि प्राप्तमसौ जयति सर्वदा ।
 अणिमादिगणैश्चर्य लभते मानवोत्तमः ॥२४॥
 युद्धारम्भे पठित्वेदमष्टाविंशतिवारकम् ।
 युद्धमध्ये स्थितः शत्रुः सद्यः सर्वैर्न दृश्यते ॥२५॥
 न ब्रह्मादीनि चास्त्राणि क्षयं कुर्वन्ति तस्य वै ।
 विजयं लभते देवयुद्धमध्येऽपि सर्वदा ॥२६॥
 प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत् कवचं शुभम् ।
 अक्षय्यं लभते सौख्यमिह लोके परत्र च ॥२७॥
 सर्वव्याधि-विनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।
 अजरामरणो भूत्वा सदा षोडशवार्षिकः ॥२८॥
 विचरत्यखिलांल्लोकान् प्राप्य भोगांश्च दुर्लभान् ।
 तस्मादिदं महागोप्य कवचं समुदाहृतम् ॥२९॥
 मृतसञ्जीवनं नाम्ना दैवतैरपि दुर्लभम् ॥३०॥

॥ इति मृतसञ्जीवनकवचं सम्पूर्णम् ॥६५॥

66. प्रदोषस्तोत्रम्

जय देव जगन्नाथ जय शङ्कर शाश्वत ।
 जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित ॥१॥
 जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद ।
 जय नित्य निराधार जय विश्वम्भराव्यय ॥२॥
 जय विश्वैकवन्द्येश जय नागेन्द्रभूषण ।
 जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर ॥३॥
 जय कोट्यर्कसङ्काश जयानन्त गुणाश्रय ।
 जय भद्र विरूपाक्ष जयचिन्त्य निरञ्जन ॥४॥
 जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन ।

जय दुस्तर संसार-सागरोत्तराण प्रभो ॥५॥

प्रसीद मे महादेव संसारार्तस्य खिद्यतः ।
 सर्वपापक्षयं कृत्वा रक्ष मां परमेश्वर ॥६॥
 महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च ।
 महाशोकनिविष्टस्य महारोगातुरस्य च ॥७॥
 ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः ।
 ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य प्रसीद मम शङ्कर ॥८॥
 दरिद्रः प्रार्थयेद् देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् ।
 अर्थाढ्यो वाऽथ राजा वा प्रार्थयेद् देवमीश्वरम् ॥९॥
 दीर्घमायुः सदाऽऽरोग्यं कोषवृद्धिर्बलोन्नतिः ।
 ममाऽस्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर ॥१०॥
 शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु मम प्रजाः ।
 नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः ॥११॥
 दुर्भिक्षमरिसन्तापाः शमं यान्तु महीतले ।
 सर्वसस्यसमृद्धिश्च भूयात् सुखमया दिशः ॥१२॥
 एवमाराधयेद् देवं पूजान्ते गिरिजापतिम् ।
 ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद् दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥१३॥
 सर्वपापक्षयकरी सर्वरोग-निवारिणी ।
 शिवपूजा मयाऽऽख्याता सर्वाभीष्टफलप्रदा ॥१४॥

॥ इति प्रदोषस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥६६॥

67. शिवस्तुतिः

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
 वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
 वन्दे सूर्य-शशाङ्क-वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१॥
 वन्दे सर्वजगद्-विहारमतुलं वन्देऽन्धक-ध्वंसिनं
 वन्दे देवशिखामणिं शशिनिभं वन्दे हरेर्वल्लभम् ।
 वन्दे नाग-भुजंग-भूषणधरं वन्दे शिवं चिन्मयं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥२॥

वन्दे दिव्यमचिन्त्यमद्वयमहं वन्देऽर्कदर्पापहं
 वन्दे निर्मूलमादिमूलमनिशं वन्दे मखध्वंसिनम् ।
 वन्दे सत्यमनन्तमाद्यमभयं वन्देऽतिशान्ताकृतिं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥३॥
 वन्दे भूरथम्बुजाक्ष-विशिखं वन्दे श्रुतीघोटकं
 वन्दे शैलशरासनं फणिगुणं वन्देऽधितूणीरकम् ।
 वन्दे पद्मजसारथिं पुरहरं वन्दे महाभैरवं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥४॥
 वन्दे पञ्चमुखाम्बुजं विनयनं वन्दे ललाटेक्षणं
 वन्दे व्योमगतं जटासुमुकुटं चन्द्रार्धगंगाधरम् ।
 वन्दे भस्मकृत-त्रिपुण्ड्रजटिलं वन्देऽष्टमूर्त्यात्मकं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥५॥
 वन्दे कालहरं हरं विषधरं वन्दे मृडं धूर्जटिं
 वन्दे सर्वगतं दयामृतनिधिं वन्दे नृसिंहापहम् ।
 वन्दे विप्र-सुरार्चिताङ्घ्रि-कमलं वन्दे भगाक्षापहं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥६॥
 वन्दे मंगलराजताद्वि-निलयं वन्दे सुराधीश्वरं
 वन्दे शङ्करमप्रमेयमतुलं वन्दे यमद्वेषिणम् ।
 वन्दे कुण्डलिराज-कुण्डलधरं वन्दे सहस्राननं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥७॥
 वन्दे हंसमतीन्द्रियं स्मरहरं वन्दे विरूपेक्षणं
 वन्दे भूतगणेशमव्ययमहं वन्देऽर्थ-राज्य-प्रदम् ।
 वन्दे सुन्दर-सौरभेय-गमनं वन्दे त्रिशूलायुधं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥८॥
 वन्दे सूक्ष्ममनन्तमाद्यमभयं वन्देऽन्धकारापहं
 वन्दे रावण-नन्दि-भृङ्गि-विनतं वन्दे सुपर्णावृतम् ।
 वन्दे शैलसुतार्धभागवपुषं वन्दे भयं त्र्यम्बकं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥९॥

वन्दे पावनमम्बरात्मविभवं वन्दे महेन्द्रेश्वरं
 वन्दे भक्तजनाश्रयाभरतरुं वन्दे नताभीष्टदम् ।
 वन्देजह्नुं सुताम्बिकेशमनिशं वन्दे गणाधीश्वरं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१०॥

॥ इति शिवस्तुतिः सम्पूर्णा ॥६७॥

68. कल्किकृतं शिवस्तोत्रम् (1)

गौरीनाथं विश्वनाथं शरण्यं भूतावासं वासुकीकण्ठभूषम् ।
 त्र्यक्षं पञ्चास्यादिदेवं पुराणं वन्दे सान्द्रानन्दसन्दोहदक्षम् ॥१॥
 योगाधीशं कामनाशं करालं गङ्गासंग-क्लिन्नमूर्धानमीशम् ।
 जटाजूटाटोपरिक्षिप्तभावं महाकालं चन्द्रभालं नमामि ॥२॥
 श्मशानस्थितं भूतवेतालसंगं नानाशस्त्रैः खड्गशूलादिभिश्च ।
 व्याघ्रात्युग्रा बाहवो लोकनाशे यस्य क्रोधोद्भूतलोकोऽस्तमेति ॥३॥
 यो भूतादिः पञ्चभूतैः सिसृक्षुस्तन्मात्रात्मा कालकर्मस्वभावैः ।
 प्रहृत्येदं प्राप्य जीवत्वमीशो ब्रह्मानन्दे क्रीडते तं नमामि ॥४॥
 स्थितौ विष्णुः सर्वजिष्णुः सुरात्मा लोकान् साधून् धर्मसेतून् बिभर्ति ।
 ब्रह्माद्यंशे योऽभिमानी गुणात्मा शब्दाद्यंगैस्तं परेशं नमामि ॥५॥
 यस्याज्ञया वायवो वान्ति लोके ज्वलत्यग्निः सविता याति तप्यन् ।
 शीतांशुः खे तारकासंहग्रश्च प्रवर्तन्ते तं परेशं प्रपद्ये ॥६॥
 यस्य श्वासात् सर्वधात्री धरित्री देवो वर्षत्यम्बुकालः प्रमाता ।
 मेरुर्मध्ये भुवनानां च भर्ता तमीशानं विश्वरूपं नमामि ॥७॥

॥ इति कल्किकृत शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥६८॥

69. हिमालयकृतं शिवस्तोत्रम् (2)

हिमालय उवाच

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः ।
 त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥१॥
 त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः ।
 प्रकृतिः प्रकृतीशस्च प्राकृतः प्रकृतेः परः ॥२॥

नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे ।
 येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च ॥३॥
 सूर्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् ।
 सोमस्त्वं सस्यपाता च सततं शीतरश्मिना ॥४॥
 वायुस्त्वं वरुणस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ।
 मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः ॥५॥
 वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदांगपारगः ।
 विदुषां जनकस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ॥६॥
 मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं सत्फलप्रदः ।
 वाक् त्वं रागाधिदेवी त्वं तत्कर्ता तद्गुरुः स्वयम् ॥७॥
 अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।
 इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वा पदाम्बुजम् ॥८॥
 तत्रोवास तमाबोध्य चारुह्य वृषाच्छिवः ।
 स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ॥९॥
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे ।
 अपुत्रो लभते पुत्रं मामेकं पठेद्यदि ॥१०॥
 भार्याहीनो लभेद् भार्या सुशीलां सुमनोहराम् ।
 चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम् ॥११॥
 राज्यभ्रष्टो लभेद्राज्यं शङ्करस्य प्रसादतः ।
 कारागारे श्मशाने च शत्रुग्रस्तेऽतिसङ्कटे ॥१२॥
 गम्भीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोते विषादने ।
 रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते ।
 सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शङ्करस्य प्रसादतः ॥१३॥

॥ इति हिमालयकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥६९॥

70. असितकृतं शिवस्तोत्रम् (3)

असित उवाच

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च ।
 योगीन्द्राणां च योगीन्द्र गुरुणां गुरवे नमः ॥१॥

मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन ।
 मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते ॥२॥
 कालरूपं कलयतां कालकालेश कारण ।
 कालादतीत कालस्थ कालकाल नमोऽस्तु ते ॥३॥
 गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक ।
 गुणीश गुणिनां बीज गुणीनां गुरवे नमः ॥४॥
 ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावे च तत्पर ।
 ब्रह्मबीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते ॥५॥
 इति स्तुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तस्थौ मुनीश्वरः ।
 दीनवत्साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः ॥६॥
 असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ।
 वर्षमेकं हविष्याणि शङ्करस्य महात्मनः ॥७॥
 स लभेद् वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् ।
 भवेद्धनाढ्यो दुःखी च मूको भवति पण्डितः ॥८॥
 अभार्यो लभते भार्या सुशीलां च पतिव्रताम् ।
 इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसन्निधिम् ॥९॥
 इदं स्तोत्रं पुरा दत्तं ब्रह्मणा च प्रचेतसे ।
 प्रचेतसा स्वपुत्रायासिताय दत्तमुत्तमम् ॥१०॥

॥ इति असितकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥७०॥

71. शिवस्तोत्रम् (4)

भवानी - शङ्करौ वन्दे श्रद्धा - विश्वासरूपिणौ ।
 याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम् ॥१॥
 वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
 यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥२॥
 यस्याङ्गे च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
 भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यारलाट् ।
 सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
 शर्व सर्वगतः शिव शशिनिभः शार्दूलचर्माम्बरं
 कालव्याल-कपाल - भूषणधरं गङ्गा - शशाङ्कप्रियम् ।

काशीशं कलि - कल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
 नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं श्रीशङ्करं कामदम् ॥४॥
 कुन्द- इन्दुर- गौरसुन्दर- मम्बिकापतिमभीष्ट- सिद्धिदम् ।
 कारुणीक - कलकञ्जलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम् ॥५॥
 यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
 खलानां दण्डकृद्योऽसौ शङ्करः शं तनोतु मे ॥६॥

॥ इति शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥७१॥

72. शिव-स्तुति

गले कलितकालिमः प्रकटितेन्दुभालस्थले विनाटितजटोत्करं रुचिरपाणिपाथोरुहे ।
 उदञ्चितकपालकंजघनसीमि सन्दर्शितद्विपाजिनमनुक्षणं किमपि धाम वन्दामहे ॥१॥
 वृषोपरि परिस्फुरद्भवलधाम धाम श्रियां कुबेरगिरिगौरि भप्रभवगर्वनिर्वासि तत् ।
 क्वचित्पुनरुमाकुचोपचितकुङ्कुमै रञ्जितंगजाजिनवरिजितं बृजिनभङ्गबी जं भजे ॥२॥
 उदित्वरविलोचनत्रयविसृत्वरज्योतिषा कलाकरकलाकरव्यतिकरेण चार्हर्निशम् ।
 विकासितजटाटवीविहरणोत्सवप्रोल्लसत्तरामरतरङ्गिणीतरलचूडमीडेमृडम् ॥३॥
 विहाय कमलालयाविलसितानि विद्युन्नटीविडम्बनपट्टानि मे विहरणं विधत्तामनः ।
 कपर्दिनि कुमुद्वतीरमणखण्डचूडामणी कटीतटपटीभवत्करटिचर्मणि ब्रह्मणि ॥४॥
 भवद्भवनदेहलीनिकटतुण्डाहतिवृट् मुकुटकोटिभिर्मघवदादिर्भूयते ।
 व्रजेम भवदन्तिकं प्र कृति मेत्य पैशाचिकी किमित्यमरसम्पदः प्रमथनाय नाथामहे ॥५॥
 त्वदर्चनपरायणप्रमथकन्यकालुण्ठितप्रसूनसफलद्रुमं कमपि शैलमाशास्महे ।
 अलं तटवितर्दिकाशयितसिद्धसीमन्तिनीप्रकीर्णसुमनोमनोरमणमेरुणामेरुणा ॥६॥
 न जातु हर यातु मे विषयदुर्विलासं मनो मनोभावकथास्तु मे न च मनोरथातिथ्यभूः ।
 स्फुरत्सुरतरङ्गिणीतटकुटीरकोटौ वसन्नये शिव दिवानिशं तव भवानि पूजापरः ॥७॥
 विभूषणसुरागपगाशुचितरालबालावली वलद्वहलसीकरप्रकरसेवसम्बर्धिता ।
 महेश्वरसुरद्रुमस्फुरितसज्जटामञ्जरी निमज्जनफलप्रदा मम नु हन्त भूयादियम् ॥८॥
 बहिर्विषयसङ्गति प्रतिनिवर्तिताक्षावलेः सामाधिकलितात्मनः पशुपतेशेषात्मनः ।
 शिरः सुरसरित्तीकुटिलकल्पकल्पद्रुमं निशाकरकलामहं बटुविमश्यमानां भजे ॥९॥
 त्वदीयसुरवाहिनीविमलवारिधारावल जटा गहनगाहिनी मतिरियं मम क्रामतु ।
 उपोत्तमसरित्तीविटपिताटवी प्रोल्लसततपस्विपरिषत्तुलाममलमल्लिकाभ प्रभो ॥१०॥

॥ इति शिवस्तुतिः सम्पूर्णम् ॥७२॥

73. वैद्यनाथाष्टकम्

श्रीवैद्यनाथ तव दर्शनतश्चिरस्य
 कालीनपीनभवसन्ततिदुःखजालाम् ।
 नालं फलाय किमुतैहिकदुःखदावो
 दग्धं प्रभुर्भवति भूतप भौतिकानि ॥१॥
 वामे श्रीवटुकेश्वरेण परके काल्याः समक्षे तथा
 श्रीगौर्या प्रियया विपक्षहरणे स्वत्राणव्यातया ।
 गायत्र्या च दिवाकरेण सदसत्संसूचिभिः खेचरै-
 र्विघ्नेशेन समावृतं हरिनुतं श्रीवैद्यनाथं भजे ॥२॥
 सर्वलोकभयभारहारिणे स्वीयमङ्गलकलापकारिणे ।
 रावणेश्वरसमाह्वयाय ते वैद्यनाथ विभवे नमो नमः ॥३॥
 नाथ त्वत्पदपद्मदर्शनविधौ प्रोल्लासि सच्चेतसः
 किं नामास्ति नरस्य दुर्लभमिह श्रीहीमनीषाभुवः ।
 किन्तु प्रोद्यतमन्दचन्द्रधवलत्विङ्गवृन्दमन्दीकृतौ
 दक्षां पादनखद्युतिं कथमु ते साक्षात्कृतिं वीक्षताम् ॥४॥
 कल्लोलान्मरुदुज्ज्वलच्चलतरोल्लोलालिमालाद्वयं
 नौस्थस्यास्य न चापि कण्टककटाटोपाटवीपद्भतेः ।
 नो शार्दूलकरीन्द्रकेसरिघटापाटच्चरव्राततः
 सर्वापद्विनिवारकं तव पदद्वन्द्वं दिदृक्षोः प्रभो ॥५॥
 दशाननसमुल्लसत्स्वभुजमण्डलीमण्डन-
 प्रचण्डकृतिताण्डवप्रसरदुत्तमाडम्बरे ।
 हरे प्रभुवरे हरिप्रियविलाससंलालिते
 स्वचेतसि धृतेन कं कमिह काममासादयेत् ॥६॥
 अगम्यो देवानामविहितधियां चापि सुधियां
 स्वभक्तत्राणाय प्रकटिततनुः सर्वसुलः ।
 समन्तादुत्तालोत्कटविकटवृक्षालिरुचिरे
 हरिद्रे पीठेऽस्मिन् विलसित रहो रावणपतिः ॥७॥
 प्रपञ्च्य ब्रह्माण्डं निजमहिमनि स्वैककलया
 लयान्तं संपुष्णान् प्रथयति मतिं स्वस्वगतिकाम् ।

गणेशोन्दोपेन्द्रस्तुतसुयशसे

नमस्तस्मै

कस्मैचिदमितमहिम्ने

पूर्णमहसे

पुरविधे ॥८॥

॥ इति वैद्यनाथाष्टकं सम्पूर्णम् ॥७३॥

74. शिवाशिवस्तोत्रम्

त्रैलोक्यं मुदितं सर्वं दृष्ट्वा शक्त्या युतं शिवम् ।
तदा स्तोत्रं हरिश्चक्रे शिवयोः परमात्मनोः ॥१॥

विष्णुरुवाच

मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय ।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥२॥
सुलोचनायै विषमेक्षणाय सुधाशनायै च गराशनाय ।
विभूतिदायै विभवोज्झिताय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥३॥
सर्वार्चितायै सकलार्चिताय कामप्रदायै स्मरनाशनाय ।
सुधांशुभायै च सुधांशुभाय नमः शिवायै च नमः शिवाय ॥४॥
इति स्तुतो महादेवो विष्णुना शक्तिसंयुतः ।
तमुवाच जगन्नाथं गिरा गम्भीरया हरः ॥५॥

शिव उवाच

प्रसन्नोऽस्मि महाविष्णो तव भक्त्याऽनया हरे ।
वरं वरय मत्तस्त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥६॥

विष्णुरुवाच

शम्भो त्वच्चरणाम्भोजे भक्तिर्मे स्त्वनपायिनी ।
सदा देहि सदा देहि वरं नाऽन्यं वृणोमि ते ॥७॥

शिव उवाच

एवमस्तु हृषीकेश ममात्माऽसि रमापते ।
शिवेन सत्कृतोऽत्यर्थं जगाम भुवनं स्वकम् ॥८॥

इति शिवाशिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥७४॥

75. गौरीशाष्टकम्

भज गौरीशं भज गौरीशं गौरीशं भज मन्दमते (ध्रुवपद) ।
 जल भवदुस्तरजलधिसुतरणं ध्येयं चित्ते शिवहरचरणम् ।
 अन्योपायं न हि न हि सत्यं ज्ञेयं शङ्कर शङ्कर नित्यम् । भज० ॥१॥
 दारापत्यं क्षे वित्तं देहं गेहं सर्वमनित्यम् ।
 इति परिभावय सर्वमसारं गर्भविकृत्या स्वप्नविचारम् । भज० ॥२॥
 मलवैचित्ये पुनरावृत्तिः पुनरपि जननीजठरोत्पत्तिः ।
 पुनरप्याशाकुलितं जठरं किं न हि मुञ्चसि कथयेश्चिन्तम् । भज० ॥३॥
 मायाकल्पितमैन्द्रं जालं न हि तत्सत्यं दृष्टिविकारम् ।
 ज्ञाते तत्त्वे सर्वमसारं मा कुरु मा कुरु विषयविचारम् । भज० ॥४॥
 रज्जौ सर्पभ्रमणारोपस्तद्वद्ब्रह्मणि जगदारोपः ।
 मिथ्यामायामोहविकारं मनसि विचारय बारम्बारम् । भज० ॥५॥
 अध्वरकोटीगङ्गागमनं कुरुते योगं चेन्द्रियदमनम् ।
 ज्ञानविहीनः सर्वमतेन न भवति मुक्तो जन्मशतेन । भज० ॥६॥
 सोऽहं हंसो ब्रह्मैवाऽहं शुद्धानन्दस्तत्त्वपरोऽहम् ।
 अद्वैतोऽहं सङ्गविहीने चेन्द्रिय आत्मनि निखिले लीने । भज० ॥७॥
 शङ्करकिङ्कर मा कुरु चिन्तां चिन्तामणिना विरचितमेतत् ।
 यः सद्भक्त्या पठति हिनित्यं ब्रह्मणि लीनो भवति हि सत्यम् । भज० ॥८॥

इति गौरीशाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १७५ ॥

76. विश्वमूर्त्यष्टकस्तोत्रम्

अकारणायाऽखिलकारणाय नमो महाकारणकारणाय ।
 नमोऽस्तु कालानल-लोचनाय कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥१॥
 नमोऽस्त्वहीनाभरणाय नित्यं नमः पशूनां पतये मृडाय ।
 वेदान्तवेद्याय नमो नमस्ते कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥२॥
 नमोऽस्तु भक्तेर्हितदानदात्रे सर्वौषधीनां पतये नमोऽस्तु ।
 ब्रह्मण्यदेवाय नमो नमस्ते कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥३॥
 कालाय कालानलसन्निभाय हिरण्यगर्भाय नमो नमस्ते ।
 हालाहलादाय सदा नमस्ते कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥४॥

विरञ्चिनारायण-शक्रमुख्यैरज्ञातवीर्याय नमो नमस्ते ।
 सूक्ष्मातिसूक्ष्माय नमोऽघहन्त्रे कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥५॥
 अनेककोटीन्दुनिभाय तेऽस्तु नमो गिरीणां पतयेऽघहन्त्रे ।
 नमोऽस्तु ते भक्तिविपद्भराय कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥६॥
 सर्वान्तरस्थाय विशुद्धधाम्ने नमोऽस्तु ते दुष्टकुलान्तकाय ।
 समस्त-तेजोनिधये नमस्ते कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥७॥
 यज्ञाय यज्ञादिफलप्रदात्रे यज्ञस्वरूपाय नमो नमस्ते ।
 नमो महानन्दमयाय नित्यं कृतागसं मामव विश्वमूर्ते ॥८॥
 इति स्तुतो महादेवो दक्षं प्राह कृताञ्जलिम् ।
 यत्तेऽभिलषितं दक्ष! तत्ते दास्याम्यहं ध्रुवम् ॥९॥
 अन्यच्च शृणु भो दक्ष यच्च किञ्चिद् ब्रवीम्यहम् ।
 यत्कृतं हि मम स्तोत्रं त्वया भक्त्या प्रजापते ॥१०॥
 ये श्रद्धया पठिष्यन्ति मानवाः प्रत्यहं शुभम् ।
 निष्कल्मषा भविष्यन्ति सापराधा अपि ध्रुवम् ॥११॥

॥ इति विश्वमूर्त्यष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥७६॥

77. महामृत्युञ्जयध्यानम्

हस्ताम्भोज-युगस्थ-कुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
 सिञ्चतं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्गे सकुम्भौ करौ ।
 अक्ष-स्त्रग्-मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रं स्रवत् ।
 पीयूषोऽत्र तनुं भजे स-गिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम् ॥१॥
 चन्दोद्भासित-मूर्द्धजं सुरपतिं पीयूषपात्रं वृहद्
 हस्ताब्जेन दधत् सुदिव्यममलं हास्यायपङ्केरुहम् ।
 सूर्येन्दुग्नि-विलोचनं करतले पाशाक्षसूत्राङ्कुशा-
 म्भोजं बिभ्रतमक्षयं पशुपतिं मृत्युञ्जयं संस्मरे ॥२॥
 स्मर्त्तव्याखिललोकवर्ति सततं यज्जङ्गमस्थावरं
 व्याप्तं येन च यत्प्रपञ्चविहितं मुक्तिश्चयत् सिद्ध्यति ।
 यद्वा स्यात् प्रणवविभेदगहनं श्रुत्वा च यद् गीयते
 तद्वस्तुस्थिति-सिद्धयेऽस्तु वरदं ज्योतिस्त्रयोत्थं महः ॥३॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
 उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥४॥
 ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
 रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
 पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
 विश्ववाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥५॥

॥ इति महामृत्युञ्जयध्यानं समाप्तम् ॥७७॥

78. महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युञ्जयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमार्कण्डेय ऋषि अनुष्टुप्
 छन्दः, श्रीमृत्युञ्जयो देवता, गौरी शक्तिः मम सर्वारिष्ट-समस्तमृत्युशान्त्यर्थं
 सकलैश्वर्य-प्राप्त्यर्थं च जपे विनियोगः ।

ध्यानम्

चन्द्रर्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
 मुद्रापाशमृगाक्ष-सूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभम् ।
 कोटीन्दु-प्रगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
 कान्तं विश्वमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥
 ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥१॥
 नीलकण्ठं कालमूर्तिं कालज्ञं कालनाशनम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥२॥
 नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निलयप्रभम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥३॥
 वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥४॥
 देवदेवं जगन्नाथं देवेशं वृषभध्वजम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥५॥
 गङ्गाधरं महादेवं सर्वाभरणभूषितम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥६॥

अनाथः परमानन्दं कैवल्यपदगामिनम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥७॥
 स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टि-स्थिति-विनाशकम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥८॥
 उत्पत्ति-स्थिति-संहारकर्त्तारमीश्वरं गुरुम् ।
 नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥९॥
 मार्कण्डेयकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
 तस्य मृत्युभयं नास्ति नाऽग्निचौरभयं क्वचित् ॥१०॥
 शतावर्तं प्रकर्तव्यं सङ्कटे कष्टनाशनम् ।
 शुचिर्भूत्वा पठेत् स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥११॥
 मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम् ।
 जन्म-मृत्युजरा-रोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ॥१२॥
 तावतस्त्वद्गतप्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ।
 इति विज्ञाप्य देवेशं त्र्यम्बकाख्यमनु जपेत् ॥१३॥
 नमः शिवाय साम्बाय हरये परमात्मने ।
 प्रणतक्लेशनाशाय योगिनां पतये नमः ॥१४॥
 शताङ्गायुर्मन्त्रः ॐ ह्री श्री ह्री है ह्रः हन हन दह दह पच पच गृहाण
 गृहाण मारय मारय मर्दय मर्दय महामहाभैरव भैरवरूपेण धुनुय धुनुय
 कम्पय कम्पय विघ्नय विघ्नय विश्वेश्वर क्षोभय क्षोभय कटु कटु मोहय
 हुं फट् स्वाहा । इति मन्त्रमात्रेण समाभीष्टो भवति ॥१५॥

॥ इति महामृत्युञ्जयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥७८॥

79. शिवाष्टकम्

पुरारिः कामारिर्निखिल-भयहारी पशुपति-
 महेशो भूतेशो नगपतिसुरेशो नटपतिः ।
 कपाली यज्ञाली बिबुधदलपाली सुरपतिः ।
 सुराराध्यः शर्वो हरतु भवभीतिं भवपतिः ॥१॥
 शये शूलं भीमं दितिजभयदं शत्रुदलनं
 गले मौण्डिं मालां शिरसि च दधानः शशिकलाम् ।

जटाजूटे गङ्गामघनिवहभङ्गां सुरनर्दीं
 सुराराध्यः शर्वो हरतु भवभीतिं भवपतिः ॥२॥
 भवो भर्गो भीमो भवभयहरो भालनयनो
 वदान्यः सम्मान्यो निखिलजन-सौजन्यनिलयः ।
 शरण्यो ब्रह्मण्यो बिबुधगणगण्यो गुणनिधिः
 सुराराध्यः शर्वो हरतु भवभीतिं भवपतिः ॥३॥
 त्वमेवेदं विश्वं सृजसि सकलं ब्रह्मवपुषा
 तथा लोकान् सर्वानवसि हरिरूपेण नियतम् ।
 लयं लीलाधाम त्रिपुरहररूपेण कुरुषे
 त्वदन्यो नो कश्चिज्जगति सकलेशो विजयते ॥४॥
 यथा रज्जौ भानं भवति भुजगस्यान्धकरिपो
 तथा मिथ्याज्ञानं सकलविषयाणामिह भवे ।
 त्वमेकश्चित्सर्ग-स्थिति-लय-वितानं वितनुषे
 भवेन्माया तत्र प्रकृतिपदवाच्या सहचरी ॥५॥
 प्रभो! साऽनिर्वाच्या चित्तिविरहिता विभ्रमकरी
 तवच्छायापत्त्या सकलघटनामञ्जति सदा ।
 रथौ यन्तुर्योगाद् व्रजति पदवीं निर्भयतया
 तथेवासौ कर्त्री त्वमसि शिव! साक्षी त्रिजगताम् ॥६॥
 नमामि त्वामीशं सकलसुखदातारमजरं
 परेशं गौरीशं गणपतिसुतं वेदविदितम् ।
 वरेण्यं सर्वज्ञं भूजगवलयं विष्णुदयितं
 गणाध्यक्षं दक्षं प्रणतजनतापार्त्तिहरणम् ॥७॥
 गुणातीतं शम्भुं बुधगणमुखोद्गीतयशसं
 विरूपाक्षं देवं धनपतिसखं वेदविनुतम् ।
 विभुं नत्वा याचे भवतु भवतः श्रीचरणयो-
 र्विशुद्धा सद्भक्तिः परमपुरुषस्यादिविदुषः ॥८॥
 शङ्करे यो मनः कृत्वा पठेच्छ्रीशङ्कराष्टकम् ।
 प्रीतस्तस्मै महादेवो ददाति सकलेप्सितम् ॥९॥

॥ इति श्रीशिवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥७९॥

80. काशीविश्वेश्वरादिस्तोत्रम्

नमः श्रीविश्वनाथाय देववन्द्यपदाय ते ।
 काशीशेशावतारे मे देवदेव हयुपादिश ॥१॥
 मायाधीशं महात्मानं सर्वकारणकारणम् ।
 वन्दे तं माधवं देवं यः काशीं चाऽधितिष्ठति ॥२॥
 वन्दे तं धर्मगोप्तारं सर्वगुह्यार्थवेदिनम् ।
 गणदेवं दुण्डिराजं तं महान्तं स्वविघ्नहम् ॥३॥
 भारं वोढुं स्वभक्तानां यो योगं प्राप्त उत्तमम् ।
 तं स-दुण्डिं दण्डपाणिं वन्दे गङ्गातटस्थितम् ॥४॥
 भैरवं दंष्ट्राकरालं भक्ताभयकरं भजे ।
 दुष्टदण्ड-शूलशीर्ष-धरं वामाध्वचारिणम् ॥५॥
 श्रीकाशीं पापशमनीं दमनीं दुष्टचेतसः
 स्वनिःश्रेणिं चाविमुक्तपुरीं मर्त्यहितां भजे ॥६॥
 नमामि चतुराराध्यां सदाऽणिन्मि स्थितिं गुहाम् ।
 श्रीगङ्गे भैरवीं दूरीकुरु कल्याणि यातनाम् ॥७॥
 भवानि रक्षाऽन्नपूर्णं सद्गुणितगुणेऽम्बिके ।
 देवर्षिवन्द्याम्बुमणिकर्णिकां मोक्षदां भजे ॥८॥

॥ इति श्रीकाशीविश्वेश्वरादिस्तोत्र सम्पूर्णम् ॥८०॥

81. आत्मावीरेश्वरस्तोत्रम्

ध्यानम्

विभूति-भूषित बालमष्टवर्षाकृतिं शिशुम् ।
 आकर्णपूर्णनेत्रं च सुरक्तदशनच्छदम् ॥१॥
 चारु-पिङ्गजटा-मौलिं नग्नं प्रहसिताननम् ।
 शैशवोचितनेपथ्यधारिणं चित्रहारिणम् ॥२॥
 पठन्तं श्रुतिसूक्तानि हसन्तं च स्वलीलया ।
 एवं वीरेश्वरं ध्यात्वा स्तोत्रमेतज्जपेन्नरः ॥३॥

एकं ब्रह्मैवाऽद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेह नानाऽस्ति किञ्चित् ।
 एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥१॥
 एकः कर्त्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः ।
 यद्वत् प्रत्यम्बर्क एकोऽप्यनेकस्तस्मान्नाऽन्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये ॥२॥
 रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ।
 यद्वत् तद्वद् विष्वगेष प्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥३॥
 तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ।
 पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥४॥
 शब्द गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणस्त्वं व्यङ्ग्यधिरायासि दूरात् ।
 व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यक् वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥५॥
 नो वेदस्त्वामीश साक्षाद् हि वेद नो वा विष्णुर्नो विधाताऽखिलस्य ।
 नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥६॥
 नो ते गोत्रं नाऽपि जन्माऽपि नाख्या नो वा रूपं नैव शीलं न देशः ।
 इत्थंभूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्यः सर्वान् कामान् पूरयेस्तद्भजे त्वाम् ॥७॥
 त्वत्तः सर्वं त्वं हि सवं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः ।
 त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत् किं यत्त्वं भास्यतस्त्वां नतोऽस्मि ॥८॥
 स्तुत्वेति विप्रो निपपात भूमौ स दण्डवद्यावदतीव हृष्टः ।
 तावत् स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेव वरं वृणीहि ॥९॥

तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिवैश्वानरः कृती ।

प्रत्यब्रवीत् किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥१०॥

सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वः सर्वगतो भवान् ।

याच्चां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम् ॥११॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो वैश्वानरस्य ह ।

शुचेः शुचिव्रतस्याथ शुचि स्मित्वाऽब्रवीच्छिशुः ॥१२॥

बाल उवाच

त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि ।

अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः ॥१३॥

तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते ।

ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिः सर्वामरप्रियः ॥१४॥

अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् ।
 अब्दं त्रिकालपठनात् कामदं शिवसन्निधौ ॥१५॥
 एतत् स्तोत्रस्य पठनं पुत्र-पौत्र-धनप्रदम् ।
 सर्वशान्तिकरं चाऽपि सर्वापत्त्यरिनाशनम् ॥१६॥
 स्वर्गा-ऽपवर्ग-सम्पत्तिकारकं नाऽत्र संशयः ।
 प्रातरुत्थाय सुस्नातो लिङ्गमभ्यर्च्य शाम्भवम् ॥१७॥
 वर्षं जपन्निदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान् भवेत् ।
 वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमैर्युतः ॥१८॥
 यः पठेत् स्नानसमये लभते सकलं फलम् ।
 कार्तिकस्य तु मासस्य प्रसादादहमव्ययः ॥१९॥
 तव पुत्रत्वमेष्ट्यामि यस्त्वन्यस्तत् पठिष्यति ।
 अभिलाषाष्टकमिदं न देयं यस्य कस्यचित् ॥२०॥
 गोपनीयं प्रयत्नेन महाबन्ध्याप्रसूतिकृत् ।
 स्त्रिया वा पुरुषेणाऽपि नियमाल्लिङ्गसन्निधौ ॥२१॥
 अब्दं जप्तमिदं स्तोत्रं पुत्रदं नाऽत्र संशयः ।
 इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे बालः सोऽपि विप्रो गृहं गतः ॥२२॥

॥ इति वीरेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥८१॥

82. कालभैरवाष्टकम्

देवराज-सेव्यमान-पावनाङ्घ्रिपङ्कजं
 व्यालयज्ञसूत्रमिन्दुशेखरं कृपाकरम् ।
 नारदादि-योगिवृन्द-वन्दितं दिगम्बरं
 काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥१॥
 भानुकोटि-भास्वरं भवाब्धितारकं परं
 नीलकण्ठमीप्सितार्थदायकं त्रिलोचनम् ।
 कालकालमम्बुजाक्षमक्षशूलमक्षरं
 काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥२॥
 शूलटङ्कपाशदण्डपाणिमादिकारणं
 श्यामकायमादिदेवमक्षरं निरामयम् ।

भीमविक्रमं प्रभुं विचित्रताण्डवप्रियं
 काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥३॥
 भुक्ति-मुक्ति-दायकं प्रशस्तचारुविग्रहं
 भक्तिवत्सलं स्थितं समस्तलोकविग्रहम् ।
 विनिक्रणन्-मनोज्ञ-हेमकिङ्किणी-लसत्कटिं
 काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥४॥
 धर्मसेतुपालकं त्वधर्ममार्गनाशकं
 कर्मपाशमोचकं सुशर्मदायकं विभुम् ।
 स्वर्णवर्णशेषपाश-शोभिताङ्ग-मण्डलं
 काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥५॥
 रत्नपादुका-प्रभाभिराम-पादयुग्मकं
 नित्यमद्वितीयमिष्टदैवतं निरञ्जनम् ।
 मृत्युदर्पनाशनं करालदंष्ट्रमोक्षणं
 काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥६॥
 अट्टहास-भिन्नपद्मजाण्डकोश-सन्ततिं
 दृष्टिपात-नष्टपाप-जालमुग्रशासनम् ।
 अष्टसिद्धिदायकं कपालमालिकन्धरं
 काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥७॥
 भूतसङ्घनायकं विशालकीर्तिदायकं
 काशिवास-लोकपुण्य-पापशोधकं विभुम् ।
 नीतिमार्गकोविदं पुरातनं जगत्पतिं
 काशिकापुराधिनाथकालभैरवं भजे ॥८॥
 कालभैरवाष्टकं पठन्ति ये मनोहरं
 ज्ञानमुक्तिसाधनं विचित्रपुण्यवर्धनम् ।
 शोक-मोह-दैन्यलोभ-कोपताप-नाशनं
 प्रयान्ति कालभैरवाङ्घ्रिसन्निधिं नरा ध्रुवम् ॥९॥

॥ इति कालभैरवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥८२॥

83. आपदुद्धारक-वटुकभैरवस्तोत्रम् ।

सूत उवाच

मेरुपृष्ठे सुखासीनं देवदेवं त्रिलोचनम् ।
शङ्करं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम् ॥१॥

पार्वत्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रागमादिषु ।
आपदुद्धारण मन्त्रं सर्वसिद्धिविधायकम् ॥२॥
सर्वेषाञ्चैव भूतानां हितार्थं वाञ्छितं मया ।
विशेषस्तु राज्ञां वै शान्ति-पुष्टि-प्रसाधनम् ॥३॥
अङ्गन्यास-करन्यास-देहन्यास-समन्वितम् ।
वक्तुमर्हसि देवेश! मम हर्षविवर्धनम् ॥४॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि! महामन्त्रमापदुद्धारहेतुकम् ।
सर्वदुःख-प्रशमनं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥५॥
अपस्मारादिदोगाणां ज्वरादीनां विशेषतः ।
नाशनं स्मृति-मात्रेण मन्त्रराजमिमं प्रिये! ॥६॥
ग्रहराजभयानां च नाशनं सुखवर्धनम् ।
स्नेहाद् वक्ष्यामि ते मन्त्र सर्वसारमिमं प्रिये! ॥७॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य देवीप्रणवमुद्धरेत् ।
वटुकायेति वै पश्चादापदुद्धारणाय च ॥८॥
कुरुद्वयं ततः पश्चाद् वटुकाय पुनर्वदेत् ।
देवीप्रणवमुद्धृत्य मन्त्रोद्धारमिमं प्रिये! ॥९॥
मन्त्रोद्धारमिमं पुण्यं त्रैलोक्ये चाऽतिदुर्लभम् ।
अप्रकाशयमिमं मन्त्रं सर्वशक्तिसमन्वितम् ॥१०॥
स्मरणादेव मन्त्रस्य भूत-प्रेत-पिशाचकाः ।
विद्रवत्यतिभीता वै कालरुद्रादिव प्रजाः ॥११॥
मन्त्रः-ॐ ह्रीं वटुकाय आपदुद्धारणाय कुरु कुरु वटुकायह्रीं ।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
सर्वकामार्थदं मन्त्रं राज्यभोगप्रदं नृणाम् ॥१२॥

पठेद् वा पाठयेद् वाऽपि पूजयेद् वाऽपि पुस्तकम् ।
 नाऽग्नि-चौरभयं तत्र ग्रहराजभयं तथा ॥१३॥
 न च मारीभयं किञ्चित् सर्वत्र सुखवान् भवेत् ।
 आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्र-पौत्रादि-सम्पदः ॥१४॥
 भवन्ति सततं तस्य पुस्तकस्यापि पूजनात् ।
 क एष भैरव नाम आपदुद्धारणो मतः ॥१५॥
 तस्य नाम सहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च ।
 त्वया च कथितो देवो भैरवः कल्पवित्तमः ॥१६॥
 सारमुद्धृत्य तेषां वै नामाष्टशतकं वद ।
 यानि सङ्कीर्तयन् मर्त्यः सर्वदुःखविवर्जितः ॥१७॥
 सर्वान् कामानवाप्नोति साधकः सिद्धिमेव च ।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः ॥१८॥
 आपदुद्धारकस्येह नामाष्टशतमुत्तमम् ।
 सर्वपापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारणम् ॥१९॥
 सर्वकार्थदं देवि! साधकानां सुखावहम् ।
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥२०॥
 बृहदारण्यको नाम ऋषिर्देवोऽथ भैरवः ।
 नामाष्टशतकस्याऽस्य छन्दोऽनुष्टुप् प्रकीर्तितम् ॥२१॥
 अष्टबाहुं त्रिनयनमिति बीजं समीरितम् ।
 शक्तिः कं कीलकं शेषमिष्टसिद्धौ नियोजयेत् ॥२२॥

ॐ रुद्राय नमः अङ्गुष्ठयोः । ॐ शिखीमखाय नमः तर्जन्योः । ॐ शिवाय नमः मध्यमयोः । ॐ त्रिशूलिने नमः अनामिकयोः । ॐ ब्रह्मणे नमः कनिष्ठिकयोः । ॐ त्रिपुरान्तकाय नमः तलयोः । ॐ मांसाशिने नमः कराग्रे । ॐ सदाशिवाय नमः करपृष्ठे । ॐ भैरवाय नमः मूर्ध्नि । ॐ भीमदर्शनाय नमः ललाटे । ॐ भूतहननाय नमः नेत्रयोः । ॐ सारमेयानुगाय नमः भ्रूवोः । ॐ भूतनाथाय नमः कर्णयोः । ॐ प्रेतवाहनाय नमः कपोलयोः । ॐ भस्माङ्गाय नमः नासापुटयोः । ॐ सर्वभूषणाय नमः ओष्ठयोः । ॐ अनादिभूताय नमः आस्ये । ॐ शक्तिहस्ताय नमः गले ।

ॐ दैत्यशमनाय नमः स्कन्धयोः । ॐ अतुलतेजसे नमः बाह्वोः । ॐ कपालिने नमः पाणयोः । ॐ मुण्डमालिने नमो हृदये । ॐ शान्ताय नमो वक्षस्थले । ॐ कामचारिणे नमः स्तनयोः । ॐ सदातुष्टाय नमः उदरे । ॐ क्षेत्रज्ञाय नमः पार्श्वयोः । ॐ क्षेत्रपालाय नमः पृष्ठदेशे । ॐ क्षेत्रजाय नमो नाभिदेशके । ॐ पापौघनाशनाय नमः कट्याम् । ॐ वटुकाय नमो लिङ्गदेशके । ॐ रक्षकराय नमो गुदे । ॐ रक्तलोचनाय नमः ऊर्वोः । ॐ घुर्घरावाय नमो जान्वोः । ॐ रक्तपाणिने नमो जङ्घयोः । ॐ पादुकासिद्धाय नमो गुल्फयोः । ॐ सुरेश्वराय नमः पादपृष्ठे । ॐ आपदुद्धारहेतुकाय नमः आपादमस्तके । ॐ डमरूहस्ताय नमः पूर्वे । ॐ दण्डधारिणे नमो दक्षिणे । ॐ खड्गहस्ताय नमः पश्चिमायाम् । ॐ घण्टावादिने नमः उत्तरे । ॐ अग्निवर्णाय नमः आग्नेय्याम् । ॐ दिगम्बराय नमो नैऋत्याम् । ॐ सर्वभूतस्थाय नमो वायव्ये । ॐ अष्टसिद्धिदाय नमः ईशान्याम् । ॐ खेचरिणे नमः ऊर्ध्वे । ॐ रौद्ररूपिणे नमः पाताले ।

एवं विन्यस्य, देहे स्वे षडङ्गेषु ततो न्यसेत् ।

ॐ भूतनाथाय नमो हृदये । ॐ आदिनाथाय नमो मूर्ध्नि । ॐ आनन्दनाथाय नमः शिखायाम् । ॐ सिद्धखेचरनाथाय नमः कवचाय हुम् । ॐ सहजानन्दनाथाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ निःसीमानन्दाय नमः अस्त्राय फट् ।

एवं न्यासविधिं कृत्वा यथावत्तदनन्तरम् ।

ध्यानम्

ध्यानं तत्र प्रवक्ष्यामि यथा ध्यात्वा पठेत्रः ॥१॥

शुद्ध-स्फटिक-सङ्काशं सहस्रादित्यवर्चसम् ।

नीलजीमूतसङ्काशं नीलाञ्जनसमप्रभम् ॥२॥

अष्टबाहुं त्रिनयनं चतुर्बाहुं द्विबाहुकम् ।

दंष्ट्राकरालवदनं नूपुरारवसङ्कुलम् ॥३॥

भुजङ्गमेखलं देवमग्निवर्णं शिरोरुहम् ।

दिगम्बरं कुमारेणं वटुकाख्यं महाबलम् ॥४॥

खट्वाङ्गमपि पाशं च शूलं दक्षिणभागतः ।

डमरुं च कपालं च वरदं भुजगं तथा ॥५॥

अग्निवर्णसमोपेतं

सारमेयसमन्वितम् ।

ध्यात्वा जपेत् सुसन्तुष्टः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥६॥

करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणि-

स्तरुण-तिमिर-नील-व्याल-यज्ञोपवीती ।

क्रतुसमयसपर्या-विघ्न-विच्छेदहेतु

र्जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥७॥

अस्य श्रीवटुकभैरवस्तवराजस्य आपदुद्धारणस्य बृहदारण्यक ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, आपदुद्धारणवटुकभैरवो देवता, अष्टबाहुं त्रिनयमिति बीजम्, कं शक्तिः, शेषं कीलकम्, ममाऽभीष्टसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

ॐ बृहदारण्यक ऋषये नमः शिरसि । ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे । ॐ अष्टबाहुवटुकभैरवदेवतायै नमः हृदि । ॐ अष्टबाहु त्रिनयमिति बीजाय नमः गुह्ये । ॐ कं शक्तये नमः पादयो । ॐ शेषमिति कीलकाय नमः सर्वाङ्गे । ॐ हां वां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं बीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ हुं बूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ हैं बैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ हौं वीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रः बः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः एवं हृदयादि । ॐ भूर्भुवः स्वरोम्, इति दिग्बन्धः । ॐ भूतनाथाय नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ आदिनाथाय नमः तर्जनीभ्यां नमः । ॐ आनन्दनाथाय नमः मध्यमाभ्यां नमः । ॐ सिद्धखेचरनाथाय नमः अनामिकाभ्यां नमः । ॐ सहजानन्दनाथाय नमः कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ निःसीमानन्दनाथाय नमः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । ॐ भूतनाथाय नमः हृदि । ॐ आदिनाथाय नमः मूर्ध्नि । ॐ आनन्दनाथाय नमः शिखायाम् । ॐ सिद्धखेचरनाथाय नमः कवचाय हुम् । ॐ सहजानन्दनाथाय नमः नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ निःसीमानन्दनाथाय नमः अस्त्राय फट् ।

सात्त्विकध्यनम्

वन्दे बालं स्फटिक-सदृशं कुण्डलोद्भासिवक्त्रं
दिव्याकल्पैर्नवमणिमयैः किङ्किणी-नूपुराढ्यैः ।
दीप्ताकाशं विशदवसगं सुप्रसन्नं त्रिनेत्रं
हस्ताब्जाभ्यां वटुकमनिशं शूलखड्गं दधानम् ॥१॥

राजसध्यानम्

उद्यद्भास्करसन्निभं त्रिनयनं रक्ताङ्गरागस्त्रजं
 स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः ।
 नीलग्रीवमुदारकौस्तुभधरं शीतांशुचण्डोज्ज्वलं
 बन्धूकारुणवाससं भयहरं वन्दे सदा भैरवम् ॥२॥

तामसध्यानम्

ध्यायेन्नीलाद्रिकान्तं शशिशकलधरं मुण्डमालं महेशं
 दिग्वस्त्रं पिङ्गकेशं डमरुमथ सृणिं शूलखड्गौ दधानम् ।
 नागं घण्टां कपालं करसरसिरुहैर्बिभ्रतं भीमदंष्ट्रं
 सर्पाकल्पं त्रिनेत्रं मणिमय-विलसत्-किङ्किणी-नूपुराढ्यम् ॥३॥
 अतिक्षीणमहाकाय कल्पान्तदहनोपम् ।
 भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥४॥
 शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ।
 शूलं वज्रं च खड्गं परशुमुसले दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।
 नागं पाशं च घण्टां प्रलयहुतवहं साङ्गुशं वामभागे ।
 नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं नैमित्तत्वं शिवाख्यम् ॥५॥
 अत्र मूलमन्त्रजपः १०८ ।

ॐ भैरवो भूतनाथश्च भूतात्मा भूतभावनः ।
 क्षेत्रज्ञः क्षेत्रपालश्च क्षेत्रदः क्षेत्रियो विराट् ॥१॥
 स्मशानवासी मांसाशी खर्पराशी स्मरान्तकः ।
 रक्तपां पानदः सिद्धः सिद्धिदः सिद्धसेवितः ॥२॥
 कङ्कालः कालशमनः कलाकाष्ठातनुः कविः ।
 त्रिनेत्री बहुनेत्रश्च तथा पिङ्गललोचनः ॥३॥
 शूलपाणिः खड्गपाणिः कङ्काली धूम्रलोचनः ।
 अभीरुर्भैरवीनाथो भूतपो योगिनीपतिः ॥४॥
 धनदो धनहारी च धनवान् प्रतिभानवान् ।
 नागहारो नागपाशो व्योमकेशः कपालधृक् ॥५॥
 कालः कपालमाली च कमनीयः कलानिधिः ।
 त्रिलोचनो ज्वलन्नेत्रस्त्रिशिखी च त्रिलोकपः ॥६॥

त्रिनेत्रतनयो डिम्भः शान्तः शान्तजनप्रियः ।
 बटुको वटुवेशश्च खट्वाङ्गवरधारकः ॥७॥
 भूताध्यक्षः पशुपतिर्भिक्षुकः परिचारकः ।
 धूर्तों दिगम्बरः शूरो हरिणः पाण्डुलोचनः ॥८॥
 प्रशान्तः शान्तिदः शुद्धः शङ्करः प्रियबान्धवः ।
 अष्टमूर्तिर्निधीशश्च ज्ञानचक्षुस्तपोमयः ॥९॥
 अष्टाधारः षडाधारः सर्पयुक्तः शिखीसखः ।
 भूधरो भूधराधीशो भूपतिर्भूधरात्मजः ॥१०॥
 कङ्कालधारी मुण्डी च आन्त्रयज्ञोपवीतवान् ।
 जृम्भणो मोहनस्तम्भी मारणः क्षोभणस्तथा ॥११॥
 शुद्धनीलाञ्जनप्रख्यो दैत्यहा मुण्डभूषितः ।
 बलिभुग् बलिभुङ्नाथो बालो बालपराक्रमः ॥१२॥
 सर्वापत्तारणो दुर्गो दुष्टभूतनिषेवितः ।
 कामी कलानिधिः कान्तः कामिनीवशकृद्वशी ॥१३॥
 सर्वसिद्धिप्रदो वैद्यः प्रभुर्विष्णुरितीव हि ।
 पुनर्मूलमन्त्रजपः १०८ ।
 अष्टोत्तरशतं नाम्ना भैरवस्य महात्मनः ।
 मया ते कथितं देवि! रहस्यं सर्वकामदम् ॥१४॥
 य इदं पठते स्तोत्रं नामाष्टशतमुत्तमम् ।
 न तस्य दुरितं किञ्चिद्रोगाणां च भयं न हि ॥१५॥
 न शत्रुतो भयं किञ्चित् प्राप्नुयान् मानवः क्वचित् ॥१६॥
 पातकानां भयं नैव यः पठेत् स्तोत्रमुत्तमम् ।
 मारीभये राजभये तथा चौराऽग्निजे भये ॥१७॥
 औत्पातिके महाघोरे तथा दुःस्वप्नदर्शने ।
 बन्दने च महाघोरे पठेत् स्तोत्रमनुत्तमम् ॥१८॥
 सर्वं प्रशमतां याति भयं भैरवकीर्तनात् ।
 एकादशसहस्रं तु पुरश्चरणमुच्यते ॥१९॥
 यस्त्रिसन्ध्यं पठेद देवि! संवत्सरमतन्द्रितः ।
 स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टां दुर्लभामपि मानवः ॥२०॥

षण्मासं भूमिकामस्तु जपित्वा प्राप्नुयान् महीम् ।
 राजशत्रुविनाशार्थं जपेन् मासाष्टकं यदि ॥२१॥
 रात्रौ बारत्रयं चैव नाशयत्येव शास्त्रवान् ।
 जपेन्मासत्रयं मर्त्यो राजानं वशमानयेत् ॥२२॥
 धनार्थी च सुतार्थी च दारार्थी यस्तु मानवः ।
 जपेन्मासत्रयं देवि! वारमेकं तथा निशि ॥२३॥
 धनं पुत्रांस्तथा दारान् प्राप्नुयान नाऽत्र संशयः ।
 निगडे चापि यो बद्धः काराग्रहनिपातितः ॥२४॥
 शृङ्खलाबन्धनप्रायः पठेच्चैव दिवानिशि ।
 यान् यान् समीहते कामान् तां तां प्राप्नोत्यसंशयः ॥२५॥
 अप्रकाश्यमिदं गुह्यं न देयं यस्य कस्यचित् ।
 सुकुलीनाय शान्ताय ऋजवे दम्भवर्जिते ॥२६॥
 देयं स्तोत्रमिदं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम् ।
 भैरवोऽपि प्रहृष्टोऽभूत् स्वयं च परमेश्वरः ॥२७॥
 एवं श्रुत्वा ततो देवी नामाष्टशतमुत्तमम् ।
 सन्तोषपरमं प्राप्य भैरवस्य महात्मनः ।
 जजाप परया भक्त्या तदा सर्वेश्वरेश्वरी ॥२८॥
 हरतु कुलगणेशो विघ्नसन्धानशेषां
 नयतु कुलसपर्यां पूर्णतां साधकानाम् ।
 पिबतु वटुकनाथः शोणितं निन्दकानां
 वितरतु स हि कामान् कौलिकानां गणेशः ॥२९॥

॥ इति आपदुद्धारक-वटुकभैरवस्तोत्रं समाप्तम् ॥८३॥

84. अनदिकल्पेश्वरस्तोत्रम्

कर्पूरगौरो भुजगेन्द्रहारो गङ्गाधरो लोकहितावहः सः ।
 सर्वेश्वरो देववरोऽप्यघोरो योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥१॥
 कैलासवासी गिरिजाविलासी श्मशानवासी सुमनोनिवासी ।
 काशीनिवासी विजयप्रकाशी योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥२॥

त्रिशूलधारी भवदुःखहारी कन्दर्पवैरी रजनीशधारी ।
 कपर्दधारी भक्तानुसारी योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥३॥
 लोकाधिनाथः प्रमथाधिनाथः कैवल्यनाथः श्रुतिशास्त्रनाथः ।
 विद्यार्थनाथः पुरुषार्थनाथो योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥४॥
 लिङ्गं परिच्छेत्तु मधोगतस्य नारायणश्चोपरि लोकनाथ ।
 बभूवतुस्तावपि नो समर्थो योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥५॥
 यं रावणस्ताण्डवकौशलेन गीतेन चाऽतोषयदस्य सोऽसौ ।
 कृपाकटाक्षेण समृद्धिमाप योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥६॥
 सकृच्च बाणोऽवनमय्य शीर्षं यस्याग्रतः सोऽप्यलभत् समृद्धिम् ।
 देवेन्द्रसमपत्यधिकां गरिष्ठां योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥७॥
 गुणान् विमातुं न समर्थ एष वेषश्च जीवोऽपि विकुण्ठितोऽस्य ।
 श्रुतिश्च नूनं चकितं बभाषे योऽनादिकल्पेश्वर एव सोऽसौ ॥८॥
 अनादिकल्पेश उमेश एतत् स्तवाष्टकं यः पठति त्रिकालम् ।
 स धौतपापोऽखिललोकवन्द्य शैवं पदं यास्यति भक्तिमांश्चेत् ॥९॥

॥ इति अनादिकल्पेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥८४॥

85. उमामहेश्वरस्तोत्रम्

नमः शिवाभ्यां नव-यौवनाभ्यां परस्पराश्लिष्ट-वपुर्धराभ्याम् ।
 नगेन्द्रकन्या-वृषकेतनाभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥१॥
 नमः शिवाभ्यां सरसोत्सवाभ्यां नमस्कृताभीष्टवरप्रदाभ्याम् ।
 नारायणेनार्चित-पादुकाभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥२॥
 नमः शिवाभ्यां वृषवाहनाभ्यां विरिञ्च-विष्ण्वन्द्र-सुपूजिताभ्याम् ।
 विभूतिपाटीर-विलेपनाभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥३॥
 नमः शिवाभ्यां जगदीश्वराभ्यां जगत्पतिभ्यां जयविग्रहाभ्याम् ।
 जम्भारिमुख्यैरभिवन्दिताभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥४॥
 नमः शिवाभ्यां परमौषधाभ्यां पञ्चाक्षरी-पञ्जर-रञ्जिताभ्याम् ।
 प्रपञ्च-सृष्टि-स्थिति-संहतिभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥५॥

नमः शिवाभ्यामतिसुन्दराभ्यामत्यन्तमासक्त-हृदम्बुजाभ्याम् ।
 अशेषलोकैक-हितङ्कराभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥६॥
 नमः शिवाभ्यां कलिनाशनाभ्यां कङ्कालकल्याणवपुर्धराभ्याम् ।
 कैलासशैलस्थितदेवताभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥७॥
 नमः शिवाभ्यामशुभापहाभ्यामशेष-लोकैक-विशेषिताभ्याम् ।
 अकुण्ठिताभ्यां स्मृतिसम्भृताभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥८॥
 नमः शिवाभ्यां रथवाहनाभ्यां रवीन्दु-वैश्वानर-लोचनाभ्याम् ।
 राकाशशाङ्काभमुखाम्बुजाभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥९॥
 नमः शिवाभ्यां जटिलन्धराभ्यां जरा-मृतिभ्यां चविवर्जिताभ्याम् ।
 जनार्दनाब्जोद्भव-पूजिताभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥१०॥
 नमः शिवाभ्यां विषमेक्षणाभ्यां बिल्वच्छदामल्लिकदामभृद्भ्याम् ।
 शोभावती-शान्तवतीश्वराभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥११॥
 नमः शिवाभ्यां पशुपालकाभ्यां जगत्त्रयीरक्षणबद्धहृद्भ्याम् ।
 समस्त-देवासुर-पूजिताभ्यां नमो नमः शङ्कर-पार्वतीभ्याम् ॥१२॥
 स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं शिवपार्वतीयं भक्त्या पठेद् द्वादशकं नरो यः ।
 स सर्वसौभाग्यफलानि भुङ्क्ते शतायुरन्ते शिवलोकमेति ॥१३॥

॥ इति उमामहेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥८५॥

86. अष्टमूर्तिस्तोत्रम्

ध्यानम्

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजत-गिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसम्
 रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशु-मृग-वरा-भीतिहस्तं प्रसन्नम् ।
 पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं बसानं
 विश्वाद्यं विश्वबन्धं निखिलभयहरं पञ्चवंपक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥
 ईशा वास्यमिदं सर्वं चक्षोः सूर्यो अजायत ।
 इति श्रुतिरुवाचातो महादेवः परावरः ॥१॥

अष्टमूर्तेरसौ सूर्यो मूर्तित्वे परिकल्पितः ।
 नेत्रत्रिलोचनस्यैकमसौ सूर्यस्तदाश्रितः ॥२॥
 यस्य भाषा सर्वमिदं विभातीति श्रुतिरिमे ।
 तमेव भान्तमीशानमनुभान्ति खगादयः ॥३॥
 ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां चेति चश्रुतेः ।
 वेदादीनामप्यधीशः स ब्रह्मा कैर्न पूज्यते ॥४॥
 यस्य संहारकाले तु न किञ्चिदवशिष्यते ।
 सृष्टिकाले पुनः सर्वं स एकः सृजति प्रभुः ॥५॥
 सूर्याच्चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
 इति श्रुतेर्महादेवः श्रेष्ठोयः सकलाश्रितः ॥६॥
 विश्वं भूतं भवद्भव्यं सर्वं रुद्रात्मकं श्रुतम् ।
 मृत्युञ्जयस्तारकोऽतः स यज्ञस्य प्रसाधनः ॥७॥
 विषमाक्षोऽपि समदृक् सशिवोऽपि शिवः स च ।
 वृषसंस्थोऽप्यतिवृषो गुणात्माऽप्यगुणोऽमलः ॥८॥
 यदाज्ञामुद्वहन्त्यत्र शिरसा साऽसुराः सुराः ।
 अन्नं वातो वृष इतीषवो यस्य स विश्वपाः ॥९॥
 भिषक्तं त्वा भिषजां शृणोमीति श्रुतेरयम् ।
 स्वभक्त-संसारमहा-रोगहर्ताऽपि शङ्करः ॥१०॥

॥ इत्यष्टमूर्तिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥८६॥

॥ इति शिवस्तोत्राणि ॥



3. ब्रह्मस्तोत्राणि

87. ब्रह्मस्तोत्रम्

हिरण्यकशिपुरुवाच

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसावृतम् ।
 अभिव्यनग् जगदिदं स्वयंजोतिः स्वरोचिषा ॥१॥
 आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्वति लुम्पति ।
 रजः-सत्त्व-तमोधाप्ते पराय महते नमः ॥२॥
 नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ।
 प्राणेन्द्रिय-मनो-बुद्धि-विकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥३॥
 त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ।
 चित्तस्य चित्तेर्मन इन्द्रियाणां पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः ॥४॥
 त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि नत्वा त्रय्या चातुर्होमकविद्यया च ।
 त्वमेक आत्मात्मवतामनादिरनन्तपाराः कविरन्तरात्मा ॥५॥
 त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ।
 कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥६॥
 त्वत्तं परं नाऽपरमप्यनेजदेजच्च किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति ।
 विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा हिण्यगर्भोऽसि बृहत् त्रिपृष्ठः ॥७॥
 व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेन्द्रिय-प्राण-मनो गुणांस्त्वम् ।
 भुक्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्यं अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥८॥

१. लिङ्गपुराणोक्तवचनेन ब्रह्माणः पूजाया विधानं नास्ति, किन्तु आर्षपरम्परया, स्तुतेरुपलभ्यमानत्ववदिहोल्लिख्यते ।

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ।
चिदच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥९॥

॥ इति ब्रह्मस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥८७॥

88. परब्रह्मस्तोत्रम्

अद्य स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने ।
त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नमः ॥१॥
अनन्तनामधेयाय सर्वाकारविधायिने ।
समस्तमन्त्रवाच्याय विश्वैकपतये नमः ॥२॥
दिक्कालाद्यनवच्छिन्ना-ऽनन्त-चिन्मात्रमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥३॥
कर्णिकादिष्विव स्वर्णमर्णवादिष्विवोदकम् ।
भेदिष्वभेदि यत्तस्मै परस्मै महसे नमः ॥४॥
नमो वाङ्-मनसातीत-महिम्ने परमेष्ठिने ।
त्रिगुणाष्टगुणानन्त-गुणानिर्गुणमूर्तये ॥५॥
यथा तथाऽपि यः पूज्यो यत्र तत्रापि योऽर्चितः ।
योऽपि वासोऽपि वा योऽसौ देवस्तस्यै नमोऽस्तु ते ॥६॥
नमः स्वतन्त्रचिच्छक्तिमुद्रितस्वविभूतये ।
अव्यक्त-व्यक्तरूपाय कस्मैचिन्मन्त्रमूर्तये ॥७॥
चराऽचर-जगत-स्फार-स्फुरत्तामात्रधर्मिणे ।
दुर्विज्ञेयरहस्याय युक्तैरप्यात्मने नमः ॥८॥

॥ इति परब्रह्मस्तोत्र समाप्तम् ॥८८॥

॥ इति ब्रह्मस्तोत्राणि ॥



4. विष्णुस्तोत्राणि

89. नारायणकवचम्

राजोवाच

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ।
क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥१॥
भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।
यथाऽऽततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥२॥

श्रीशुक उवाच

वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायाऽनुपृच्छते ।
नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥३॥

विश्वरूप उवाच

धौतांघ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।
कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥४॥
नारायणमयं वर्म सन्नहोद् भय आगते ।
देवभूतात्मकर्मभ्यो नारायणमयः पुमान् ॥५॥
पादयोजानुनोरुर्वोरुदरे ह्यद्यथोरसि ।
मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ॥६॥
ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ।
करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥७॥
प्रणवादि-यकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठ-पर्वसु ।
न्यसेद् हृदय ओङ्कारं विकारमनु मूर्धनि ॥८॥
षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया न्यसेत् ।
वेकारं नेत्रयोर्युञ्जान्नकारं सर्वसन्धिषु ॥९॥
मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्र-मूर्तिर्भवेद् बुधः ।
सविसर्गं फडन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥१०॥

ॐ विष्णावे नमः इत्यात्मानं परं ध्यायेद्भयेयं षट्शक्तिभिर्युतम् ।

विद्या-तेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥११॥

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्तांघ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ।
 दरा-ऽरि-चर्मा-ऽसि-गदेषु-चाप-पाशान् दधानोष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥१२॥
 जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ।
 स्थलेषु मायाबटुवामनोऽव्यात् त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥१३॥
 दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।
 विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥१४॥
 रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोत्रीतधरो वराहः ।
 रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान् ॥१५॥
 मामुग्रधर्मादिखिलात् प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।
 दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥१६॥
 सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्भयाननो मां पथि देवहेलनात् ।
 देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात् कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥१७॥
 धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद् द्वन्द्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा ।
 यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद् बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः ॥१८॥
 द्वैपायनो भगवान् प्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ।
 कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावरः ॥१९॥
 मां केशवो गदया प्रातरव्यात् गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः ।
 नारायणः प्राहण उदात्तशक्तिर्मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥२०॥
 देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायन्त्रिधामाऽवतु माधवो माम् ।
 दोषे हृशीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥
 श्रीवत्सधामा-ऽपररात्र ईषः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ।
 दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभातो विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥
 चक्रं युगान्तानल-तिग्मनेमि भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम् ।
 दन्दगिध दन्दगध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखा हुताशः ॥२३॥
 गदेऽश-निस्पर्शन-विस्फुलिङ्गे निष्पिण्ड निष्पिण्ड्यजितप्रियासि ।
 कूष्माण्ड-वैनायक-यक्ष-रक्षो-भूत-ग्रहांश्चूर्णय चूर्णयाऽरीन् ॥२४॥

त्वं यातुधान-प्रथम-प्रेत-मातृ-पिशाच-विप्रग्रह-घोरदृष्टीन् ।
 नरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥
 त्वं तिग्मधारासि-वरारि-सैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
 चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हरपापचक्षुषाम् ॥२६॥
 यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ।
 सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योऽहोम्य एव च ॥२७॥
 सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ।
 प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥२८॥
 गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभच्छन्दोमयः प्रभुः ।
 रक्षत्वशेषकृच्छेभ्यो विष्वक्सेनस्य वाहनम् ॥२९॥
 सर्वापद्भ्यो हरेर्नाम-रूप-याना-ऽऽयुधानि नः ।
 बुद्धीन्द्रिय-मनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥
 यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ।
 सत्येनाऽनेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥
 यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ।
 भूषणा-ऽऽयुध-लिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥
 तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।
 पातुः सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥
 विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्वर्हिर्भगवान् नारसिंहः ।
 प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्त-समस्ततेजाः ॥३४॥
 मधवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।
 विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुर-यूथपान् ॥३५॥
 एतद्वारयमाणंस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ।
 पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥
 न कुतश्चिद् भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ।
 राज-दस्यु-ग्रहादिभ्यो व्याध्यादिभ्यश्च कर्हिंचित् ॥३७॥
 इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः ।
 योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।
 ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥
 गगनान् व्यपतत् सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ।
 स बालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ॥४०॥
 प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ।

श्रीशुक उवाच

य इदं शृणुयात् काले यो धारयति चादृतः ।
 तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥४१॥
 एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।
 त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥४२॥

॥ इति नारायणकवचं सम्पूर्णम् ॥८९॥

९०. नारायणहृदयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीनारायणहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य भार्गव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः,
 श्रीलक्ष्मीनारायणो देवता, श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

करन्यासः—ॐ नारायणः परं ज्योतिरित्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नारायणः
 परं ब्रह्मेति तर्जनीभ्यां नमः । ॐ नारायणः परो देव इति मध्यमाभ्यां
 नमः । ॐ नारायणः परं धामेति अनामिकाभ्यां नमः । ॐ नारायणः परो
 धर्म इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ विश्वं नारायणः पर इति
 करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः ।

ध्यानम्

उद्यदादित्यसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ।
 शङ्ख-चक्र-गदापाणिं ध्यायेत्लक्ष्मीपतिं हरिम् ॥
 ॐ नमो भगवते नारायणाय इति मन्त्रं जपेत् ।
 श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः ।
 नारायणः परं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते ॥१॥
 नारायणः परो देवो दाता नारायणः परः ।
 नारायणः परो ध्याता नारायण नमोऽस्तु ते ॥२॥
 नारायणः परं धाम ध्याता नारायणः परः ।
 नारायणः परो धर्मो नारायण नमोऽस्तु ते ॥३॥

नारायणः परो बोधो विद्या नारायणः परा ।
 विश्वं नारायणः साक्षान्नारायण नमोऽस्तु ते ॥४॥
 नारायणाद् विधिर्जातो जातो नारायणाच्छिवः ।
 जातो नारायणादिन्द्रो नारायण नमोऽस्तु ते ॥५॥
 रविर्नारायणं तेजश्चन्द्रो नारायणं महः ।
 वह्निर्नारायणः साक्षान्नारायण नमोऽस्तु ते ॥६॥
 नारायण उपास्यः स्याद् गुरुर्नारायणः परः ।
 नारायणः परो बोधो नारायण नमोऽस्तु ते ॥७॥
 नारायणः फलं मुख्यं सिद्धिर्नारायणः सुखम् ।
 सर्वं नारायणः शुद्धो नारायण नमोऽस्तु ते ॥८॥
 नारायणस्त्वमेवाऽसि नारायण हृदि स्थितः ।
 प्रेरकः प्रेर्यमाणानां त्वया प्रेरितमानसः ॥९॥
 त्वदाज्ञां शिरसा धृत्वा जपामि जनपावनम् ।
 नानोपासनमार्गाणां भावकृद्भावबोधकः ॥१०॥
 भावकृद्-भावभूतस्त्वं मम सौख्यप्रदो भव ।
 त्वन्मायामोहितं विश्वं त्वयैव परिकल्पितम् ॥११॥
 त्वदधिष्ठानमात्रेण सैव सर्वार्थकारिणी ।
 त्वमेवैतां पुरस्कृत्य मम कामाद् समर्पय ॥१२॥
 न मे त्वदन्यः सन्नाता त्वदन्यं न हि दैवतम् ।
 त्वदन्यं न हि जानामि पालकं पुण्यरूपकम् ॥१३॥
 यावत् सांसारिको भावो नमस्ते भावनात्मने ।
 तत्सिद्धिदो भवेत् सद्यः सर्वथा सर्वदा विभो ॥१४॥
 पापिनामहमेकाग्र्यो दयालूनां त्वमग्रणीः ।
 दयनीयो मदन्योऽस्ति तव कोऽत्र जगत्त्रये ॥१५॥
 त्वयाऽप्यहं न सृष्टश्चेन्न स्यात्तव दयालुता ।
 आमयो वा न सृष्टश्चेदौषधस्य वृथोदयः ॥१६॥
 पापसङ्घपरिक्रान्तः पापात्मा पापरूपधृक् ।
 त्वदन्यः कोऽत्र पापेभ्यस्त्राता मे जगतीतले ॥१७॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
 त्वमेव विद्या च गुरुस्त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव! ॥१८॥
 प्रार्थनादशकं चैव मूलाष्टकमथापि वा ।
 यः पठेच्छृणुयान्नित्यं तस्य लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥१९॥
 नारायणस्य हृदयं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ।
 लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं यदि चैतद् विनाशकृत् ॥२०॥
 तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तं लक्ष्मीः क्रुध्यति सर्वतः ।
 एतत् सङ्कलितं स्तोत्रं सर्वाभीष्टफलप्रदम् ॥२१॥
 लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं तथा नारायणात्मकम् ।
 जपेद् यः सङ्कलीकृत्य सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥२२॥
 नारायणस्य हृदयमादौ जप्त्वा ततः परम् ।
 लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं यदि जपेन्नारायणं पुनः ॥२३॥
 पुनर्नारायणं जप्त्वा पुनर्लक्ष्मीहृदं जपेत् ।
 पुनर्नारायणहृदं सम्पुटीकरणं जपेत् ।
 एवं मध्ये द्विवारेणं जपेल्लक्ष्मीहृदं हि तत् ॥२४॥
 लक्ष्मीहृदयकं स्तोत्रं सर्वमेतत् प्रकाशितम् ।
 तद्वज्रपादिकं कुर्यादेतत् सङ्कलितं शुभम् ॥२५॥
 स सर्वकाममाप्नोति आधि-व्याधि-भयं हरेत् ।
 गोप्यमेतत् सदा कुर्यान्न सर्वत्र प्रकाशयेत् ॥२६॥
 इति गुह्यतमं शास्त्रमुक्तं ब्रह्मादिकैः पुरा ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गोपयेत् साधयेत् सुधीः ॥२७॥
 यत्रैतत् पुस्तकं तिष्ठेल्लक्ष्मीनारायणात्मकम् ।
 भूत-प्रेत-पिशाचांश्च वेतालान्नाशयेत् सदा ॥२८॥
 लक्ष्मीहृदयप्रोक्तेन विधिना साधयेत् सुधीः ।
 भृगुवारे च रात्रौ तु पूजयेत् पुस्तकद्वयम् ॥२९॥
 सर्वदा सर्वथा सत्यं गोपयेत् साधयेत् सुधीः ।
 गोपनात् साधनाल्लोके धन्यो भवति तत्त्ववित् ।
 नारायणहृदं नित्यं नारायण नमोऽस्तु ते ॥३०॥

॥ इति नारायणहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०॥

११. श्रीनारायणाष्टोत्तर-शतनामस्तोत्रम्

नारायणाय सुरमण्डनमण्डनाय नारायणाय सकलस्थितिकारणाय ।
 नारायणाय भवभीतिनिवारणाय नारायणाय प्रभवाय नमो नमस्ते ॥१॥
 नारायणाय शतचन्द्रनिभाननाय नारायणाय मणिकुण्डलधारणाय ।
 नारायणाय निजभक्तपरायणाय नारायणाय सुभगाय नमो नमस्ते ॥२॥
 नारायणाय सुरलोकप्रपोषकाय नारायणाय खलदुष्टविनाशकाय ।
 नारायणाय दितिपुत्रविमर्दनाय नारायणाय सुलभाय नमो नमस्ते ॥३॥
 नारायणाय विमण्डल-संस्थिताय नारायणाय परमार्थ-प्रदर्शनाय ।
 नारायणाय अतुलाय अतीन्द्रियाय नारायणाय विरजाय नमो नमस्ते ॥४॥
 नारायणाय रमणाय रमावराय नारायणाय रसिकाय रसोत्सुकाय ।
 नारायणाय रसवर्जितनिर्मलाय नारायणाय वरदाय नमो नमस्ते ॥५॥
 नारायणाय वरदाय सुरोत्तमाय नारायणाय अखिलान्तरसंस्थिताय ।
 नारायणाय भय-शोक-विवर्जिताय नारायणाय प्रबलाय नमो नमस्ते ॥६॥
 नारायणाय निगमाय निरञ्जनाय नारायणाय च हराय नरोत्तमाय ।
 नारायणाय कटिसूत्रविभूषणाय नारायणाय हरये महते नमस्ते ॥७॥
 नारायणाय कटकाङ्गदभूषणाय नारायणाय मणिकौस्तुभशोभनाय ।
 नारायणाय तुलामौक्तिकभूषणाय नारायणाय च यमाय नमो नमस्ते ॥८॥
 नारायणाय रविकोटिप्रतापनाय नारायणाय शशिकोटिसुशीतलाय ।
 नारायणाय यमकोटिदुरासदाय नारायणाय करुणाय नमो नमस्ते ॥९॥
 नारायणाय मुकुटोज्ज्वसोज्ज्वलाय नारायणाय मणिनूपुरभूषणाय ।
 नारायणाय ज्वलिताग्निशिखप्रभाय नारायणाय हरये गुरवे नमस्ते ॥१०॥
 नारायणाय दशकण्ठविमर्दनाय नारायणाय विनतात्मजवाहनाय ।
 नारायणाय मणिकौस्तुभभूषणाय नारायणाय परमाय नमो नमस्ते ॥११॥
 नारायणाय विदुराय च माधवाय नारायणाय कमठाय महीधराय ।
 नारायणाय उरगाधिपमञ्जुकाय नारायणाय विरजापतये नमस्ते ॥१२॥
 नारायणाय रविकोटिसमाम्बराय नारायणाय च हराय मनोहराय ।
 नारायणाय निजधर्मप्रतिष्ठिताय नारायणाय च मखाय नमो नमस्ते ॥१३॥

नारायणाय भवरोगरसायनाय नारायणाय शिवचापप्रतोटनाय ।
 नारायणाय निजवानरजीवनाय नारायणाय सुभुजाय नमो नमस्ते ॥१४॥
 नारायणाय सुरथाय सुहृच्छिताय नारायणाय कुशलाय धुरन्धराय ।
 नारायणाय गजपाश-विमोक्षणाय नारायणाय जनकाय नमो नमस्ते ॥१५॥
 नारायणाय निजभृत्यप्रपोषकाय नारायणाय शरणागतपञ्जराय ।
 नारायणाय पुरुषाय पुरातनाय नारायणाय सुपथाय नमो नमस्ते ॥१६॥
 नारायणाय मणिस्वासनसंस्थिताय नारायणाय शतवीर्यशताननाय ।
 नारायणाय पवनाय च केशवाय नारायणाय रविभाय नमो नमस्ते ॥१७॥
 श्रेयः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियांपतिलोकपतिर्धरापतिः ।
 पतिर्गीति-श्चाऽन्धक-वृष्णि-सात्त्वतांप्रसीदतां मे भगवान्सतांपतिः ॥१८॥
 त्रिभुवनैकमनं तमालवर्णं रविकरगौर-वराम्बरं दधाने ।
 वपुरलक-कुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥१९॥
 अष्टोत्तराधिकशतानि सुकोमलानि नामानिये सुकृतिनः सततं स्मरन्ति ।
 तेऽनेकजन्मकृत-पापचयाद्विमुक्ता नारायणे व्यवहितांगतिमाप्नुवन्ति ॥२०॥
 ॥ इति नारायणाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११॥

92. विष्णुपञ्जरस्तोत्रम् ।

ॐ अस्य श्रीविष्णुपञ्जरस्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः,
 श्रीविष्णुः परमात्मा देवता, अहं बीजम्, सोऽहं शक्तिः, ह्रीं कीलकम्
 मम सर्वदेहरक्षणार्थं जपे विनियोगः ।

करन्यासः

ॐ नारदऋषये नमः, शिरसि । अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे । श्रीविष्णु-
 परमात्मदेवतायै नमः, हृदये । अहं बीजाय नमः, गुह्ये । सोऽहं शक्त्यै नमः,
 पादयोः । ॐ ह्रीं कीलकाय नमः, पादाग्रे । ॐ हां ह्रीं हुं ह्रीं ह्रीं हः इति
 मन्त्रः । ॐ हां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ हुं मध्यमाभ्यां
 नमः । ॐ ह्रीं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ हः
 करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । इति करन्यासः ।

ॐ ह्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ हूं शिखायै वषट् ।
ॐ ह्रैं कवचाय हुम् । ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ हः अस्त्राय फट् ।
इति अङ्गन्यासः ।

अहं बीजादिमन्त्रत्रयेण प्राणायामं कुर्यात् ।

ध्यानम्

परं परस्मात् प्रकृतेरनादिमेकं निविष्टं बहुधा गुहायाम् ।
सर्वालयां सर्वचराचरस्य नमामि विष्णुं जगदेकनाथम् ॥१॥
विष्णुपञ्जरकं दिव्यं सर्वदुष्टनिवारणम् ।
उग्रतेजो महावीर्यं सर्वशत्रु-निकृन्तनम् ॥२॥
त्रिपुरं दह्यमानस्य हरस्य ब्रह्मणोदितम् ।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि आत्मरक्षाकरं नृणाम् ॥३॥
पादौ रक्षतु गोविन्दो जङ्घे चैव त्रिविक्रमः ।
उरू मे केशवः पातु कटिं चैव जनार्दनः ॥४॥
नाभिं चैवाऽच्युतः पातु गुह्यं चैव तु वामनः ।
उदरं पद्मनाभश्च पृष्ठे चैव तु माधवः ॥५॥
वामपार्श्वं तथा विष्णुर्दक्षिणं मधुसूदनः ।
बाहू वै वासुदेवश्च हृदि दामोदरस्तथा ॥६॥
कण्ठं रक्षतु वाराहः कृष्णश्च मुखमण्डलम् ।
माधवः कर्णमूले तु हृषीकेशश्च नासिके ॥७॥
नेत्रे नारायणो रक्षेत्ललाटं गरुडध्वजः ।
कपीलौ केशवो रक्षेद् वैकुण्ठः सर्वतोदिशम् ॥८॥
श्रीवत्साङ्गश्च सर्वेषामङ्गानां रक्षको भवेत् ।
पूर्वस्यां पुण्डरीकाक्ष आग्नेय्यां श्रीधरस्तथा ॥९॥
दक्षिणे नारसिंहश्च नैऋत्यां माधवोऽवतु ।
पुरुषोत्तमो मे वारुण्यां वायव्यां च जनार्दनः ॥१०॥
गदाधरस्तु कौबेर्यामीशान्यां पातु केशवः ।
आकाशे च गदा पातु पाताले च सुदर्शनम् ॥११॥
सन्नद्धः सर्वगात्रेषु प्रविष्टो विष्णुपञ्जरः ।
विष्णुपञ्जरविष्टोऽहं विचरामि महीतले ॥१२॥

राजद्वारेऽपथे घोरे सङ्ग्रामे शत्रुसङ्कटे ।
 नदीषु च रणे चैव चोर-व्याघ्र-भयेषु च ॥१३॥
 डाकिनी-प्रेत-भूतेषु भयं तस्य न जायते ।
 रक्ष रक्ष महादेव रक्ष रक्ष जनेश्वरः ॥१४॥
 रक्षन्तु देवताः सर्वा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
 जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः ॥१५॥
 अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ।
 दिवा रक्षतु मां सूर्यो रात्रौ रक्षतु चन्द्रमाः ॥१६॥
 पन्थानं दुर्गमं रक्षेत् सर्वमेव जनार्दनः ।
 रोग-विघ्नहतश्चैव ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥१७॥
 स्त्रीहन्ता बालघाती च सुरापो वृषलीपतिः ।
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो यः पठेन्नाऽत्र संशयः ॥१८॥
 अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
 विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी लभते गतिम् ॥१९॥
 आपदो हरते नित्यं विष्णुस्तोत्रार्थसम्पदा ।
 यस्त्विदं पठते स्तोत्रं विष्णुपञ्जरमुत्तमम् ॥२०॥
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।
 गोसहस्रफलं तस्य वाजपेयशतस्य च ॥२१॥
 अश्वमेध-सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
 सर्वकामं लभेदस्य पठेन्नाऽत्र संशयः ॥२२॥
 जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
 ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥२३॥

॥ इति विष्णुपञ्जरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥९२॥

93. विष्णुमहिम्नः स्तोत्रम्

महिम्नस्ते पारं विधि-हर-फणीन्द्रप्रभृतयो
 विदुर्नाद्याप्यज्ञश्चलमतिरहं नाथ न कथम् ।
 विजानीयामद्धा नलिननयनात्मीयवचसो
 विशुद्ध्यै वक्ष्यामीषदपि तु तथापि स्वमतितः ॥१॥

यदाहुर्ब्रह्मैके पुरुषमितरे कर्म च परे-
 उपरे बुद्धं चाऽन्ये शिवमपि च धातारमपरे ।
 तथा शक्तिं केचिद् गणपतिमुतार्कं च सुधियो
 मतीनां वै भेदात्त्वमसि तदशेष मम मतिः ॥२॥
 शिवः पादाम्भस्ते शिरशि धृतवानादरयुतं
 तथा शक्तिश्चासौ तव तनुलतेजोमयतनुः
 दिनेशं चैवामं तव नयनमूचुस्तु नियमा-
 स्त्वदन्यः को ध्येयो जगति किल देवो वद विभो ॥३॥
 क्वचिन्मत्स्य कूर्मः क्वचिदपि वराहो नरहरिः
 क्वचित् खर्वो रामो दशरथसुतो नन्दतनयः ।
 क्वचिद् बुद्धः कल्किर्विहरसि कुमारापहतये
 स्वतन्त्रोऽजो नित्यो विभुरपि तवाक्रीडनमिदम् ॥४॥
 हताम्नायेनोक्तं स्तवनवरमाकर्ण्य विधिना
 द्रुतं मात्स्य धृत्वा वपुरजरशङ्खासुरमथो ।
 क्षयं नीत्वा मृत्योर्निगमगणमुद्धृत्य जलधे-
 रशेषं संगुप्तं जगदपि च वेदैकशरणम् ॥५॥
 निमज्जन्तं वार्धो नग वरमुपालोक्य सहसा
 हितार्थं देवानां कमठवपुषा-ऽऽविश्य गहनम् ।
 पयोराशिं पृष्ठे तमजित-सलीलं धृतवतो
 जगद्धातुस्ते-ऽभूत् किम सुलभभाराय गिरिकः ॥६॥
 हिरण्याक्षः क्षोणीमविशदसुरो नक्रनिलयं
 समादायामर्त्यैः कमलजमुखैरम्बरगतैः ।
 स्तुतेनानन्तात्मन्न-चिरमवभाति स्म विधृता
 त्वय दंष्ट्राग्रेऽसाववनिरखिला कन्दुक इव ॥७॥
 हरिः क्वास्तीत्युक्तं दनुजपतिनाऽऽपूर्य निखिलं
 जगन्नादैः स्तम्भान्नरहरि शरीरेण करजैः ।
 समुत्पत्त्याशूरा-वसुरवरमादारितवत
 स्तवाख्याता भूमन् किम् जगति नो सर्वगतता ॥८॥

विलोक्याजं द्वार्ग कपटलघुकायं सुररिपु -
 निर्भिद्धोऽपि प्रादादसुरगुरुणात्मीयमखिलम् ।
 प्रसन्नस्तद्धक्त्या त्यजसि किल नाद्यापि भवन्
 बलेर्भक्ताधीन्यं तव विदितमेवामरपते ॥९॥
 समाधावासक्तं नृपतितनयैर्वीक्ष्य पितरं
 हतं बाणै रोषादुरुतरमुपादाय परशुम् ।
 बिना क्षत्रं विष्णो क्षितितलममेषं कृतवतो-
 ऽसत्किं भूभारोद्धारणपटुता ते न विदिता ॥१०॥
 समाराध्योमेश त्रिभुवनमिदं वासवमुखं
 वशे चक्रे चक्रिन्नगणयदनीशं जगदिदम् ।
 गतोऽसौ लङ्केशस्त्वचिरमथ ते बाणविषयं
 न केनाप्तं त्वत्तः फलमविनयस्यासुररिपोः ॥११॥
 क्वचिद्व्यं शौर्यं क्वचिदपि रणे कापुरुषता
 क्वचिद् गीताज्ञानं क्वचिदपि परस्त्रीविहरणम् ।
 क्वचिन्मृत्नाशित्वं क्वचिदपि च बैकुण्ठविभव-
 श्ररित्रं ते नूनं शरणदविमोहाय कुधियाम् ॥१२॥
 न हिंस्यादित्येद् ध्रुवमवितथं वाक्यमबुधै-
 रथाग्रीषोमीयं पशुमिति तु विप्रैर्निगदितम् ।
 तवैत्तत्रास्थानेऽसुरगणविमोहाय गदतः
 समृद्धिर्नीचानां नयकर हि दुःखाय जगतः ॥१३॥
 विभागे वर्णानां निगमनिचये चावनितले
 विलुप्ते सञ्जातो द्विजवरगृहे शम्भलपुरे ।
 समारुह्याश्रं स्वं लसदसिकरो म्लेच्छनिकरान्
 निहन्तास्युन्मत्तान् किल कलियुगान्ते युगपते ॥१४॥
 गभीरे कासारे जलचरवराकृष्टचरणो
 रणेऽशक्तो मज्जन्नभयद जलेऽचिन्तयदसा ।
 यदा नागेन्द्रस्त्वां सपदि पदपाशादपगतौ
 गतः स्वर्गं स्थानं भवति विपदां ते किमु जनः ॥१५॥
 सुतैः पुष्टो वेधाः प्रतिवचनदानेऽप्रभुरसा-
 वथात्मन्यात्मानं शरणमगमत्त्वां त्रिजगताम् ।

ततस्तेऽस्तातङ्का ययुरथ मुदं हंसवपुषा
 त्वया ते सार्वज्ञं प्रथितममरेह किमु नो ॥१६॥
 समाविद्धो मातुर्वचनविशिखैराशु विपिनं
 तपश्चक्रे गत्वा तव परमतोषाय परमम।
 ध्रुवो लेभे दिव्यं पदमचलमल्पेऽपि वयसि
 किमस्त्यस्मिंल्लोके त्वयि वरद तुष्टे दुरधिगम् ॥१७॥
 वृकाद्धीतस्तूर्णं स्वजनभयभित्त्वा पशुपति-
 भ्रमँल्लोकान् सर्वान् शरणमुपयातोऽथ दनुजः।
 स्वयं भस्मीभूतस्तव वचनभङ्गोदगतमती
 रमेशाहो माया तव दुरनुमेयाऽखिलजनैः ॥१८॥
 हतं दैत्यैर्दृष्ट्वाऽमृतघटमजय्यैस्तु नयतः
 कटाक्षैः सम्मोहं युवतिवरवेषेण दितिजान्।
 समग्रं पीयूषं सुभग सुरपूगाय ददतः
 समस्यापि प्रायस्तव खलु हि भृत्येष्वभिरतिः ॥१९॥
 समाकृष्टा दुष्टैर्द्रुपदतनयाऽलब्धशरणा
 सभायां सर्वात्मंस्तव शरणमुच्चैरुपगता।
 समक्षं सर्वेषामभवदचिरं चौरनिचयः
 स्मृतेस्ते साफल्यं नयनविषयं नो किमु सताम् ॥२०॥
 वदन्त्येको स्थानं तव वरद वैकुण्ठमपरे
 गवां लोकं लोकं फणिनिलयपातालमितरे।
 तथाऽन्ये क्षीरोदं हृदयनलिनं चापि तु सतां
 न मन्ये तत्स्थानं त्वहमिह च यत्राऽसि न विभो ॥२१॥
 शिवोऽहं रुद्राणामहममरराजो दिविषदां
 मुनीनां व्यासोऽहं सुरवरसमुद्रोऽस्मि सरसाम्।
 कुवेरो यक्षाणामिति तव वचो मन्दमतये
 न जाने तज्जातं जगति ननु यन्नासि भगवन् ॥२२॥
 शिरो नाको नेत्रे शशिदिनकरावम्बरमुरो
 निशि श्रोत्रे वाणी निगमनिकरस्ते कटिरिला।
 अकूपारो बस्तिचरणमपि पातालमिति वं
 स्वरूपं तेऽज्ञात्वा नृतनुमवजानन्ति कुधियः ॥२३॥

शरीरं वैकुण्ठं हृदयनलिनं वाससदनं
 मनोवृत्तिस्ताक्षर्यो मतिरियमथो सागरसुता ।
 विहारस्तेऽवस्थात्रितयमसवः पार्षदगणो
 न पश्यत्यज्ञा त्वामिह बहिरहो याति जनता ॥२४॥
 सुधीरं कान्तारं विशति च तडागं सुगहनं
 तथोत्तुङ्गं शृङ्गं सपदि च समारोहति गिरेः ।
 प्रसूनार्थं चैतोऽम्बुजममलमेकं त्वयि विभो
 समर्प्याज्ञस्तूर्णं बत न च सुखं विदन्ति जनः ॥२५॥
 कृतैकान्तावासा विगतनिखिलाशाः शमपरा
 जितश्वासोच्छ्वासास्त्रुटितभवपाशाः सुयमिनः ।
 परं ज्योतिः पश्चन्त्यनघ यदि पश्यन्तु मम तु
 श्रियाशिलष्टं भूयान्नयनविषयं ते किल वपुः ॥२६॥
 कदा गङ्गोत्तुङ्गामलतरतरङ्गाच्छपुलिने
 वसन्नाशापाशादखिल-खलदाशादपगतः ।
 अये लक्ष्मीकान्ताम्बुजनयन तातामरपते
 प्रसीदेत्याजल्पन्नमरवर नेष्यामि समयम् ॥२७॥
 कदा शृङ्गैः स्फीते मुनिगणपरीते हिमनगे
 द्रुमावीते शीते सुरमधुरगीते प्रतिवसन् ।
 क्वचिद्धयानासक्तो विषयसुविरक्तो भवहरं
 स्मरंस्ते पादाब्जं जनिहर समेष्यामि विलयम् ॥२८॥
 सुधापानं ज्ञानं न च विपुलदानं न निगमो
 न योगो नो योगी न च निखिलभोगोपरमणम् ।
 जपो नो नो तीर्थं व्रतमिह न चोग्रं त्वयि तो
 विना भक्तिं तेऽलं भवभयविनाशाय मधुहन् ॥२९॥
 नमः सर्वेष्टाय श्रुतिशिखरदृष्टाय च नमो
 नमोऽसंश्लिष्टाय त्रिभुवननिविष्टाय च नमः ।
 नमो विस्पष्टाय प्रणवपरिमृष्टाय च नमो
 नमस्ते सर्वात्मन् पुनरपि पुनस्ते मम नमः ॥३०॥

कणान् कश्चिद् वृष्टेर्गणन-निपुणस्तूर्णमवने-
 स्तथाऽशेषान् पांसूनमत कलयेच्चापि तु जनः ।
 नभः पिण्डीकुर्यादचिरमपि चेच्चर्मवदिदं
 तथापीशासौ ते कलयितुमलं नाऽखिलगुणान् ॥३१॥
 क्व माहात्म्यं सोमीज्झितमविषयं वेदवचसां
 विभो ते मे चेतः क्व च विविधतापाहतमिदम् ।
 मयेदं यत् किञ्चिद् गदितमथ बाल्येन तु गुरो
 गृहाणैतच्छुद्धार्षितमिह न हेयं हि महताम् ॥३२॥
 इति हरिस्तवनं सुमनोहरं परमहंसजनेन समीरितम् ।
 सुगमसुन्दरसारपदास्पदं तदिदमस्तु हरेरनिशं मुदे ॥३३॥
 गदारथाङ्गाम्बुजकम्बुधारिणो रमासमाश्लिष्टतनोस्तनोतु नः ।
 बिलेशयाधीश-शरीरशायिनः शिवः स्तवोऽजस्त्रमयं परं हरेः ॥३४॥
 पठेदिमं यस्तु नरः परं स्तवं समाहितोऽघौघ-घनप्रभञ्जनम् ।
 स विन्दतेऽत्राखिल-भोगसम्पदो महीयते विष्णुपदे ततो ध्रुवम् ॥३५॥

॥ इति श्रीविष्णुमहिम्नः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥९३॥

94. सङ्कष्टनाशनं विष्णुस्तोत्रम्

नारद उवाच

पुनर्दैत्यं समायान्तं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ।
 भयप्रकम्पिताः सर्वे विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रमुः ॥१॥

देवा ऊचुः

नमो मत्स्य-कूर्मादि-नानास्वरूपैः सदा भक्तकार्योद्यतायार्तिहन्त्रे ।
 विधात्रादि-सर्गस्थिति-ध्वंसकर्त्रे गदा-शङ्ख-पद्मारिहस्ताय तेऽस्तु ॥२॥
 रमावल्लभायासुराणां निहन्त्रे भुजङ्गारियानाय पीताम्बराय ।
 मखादि-क्रियापाककर्त्रे विकर्त्रे शरण्या तस्मै नताः स्मो नताः स्मः ॥३॥
 नमो दैत्य-सन्तार्पिता-मर्त्यदुःखाचलध्वंस-दम्भोलये विष्णवे ते ।
 भुजङ्गेश-तल्पेशयायार्कचन्द्र द्विनेत्राय तस्मै नताः स्मो नताः स्म ॥४॥

नारद उवाच

सङ्कष्टनाशनं नाम स्तोत्रमेतत् पठेन्नरः ।
स कदाचित्र सङ्कष्टैः पीड्यते कृपया हरेः ॥५॥

॥ इति विष्णुस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥९४॥

95. विष्णोरष्टनामस्तोत्रम्

अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम् ।
हंसं नारायणं चैवमेतन्नमाष्टकं पठेत् ॥१॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं दारिद्र्यं तस्य नश्यति ।
शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःस्वप्नः सुखदो भवेत् ॥२॥
गङ्गायां मरणं चैव दृढा भक्तिस्तु केशवे ।
ब्रह्मविद्याप्रबोधश्च तस्मान्नित्यं पठेन्नरः ॥३॥

॥ इति विष्णोर्नामाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥९५॥

96. विष्णोः षोडशनामस्तोत्रम्

औषधे चिन्तयेद् विष्णुं भोजने च जनार्दनम् ।
शयने पद्मनाभं च विवाहे च प्रजापतिम् ॥१॥
युद्धे चक्रधरं देवं प्रवासे च त्रिविक्रमम् ।
नारायणं तनुत्यागे श्रीधरं प्रियसंगमे ॥२॥
दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं सङ्कष्टे मधुसूदनम् ।
कानने नारसिंहं च पावके जलशायिनम् ॥३॥
जलमध्ये वराहं च पर्वते रघुनन्दनम् ।
गमने वामनं चैव सर्वकार्येषु माधवम् ॥४॥
षोडशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ॥५॥

॥ इति श्रीविष्णोः षोडशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥९६॥

97. विष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

अर्जुन उवाच

किं नु नामसहस्राणि जपन्ते च पुनः पुनः ।
यानि नामानि दिव्यानि तानि चाऽऽचक्ष्व केशव ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मत्स्यं कूर्मं वराहं च वामनं च जनार्दनम् ।
गोविन्दं पुण्डरीकाक्षं माधवं मधुसूदनम् ॥२॥
पद्मनाभं सहस्राक्षं वनमालिं हलायुधम् ।
गोवर्धनं हृषीकेशं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ॥३॥
विश्वरूपं वासुदेवं रामं नारायणं हरिम् ।
दामोदरं श्रीधरं च वेदाङ्गं गरुडध्वजम् ॥४॥
अनन्तं कृष्णगोपालं जपतो नास्ति पातकम् ।
गवां कोटिप्रदानस्य अश्वमेधशतस्य च ॥५॥
कन्यादानसहस्राणां फलं प्राप्नोति मानवः ।
अमायां वां पौर्णमास्यामेकादश्यां तथैव च ॥६॥
सन्ध्याकाले स्मरेन्नित्यं प्रातःकाले तथैव च ।
मध्याह्ने च जपन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७॥

॥ इति विष्णोरष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥९७॥

98. विष्णोः शतनामस्तोत्रम्

नारद उवाच

ॐ वासुदेवं हृषीकेशं वामनं जलशायिनम् ।
जनार्दनं हरिं कृष्णं श्रीवक्षं गरुडध्वजम् ॥१॥
वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं नरकान्तकम् ।
अव्यक्तं शाश्वतं विष्णुमनन्तमजमव्ययम् ॥२॥
नारायणं गदाध्यक्षं गोविन्दं कीर्तिभाजनम् ।
गोवर्धनोद्धरं देवं भूधरं भुवनेश्वरम् ॥३॥

वेत्तारं यज्ञपुरुषं यज्ञेशं यज्ञवाहकम् ।
 चक्रपाणिं गदापाणिं शङ्खपाणिं नरोत्तमम् ॥४॥
 वैकुण्ठं दुष्टदमनं भूगर्भं पीतवाससम् ।
 त्रिविक्रमं त्रिकालज्ञं त्रिमूर्तिं नन्दिकेश्वरम् ॥५॥
 रामं रामं हयग्रीवं भीमं रौद्रं भवोद्भवम् ।
 श्रीपतिं श्रीधरं श्रीशं मङ्गलं मङ्गलायुधम् ॥६॥
 दामोदरं दमोपेतं केशवं केशिसूदनम् ।
 वरेण्यं वरदं विष्णुमानन्दं वासुदेवजम् ॥७॥
 हिरण्यरेतसं दीप्तं पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
 सकलं निष्फलं शुद्धं निर्गुणं गुणशाश्वतम् ॥८॥
 हिरण्यतनुसङ्काशं सूर्यायुतसमप्रभम् ।
 मेघश्यामं चतुर्बाहुं कुशलं कमलेक्षणम् ॥९॥
 ज्योतिरूपमरूपं च स्वरूपं रूपसंस्थितम् ।
 सर्वज्ञं सर्वरूपस्थं सर्वेशं सर्वतोमुखम् ॥१०॥
 ज्ञानं कूटस्थमचलं ज्ञानदं परमं प्रभुम् ।
 योगीशं योगनिष्णातं योगिनं योगरूपिणम् ॥११॥
 ईश्वरं सर्वभूतानां वन्दे भूतमयं प्रभुम् ।
 इति नामशतं दिव्यं वैष्णवं खलु पापहम् ॥१२॥
 व्यासेन कथितं पूर्वं सर्वपाप्रणाशनम् ।
 यः पठेत् प्रातरुत्थाय स भवेद् वैष्णवो नरः ॥१३॥
 सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुसायुज्यमानुष्यात् ।
 चान्द्रायणसहस्राणि कन्यादानशतानि च ॥१४॥
 गवां लक्षणसहस्राणि मुक्तिभागी भवेन्नरः ।
 अश्वमेधायुतं पुण्यं फलं प्राप्नोति मानवः ॥१५॥

॥ इति विष्णुशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१८॥

११. विष्णुस्तवराजः

पद्मोवाच

योगेन सिद्ध-विबुधैः परिभाव्यमानं लक्ष्म्यालयं तुलसिकाचित-भक्तभृङ्गम् ।
 प्रोत्तुङ्गरक्त-नखराङ्गुलि-पत्रचित्रं गङ्गारसं हरिपदाम्बुजामाश्रयेऽहम् ॥१॥
 गुम्फन् मणिप्रचय-घटितराजहंससिञ्जत्सुनूपुरयुतं पदपद्मवृन्दम् ।
 पीताम्बराञ्जल-विलोल-चलत्पताकं स्वर्णात्रिवक्त्रवलयं च हरेः स्मरामि ॥२॥
 जङ्घे सुपर्ण-गल-नीलमणि-प्रवृद्धशोभास्पदारुण-मणिद्युति-चञ्चुमध्ये ।
 आरक्त-पादतल-लम्बनशोभमाने लोकेशणोत्सवकरे च हरेः स्मरामि ॥३॥
 ते जानुनी मखपेतर्भुजमूलसङ्गरङ्गोत्सवावृत-तडिद्वसने विचित्रे ।
 चञ्चत्पत्रत्रिमुख-निर्गतसामगीत विस्तारितात्मयशसी च हरेः स्मरामि ॥४॥
 विष्णोः कटिविधि-कृतान्त-मनोजभूमिं जीवाण्डकोशगण-सङ्गदुकूलमध्याम् ।
 नानागुणप्रकृति-पीतविचित्रवस्त्रां ध्याये निबद्धवसनां खगपृष्ठसंस्थाम् ॥५॥
 शान्तोदरं भगवतस्त्रिवलि-प्रकाशमावर्तनाभिविकसद्-विधिजन्मपद्यम् ।
 नाडीनदी-गणरसोत्थसितान्नसिन्धुं ध्यायेऽण्डकोशनिलयं तनुलोमरेखम् ॥६॥
 वक्षः पयोधितनयाकुचकुङ्कुमेन हारेण कौस्तुभमणिप्रभया विभातम् ।
 श्रीवत्सलक्ष्म हरिचन्दनजप्रसूनमालोचितं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥७॥
 बाहू सुवेषसदनौ वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुरितदैत्य-विनाशदक्षौ ।
 तौ दक्षिणौ भगवतश्च गदासुनाभतेजोर्जितौ सुललितौ मनसा स्मरामि ॥८॥
 वामौ भुजौ मुररिपोर्धृतपद्मशङ्खौ श्यामौ करीन्द्रकरवन्मणिभूषणाढ्यौ ।
 रक्ताङ्गुलिप्रचय-चुम्बितजानुमध्यौ पद्मालयाप्रियकरौ रुचिरौ स्मरामि ॥९॥
 कण्ठं मृणालममलं मुखपङ्कजस्य लेखात्रयेण वनमालिकया निवीतम् ।
 किम्बा विमुक्तिवशमन्त्रक-सत्फलस्य वृन्तं चिरं भगवतः सुभगं स्मरामि ॥१०॥
 वक्त्राम्बुजं दशनहासविकास-रम्यं रक्ताधरौष्ठ-वरकोमलवाक्सुधाढ्यम् ।
 सन्मानसोद्भव-चलेक्षण-पत्रचित्रं लोकाभिरामममलं च हरेः स्मरामि ॥११॥
 सूर्यात्मजावसथ-गन्धमिदं सुनासं भूपल्लवं स्थितिलयोदयकर्मदक्षम् ।
 कामोत्सवं च कमलाहृदयप्रकाशं सञ्चिन्तयामि हरिवक्त्रविलासदक्षम् ॥१२॥
 कर्णौ लसन्मकर-कुण्डलगन्धलोलौ नानादिशां च नभसश्च विकासगेहम् ।
 लोलालक-प्रचयचुम्बन-कुञ्जिताग्रौ लग्नौ हरेर्मणिकिरीटतटे स्मरामि ॥१३॥

भालं विचित्रतिलकं प्रियचारुगन्ध गोरोचना-रचनया ललनाक्षिसख्यम् ।
 ब्रह्मैकधाम-मणिकान्त-किरीटजुष्टं ध्याये मनोनयनहारकमीश्वरस्य ॥१४॥
 श्रीवासुदेवचिकुरं कुटिलं निबद्धं नानासुगन्धिकुसुमैः स्वजनादरेण ।
 दीर्घं रमाहृदयगाशमनं धुनन्तं ध्यायेऽम्बुवाहरुचिरं हृदयाब्जमध्ये ॥१५॥
 मेघाकारं सोमसूर्यप्रकाशं सुभ्रून्नासं शक्रचापैकमानम् ।
 लोकातीतं पुण्डरीकायताक्षं विद्युच्चैलं चाश्रयेऽहं त्वपूर्वम् ॥१६॥
 दीनं हीनं सेवया दैवगत्या पापैस्तापैः पूरितं मे शरीरम् ।
 लोभाद्भान्तं शोकमोहादिविद्धं कृपादृष्ट्या पाहि मां वासुदेव ॥१७॥
 ये भक्त्याऽऽद्यां ध्यायमानां मनोज्ञां व्यक्तिं विष्णोः षोडशश्लोकपुष्पैः ।
 स्तुत्वा नत्वा पूजयित्वा विधिज्ञाः शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ॥१८॥
 पद्मेरितमिदं पुण्यं शिवेन परिभाषितम् ।
 धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं परम् ॥१९॥
 पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेऽहसोऽखिलात् ।
 धर्मार्थ-काम-भोक्षाणां परत्रेह फलप्रदम् ॥२०॥

॥ इति विष्णुस्तवराजः सम्पूर्णः ॥१९॥

100. विष्णवष्टकम्

पुरा सृष्ट्वाऽऽविष्टः पुरुष इति तत्प्रेक्षणमुखः
 सहस्राक्षो भुक्त्वा फलमनुशयी शास्ति तयुः ।
 स्वयं शुद्धं शान्तं निरवधिसुखं नित्यमचलं
 नमामि श्रीविष्णुं जलधितनया-सेवितपदम् ॥१॥
 अनन्तं सत्सत्यं भवभयहरं ब्रह्म परमं
 सदा भातं नित्यं जगदिदमितः कल्पितपरम् ।
 मुहुर्ज्ञानं यस्मिन् रजतमिव शुक्तौ भ्रमहरं
 नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥२॥
 मतौ यत्सद्रूपं मृगयति बुधोऽतन्निरसनान्
 न रज्जौ सर्पोऽपि मुकुरजठरे नास्ति वदनम् ।
 अतोऽपार्थं सर्वं न हि भवति यस्मिंश्च तमहं
 नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥३॥

भ्रमद्धीविक्षिप्तेन्द्रियपथमनुष्यैर्हृदि विभुं
 नयं वै वेद स्वेन्द्रियमपि वसन्तं निजमुखम् ।
 सदा सेव्यं भक्तैर्मुनिमनसि दीप्तं मुनिनुतं
 नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥४॥
 बुधा यत्तद्रूपं न हि तु नैर्गुण्यममलं
 यथा येऽव्यक्तं ते सततमकलङ्कं श्रुतिनुतम् ।
 यदाहुः सर्वत्रास्त्रलितगुणसत्ताकमतुलं
 नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥५॥
 लयादौ यस्मिन् यद विलयमपि उद्यत् प्रभवति
 तथा जीवोपेतं गुरुकरुणया बोधजनने ।
 गतं चाऽत्यन्तान्तं व्रजति सहसा सिन्धुनदवन्
 नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥६॥
 जडं सङ्घातं यन्निमिषलवलेशेन चपलं
 यथा स्वं स्वं कार्यं प्रथयति महामोहजनकम् ।
 मनोवाग्जीवानां न निर्विशति य निर्भयपदं
 नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥७॥
 गुणाख्याने यस्मिन् प्रभवति न वेदोऽपि नितरां
 निषिध्यद्वाक्यार्थैश्चकित-चकितं योऽस्य वचनम् ।
 स्वरूपं यद् गत्वा प्रभुरपि च तूष्णीं भवति तं
 नमामि श्रीविष्णुं जलधितनयासेवितपदम् ॥८॥
 विष्णवष्टकं यः पठति प्रभात नरोऽप्यखण्डं सुखमश्रुते च ।
 यन्नित्यबोधाय सुबुद्धिनोक्तं रघूत्तमाख्येन विचार्य सम्यक् ॥९॥
 ॥ इति विष्णवष्टकं सम्पूर्णम् ॥१००॥

101. विष्णुभुजगंप्रयातस्तोत्रम्

चिदंशं विभुं निर्मलं निर्विकल्पं निरीहं निराकारमोङ्कारगम्यम् ।
 गुणातीतमव्यक्तमेकं तुरीयं परं ब्रह्म यं वेद तस्मै नमस्ते ॥१॥

विशुद्धं शिवं शान्तमाद्यन्तशून्यं जगज्जीवनं ज्योतिरानन्दरूपम् ।
 अदिग्देश-काल-व्यवच्छेदनीयं त्रयी वक्ति यं वेद तस्मै नमस्ते ॥२॥
 महायोगपीठे परिभ्राजमाने धरण्यादितत्त्वात्मके शक्तियुक्ते ।
 गुणाहस्करे वह्निबिम्बार्धमध्ये समासीनमोङ्कर्णिकेऽष्टाक्षराब्जे ॥३॥
 समानोदितानेकयेन्दुकोटिप्रभापूरतुल्यद्युतिं दुर्निरीक्षम् ।
 न शीतं न चोष्णं सुवर्णावदातप्रसन्नं सदानन्दसंवित्स्वरूपम् ॥४॥
 सुनासापुटं सुन्दरभ्रूललाटं किरीटोचिताकुञ्चितस्निग्धकेशम् ।
 स्फुरत्पुण्डरीकाभिरामायताक्षं समुत्फुल्लरत्नप्रसूनावतंसम् ॥५॥
 लसत्कुण्डलामृष्ट-गण्डस्थलान्तं जपारागचोराधरं चारुहासम् ।
 अलिव्याकुलामोदि-मन्दारमालं महोदेस्फुरत्कौस्तुभोदारहारम् ॥६॥
 सुरत्नाङ्गदैरन्वितं बाहुदण्डैश्चतुर्भिश्चलत्कङ्कणालङ्कृताग्रैः ।
 उदारोदरालंकृतं पीतवस्त्रं सदद्वन्द्व-निर्धूत-पद्माभिरामम् ॥७॥
 स्वभक्तेषु सन्दर्शिताकारमेवं सदा भावयन् सन्निरुद्धेन्द्रियाश्वः ।
 दुरापं नरो याति संसारपारं परस्मै परेभ्योऽपि तस्मै नमस्ते ॥८॥
 श्रिया शातकुम्भद्युति-स्निग्धकान्त्या धरण्या च दूर्वादलश्यामलाङ्गया ।
 कलत्रद्वयेनामुनातोषिताय त्रिलोकीगृहस्थाय विष्णो नमस्ते ॥९॥
 शरीरं कलत्रं सुतं बन्धुवर्गं वयस्यं धनं सद्य भृत्यं भुवं च ।
 समस्तं परित्यज्य हा कष्टमेको गमिष्यामि दुःखेन दूरं किलाहम् ॥१०॥
 जरेयं पिशाचीव हा जीवतो मे वसामन्ति रक्तं च मांसं बलं च ।
 अहो देव सीदामि दीनानुकम्पिन् किमद्यापि हन्त त्वयोदासितव्यम् ॥११॥
 कफ-व्याहतोष्णोल्बणश्वासवेग-व्यथाविस्फुरत्सर्वमर्मास्थिबन्धाम् ।
 विचिन्त्याहमन्त्यामसख्यामवस्थां बिभेमि प्रभो किं करोमि प्रसीद ॥१२॥
 लपन्नच्यूतानन्त गोविन्द विष्णो मुरारे हरे नाथ नारायणेति ।
 यथानुस्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं तथा मे दयाशील देव प्रसीद ॥१३॥
 भुजङ्गप्रयातं पठेद्यस्तु भक्त्या समाधाय चित्ते भवन्तं मुरारे ।
 स मोहं विहायाशु युष्मत्प्रसादात् समाश्रित्य योगं व्रजत्यच्युतं त्वाम् ॥१४॥

॥ इति विष्णुभुजंगप्रयातस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०१॥

102. श्रीविष्णुस्तुतिः

बहुदुःखभरोदकस्तमसोग्रतमोधमः ।
 नरको नर को वा तं मतिमानतिवर्तते ॥१॥
 नरकान्तक-पादाब्ज-परिचर्यापरात्ररान् ।
 विना विनायकाद्यर्चापरोऽप्युच्चतरोरितः ॥२॥
 पतेत्तत्र न तत्राणां कुर्युस्ते पर्युपासिताः ।
 पश्य दृश्यपदद्वन्द्वस्यार्थं न व्यर्थधीर्भव ॥३॥
 असुरो हि सुरकलेशकरो नरकनामकः ।
 तस्य हन्ता सतां चिन्तासन्तापाद्यन्तकृन्न किम् ॥४॥
 विशेषेण धनन्ति कार्यं विघ्नास्तेषामधीश्वरः ।
 आरब्धशुभकार्याणां विरुद्धस्य हि नायकाः ॥५॥
 अजामिलो द्विजः पूर्वमतिचक्राम केन तान् ।
 सासुराः कस्य भजकाः कुतो वा तत्र चक्रमुः ॥६॥
 इति चिन्तय तेनापि सन्देहं छिन्धि सन्मते ।
 गङ्गासेतू पापभङ्गकरौ कः कुरुते प्रभुः ॥७॥
 हयाननस्य वाक्शेष्यो नाभिपुत्रः पदार्चकः ।
 गुरुहिं तस्य भूभङ्गः शिवाय स्यात् सतां सदा ॥८॥
 वादिराजयतिप्रोक्तं स्तोत्रमेतत् पठन् सदा ।
 वादे विजयमाप्नोति नाऽधो याति कदाचन ॥९॥

॥ इति श्रीवादिराजकृता विष्णुस्तुतिः समाप्ता ॥१०२॥

103. अच्युताष्टकस्तोत्रम् (1)

अच्युताऽच्युत हरे परमात्मन् राम कृष्ण पुरुषोत्तम विष्णो ।
 वासुदेव भगवन्ननिरुद्ध श्रीपति शमय दुःखमशेषम् ॥१॥
 विश्वमंगल विभो जगदीश नन्दनन्दन नृसिंह नरेन्द्र ।
 मुक्तिदाय मुकुन्द मुरारे श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥२॥
 रामचन्द्र रघुनायक देव दीनानाथ दुरितक्षयकारिन् ॥
 यादवेन्द्र यदुभूषण यज्ञ श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥३॥

देवकीतनय दुःखदवाग्ने राधिकारमण रम्यसुमूर्ते ।
 दुःखमोचन दयार्णव नाथ श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥४॥
 गोपिकावदनचन्द्रचकोर नित्य निर्गुण निरञ्जन विष्णो ।
 पूर्णरूप जय शङ्कर सर्व श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥५॥
 गोकुलेश गिरिधारणधीर यामुनाच्छतटखेलन वीर ।
 नारदादिमुनिवन्दितपाद श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥६॥
 द्वारकाधिप दुरन्तगुणाब्धे प्राणनाथ परिपूर्ण भवारे ।
 ज्ञानगम्य गुणसागर ब्रह्मन् श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥७॥
 दुष्टनिर्दलन देव दयालो पद्मनाभ धरणीधरधारिन् ।
 रावणान्तक रमेश मुरारे श्रीपते शमय दुःखमशेषम् ॥८॥
 अच्युताष्टकमिदं रमणीयं निर्मितं भव भयं विनिहन्तुम् ।
 यः पठेद् विषयवृत्ति-निवृत्ति-जन्मदुःखमखिलं स जहाति ॥९॥

॥ इति अच्युताष्टकस्तोत्रं समाप्तम् ॥१०३॥

104. अच्युताष्टकम् (2)

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णादामोदरं वासुदेवं हरिम् ।
 श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥१॥
 अच्युतं केशवं सत्य-भा-माधवं माधवं श्रीधरं राधिकाऽऽराधितम् ।
 इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दनं सन्दधे ॥२॥
 विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये ।
 बल्लवीवल्लभायाऽर्चितायात्मने कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः ॥३॥
 कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवाजित श्रीनिधे ।
 अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक ॥४॥
 राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणः ।
 लक्ष्मणेनाऽन्वितो वानरैः सेवितोऽगस्त्यसम्पूजितो राघवः पातु माम् ॥५॥
 धेनुकारिष्टकोऽनिष्टकृदद्वेषिणां केशिहा कंसहृद्वं शिकावादिकः ।
 पूतनाकोपकः सूरजाखेलनो बालगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥६॥
 विद्यदुह्योतवान् प्रस्फुरद्वाससं प्रावृडम्भोदवत् प्रोल्लसद्विग्रहम् ।
 वन्यया मालया शोभितोरः स्थलं लोहिताग्निद्वयं वारिजाक्षं भजे ॥७॥

कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः ।
 हारकेयूरकं कङ्कणप्रोज्ज्वलं किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं तं भजे ॥८॥
 अच्युतस्याऽष्टकं यः पठेदिष्टदं प्रेमतः प्रत्यहं पूरुषः सस्पृहम् ।
 वृत्ततः सुन्दरं कर्तृ विश्वम्भरं तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्त्वरम् ॥९॥

॥ इति अच्युताष्टकं सम्पूर्णम् ॥१०४॥

105. विष्णुदेवाष्टकम्

श्रिया जुष्टं तुष्टं श्रुतिशतनुतं श्रीमधुरिपुं
 पुराणं प्रत्यञ्जं परमसहितं शेषशयने ।
 शयानं यं ध्यात्वा जहति मुनयः सर्वविषयां-
 स्तमीशं सदरूपं परमपुरुषं नौमि सततम् ॥१॥
 गुणातीतो गीतो दहन इव दीप्तो रिपुवने
 निरीहो निष्कायः परमगुणपूगैः परिवृतः ।
 सदा सेव्यो वन्द्योऽमरसमुदयैर्यो मुनिगणै-
 स्तमीशं सदरूपं परमपुरुषं नौमि सततम् ॥२॥
 विभो! त्वं संसारस्थित - सकलजन्तूनवसि यत्-
 यातणां रक्षायै ननु वरद पद्मेश जगताम् ।
 ददौ चक्रं तस्मात्परम - दयया ते पशुपति-
 स्ततः शास्त्र 'विशम्भर' इति पदेन प्रगिरति ॥३॥
 सदा विष्णो! दीने सकलबलहीने यदुपते
 हताशे सर्वात्मन् मयि कुरु कृपां त्वं मुररिपो ।
 यतोऽहं संसारे तव चरणसेवा - विरहितो
 न मे सौख्यं चेत्स्याद्भवति वितथं श्रीश! सकलम् ॥४॥
 यदीत्थं त्वं ब्रूया भजननिपुणान् पामि सततं
 प्रभो भक्ता भक्त्या सकलसुखभाजो न कृपया ।
 वद प्रोत्तुङ्गा या तव खलु कृपा कुत्र घटते
 कथं वा भो स्वामिन्! पतितमनुजोद्धारक इति ॥५॥
 मया शास्त्रे दृष्टं गुरुजनमुखाद् वा श्रुतमिदं
 कृपा विष्णोर्वन्द्या पतितमनुजोद्धारनिपुणा ।

अतस्त्वां सम्प्राप्तः शरणद! शरण्यं करुणया
 श्रिया हीनं दीनं मधुमथन! मां पालय विभो॥६॥
 न चेल्लक्ष्मीजाने सकलहितकृच्छास्त्र निचयो
 मृषारूपं धत्ते भवति भवतो हानिरतुला।
 तवाऽस्तित्वं शास्त्रं न हि भवति शास्त्रं यदि मृषा
 विचारोऽयं चित्ते मम भवपते श्रीधर हरे॥७॥
 न ते स्वामिन् विष्णो कुरु मयि कृपां कैटभरिपो
 स्वकीयं वाऽस्तित्वं जहि जगति कारुण्यजलधे।
 द्वयोर्मध्ये ह्येकं भवति करणीयं तव विभो
 कथाः सर्वाः सर्वाश्रय तव पुरस्कृत्य विरतः॥८॥
 विष्णुदेवाष्टकं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तितो नरः।
 सर्वान् कामनवाप्नोति लक्ष्मीजानेः प्रसादतः॥९॥

॥ इति विष्णुदेवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१०५॥

106. मधुसूदनस्तोत्रम्

ॐमिति ज्ञानमात्रेण रोगाजीर्णेन निर्जितः।
 नलनिद्रां प्रपन्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन॥१॥
 न गतिर्विद्यते चाऽन्या त्वमेव शरणं मम।
 पापपङ्के निमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन॥२॥
 मोहितो मोहजालेन पुत्र-दार-गृहादिषु।
 तृष्णया पीड्यमानोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन॥३॥
 भक्तिहीनं च दीनं च दुःखशोकातुरं प्रभो।
 अनाश्रयमनाथं च त्राहि मां मधुसूदन॥४॥
 गताऽऽगतेन श्रान्तोऽस्मि दीर्घसंसारवर्त्मसु।
 येन भूयो न गच्छामि त्राहि मां मधुसूदन॥५॥
 बहवो हि मया दृष्टा क्लेशश्चैव पृथक् पृथक्।
 गर्भवासे महादुःखं त्राहि मां मधुसूदन॥६॥
 तेन देव प्रपन्नोऽस्मि त्राणार्थं त्वत्परायणः
 दुःखार्णव-परित्राणात् त्राहि मां मधुसूदन॥७॥

वाचा यच्च प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् ।
 तत्पापार्जितमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥८॥
 सुकृतं न कृतं किञ्चिद् दुष्कृतं च कृतं मया ।
 घोरे भवे निमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥९॥
 देहान्तरसहस्रेषु चाऽन्योन्यं भ्रामितो ह्यहम् ।
 तिर्यक् त्वं मानुषत्वं च त्राहि मां मधुसूदन ॥१०॥
 वाचयामि यथोन्मतः प्रलपामि तवाऽग्रतः ।
 जरा-मरण-भीतोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन ॥११॥
 यत्र यत्र च यातोऽस्मि स्त्रीषु वा पुरुषेषु वा ।
 तत्र तत्राऽचला भक्तिस्त्राहि मां मधुसूदन ॥१२॥
 गत्वा गत्वा निवर्तन्ते चन्द्रसूर्यादयो ग्रहाः ।
 कदापि न निवर्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥१३॥
 ऊर्ध्व-पाताल-मर्त्येषु व्याप्तलोकजगत्त्रयम् ।
 द्वादशाक्षरात् परं नास्ति वासुदेवेन भाषितम् ॥१४॥
 द्वादशाक्षरं महामन्त्रं सर्वकामफलप्रदम् ।
 गर्भवास-निवासेन शुकेन परिभाषितम् ॥१५॥
 द्वादशाक्षरं निराहारो यः पठेद् हरिवासरे ।
 स गच्छेद् वैष्णवं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ॥१६॥

॥ इति मधुसूदनस्तोत्रं समाप्तम् ॥१०६॥

107. दीनबन्धवष्टकम्

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले ।
 यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥
 चक्रं सहस्रकरचारुकरारविन्दे गुर्वी गदा दरवरश्च विभाति यस्य ।
 पक्षीन्द्रपृष्ठ-परिरोपित-पादपद्मो दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ।
 येनोद्धृता वसुमती सलिले निमग्ना नग्ना चपाण्डवबधूः स्थगितादुकूलैः ।
 सम्मोचितो जलचरस्य मुखाद् गजेन्द्रो दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ।
 यस्यार्द्रदृष्टिवशतस्तु सुराः समृद्धिं कोपेक्षणेन दनुजा विलयं व्रजन्ति ।

भीताश्चरन्ति च यतोऽर्कयमानिलाद्या दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः
 आकाररूपगुण-योग-विवर्जितोऽपि भक्तानुकम्पननिमित्तगृहीतमूर्तिः ।
 यः सर्वगोऽपि कृतशेषशरीरशय्यो दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥
 यस्यांघ्रिपङ्कजमनिद्रमुनीन्द्र-वृन्दैराराध्यते भवदवानलदाहशान्त्यै ।
 सर्वापराधमविचिन्त्य ममाऽखिलात्मादृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः
 यन्नामकीर्तनपरः श्वपचोऽपि नूनं हित्वाऽखिलं कलिमलंभुवनं पुनाति ।
 दग्ध्वा ममाऽधमखिलं करुणोक्षणेन दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ।
 दीनबन्ध्वष्टकं पुण्यं ब्रह्मानन्देन भाषितम् ।
 यः पठेत् प्रयतो नित्यं तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥९॥

॥ इति दीनबन्ध्वष्टकं सम्पूर्णम् ॥१०७॥

108. गोविन्ददामोदरस्तोत्रम्

अग्रे कुरूणामथ पाण्डवानां दुःशासनेनाहतवस्त्रकेशा ।
 कृष्णा तदाक्रोशदनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१॥
 श्रीकृष्ण विष्णो मधुकैटभारे भक्तानुकम्पिन् भगवन् मुरारे ।
 त्रायस्व मां केशव लोकनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२॥
 विक्रेतुमाखिलगोपकन्या मुरारिपादार्पितचित्तवृत्तिः ।
 दध्यादिकं मोहवशादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३॥
 उलूखले सम्भृततण्डुलांश्च संघट्टयन्त्यो मुसलैः प्रमुग्धाः ।
 गायन्ति गोप्यो जनितानुरागा गोविन्द दामोदर माधवेति ॥४॥
 काचित्कराम्भोजपुंटे निषण्णं क्रीडाशुकं किंशु करक्ततुण्डम् ।
 अध्यापयामसा सरोरुहाक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५॥
 गृहे गृहे गोपवधूसमूहः प्रतिक्षणं पिञ्जरसारिकाणाम् ।
 स्वलद्गिरं वाचयितुं प्रवृत्तो गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६॥
 पर्यङ्किकाभाजमलं कुमारं प्रस्वापयन्त्योऽखिलगोपकन्याः ।
 जगुः प्रबन्धंस्वरतालबन्धं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥७॥
 रामानुजं वीक्षमकेलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम् ।
 आबालकं बालकमाजुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥८॥

विचित्रवर्णाभरणाभिरामेऽभिधेहि वक्त्राम्बुजराजहंसि ।
 सदा मदीये रसनेऽग्ररङ्गे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१॥
 अङ्गाधिरूढं शिशुगोपगूढं स्तनं धयन्तं कमलैककान्तम् ।
 सम्बोधयामास मुदा यशोदा गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१०॥
 क्रीडन्तमन्तर्ब्रजमात्मजं स्वं समं वयस्यैः पशुपालबालैः ।
 प्रेम्णा यशोदा प्रजुहाव कृष्णं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥११॥
 यशोदया गाढमुलुखलेन गोकण्ठपाशेन निबध्यमानः ।
 रुरोद मन्दं नवनीतभोजी गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१२॥
 निजाङ्गणे कङ्कण केलिलोलं गोपी गृहीत्वा नवनीतगोलम् ।
 आमर्दयत्पाणितलेन नेत्रे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१३॥
 गृहे गृहे गोपवदूकदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाययोगे ।
 पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१४॥
 मन्दारमूले वदनाभिरामं विम्बाधरे पूरितवेणुनादम् ।
 गोगोपगोपीजनमध्यसंस्थं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१५॥
 उत्थाय गोप्योऽपररात्रभागे स्मृत्वा यशोदासुतबालकेलिम् ।
 गायन्ति प्रोच्चैर्दधि मन्थयन्त्यो गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१६॥
 जग्धोऽथ दत्तो नवनीतपिण्डो गृहे यशोदा विचिकित्सयन्ती ।
 उवाच सत्यं वद हे मुरारे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१७॥
 अभ्यर्च्य गेहं युवतिः प्रवृद्धप्रेमप्रवाहा दधि निर्ममन्थ ।
 गायन्ति गोप्योऽथ सीखसमेता गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१८॥
 क्वचित् प्रभाते दधिपूर्णपात्रे निक्षिप्य मन्थं युवती मुकुन्दम् ।
 आलोक्य गानं विविधं करोति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥१९॥
 क्रीडापरं भोजनमज्जनार्थं हितैषिणी स्त्री तनुजं यशोदा ।
 आजूहवत् प्रेमपरिप्लुताक्षी गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२०॥
 सुखं शयानं निलये च विष्णुं देवर्षिमुख्या मुनयः प्रपन्नाः ।
 तेनाच्युते तन्मयतां ब्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२१॥
 विहाय निद्रामरुणोदये च विधाय कृत्यानि च विप्रमुख्याः ।
 वेदावसाने प्रपठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२२॥
 वृन्दावने गोपगणाश्च गोप्यो विलोक्य गोविन्द वियोगखिन्नम् ।
 राधां जगुः साश्रुविलोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२३॥

प्रभातसञ्चारगता नु गावस्तद्रक्षणार्थं तनयं यशोदा ।
 प्राबोधयत् पाणितलेन मन्दं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२४॥
 प्रवालशोभा इव दीर्घकेशा वाताम्बुपर्णाशिनपूतदेहाः ।
 मूले तरूणां मुनयः पठन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२५॥
 एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।
 विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२६॥
 गोपी कदाचिन्मणिपिञ्जरस्थं शुक्रं वचो वाचयितुं प्रवृत्ता ।
 आनन्दकन्द व्रजचन्द्र कृष्ण गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२७॥
 गोवत्सबालैः शिशुकाकपक्षं बध्नन्तमम्भोजदयालताक्षम् ।
 उवाच माता चिबुकं गृहीत्वा गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२८॥
 प्रभातकाले वरवल्लवावौघा गोरक्षणार्थं धृतवेत्रदण्डाः ।
 आकारयामासुरनन्तमाद्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२९॥
 जलाशये कालियमर्दनाय यदा कदम्बादपतन्मुरारिः ।
 गोपाङ्गनाश्चुक्रुशुरेत्य गोपा गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३०॥
 अक्रूरमासाद्य यदा मुकुन्दश्चापोत्सवार्थं मथुरां प्रविष्टः ।
 तदा स पौरैर्जयतीत्यभाषि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३१॥
 कंसस्य दूतेन यदैव नीतौ वृन्दावनान्ताद् वसुदेवसूनू ।
 रुरोद गोपी भवनस्य मध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३२॥
 सरोवरे कालियनागबद्धं शिशुं यशोदातनयं निशम्य ।
 चक्रुर्लुठन्त्यः पथि गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३३॥
 अक्रूरयाने यदुवंशनाथं संगच्छमानं मथुरां निरीक्ष्य ।
 ऊर्चुर्वियोगात् किल गोपबाला गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३४॥
 चक्रन्द गोपी नलिनीवनान्ते कृष्णेन हीना कुसुमे शयाना ।
 प्रफुल्लनीलोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३५॥
 मातापितृभ्यां परिवार्यमाणा गेहं प्रविष्टा विललाप गोपी ।
 आगत्य मां पालय विश्वनाथ गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३६॥
 वृन्दावनस्थं हरिमाशु बुद्ध्वा गोपी गता कापि वनं निशायाम् ।
 तत्राप्यदृष्ट्वा तिभयादवोचद् गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३७॥
 सुखं शयाना निलये निजे पिनामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः ।
 ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३८॥

सा नीरजाक्षीमवलोक्य राधां रुरोद गोविन्द वियोगखिन्नान्।
 सखी प्रफुल्लोत्पललोचनाभ्यां गोविन्द दामोदर माधवेति॥३९॥
 जिह्वे रसज्ञे मधुरप्रिया त्वं सत्यं हितं त्वां परमं वदामि।
 आवर्णयेथा मधुराक्षराणि गोविन्द दामोदर माधवेति॥४०॥
 आत्यन्तिकव्याधिहरं जनानां चिकित्सकं वेदविदो वदन्ति।
 संसारतापत्रयनाशबीजं गोविन्द दामोदर माधवेति॥४१॥
 ताताज्ञया गच्छति रामचन्द्रे सलक्ष्मणे रण्यचये ससीते।
 चक्रन्द रामस्य निजा जनित्री गोविन्द दामोदर माधवेति॥४२॥
 एकाकिनी दण्डककाननान्तात् सा नीयमाना दशकन्धरेण।
 सीता तदाक्रन्ददनन्यनाथा गोविन्द दामोदर माधवेति॥४३॥
 रामाद्वियुक्ता जनकात्मजा सा विचिन्तयन्ती हृदि रामरूपम्।
 रुरोद सीता रघुनाथ पाहि गोविन्द दामोदर माधवेति॥४४॥
 प्रसीद विष्णो रघुवंशनाथ सुरा सुराणां सुखदुःखहेतो।
 रुरोद सीता तुसमुद्रमध्ये गोविन्द दामोदर माधवेति॥४५॥
 अन्तर्जले ग्राहगृहीतपादो विसृष्टविक्लिष्टसमस्तबन्धुः।
 तदा गजेन्द्रो नितरां जगाद गोविन्द दामोदर माधवेति॥४६॥
 हंसध्वजः शङ्खयुतो ददर्श पुत्रं कटाहे प्रपतन्तमेनम्।
 पुण्यानि नामानि हरेर्जपन्तं गोविन्द दामोदर माधवेति॥४७॥
 दुर्वाससो वाक्यमुपेत्य कृष्णा सा चा ब्रवीत् काननवासिनीशम्।
 अन्तःप्रविष्टं मनसा जुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति॥४८॥
 ध्येयः सदा योगिभिरप्रमेयश्चिन्ताहरश्चिन्तितपारिजातः।
 कस्तूरिकाकल्पितनीलवर्णो गोविन्द दामोदर माधवेति॥४९॥
 संसारकूपे पतितो त्यगाधे मोहान्धपूर्णो विषयाभितप्ते।
 करावलम्बं मम देहि विष्णो गोविन्द दामोदर माधवेति॥५०॥
 त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते।
 वक्तव्यमेवं मधुरं सुभक्त्या गोविन्द दामोदर माधवेति॥५१॥
 भजस्व मन्त्रं भवबन्धमुक्तयै जिह्वे रसज्ञे सुलभं मनोज्ञम्।
 द्वैपायनाद्यैर्मुनिभिः प्रजप्तं गोविन्द दामोदर माधवेति॥५२॥
 गोपाल वंशीधर रूपसिन्धो लोकेश नारायण दीनबन्धो।
 उच्चस्वरैस्त्वं वद सर्वदैव गोविन्द दामोदर माधवेति॥५३॥

जिह्वे सदैवं भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि ।
 समस्तभक्तार्तिं विनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५४॥
 गोविन्द गोविन्द हरे मुरारे गोविन्द गोविन्द मुकुन्द कृष्ण ।
 गोविन्द गोविन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५५॥
 सुखावसाने त्विदमेव सारं दुःखावसाने त्विदमेव गेयम् ।
 देहावसाने त्विदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५६॥
 दुर्वारवाक्यं परिगृह्य कृष्णा मृगीव भीता तु कथं कथञ्चित् ।
 सभां प्रविष्टा मनसा जुहाव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५७॥
 श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्धन नाथ विष्णो ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५८॥
 श्रीनाथ विश्वेश्वर विश्वमूर्ते श्रीदेवकीनन्दन दैत्यशत्रो ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५९॥
 गोपीपते कंसरिपो मुकुन्द लक्ष्मीपते केशव वासुदेव ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६०॥
 गोपीजनाह्लादकर ब्रजेश गोचारणारण्यकृतप्रवेश ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६१॥
 प्राणेश विश्वम्भर कैटभारे वैकुण्ठ नारायण चक्रपाणे ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६२॥
 हरे मुरारे मधुसूदनाद्य श्रीराम सीतावर रावणारे ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६३॥
 श्रीयादवेन्द्रादिधराम्बुजाक्ष गोपगोपीसुखदानदक्ष ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६४॥
 धराधरोत्तारणगोपवेश विहारलीलाकृतबन्धुशेष ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६५॥
 बकीबकाघासुरधेनुकारे केशीतृणावर्तविघातदक्ष ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६६॥
 श्रीजानकीजीवन रामचन्द्र निशाचरे भरताग्रजेश ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६७॥
 नारायणानन्त हरे नृसिंह प्रह्लादबाधाहर हे कृपालो ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६८॥

लीलामनुष्याकृति रामरूप प्रदापदासीकृतसर्वभूष ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६९॥
 श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥७०॥
 वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनाभिमुख्यम् ।
 जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥७१॥

। इति श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१०८॥

109. गोविन्दाष्टकम्

चिदनन्दाकारं	श्रुतिसरससारं	समरसं
नीराधाराधारं	भवजलधिपारं	परगुणम् ।
रमाग्रीवाहरं	व्रजवनविहारं	हरनुतं
सदा तं गोविन्दं	परमसुखकन्दं	भजत रे ॥१॥
महाम्भोधिस्थानं	स्थिरचरनिदानं	दिविजपं
सुधाधारापानं	विहगपतियानं	यमरतम् ।
मनोज्ञं सुज्ञानं	मुनिजननिधानं	ध्रुवपदम्
सदा तं गोविन्दं	परमसुखकन्दं	भजत रे ॥२॥
धिया धीरैर्ध्येयं	श्रवणपुटपेयं	यतिवरै-
मैहावाक्यैर्ज्ञेयं	त्रिभुवनविधेयं	विधिपरम् ।
मनोमानामेयं	सपदि हृदि नेयं	नवतनुं
सदा तं गोविन्दं	परमसुखकन्दं	भजत रे ॥३॥
महामायाजालं	विमलवनमालं	मलहरं
सुभालं गोपालं	निहतशिशुपालं	शशिमुखम् ।
गलातीतं कालं	गतिहयमरालं	मुररिपुं
सदा तं गोविन्दं	परमसुखकन्दं	भजत रे ॥४॥
नभोबिम्बस्फीतं	निगमगणगीतं	समगतिं
सुरौधैः सम्प्रीतं	दितिजविपरीतं	पुरिशयम् ।
गिरां पन्थातीतं	स्वदितनवनीतं	नयकरं
सदा तं गोविन्दं	परमसुखकन्दं	भजत रे ॥५॥

परेशं पद्मेशं शिवकमलजेशं शिवकरं
 द्विजेशं देवेशं तनुकुटिलकेशं कलिहरम् ।
 खगेशं नागेशं निखिलभुवनेशं नगधरं
 सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥६॥
 रमाकान्तं कान्तं भवभयभयान्तं भवसुखम्
 दुराशान्तं शान्तं निखिलहृदि भान्तं भुवनपम् ।
 विवादान्तं दान्तं दनुजनियचान्तं सुचरितं
 सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥७॥
 जगज्जेष्ठं श्रेष्ठं सुरपतिकनिष्ठं क्रतुपतिं
 बलिष्ठं भूयिष्ठं त्रिभुवनवरिष्ठं वरवहम् ।
 स्वनिष्ठं धर्मिष्ठं गुरुगुणगरिष्ठं गुरुवरं
 सदा तं गोविन्दं परमसुखकन्दं भजत रे ॥८॥
 गदापाणोरेतद् दुरितदलनं दुःखशमनं
 विशुद्धात्मा स्तोत्रं पठति मनुजो यस्तु सततम् ।
 स भक्त्वा भोगौघं चिरमिह ततोऽपास्तवृजिनो
 वरं विष्णोः स्थानं व्रजति खलु वैकुण्ठभुवनम् ॥९॥

॥ इति गोविन्दाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१०९॥

110. श्रीकमलापत्यष्टकम्

भुजगतल्पगतं घनसुन्दरं गरुड्वाहनमम्बुजलोचनम् ।
 नलिनचक्रगदाकरमव्ययं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥१॥
 अलिकुलासितकोमलकुन्तलं विमलपीतदुकूलमनोहरम् ।
 जलधिजाङ्कितवामकलेवरं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥२॥
 किमु जपैश्च तपोभिरुताध्वरैरपि किमुत्तमतीर्थनिषेवणैः ।
 किमुत शास्त्रकदम्बविलोकनैर्भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥३॥
 मनुजदेहमितं भुवि दुर्लभं समधिगम्य सुरैरपि वाञ्छितम् ।
 विषयलम्पटतामपहाय वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥४॥
 न वनिता न सुतो न सहोदरो न हि पिता जननी न च बान्धवः ।
 व्रजति साकमनेन जनेन वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥५॥

सकलमेव चलं सचराचरं जगदिदं सुतरां धनयौवनम् ।
 समवलोक्य विवेकदृशा द्रुतं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥६॥
 विविधरोगयुतं क्षणभङ्गुरं परवशं नवमार्गमलाकुलम् ।
 परिनिरीक्ष्य शरीरमिदं स्वकं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥७॥
 मुनिवरैरनिशं हृदिः भावितं शिवविरिञ्चिमहेन्द्रनुतं सदा ।
 मरणजन्मजराभयमोचनं भजत रे मनुजाः कमलापतिम् ॥८॥
 हरिपदाष्टकमेतदनुत्तमं परमहंसजनेन समीरितम् ।
 पठति सद्यु समाहित चेतसा व्रजति विष्णुपदं स नरो ध्रुवम् ॥९॥

॥ इति श्रीकमलापत्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥११०॥

111. श्रीरमापत्यष्टकम्

जगदादिमनादिमजं पुरुषं शरदम्बरतुल्यतनुं वितनुम् ।
 धृतकञ्जरथाङ्गदं विगदं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥१॥
 कमलाननकञ्जरतं विरतं हृदि योगिजनैः कलितं ललितम् ।
 कुजनैः सुजनैरलभं सुलभं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥२॥
 मुनिवृन्द-हृदिस्थपदं सुपदं निखिला-ऽध्वरभागभुजं सुभुजम् ।
 हतवासवमुख्यमदं विमदं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥३॥
 हतदानव-दूमबलं सुबलं स्वजनास्त-समस्तमलं विमलम् ।
 समपास्तगजेन्द्रदरं सुदरं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥४॥
 परिकल्पितसर्वबलं विकलं सकलागमगीतगुणं विगुणम् ।
 भवपाशनिराकरणं शरणं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥५॥
 मृति-जन्म-जराशमनं कमनं शरणागतभीतिहरं दहरम् ।
 परितुष्टरमाहृदयं सुन्दरं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥६॥
 सकलावनिबिम्बधरं स्वधरं परिपूरित-सर्वदिशं सुदृशम् ।
 गतशोकमशोककरं सुकरं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥७॥
 मथितार्णवराजरसं सरसं ग्रहिताऽखिललोकहृदं सुहृदम् ।
 प्रथितादभुतशक्तिगणं सुगणं प्रणमामि रमाधिपतिं तमहम् ॥८॥
 सुखराशिकरं भवबन्धहरं परमाष्टकमेतदनन्यमतिः ।
 पठतीह तु योऽनिशमेव नरो लभते खलु विष्णुपदं स परम् ॥९॥

॥ इति श्रीरमापत्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥१११॥

112. षट्पदीस्तोत्रम्

अविनयमपनय विष्णो दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
 भूतदयां विस्तारय तारय संसारसागरतः ॥१॥
 दिव्यधुनीमकरन्दे परिमल-परिभोग-सच्चिदानन्दे ।
 श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥२॥
 सत्यपि भेदापगमे नाथं तवाऽहं न मामकीनस्त्वम् ।
 सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥३॥
 उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे ।
 दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥४॥
 मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवताऽवता सदा वसुधाम् ।
 परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥५॥
 दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द ।
 भवजलधिंमथनमन्दर परमं दमपनय त्वं मे ॥६॥
 नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
 इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥७॥

॥ इति षट्पदीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११२॥

113. श्रीहरिस्तोत्रम्

जगज्जालपालं कचत्कण्ठमालं शरच्चन्द्रभालं महादैत्यकालम् ।
 नभोनीलकायं दुरावारमायं सुपद्मासहायं भजेऽहं भजेहम् ॥१॥
 सदाऽम्भोधिवासं गलत्पुष्पहासं जगत्सन्निवासं शतादित्यभासम् ।
 गदाचक्रशस्त्रं लसत्पीतवस्त्रं हसच्छारुवक्त्रं भजेऽहं भजेहम् ॥२॥
 रमाकण्ठहारं श्रुतिव्रातसारं जलान्तर्विहारं धराभारहारम् ।
 सदानन्दरूपं मनोज्ञस्वरूपं धृतानेकरूपं भजेऽहं भजेहम् ॥३॥
 जराजन्महीनं परानन्दपीनं समाधानलीनं सदैवानवीनम् ।
 जगज्जन्महेतुं सुरानीककेतुं त्रिलोकैकसेतुं भजेऽहं भजेहम् ॥४॥
 कृताम्नायगानं खगाधीशयानं विमुक्तेर्निदानं हरारातिमानम् ।
 स्वभक्तानुकूलं जगद्वृक्षमूलं निरस्तार्तशूलं भजेऽहं भजेहम् ॥५॥

समस्तामरेशं द्विरेफाभकेशं जगद्बिम्बलेशं हृदाकाशदेशम् ।
 सदा दिव्यदेहं विमुक्ताखिलेऽहं सुवैकुण्ठगेहं भजेऽहं भजेहम् ॥६॥
 सुरालीबलिष्ठं त्रिलोकीवरिष्ठं गुरुणां गरिष्ठं स्वरूपैकनिष्ठम् ।
 सदा युद्धधीरं महावीरधीरं भवाम्भोधिधीरं भजेऽहं भजेहम् ॥७॥
 रमावामभागं तलानग्ननागं कृताधीनयागं गतारागरागम् ।
 मुनीन्द्रैः सुगीतं सुरैः सम्परीतं गुणौधैरतीतं भजेऽहं भजेहम् ॥८॥
 इदं यस्तु नित्यं समाधाय चित्तं पठेदष्टकं कष्टहारं मुरारेः ।
 स विष्णोर्विशोकं ध्रुवं याति लोकं जरा-जन्म-शोकं पुनर्विदन्ते नो ॥९॥

॥ इति श्रीहरिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११३॥

114. श्रीहरिनामाष्टकम्

श्रीकेशवाच्युत मुकुन्द रथाङ्गपाणे गोविन्द माधव जनार्दन दानवारे ।
 नारायणामरपते त्रिजगन्निवासं जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥१॥
 श्रीदेवदेव मधुसूदन शार्ङ्गपाणे दामोदरार्णवनिकेतन कैटभारे ।
 विश्वम्भराभरणभूषित भूमिपाल जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥२॥
 श्रीपद्मलोचन गदाधर पद्मनाभ पद्मेश पद्मपद पावन पद्मपाणे ।
 पीताम्बराम्बररुचे रुचितावतारी जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥३॥
 श्रीकान्त कौस्तुभधरार्तिहराब्जपाणे विष्णो त्रिविक्रम महीधर धर्मसेतो ।
 वैकुण्ठवास वसुधाधिप वासुदेव जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥४॥
 श्रीनारसिंह नरकान्तक कान्तमूर्ते लक्ष्मीपते गरुडवाहन शेषशायिन् ।
 केशिप्रणाशन सुकेश किरीटमौले जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥५॥
 श्रीवत्सलाञ्छन सुरर्षभ शङ्खपाणे कल्पान्तवारिधिविहार हरे मुरारे ।
 यज्ञेश यज्ञमय यज्ञभुगादिदेव जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥६॥
 श्रीराम रावणरिपो रघुवंशकेतो सीतापते दशरथात्मज राजसिंह ।
 सुग्रीवमित्र मृगवेधन चापपाणे जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥७॥
 श्रीकृष्ण वृष्णिवर यादव राधिकेश गोवर्धनोद्धरण कंसविनाश शौरैः ।
 गोपाल वेणुधर पाण्डुसुतैकबन्धो जिह्वे जपेति सततं मधुराक्षराणि ॥८॥

इत्यष्टकं भगवतः सततं नरो यो नामाङ्कितं पठति नित्यमनन्यचेताः ।
विष्णोः परं पदमुपैति पुनर्न जातु मातुः पयोधर-रसं पिबतीह सत्यम् ॥१॥

॥ इति श्रीहरिनामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥११४॥

115. श्रीहरिशरणाष्टकम्

ध्येयं वदन्ति शिवमेव हि केचिदन्ये शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै ।
रूपैस्तु तैरपि विभासि यतस्त्वमेकस्तस्मात् त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥१॥
नो सोदरो न जनको जननी न जाया नैवात्मजो न च कुलं विपुलं बलं वा ।
संदृश्यते न किल कोऽपि सहायको मे तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥२॥
नोपासिता मदमपास्य मया महान्तस्तीर्थानि चास्तिकधिया न हि सेवितानि ।
सेवाचर्चनं च विधिवन्न कृतं कदापि तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥३॥
दुर्वासना मम सदा परिकर्षयन्ति चित्तं शरीरमपि रोगगणा दहन्ति ।
सञ्जीवनं च परहस्तगतं सदैव तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥४॥
पूर्वं कृतानि दुरितानिमया तु यानि स्मृत्वाऽखिलानि हृदयं परिकम्पते मे ।
ख्याता चते पतितपावनता तु यस्मात्तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥५॥
दुखं जराजननज विविधाश्च रोगाः काक-श्च-सूकरजनिर्निरये च पातः ।
त्वद्विस्मृते फलमिदं विततं हिलोके तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥६॥
नीचोऽपि पापबलितोऽपि विनिन्दतोऽपि ब्रूयात्तवाहमिति यस्तु किलैकवारम् ।
तं यच्छसीश निजलोकमिति व्रतं ते तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥७॥
वेदेषु धर्मवचनेषु तथाऽऽगमेषु रामायणेऽपि च पुराणकदम्बके वा ।
सर्वत्र सर्वविधिना गदितस्त्वमेव तस्मात्त्वमेव शरणं मम शङ्खपाणे ॥८॥

॥ इति श्रीहरिशरणाष्टकं सम्पूर्णम् ॥११५॥

116. हरिनाममालास्तोत्रम्

गोविन्दं गोकुलानन्दं गोपालं गोपिवल्लभम् ।
गोवर्धनोद्धरं धीरं तं वन्दे गोमतीप्रियम् ॥१॥
नारायण निराकारं नरवीर नरोत्तमम् ।
नृसिंह नागनाथं च तं वन्दे नरकान्तकम् ॥२॥

पीताम्बरं पद्मनाभं पद्माक्षं पुरुषोत्तमम् ।
 पवित्रं परमानन्दं तं वन्दे परमेश्वरम् ॥३॥
 राघवं रामचन्द्रं च रावणाऽरिं रमापतिम् ।
 राजीवलोचनं रामं तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥४॥
 वामनं विश्वरूपं च वासुदेवं च विठ्ठलम् ।
 विश्वेश्वरं विभुं व्यासं तं वन्दे देवकीसुतम् ॥५॥
 दामोदरं दिव्यसिंहं दयालुं दीननायकम् ।
 दैत्यारिं देवदेवेशं तं वन्दे देवकीसुतम् ॥६॥
 मुरारिं माधवं मत्स्यं मुकुन्दं मुष्टि-मर्दनम् ।
 मुञ्जकेशं महाबाहुं तं वन्दे मधुसूदनम् ॥७॥
 केशवं कमलाकान्तं कामेशं कौस्तुभप्रियम् ।
 कौमोदकीधरं कृष्णं तं वन्दे कौरवान्तकम् ॥८॥
 भूधरं भुवनानन्दं भूतेशं भूतनायकम् ।
 भावनैकं भुजङ्गेशं तं वन्दे भवनाशनम् ॥९॥
 जनार्दनं जगन्नाथं जगज्जाड्य-विनाशकम् ।
 जामदग्निं वरं ज्योतिस्तं वन्दे जलशायिनम् ॥१०॥
 चतुर्भुजं चिदानन्दं चाणूरमल्लमर्दनम् ।
 चराऽचरगतं देवं तं वन्दे चक्रपाणिनम् ॥११॥
 श्रियःकरं श्रियो नाथं श्रीधरं श्रीवरप्रदम् ।
 श्रीवत्सलधरं सौम्यं तं वन्दे श्रीसुरेश्वरम् ॥१२॥
 योगीश्वरं यज्ञपतिं यशोदानन्ददायकम् ।
 यमुनाजल-कल्लोलं तं वन्दे यदुनायकम् ॥१३॥
 शालिग्रामशिलाशुद्धं शङ्खचक्रोप-शोभितम् ।
 सुरा-ऽसुर-सदासेव्यं तं वन्दे साधुवल्लभम् ॥१४॥
 त्रिविक्रमं तपोमूर्तिं त्रिविधा-ऽघौघनाशनम् ।
 त्रिस्थलं तीर्थराजेन्द्रं तं वन्दे तुलसीप्रियम् ॥१५॥
 अनन्तमादि-पुरुषमच्युतं च वरप्रदम् ।
 आनन्दं च सदाऽऽनन्दं तं वन्दे चाऽघनाशनम् ॥१६॥

लीलया धृतभूभारं लोकसत्त्वैकवन्दितम् ।
 लोकेश्वरं च श्रीकान्तं तं वन्दे लक्ष्मणप्रियम् ॥१७॥
 हरिं च हरिणाक्षं च हरिनाथं हरिप्रियम् ।
 हलायुधसहायं च तं वन्दे हनुमत्पतिम् ॥१८॥
 हरिनामकृता माला पवित्रा पापनाशिनी ।
 बलिराजेन्द्रेण चोक्ता कण्ठे धार्या प्रयत्नतः ॥१९॥

॥ इति हरिनाममालास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११६॥

117. हरिमीडेस्तोत्रम्

स्तोष्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं
 यस्मिन्नेतत् संसृतिचक्रं भ्रमतीत्यम् ।
 यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत्संसृतिचक्रं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१॥
 यस्यैकांशादित्थमशेषं जगदेतत्
 प्रादुर्भूतं येन पिनद्धं पुनरित्थम् ।
 येन व्याप्तं येन विबुद्धं सुख-दुःखै-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२॥
 सर्वज्ञो यो यश्च हि सर्वः सकलो यो
 यश्चाऽऽनन्दोऽनन्तगुणो यो गुणधामा ।
 यश्चाऽव्यक्तो व्यस्तसमस्तः सदसद्य-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३॥
 यस्मादन्यत्रास्त्यपि नैवं परमार्थं
 दृश्यादन्यो निर्विशयज्ञानमयत्वात् ।
 ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयविहीनोऽपि सदा ज्ञ-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४॥
 आचार्येभ्यो लब्धसुसूक्ष्माऽच्युततत्त्वा
 वैराग्येणाऽभ्यासबलाच्चैव ब्रह्मिन्ना ।
 भक्त्यैकाग्रध्यानपरा यं विदुरीशं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥५॥

प्राणानायम्ययमिति चित्तं हृदि रुद्ध्वा
 नाऽन्यत् स्मृत्वा तत्पुनरत्रैव विलाप्य ।
 क्षीणे चित्ते भादृशिरस्मीति विदुर्य
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥६॥
 यं ब्रह्माख्यं देवमनन्यं परिपूर्णं
 हृत्स्थं भक्तैर्लभ्यमजं सूक्ष्ममतर्क्यम् ।
 ध्यात्वाऽऽत्मस्थं ब्रह्मविदो यं विदुरीशं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥७॥
 मात्राऽतीतं स्वात्मविकासात्मविबोधं
 ज्ञेयातीतं ज्ञानमयं हृद्युपलभ्यम् ।
 भावग्राह्यानन्दमनन्यं च विदुर्य
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥८॥
 यद्यद् वेद्यं वस्तु सतत्त्वं विषयाख्यं
 तत्तद् ब्रह्मैवेति विदित्वा तदहं च ।
 ध्यायन्त्येवं यं सनकाद्या मुनयोऽजं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥९॥
 यद्यद् वेद्यं तत्तदहं नेति विहाय
 स्वात्मज्योतिर्ज्ञानमयानन्दमयाप्य ।
 तस्मिन्नस्मीयात्मविदो यं विदुरीशं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१०॥
 हित्वा हित्वा दृश्यमशेषं सविकल्पं -
 मत्वा शिष्टं भादृशिमात्रं गगनाभम् ।
 त्यक्त्वा देहं यं प्रविशन्त्यच्युतभक्ता-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥११॥
 सर्वत्रास्ते सर्वशरीरी न च सर्वः सर्वं
 वेत्त्येवेह न यं वेत्ति च सर्वः ।
 सर्वत्रान्तर्यामितयेत्थं यमनन्य-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१२॥
 सर्वं दृष्ट्वा स्वात्मनि युक्त्वा जगदेतद्
 दृष्ट्वाऽऽत्मानं चैवमजं सर्वजनेषु ।

सर्वात्मैकोऽस्मीति विदुर्यं जनहृत्स्थं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१३॥
 सर्वत्रैकः पश्यति जिघ्रत्यथ भुङ्क्ते
 प्रष्टा श्रोता बुध्यति चेत्याहुरिम यम्।
 साक्षी चास्ते कर्तृषु पश्यन्निति चाऽन्ये
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१४॥
 पश्यन् शृण्वन्न विजानन् त्रसयन् सन्
 जिघ्रन् विभ्रद् देहमिमं जीवतयेत्थम्।
 इत्यात्मानं यं विदुरीशं विषयज्ञं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१५॥
 जाग्रद् दृष्ट्वा स्थूलपदार्थानथ मायां
 दृष्ट्वा स्वप्नेऽथापि सुषुप्तौ सुखनिद्राम्।
 इत्यात्मानं वीक्ष्य मुदास्ते च तुरीये
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१६॥
 पश्यञ्शुद्धोऽप्यक्षर एको गुणभेदान्
 नानाकारान् स्फाटिकवद् भाति विचित्रः।
 भिन्नश्छिन्नश्चाऽयमजः कर्मफलैर्य-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१७॥
 ब्रह्मा-विष्णु रुद्र-हुताशौ रवि-चन्द्रा-
 विन्द्रो वायुर्यज्ञ इतीत्थं परिकल्प्य।
 एकंसन्तं यं बहुधाऽऽहुर्मतिभेदात्
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१८॥
 सत्यं ज्ञानं शुद्धमनन्तं व्यतिरिक्तं
 शान्तं गूढं निष्कलमानन्दमनन्यम्।
 इत्याहादौ यं वरुणोऽसौ भृगवेऽजं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥१९॥
 कोशानेतान् पञ्चरसादीनतिहाय
 ब्रह्माऽस्मीति स्वात्मनि निश्चित्य हृदिस्थः।
 पित्राऽऽदिष्टो भृगुर्यं यजुरन्ते
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२०॥

येनाऽविष्टो यस्य च शक्त्या यदधीनः
 क्षेत्रज्ञोयं कारयिता जन्तुषु कर्तुः ।
 कर्ता भोक्ताऽऽत्माऽत्र हि चिच्छक्त्यधिरूढ-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२१॥
 सृष्ट्वा सर्वं स्वात्मतयैवेत्थमतर्क्यं
 व्याप्याऽथान्तः कृत्स्नमिदं सृष्टमशेषम् ।
 सच्च त्यच्चाऽभूत् परमात्मा स य एक-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२२॥
 वेदान्तैश्चाध्यात्मिकशास्त्रैश्च पुराणैः
 शास्त्रैश्चाऽन्यैः सात्त्वततन्त्रैश्च यमीशम् ।
 दृष्ट्वाऽथान्तश्चेतसि बुद्ध्या विविशुर्यं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२३॥
 श्रद्धा-भक्ति-ध्यान-शमाद्यैर्यतमानैर्ज्ञातुं -
 शक्यो देव इहैवाशु य ईशः ।
 दुर्विज्ञेयो जन्मशतैश्चापि विना तै-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२४॥
 यस्याऽतर्क्यं स्वात्मविभूतेः परमार्थं
 सर्वं खल्वित्यत्र निरुक्तं श्रुतिविद्धिः ।
 तज्जातित्वादब्धितरङ्गभ्रमभिन्नं -
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२५॥
 दृष्ट्वा गीतास्वक्षरतत्त्वं विधिनाजं
 भक्त्या गुर्व्या लभ्य हृदिस्थं दृशिमात्रम् ।
 ध्यात्वा तस्मिन्नस्म्यहमित्यत्र विदुर्यं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२६॥
 क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य विभुः पञ्चमुखैर्यो
 भुङ्क्तेऽजस्रं भोग्यपदार्थान् प्रकृतिस्थः ।
 क्षेत्रे क्षेत्रेष्विन्दुवदेको बहुधाऽस्ते
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२७॥
 युक्त्याऽऽलोड्य व्यास-वचांस्यत्र हि लभ्यः
 क्षेत्र-क्षेत्रज्ञान्तरविद्धिः पुरुषाख्यः ।

योऽहं सोऽसौ सौऽस्म्यहमेति विदुर्य
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२८॥
 एकीकृत्याऽनेकशरीरस्थमिमं जं
 यं विज्ञायेहैव स एवाशु भवति ।
 यस्मिंल्लीना नेह पुनर्जन्म लभन्ते
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥२९॥
 द्वन्द्वैकत्वं यच्च मधुब्राह्मणवाक्यैः
 कृत्वा शक्रोपानमासाद्य विभूत्या ।
 योऽसौ सोऽहं सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्य
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३०॥
 योऽहं देहे चेष्टयिताऽन्तः करणस्थः
 सूर्ये चाऽसौ तापयिता सोऽस्म्यमहमेव ।
 इत्यात्मक्योपासनया यं विदुरीश
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३१॥
 विज्ञानांशो यस्य सतः शक्त्याधिरूढो
 युद्धिर्बुद्धयत्यत्र बहिर्बोध्यपदार्थान् ।
 नैवान्तःस्थं बुद्धयत्यति तं बोधयितारं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३२॥
 कोऽयं देहे देव इतीत्थं सुविचार्य ज्ञाता
 श्रोताऽऽनन्दयिता चैष हि देवः ।
 इत्यालोच्य ज्ञांशमिहास्मीति विदुर्य
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३३॥
 को ह्येवान्यदात्मनि न स्यादयमेष ह्येवानन्दः
 प्राणिति चापानिति चेति ।
 इत्यस्तित्वं वक्त्युपपत्त्या श्रुतिरेषा
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३४॥
 प्राणो वाऽहं वाक्-श्रवणादीनि मनो वा
 बुद्धिर्वाऽहं व्यस्त उताहोऽपि समस्तः ।
 इत्यालोक्य ज्ञप्तिरिहास्मीति विदुर्य
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३५॥

नाऽहं प्राणो नैव शरीरं न मनोऽहं
 नाऽहं बुद्धिर्नाऽहमहङ्कारधियौ च ।
 योऽत्र ज्ञांशः सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३६॥
 सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत्
 सूक्ष्मं नित्यं तत्त्वमसीत्यात्मसुताय ।
 नाम्नामन्ते प्राह पिता यं विभुमाद्यं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३७॥
 मूर्ताऽमूर्ते पूर्वमपोह्याथ समाधौ दृश्यं
 सर्वं नेति च नेतीति विहाय ।
 चैतन्यांशो स्वात्मनि सन्तं च विदुर्यं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३८॥
 ओत प्रोतं यत्र च सर्गं गगनान्तं
 यो स्थालानण्वादिषु सिद्धोऽक्षरसंज्ञः ।
 ज्ञाताऽतोऽन्यो नेत्युपलभ्योन च वेद्य-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥३९॥
 तावत् सर्वं सत्यमिवाभाति यदेत-
 द्यावत् सोऽस्मीत्यात्मनि यो ज्ञो न हि दृष्टः ।
 दृष्टे तस्मिन् सर्वमसत्यं भवतीदं
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४०॥
 रागामुक्तं लोहयुतं हेम यथाऽग्नौ
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४१॥
 यं विज्ञानज्योतिषमाद्यं सुविभान्तं
 हृद्यकैन्द्वग्न्योकसमीढ्य तडिदाभम् ।
 भक्त्याराध्येहैव विशन्त्यात्मनि
 तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४२॥
 पायाद्भक्तं स्वात्मनि सन्तं पुरुषं यो
 भक्त्या स्तौत्याङ्गिरसं विष्णुरिमं माम् ।
 इत्यात्मानं स्वात्मनि संहत्य सदैक-
 स्तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥४३॥

इत्थं स्तोत्रं भक्तजनेभ्यं भवभीति-
 ध्वान्तार्काभं भगवत्पादीयमिदं यः ।
 विष्णोर्लोकं पठति शृणोति व्रजति ज्ञानं
 ज्ञेयं स्वात्मनि चाऽऽप्नोति मनुष्यः ॥४४॥

॥ इति हरिमीडेस्तोत्रं समाप्तम् ॥११७॥

118. शालिग्रामशिलास्तोत्रम्

अस्य श्रीशालिग्रामस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीभगवानृषिः, नारायणो देवता,
 अनुष्टुप् छन्दः, श्रीशालिग्रामस्तोत्रमन्त्रजपे विनियोगः ।

युधिष्ठिर उवाच

श्रीदेवदेव! देवेश! देवतार्चनमुत्तमम् ।
 तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे पुरुषोत्तम! ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

गण्डक्यां चोत्तरे तीरे गिरिराजस्य दक्षिणे ।
 दशयोजनविस्तीर्णा महाक्षेत्रवसुन्धरा ॥२॥
 शालिग्रामो भवेद् देवी देवी द्वारावती भवेत् ।
 उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥३॥
 शालिग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला ।
 उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥४॥
 आजन्मकृतपापानां प्रायश्चित्तं य इच्छति ।
 शालिग्रामशिलावारि पापहारि नमोऽस्तु ते ॥५॥
 अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधि-विनाशनम् ।
 विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥६॥
 शङ्खमध्ये स्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि ।
 अङ्गलग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यादिकं दहेत् ॥७॥
 स्नानोदकं पिबेन्नित्यं चक्राङ्कितशिलोद्भवम् ।
 प्रक्षाल्य शुद्धं ततोयं ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥८॥
 अग्निष्टोमसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
 सम्यक् फलमवाप्नोति विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥९॥

नैवेद्ययुक्तां तुलसीं च मिश्रितां विशेषतः पादजलेन विष्णोः ।
 योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञाऽयुतकोटिपुण्यम् ॥१०॥
 खण्डिताः स्फुटिता भिन्ना वह्निदग्धास्तथैव च ।
 शालिग्रामशिला यत्र तत्र दोषो न विद्यते ॥११॥
 न मन्त्रः पूजनं नैव न तीर्थं न च भावना ।
 न स्तुतिर्नोपचारश्च शालिग्रामशिलार्चने ॥१२॥
 ब्रह्महत्यादिकं पापं मनो-वाक्-कार्य-सम्भवम् ।
 शीघ्रं नश्यति तत्सर्वं शालिग्रामशिलार्चनात् ॥१३॥
 नानावर्णमयं चैव नानाभोगेन वेष्टितम् ।
 तथा वरप्रसादेन लक्ष्मीकान्तं वदाम्यम् ॥१४॥
 नारायणोद्भवो देवश्चक्रमध्ये च कर्मणा ।
 तथा वरप्रसादेन लक्ष्मीकान्तं वदाम्यहम् ॥१५॥
 कृष्णो शिलातले यत्र सूक्ष्मं चक्रं च दृश्यते ।
 सौभाग्यं सन्ततिं धत्ते सर्वसौख्यं ददाति च ॥१६॥
 वासुदेवस्य चिह्नानि दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
 श्रीधरः सुकरे वामे हरिद्वर्णस्तु दृश्यते ॥१७॥
 वराहरूपिणं देवं कूर्माङ्गैरपि चिह्नितम् ।
 गोपदं तत्र दृश्येत वाराहं वामनं तथा ॥१८॥
 पीतवर्णं तु देवानां रक्तवर्णं भयावहम् ।
 नारसिंहो भवेद् देवो मोक्षदं च प्रकीर्तितम् ॥१९॥
 शङ्ख-चक्र-गदा-कूर्माः शङ्खो यत्र प्रदृश्यते ।
 शङ्खवर्णस्य देवानां वामे देवस्य लक्षणम् ॥२०॥
 दामोदरं तथा स्थूलं मध्ये चक्रं प्रतिष्ठितम् ।
 पूर्णद्वारेण सङ्कीर्णं पीतरेखा च दृश्यते ॥२१॥
 छत्राकारे भवेद् राज्यं वर्तुले च महाश्रियः ।
 चिपिटे च महादुःखं शूलाग्रे तु रणं ध्रुवम् ॥२२॥
 ललाटे शेषभोगस्तु शिरोपरि सुकाञ्चनम् ।
 चक्रकाञ्चनवर्णानां वामदेवस्य लक्षणम् ॥२३॥
 वामपार्श्वे च वै चक्रे कृष्णवर्णस्तु पिङ्गलम् ।
 लक्ष्मीनृसिंहदेवानां पृथग् वर्णस्तु दृश्यते ॥२४॥

लम्बोष्ठे च दरिद्रं स्यात् पिङ्गले हानिरेव च ।
 लग्नचक्रे भवेद् व्याधिर्विदारे मरणं ध्रुवम् ॥२५॥
 पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके धारयेत् सदा ।
 विष्णोर्दृष्टं भक्षितव्यं तुलसीदलमिश्रितम् ॥२६॥
 कल्पकोटिसहस्राणि वैकुण्ठे वसते सदा ।
 शालिग्रामशिलाबिन्दुर्हत्याकोटिविनाशनः ॥२७॥
 तस्मात् सम्पूजयेद् ध्यात्वा पूजितं चाऽपि सर्वदा ।
 शालिग्रामशिलास्तोत्रं यः पठेच्च द्विजोत्तमः ॥२८॥
 स गच्छेत् परमं स्थानं यत्र लोकेश्वरो हरिः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२९॥
 दशावतारो देवानां पृथग् वर्णस्तु दृश्यते ।
 ईप्सितं लभते राज्यं विष्णुपूजामनुक्रमात् ॥३०॥
 कोट्यो हि ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः ।
 ताः सर्वा नाशमायान्ति विष्णुनैवेद्यभक्षणात् ॥३१॥
 विष्णोः पादोदकं पीत्वा कोटिजन्माऽघनाशनम् ।
 तस्मादष्टगुणं पापं भूमौ बिन्दुनिपातनात् ॥३२॥

इति श्रीशालिग्रामशिलास्तोत्र सम्पूर्णम् ॥११८॥

११९. मुरारिपञ्चरत्नस्तोत्रम्

यत्सेवनेन पितृ-मातृ-सहोदरणां
 चित्तं न मोह-महिमा मलिनं करोति ।
 इत्थं समीक्ष्य तव भक्तजनान् मुरारे
 मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥१॥
 ये ये विलग्नमनसः सुखमासुकामा-
 स्ते ते भवन्ति जगद्ब्रह्ममोहशून्याः ।
 दृष्ट्वा विनष्ट-न-धान्यध-गृहान् मुरारे
 मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥२॥
 वस्त्राणि दिग्वलयमावसतिः श्मशाने
 पात्रं कपालमपि मुण्डविभूषणानि ।

रुद्रे प्रसादमचलं तव वीक्ष्य शौरे
 मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥३॥
 यत्कीर्ति-गायन-परस्य विधातृसूनो ।
 कौपीनमैणमजिनं विपुलां विभूषितम् ।
 स्वस्याऽर्थ-दिग्भ्रमणमीक्ष्य तु सार्वकालं
 मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥४॥
 यद्वीक्षणो धृतधियामशनं फलादि
 वासोऽपि निर्जनवने गिरिकन्दरासु ।
 वासांसि वल्कलमयानि विलोक्य चैवं
 मूकोऽस्मि तेऽङ्घ्रिकमलं तदतीव धन्यम् ॥५॥
 स्तोत्रं पादाम्बुजस्यैतच्छीणस्य विजितेन्द्रियः ।
 पठित्वा तत्पदं याति श्लोकार्थज्ञस्तु यो नरः ॥६॥

॥ इति मुरारिपञ्चरत्नस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥११९॥

120. कमलेशमाला

मुकुन्दमिन्दीवरपत्रनेत्रं नन्दात्मजं योगिमनोनिकेतम् ।
 वृन्दारकाभिष्टुतपादपद्मं पार्थस्य मित्रं मनसा स्मरामि ॥१॥
 ब्रह्मेन्द्र-गङ्गाधर-वन्दिताय मुकुन्ददेवाय परात्पराय ।
 नमः समस्ता-ऽसुर-नाशकाय पक्षीशयानाय रमेश्वराय ॥२॥
 आश्लिष्ट-राधाकुच-कुङ्कुमलाय गोपालकृष्णाय नमोऽस्तु तस्मै ।
 गोवर्धनं यो गिरिमुञ्च शृङ्गं लोकोपकाराय किलोद्धार ॥३॥
 कृपानिधे! दीनशरण्य! शौरे! दैत्याटवीदाव! रमेश देव ।
 त्वत्पादपङ्केरुह-युग्मसेवां नक्तन्दिवं चाऽऽसुमहं समीहे ॥४॥
 तदा मम स्यादभिलाषसिद्धः तदैव जायेत ममाऽतिमोदः ।
 यदा यतीन्द्रेडितसच्चरित्रो मयि प्रसन्नो भगवान् मुरारिः ॥५॥
 कुशाग्रसूक्ष्माऽपि मतिर्गतीनां ज्ञातुं न शक्नोति तव स्वरूपम् ।
 अहं कथं वा मुसलाग्रबुद्धिर्ज्ञातुं क्षमः स्यां खलु तं भगवन्तम् ॥६॥
 नाऽहं नदीष्णो निखिलागमेषु न च प्रवीणः कविताकलायाम् ।
 तस्मादशेषान् गदितुं गुणास्ते शौरे! न शक्तो बत मन्दभाग्यः ॥७॥

कृपालुकृष्णस्य विधेयदासो नारायणाख्यः कवितल्लजो यः ।
श्रीतोण्डमूले निलयेन तेन व्यरच्यसौ श्रीकमलेशमाला ॥८॥

॥ इति कमलेशमाला सम्पूर्णम् ॥१२०॥

121. मुकुन्दमाला

वन्दे मुकुन्दमरविन्द-दलायताक्षं कुन्देन्दु-शङ्खदशनं शिशुगोपवेषम् ।
इन्द्रादि-देवगण-वन्दित-पादपीठं वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥१॥
श्रीवल्लभेति वरदेति दयापरेति भक्तिप्रियेति भवलुण्ठनकोविदेति ।
नाथेति नागशयनेति जगन्निवासेत्यालापिनं प्रतिदिनं कुरु मां मुकुन्द! ॥२॥
जयतु जयतु देवो देवकीनन्दनोऽयं जयतु जयतु कृष्णो वृष्णिवंशप्रदीपः ।
जयतु जयतु मेघश्यामलः कोमलाङ्गो जयतु जयतु पृथ्वीभारनाशो मुकुन्दः ॥३॥
मुकुन्द मूर्ध्ना प्रणिपत्य याचे भवन्तमेकान्तमियन्तमर्थम् ।
अविस्मृतिस्त्वच्चरणारविन्दे भवे भवे मेऽस्तु तव प्रसादात् ॥४॥
श्रीगोविन्दपदाम्भोजमधुनो महदद्भुतम् ।
यत्पायिनो न मुञ्चन्ति मुञ्चन्ति यदपायिनः ॥५॥
नाऽहं वन्दे तव चरणयोर्द्वन्द्वमद्वन्द्वहेतोः
कुम्भीपाकं गुरुमपि हरे नारकं नाऽपनेतुम् ।
रम्यारामा-मृदुतनुलतानन्दने नाऽपि रन्तुं
भावे भावे हृदयभवने भावयेयं भवन्तम् ॥६॥
नाऽऽस्था धर्मे न वसुनिचये नैव कामोपभोगे
यद्भावं तद्भवतु भगवन्! पूर्वकर्मानुरूपम् ।
एतत् प्रार्थ्य मम बहुमतं जन्म-जन्मान्तरेऽपि
त्वत्पादाम्भोरुहयुगगता निश्चला भक्तिरस्तु ॥७॥
दिवि वा भुवि वा ममाऽस्तु वासो नरके वा नरकान्तकं प्रकामम् ।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ ते मरणे विचिन्तयामि ॥८॥
सरसिजनयने सशङ्खचक्रे मुरभिदि मा विरमेह चित्तं रन्तुम् ।
सुखतरमपरं न जातु जाने हरिचरणस्मरणामृतेन तुल्यम् ॥९॥
मा भैर्मन्द विचिन्त्य बहुधा याभिश्चिरं यातना
नैवाऽमी मनो प्रवदन्ति पापरिपवः स्वामी ननु श्रीधरः ।

आलस्यं व्यपनीय भक्तिसुलभं ध्यायस्व नारायणं
 लोकस्य व्यसनापनोदनकरो दासस्य किं न क्षमः ॥१०॥
 भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां
 सुतदुहित्-कलत्र-त्राण-भारावृतानाम् ।
 विषम-विषयतोये मज्जतामप्लवानां
 भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥११॥
 रजसि निपतितानां मोहजालावृतानां
 जनन-मरण-दोला-दुर्गसंसर्गाणाम् ।
 शरणमशरणानामेक एवातुराणां
 कुशलपथ-नियुक्तश्चक्रपाणिर्नराणाम् ॥१२॥
 अपराधसहस्रसङ्कुलं पतितं भीमभवार्षावोदरे ।
 अगतिं शरणागतं हरे! कृपया केवलमात्मसात् कुरु ॥१३॥
 मा मे स्त्रीत्वं मा च मे स्यात् कुभावो
 मा मूर्खत्वं मा कुदेशेषु जन्म ।
 मिथ्या दृष्टिर्मा च मे स्यात् कदाचिद्
 जातो जातो विष्णुभक्तो भवेयम् ॥१४॥
 कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वाऽनुसृतः स्वभावात् ।
 करोमि यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायैव समर्पयामि ॥१५॥
 यत्कृतं तत् करिष्यामि तत्सर्वं न मया कृतम् ।
 त्वया कृतं तु फलभुक् त्वमेव मधुसूदन ॥१६॥
 भवजलधिमगाधं दुस्तरं निस्तरेयं
 कथमहमिति चेतो मा स्म गाः कातरत्वम् ।
 सरसिजदृशि देवे तारकी भक्तिरेका
 नरकभिदि निषण्णा तारयिष्यत्यवश्यम् ॥१७॥
 तृष्णातोये मदनपवनोद्धूतमोहोर्मिमाले
 दारावर्ते तनयसहज-ग्राहसङ्घाकुले च ।
 संसाराख्ये महति जलधौ मज्जतां नस्त्रिधामन्
 पादाभोजे वरद भवतो भक्तिभावं प्रदेहि ॥१८॥
 पृथ्वी रेणुरणुः पयांसि कणिकाः फल्गुः स्फुलिङ्गो लघु-
 स्तेजो निःश्वसनं मरुत्तनतरं रश्मिं सुसूक्ष्मं नभः ।

क्षुद्रा रुद्रपितामहप्रभृतयः कीटाः समस्ताः सुराः
 द्रष्टा यत्र स तारको विजयते श्रीपादधूलीकणः ॥१९॥
 आप्नायाभ्यसनान्तरण्यरुदितं कृच्छ्रव्रतान्यन्वहं
 मेदच्छेदपदानि पूर्तविधयः सर्वं हुतं भस्मानि ।
 तीर्थानामवगाहनानि च गजस्नानं विना यत्पदं
 द्वन्द्वाभोरुहसंस्तुतिं विजयते देवः स नारायणः ॥२०॥
 आनन्दं गोविन्द मुकुन्द राम नारायणानन्त निरामयेति ।
 वक्तुं समर्थोऽपि न वक्ति कश्चिदहो जनानां व्यसनानि मोक्षे ॥२१॥
 क्षीरसागरतरङ्ग-सीकारासार-तारकितचारुमूर्तये ।
 भोगिभोग-शयनीयशायिने माधवाय मधुविद्विषे नमः ॥२२॥

॥ इति मुकुन्दमाला सम्पूर्णा ॥१२१॥

122. गरुडध्वजास्तोत्रम्

ध्रुव उवाच

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां
 सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
 अन्यांश्च हस्त-चरण-श्रवण-त्वगादीन्
 प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥१॥
 एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या
 मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।
 सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु
 नानेव दारुषु विभावसुवद् विभासि ॥२॥
 त्वदत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं
 सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
 तस्याऽपवर्ग्यशरणं तव पादमूलं
 विस्मर्यते कृतविदा कथमार्त्तबन्धो ॥३॥
 नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते
 ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतो ।

अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्य-
 मिच्छन्ति तत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥४॥
 या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म-
 ध्यानाद् भवार्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
 सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माऽभूत्
 किन्त्वन्तकासिलुलितात् पततां विमानात् ॥५॥
 भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो
 भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
 तेनाऽञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं
 नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥६॥
 ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीशमर्त्यं
 ये चान्वदः सुत-सुहृद्-गृह-वित्त-दाराः ।
 ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्द-
 सौगन्ध्य-लुब्ध-हृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥७॥
 तियङ्गम-द्विज-सरीसृप-देवदैत्य
 मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ।
 रूपं स्थविष्ठ भज ते महादाद्यमेकं
 नाऽतः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥८॥
 कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन्
 शेते पुमान् स्वदृगनन्तसखस्तदङ्गे ।
 यन्नाभिसिन्ध-रुहकाञ्चन-लोकपद्म
 गर्भेद्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥९॥
 त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्ध-विशुद्ध आत्मा
 कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्वधीशः ।
 यद्वद् व्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या
 द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्ते ॥१०॥
 यस्मिन् विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति
 विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।
 तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्य-
 मानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥११॥

सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्म-
 माशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तः ।
 अप्येवमार्थं भगवान् परिपाति दीनान्
 वास्त्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥१२॥
 मैत्रेय उवाच

अथाभिष्टुत एवं वै सत्सङ्कल्पेन धीमता ।
 भृत्यानुरक्तो भगवान् प्रतिनन्देदमब्रवीत् ॥१३॥
 श्रीभगवानुवाच

वेदाऽहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ।
 तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥१४॥
 नाऽन्यैरधिष्ठितं भद्रं यद् भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ।
 यक्ष-ग्रहर्क्ष-ताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥१५॥
 मेढ्यां गोचक्रवत् स्थास्नु परस्तात् कल्पवासिनाम् ।
 धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो ये वनौकसः ।
 चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः ॥१६॥
 इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ।
 भुक्त्वा चेहाऽऽशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥१७॥
 ततो गन्ताऽसि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
 उपरिष्ठादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गता ॥१८॥
 मैत्रेय उवाच

इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् ।
 बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद् गरुडध्वजः ॥१९॥

॥ इति गरुडध्वजस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२२॥

123. श्रीविष्णु-स्तवनम्

मेघ-श्यामं पीत-कौशेय-वासं
 श्रीवत्साङ्गं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम् ।
 पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं
 विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥१॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
 विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
 लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
 वन्दे विष्णुं भव-भय-हरं सर्वलोकैकनाथम् ॥२॥
 स-शङ्खचक्रं स-किरीट-कुण्डलं
 स-पीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
 सहार-वक्षःस्थल-कौस्तुभश्रियं -
 नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥३॥
 क्षीरोदन्वत्प्रदेशे शुचि-मणि-विलसत्-सैकतैर्मौक्तिकानां
 माला-क्लृप्तासनस्थः स्फटिकमणि-निभै-मौक्तिकैर्मण्डिताङ्गः ।
 शुभ्रैरभ्रैर्दभ्रैरुपरि-विरचितैर्मुक्त-पीयूषवर्षे -
 रानन्दी नः पुनीयादरि-नलिन-गदा-शङ्खपाणिर्मुकुन्दः ॥४॥
 भूः पादौ यस्य नाभिर्वियदसुर-निलश्चन्द्र-सूर्यौ च नेत्रे
 कर्णावाशाः शिरो द्यौर्मुखमपि दहनो यस्य वासोऽयमब्धिः ।
 अन्तःस्थं यस्य विश्वं सुर-नर-खग-गो-भोगि-गन्धर्व-दैत्यै-
 श्चित्रं रंरम्यते तं त्रिभुवनवपुषं विष्णुमीशं नमामि ॥५॥
 भव-जलधि-गतानां द्वन्द्ववाताहतानां
 सुत-दुहितृ-कलत्र-त्राण-भारावृतानाम् ।
 विषम-विषयतोये मज्जतामप्लवानां
 भवतु शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥६॥
 यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
 यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
 लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
 तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥७॥
 रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये
 स्थितौ प्रजानां प्रलये तमस्पृशे ।
 अजाय सर्ग-स्थिति-नाशहेतवे
 त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥८॥

॥ इति विष्णुस्तवनं समाप्तम् ॥१२३॥

124. नारायणाष्टकम्

वात्सल्यादभयप्रदानसमयादार्तातिनिर्वापणा-

दौदार्यादघशोषणादगणितश्रेयः

पदप्रापणात् ।

सेव्यः श्रीपतिरेक एव जगतामेतेऽभवन्साक्षिणः

प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट् पाञ्चाल्यहल्या ध्रुवः ॥१॥

प्रह्लादास्ति यदीश्वरो वद हरिः सर्वत्र मे दर्शयन्

स्तम्भे चैवमिति ब्रुवन्तमसुरं तत्राविरासीद्धरिः ।

वक्षस्तस्य विदारयन्निजनखैर्वात्सल्यमापादय-

नार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥२॥

श्रीरामात्र विभीषणोयमनघो रक्षोभयादागतः

सुग्रीवानय पालयैनमधुना पौलस्त्यमेवागतम् ।

इत्युक्तवाभयमस्य सर्वविदितं यो राघवो दत्त्वा-

नार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥३॥

नकग्रस्तपदं समुद्धृतकरं ब्रह्मादयो भो सुराः

पालयन्तामिति दीनवाक् यकरिणं देवेष्वशक्तेषु यः ।

मा भैषीरिति यस्य नक्रहनने चक्रायुधः श्रीधर

आर्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥४॥

भो कृष्णाच्युत भो कृपालय हरे भो पाण्डवानां सखे

क्वासि क्वासि सुयोधनादपहतां भो रक्ष मामातुराम् ।

इत्युक्तोऽक्षयवस्तसम्भृततनुं योऽपालयद् द्रौपदी -

मार्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥५॥

यत्पादब्जनखोदकं त्रिजगतां पापौघविध्वंसनं

यन्नामामृतपूरकं च पिबतां संसारसन्तारकम् ।

पाषाणोऽपि यदङ्घ्रिपद्मरजसा शापान्मुनेर्मोचित

आर्तत्राणपरायणः स भगवान्नारायणो मे गतिः ॥६॥

पित्रा भ्रातरमुक्तमासनगतं चौत्तानपादिर्ध्रुवो

दृष्ट्वा तत्समारुरुक्षुरधृतो मात्रावमानं गतः ।

यं गत्वा शरणं यदाप तपसा हेमाद्रिसिंहासन-
 मार्तत्राणपरायणः स भगवन्नारायणो मे गतिः ॥७॥
 आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः ।
 सङ्कीर्त्य नारायणशब्दमात्रं विमुक्तदुःखा सुखिनो भवन्ति ॥८॥

॥ इति श्रीनारायणाष्टकं सम्पूर्णम् ॥ १२४ ॥

125. नारायणस्तोत्रम्

नारायण नारायण	जय गोविन्द हरे ।	
नारायण नारायण	जय गोपाल हरे ॥ ध्रुवपद ॥	
करुणापारावार	वरुणालयगम्भीरा	॥ नारायण० ॥ १ ॥
घननीरदसङ्काशा	कृतकलिकल्मषनाशा	॥ नारायण० ॥ २ ॥
यमुनातीरविहारा	धृतकौस्तुभमणिहारा	॥ नारायण० ॥ ३ ॥
पीताम्बरपरिधाना	सुरकल्याणनिधाना	॥ नारायण० ॥ ४ ॥
मञ्जुलगुञ्जाभूषा	मायामानुषवेषा	॥ नारायण० ॥ ५ ॥
राधाऽधरमधुरसिका	रजनीचरकुलतिलका	॥ नारायण० ॥ ६ ॥
मुरलीगानविनोदा	भेदस्तुतभूपादा	॥ नारायण० ॥ ७ ॥
बर्हिनिबर्हापीडा	नटनाटकफणिक्रीडा	॥ नारायण० ॥ ८ ॥
वारिजभूषणाभरणा	राजिवरुक्मिणिरमणा	॥ नारायण० ॥ ९ ॥
जलरुहदलनिभनेत्रा	जगदारम्भकसूत्रा	॥ नारायण० ॥ १० ॥
पातकरजनीं संहर	करुणालय मामुद्धर	॥ नारायण० ॥ ११ ॥
अघबकक्षयकंसारे	केश व कृष्ण मुरारे	॥ नारायण० ॥ १२ ॥
हाटकनिभपीताम्बर	अभयं कुरु मे मावर	॥ नारायण० ॥ १३ ॥
दशरथराजकुमारा	दानवमदसंहारा	॥ नारायण० ॥ १४ ॥
गोवर्धनगिरिरमणा	गोपीमानसहरणा	॥ नारायण० ॥ १५ ॥
सरयूतीरविहारा	सज्जनऋषिमन्दारा	॥ नारायण० ॥ १६ ॥
विश्वामित्रमखत्रा	विविधपरासुचरित्रा	॥ नारायण० ॥ १७ ॥
ध्वजवज्रांकुशपादा	धरणीसुतसहमोदा	॥ नारायण० ॥ १८ ॥
जनकसुताप्रतिपाला	जय जय संसृतिलीला	॥ नारायण० ॥ १९ ॥

दशरथवाग्धृतिभारा	दण्डकवनसञ्जारा	॥ नारायण० ॥ २० ॥
मुष्टिकचाणूरसंहारा	मुनिमानसविहारा	॥ नारायण० ॥ २१ ॥
बालिविनग्रहशौर्या	वरसुग्रीवहितार्या	॥ नारायण० ॥ २२ ॥
मां मुरलीधर धीवर पालय पालय श्रीधर		॥ नारायण० ॥ २३ ॥
जलनिधिबन्धनधीरा	रावणकण्ठविदारा	॥ नारायण० ॥ २४ ॥
ताटीमददलनाढ्या	गुणगुणविविधनाढ्या	॥ नारायण० ॥ २५ ॥
गौतमपत्नीपूजन	करुणाघनावलोकन	॥ नारायण० ॥ २६ ॥
सम्भ्रमसीताहारा	साकेतपुरीविहारा	॥ नारायण० ॥ २७ ॥
अचलोद्धृतिचञ्चत्कर	भक्तानुग्रहतत्पर	॥ नारायण० ॥ २८ ॥
नैगमगानविनोदा	रक्षःसुतप्रह्लादा	॥ नारायण० ॥ २९ ॥
भारतिमतिवरशङ्कर	नामामृतखिलान्तर	।
नारायण नारायण जय गोपाल हरे		॥ ३० ॥

॥ इति नारायणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ ११२५ ॥

126. श्रीनारायणाष्टादशकम्

प्रह्लाद प्रभुरस्ति चेत् तव हरिः सर्वत्र मे दर्शय
 स्तम्भे चैनमिति ब्रूवन्तमसुरं तत्राऽविरासीद्धरिः ।
 वक्षस्तस्य विदारयन् निजनखै-र्वात्सल्यमावेदयन्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ १ ॥
 श्रीरामाऽत्र विभीषणोऽयमधुना त्वार्तो भयादागतः
 सुग्रीवानय पालयेऽहमधुना पौलस्त्यमेवागतम् ।
 एवं योऽभयमस्य सर्वविदितं लङ्काधिपत्यं ददा-
 वार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ २ ॥
 नक्रग्रस्तपदं समुद्यतकरं ब्रह्मेश देवेश मां
 पाहीति प्रचुरार्तरावकरिणं देवेश शक्तीश माम् ।
 मा शोचेति ररक्ष नक्रवदनाच्चक्रश्रिया तत्क्षणाद्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥ ३ ॥
 हा कृष्णाऽच्युत हा कृपाजलनिधे हा पाण्डवानां गते
 क्राऽसि क्राऽसि सुयोधनादवगतां हा रक्ष मां द्रौपदीम् ।

इत्युक्तोऽक्षयवस्त्ररक्षितनुं योऽरक्षदापद्गणाद्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥४॥
 यत्पादाब्ज-नखोदकं त्रिजगतां पापौघविध्वंसनं
 यन्नासाऽमृतपूरणं च पिबतां सन्तापसंहारकम्।
 पाषाणश्च यदङ्घ्रितो निजवधूरूपं मुनेराप्तवान्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥५॥
 यन्नामश्रुतिमात्रतोऽपरिमितं संसारवारांनिधिं
 त्यक्त्वा गच्छति दुर्जनोऽपि परमं विष्णोःपदं शाश्वतम्।
 तन्नैवाऽद्भुतकारणं त्रिजगतां नाथस्य दासोऽस्म्यहम्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥६॥
 पित्रा भ्रातरमुत्तमाङ्गगमितं भक्तोत्तमं यो ध्रुवं
 दृष्ट्वा तत्सममारुरुक्षुमुदितं मात्राऽवमानं गतम्।
 योऽदात् तं शरणागतं तु तपसा हेमाद्रिसिंहासनं
 ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥७॥
 नाथेति श्रुतयो न तत्त्वमतयो घोषस्थिता गोपिका
 जारिण्यः कुल-जाति-धर्म-विमुखा अध्यात्मभावं ययुः।
 भक्तिर्यस्य ददाति मुक्तिमतुलां जारस्य यः सदगति-
 ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥८॥
 क्षुत्तृष्णार्त-सहस्रशिष्यसहितं दुर्वाससं क्षोभितं
 द्रौपद्या भयभक्तियुक्तमनसा शाकं स्वहस्तार्पितम्।
 भुक्त्वा तर्पयदात्मवृत्तिमाखिलामावेदयन् यः पुमान्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥९॥
 येनाऽरक्षति रघूत्तमेन जलधेस्तीरे दशास्यानुग-
 स्त्वायातं शरणं रघूत्तम विभो रक्षातुरं मामिति।
 पौलस्त्येन निराकृतोऽथ सदसि भ्रात्रा च लङ्कापुरे
 ह्यार्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१०॥
 येनावहि महाहवे वसुमती संवर्तकाले महा-
 लीलाक्रोडवपुर्धरेण हरिणा नारायणेन स्वयम्।

यः पापिद्रुम-सम्प्रवर्तमचिराद्धत्वा च योऽगात् प्रियम्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥११॥
 योद्धाऽसौ भुनवत्रये मधुपतिर्भर्ता नराणां बले
 राधाया अकरोद्व्रते रतिमनःपूर्तिं सुरेन्द्रानुजः ।
 यो वा रक्षति दीनपाण्डुतनयान् नाथेति भीतिं गतान्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१२॥
 यः सान्दीपिनिदेशतश्च तनयं लोकान्तरात् सन्नतं
 चाऽऽनीय प्रतिपाद्य पुत्रमरणादुज्जम्भमाणार्तये ।
 सन्तोषं जनयन्नमेयमहिमा पुत्रार्थसम्पादनम्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१३॥
 यन्नामस्मरणादघौघसहितो विप्रः पुराऽजामिलः
 प्राणान् मुक्तिमशोषितामनु च यः पापौघदावार्तियुक ।
 सद्यो भागवतोत्तमात्मनि मतिं पापाम्बरीषाभिध-
 श्चाऽऽर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१४॥
 योऽरक्षद्वसनादिनित्यरहितं विप्रं कुचैलाभिधं
 दीनाऽदीन-चकोरपालनपरः श्रीशङ्खचक्रोज्ज्वलः ।
 तज्जीर्णाम्बर-मुष्टिमात्रपृथुकानादाय भुक्त्वा क्षणाद्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१५॥
 यत्कल्याणगुणाभिरामममलं मन्त्राणि संशिक्षते
 यत्संशेति प्रतिप्रतिष्ठितमिदं विश्वं वदत्यागमः ।
 यो योगीन्द्रमनः सरोरुहतमः प्रध्वंसविद्भानुमान्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१६॥
 कालिन्दीहृदयाभिरामपुलिने पुण्ये जगन्मङ्गले
 चन्द्राम्भोजवटे पटे परिसरे धात्रा समाराधिते ।
 श्रीरङ्गे भुजगेन्द्रभोगशयने शेते सदा यः पुमान्
 आर्तत्राणपरायणः स भगवान् नारायणो मे गतिः ॥१७॥
 वात्सल्यादभय-प्रदानसमयादार्ताऽर्तिनिर्वापणा
 दौदार्यादध-शोषणादगणित-श्रेयः-पदप्रापणात् ।
 सेव्यः श्रीपतिरेव सर्वजगतामेते हि तत्साक्षिणः
 प्रह्लादश्च विभीषणश्च करिराट् पाञ्चाल्यहल्या ध्रुवः ॥१८॥

॥ इति श्रीनारायणाष्टादशकं सम्पूर्णम् ॥१२६॥

127. परमेश्वरस्तुतिसारस्तोत्रम्

त्वमेकः शुद्धोऽसि त्वयि निगमबाह्या मलमयं
 प्रपञ्चं पश्यन्ति भ्रमरपरवशाः पापनिरतां ।
 बहिस्तेभ्यः कृत्वा स्वपदशरणं मानय विभो
 गजेन्द्रे दृष्टं ते शरणद वदान्यं स्वपददम् ॥१॥
 न सृष्टेस्ते हानिर्यदि हि कृपयातोऽवसि च मां
 त्वयाऽनेके गुप्ता व्यसनमिति तेऽस्मि श्रुतिपथे ।
 अतो मामुद्धर्तुं घटय मयि दृष्टिं सुविमलां
 न रिक्तां मे याञ्चां स्वजनरत कर्तुं भव हरे ॥२॥
 कदाहं भो स्वामिन्नियतमनसा त्वां हृदि भज-
 न्नभद्रे संसारे ह्यनवरतदुःखेऽतिविरसः ।
 लभेयं तां शान्तिं परममुनिभिर्या ह्यधिगता
 दयां कृत्वा मे त्वं वितर परशान्तिं भवहर ॥३॥
 विधाता चेद् विश्वं सृजति सृजतां मे शुभकृतिं
 विधुश्चेत् पाता माऽवतु जनिमृतेर्दुःखजलधेः ।
 हरः संहर्ता संहरतु मम शोकं सजनकं
 यथाऽहं मुक्तः स्यां किमपि तु तथा ते विदधताम् ॥४॥
 अहं ब्रह्मानन्दस्त्वमपि च तदाख्यः सुविदित-
 स्ततोऽहं भिन्नो नो कथमपि भवत्तः श्रुतिदृशा ।
 तथा चेदानीं त्वं त्वयि मम विभेदस्य जननीं
 स्वमायां संवार्य प्रभव मम भेदं निरसितुम् ॥५॥
 कदाऽहं हे स्वामिन् जनिमृतिमयं दुःखनिविडं
 भवं हित्वा सत्येऽनवरतसुखे स्वात्मवपुषि ।
 रमे तस्मिन्नित्यं निखिलमुनयो ब्रह्मारसिका
 रमन्ते यस्मिंस्ते कृतसकलकृत्या यतिवराः ॥६॥
 पठन्त्यन्येके शास्त्रं निगममपरे तत्परतया
 यजन्त्ये त्वां वै ददति च पदार्थास्तव हितान् ।
 अहं तु स्वामिंस्ते शरणमगमं संसृतिभयात्
 यथा ते प्रीतिः स्थाब्धितकर तथा त्वं कुरु विभो ॥७॥
 अहं ज्योतिर्नित्यो गगनमिव तृप्तः सुखमयः
 श्रुतौ सिद्धोऽद्वैतः कथमपि न भिन्नोऽस्मि विधुतः ।

इति ज्ञाते तत्त्वे भवति च परः संसृतिलया-
 दतस्तत्त्वज्ञानं मयि सुघटयेस्त्वं हि कृपया ॥८॥
 अनादौ संसारे जनिमृतमये दुःखितमना
 मुमुक्षुः सन् कश्चिद् भजति हि गुरुं ज्ञानपरमम् ।
 ततो ज्ञात्वा यं वै तुदति न पुनः क्लेशनिवहै-
 र्भजेऽहं तं देवं भवति च परो यस्य भजनात् ॥९॥
 विवेको वैराग्यो न च शभ-दमाद्याः षडपरे
 मुमुक्षा मे नास्ति प्रभवति कथं ज्ञानममलम् ।
 अतः संसाराब्धेस्तरणसरणिं मामुपदिशन्
 स्वबुद्धिं श्रौतीं मे वितर भगवंस्त्वं हि कृपया ॥१०॥
 कदाऽहं भो स्वामिन्निगममतिवेदं शिवमयं
 चिदानन्दं नित्यं श्रुतिहृतपरिच्छेदनिवहम् ।
 त्वमर्थाभिन्नं त्वामभिरम् इहात्मन्यविरतं
 मनीषामेवं मे सफलय वदान्यं स्वकृपया ॥११॥
 यदर्थं सर्वं वै प्रियमसुधनादि प्रभवति
 स्वयं नाऽन्यार्थो हि प्रिय इति च वेदे प्रविदितम् ।
 स आत्मा सर्वेषां जनिमृतमतां वेदगदित-
 स्ततोऽहं तं वेद्यं सततममलं यामि शरणम् ॥१२॥
 मया त्यक्तं सर्वं कथमपि भवेत् स्वात्मनि मति-
 स्त्वदीया माया मां प्रति तु विपरीतं कृतवती ।
 ततोऽहं किं कुर्यां न हि मम मतिः क्वाऽपि चरति
 दयां कृत्वा नाथ! स्वपदशरणं देहि शिवदम् ॥१३॥
 नगा दैत्याः कीशा भवजलधिपारं हि गमिता-
 स्त्वया चाऽन्ये स्वामिन् किमिति समयेऽस्मिञ्छयितवान् ।
 न हेला त्वं कुर्यास्त्वयि निहितसर्वे मयि विभो
 न हि त्वाहं हित्वा कमपि शरणं चाऽन्यमगमम् ॥१४॥
 अनन्ताद्या विज्ञा न गुणजलधिस्तेऽन्तमगम-
 त्रतः पारं यायात्तव गुणगणानां कथमयम् ।
 गृणन् यावद्भि त्वां जनिमृतिहरं याति परमां
 गतिं योगिप्राप्यमिति मनसि बुद्ध्वाहमनवम् ॥१५॥

॥ इति परमेश्वरस्तुतिसारस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२७॥

128. भगवच्छरणस्तोत्रम्

सच्चिदानन्दरूपाय भक्तानुग्रहकारिणे ।
 मायानिर्मित-विश्वाय महेशाय नमो नमः ॥१॥
 रोगा हरन्ति सततं प्रबलाः शरीरं
 कामादयोऽप्यनुदिनं प्रदहन्ति चित्तम् ।
 मृत्युश्च नृत्यति सदा कलयन् दिनानि
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥२॥
 देहो विनश्यति सदा परिणामशील-
 श्रित्तं च खिद्यति सदा विषयानुरागि ।
 बुद्धिः सदा हि रमते विषयेषु नान्त-
 स्तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥३॥
 आयुर्विनश्यति यथाऽऽमघटस्थतोयं
 विद्युत्प्रभेव चपला बत यौवनश्रीः ।
 वृद्धा प्रधावति यथा मृगराजपत्नी
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥४॥
 आयाद् व्ययो मम भवत्यधिकोऽविनीते
 कामादयो हि बलिनो निबलाः शमाद्याः ।
 मृत्युर्यदा तुदति मां बत किं वदेयं
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥५॥
 तप्तं तपो न हि कदापि मयेह तन्व
 वाण्या तथा न हि कदाऽपि तपश्च तप्तम् ।
 मिथ्याऽभिभाषणपरेण न मानसं हि
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥६॥
 स्तब्धं मनो मम सदा न हि याति सौम्यं
 चक्षुश्च मे न तव पश्यति विश्वरूपम् ।
 वाचाः तथैव न वन्देमम सौम्यवाणीं
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥७॥
 सत्त्वं न मे मनसि याति रजस्तमोभ्यां
 विद्धे तदा कथमहो शुभकर्मवार्ता ।

साक्षात् परम्परतया सुखसाधनं तत्
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥८॥
 पूजा कृता न हि कदाऽपि मया त्वदीया
 मन्त्रं त्वदीयमपि मे न जपेद् रसज्ञा।
 चित्तं न मे स्मरति ते चरणौ ह्यवाप्य
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥९॥
 यज्ञो न मेऽस्ति हुति-दान-दयादियुक्तो
 ज्ञानस्य साधनगणो न विवेकमुख्यः।
 ज्ञानं क्व साधनगणेन विना क्व मोक्षः
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१०॥
 सत्सङ्गतिर्हि विदिता तव भक्तिहेतुः
 साऽप्यद्य नास्ति बत पण्डितमानिनो मे।
 तामन्तरेण न हि सा क्व च बोधवार्ता
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥११॥
 दृष्टिर्न भूतविषया समताभिधाना
 वैषम्यमेव तदियं विषयीकरोति।
 शान्तिः कुतो मम भवेत् समता न चेत् स्यात्
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१२॥
 मैत्री समेषु न च मेऽस्ति कदाऽपि नाथ!
 दीने तथा न करुणा मुदिता च पुण्ये।
 पापेऽनुपेक्षणवतो मम मुत्कथं स्यात्
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१३॥
 नेत्रादिकं मम बहिर्विषयेषु सक्तं
 नाऽन्तर्मुखं भवति तानविहाय तस्य।
 क्रान्तर्मुखत्वमपहाय सुखस्य वार्ता
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१४॥
 त्यक्तं गृहाद्यपि मया भवतापशान्त्यै
 नासीदसौ हृतहृदो मम मायया ते।
 सा चाऽधुना किमु विधास्यति नेति जाने
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१५॥

प्राप्ता धनं गृह-कुटुम्ब-गजा-ऽश्व-दारा
 राज्यं यदैहिकमथेन्द्रपुरश्च नाथ ।
 सर्वं विनश्चरमिदं न फलाय कस्मै
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१६॥
 प्राणान्निरुध्य विधिना न कृतो हि योगो
 योगं विनाऽस्ति मनसः स्थिरता कुतो मे ।
 तां वै विना मम न चेतसि शान्तिवार्ता
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१७॥
 ज्ञानं यथा मम भवेत् कृपया गुरुणां
 सेवां तथा न विधिनाऽकरवं हि तेषाम् ।
 सेवाऽपि साधनतया विदिताऽस्ति चित्ते
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१८॥
 तीर्थादि-सेवनमहाविधिना हि नाथ !
 नाऽकारि येन मनसो मम शोधनं स्यात् ।
 शुद्धिं विना न मनसोऽवगमापवर्गो
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥१९॥
 वेदान्तशीलनमपि प्रमितिं करोति
 ब्रह्मात्मनः प्रमिति-साधनसंयुतस्य ।
 नैवाऽस्ति साधनलवो मयि नाथ तस्याः
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥२०॥
 गोविन्द शङ्कर हरे गिरिजेश मेश
 शम्भो जनार्दन गिरीश मुकुन्द साम्ब ।
 नाऽन्या गतिमर्म कथञ्चन वां विहाय
 तस्मात्त्वमद्य शरणं मम दीनबन्धो ॥२१॥
 एतं स्तवं भगवदाश्रयणाभिधानं
 ये मानवाः प्रतिदिनं प्रणताः पठन्ति ।
 ते मानवा भवरतिं परिभूय शान्तिं
 गच्छन्ति किं च परमात्मनि भक्तिमन्तः ॥२२॥

॥ इति भगवच्छरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२८॥

129. श्रीजगन्नाथाष्टकम्

कदाचित् कालिन्दी-तटविपिन-सङ्गीतकरवो
 मुदाभीरी-नारीवदन-कमलास्वाद-मधुपः ।
 रमा-शम्भुर्ब्रह्मा-ऽमरपति-गणेशार्चितपदो -
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१॥
 भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
 दुकूलं नेत्रान्ते सहचरकटाक्षं विदधते ।
 सदा श्रीमद्वृन्दावन-वसतिलीला-परिचयो
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥२॥
 महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
 वसन् प्रासादान्तः सहजबलभद्रेण बलिना ।
 सुभद्रामध्यस्थः सकलसुरसेवा-ऽवसरदो
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥३॥
 कृपापारावारः सजल-जलद-श्रेणिरुचिरो
 रमावाणीराम-स्फुरदमल-पद्मेक्षणमुखैः ।
 सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगण-शिखागीतचरितो
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥४॥
 रथारूढो गच्छन् पथि मिलित-भूदेवपटलैः
 स्तुतिप्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः ।
 दयासिन्धुर्बन्धु सकलजगतां सिन्धुसुतया
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥५॥
 परब्रह्मापीडः कुवलयदलोत्फुल्लनयनो
 निवासी नीलाद्रौ निहितचरणोऽनन्तशिरसि ।
 रसानन्दो राधा-सरसवपुरालिङ्गनसुखो
 जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥६॥
 न वै प्रार्थ्यं राज्यं न च कनकतां भोगविभवं
 न याचेऽहं रम्यां निखिलजनकाभ्यां वरवधूम् ।

सदा काले-काले प्रमथ-पतिना गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥७॥
हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते ।
अहो दीनानाथं निहितमचलं निश्चितपदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥८॥

॥ इति जगन्नाथाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१२९॥

130. जगन्मंगलकवचस्तोत्रम्

श्रीसनत्कुमार उवाच

ब्रूहि मे कवचं ब्रह्मन्! जगन्मङ्गलमङ्गलम् ।
पूज्यं पुण्यस्वरूपं च कृष्णस्य परमात्मनः ॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणु वक्ष्यामि विपेन्द्र! कवचं परमाद्भुतम् ।
श्रीकृष्णेनैव कथितं मह्यं च कृपया पुरा ॥२॥
मया दत्तं च धर्माय तेन नारायणर्षये ।
ऋषिणा तेन तद्दत्तं सुभद्राय महात्मने ॥३॥
अतिगुह्यतमं शुद्धं परं स्नेहाद् वदाम्यहम् ।
यद् धृत्वा पठनात् सिद्धाः सिद्धयादि प्राप्नुवन्ति च ॥४॥
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्चर्यमवाप्नुयुः ।
शृषिश्छन्दश्च सावित्री देवो नारायण स्वयम् ॥५॥
धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
ॐ राधेशो मे शिरः पातु तालुं च भगवान् स्वयम् ॥६॥
गोपीश्चक्षुषी पातु तालुं च भगवान् स्वयम् ।
गण्डयुग्मं च गोविन्दः कर्णयुग्मं च केशवः ॥७॥
गलं गदाधरः पातु स्कन्धं कृष्णः स्वयंप्रभुः ।
वक्षःस्थलं वासुदेवश्चोदरं चाऽपि सोऽच्युतः ॥८॥

नाभिं पातु पद्मनाभः कङ्कालः कंससूदनः ।
 पुरुषोत्तमः पातु पृष्ठं नित्यानन्दो नितम्बकम् ॥९॥
 पुण्डरीकः पादयुग्मं हस्तयुग्मं हरिः स्वयम् ।
 नासां च नखरं पातु नरसिंहः स्वयंप्रभुः ॥१०॥
 सर्वेश्वरश्च सर्वाङ्गं सततं मधुसूदनः ।
 प्राच्यां पातु च रामश्च वह्नौ वंशीधरः स्वयम् ॥११॥
 पातु दामोदरो दक्षे नैऋत्ये च नरोत्तमः ।
 पश्चिमे पुण्डरीकाक्षो वायव्यां वामनः स्वयम् ॥१२॥
 अनन्तश्चोत्तरे पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ।
 जले स्थले चाऽन्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा ॥१३॥
 पातु वृन्दावनेशश्च मां भक्तं शरणागतम् ।
 इति ते कथितं वत्स! कवचं परमाद्भूतम् ॥१४॥
 सुखदं मोक्षदं सारं सर्वसिद्धिप्रदं सताम् ।
 इदं कवचमिष्टं च पूजाकाले च यः पठेत् ॥१५॥
 हरिदास्यमवाप्नोति गोलोके वासमुत्तमम् ।
 इहैव हरिभक्तिं च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१६॥

॥ इति जगन्मंगलकवच समाप्तम् ॥१३०॥

131. मंगलगीतम्

श्रित-कमलकुच-मण्डल धृतकुण्डल ए ।
 कलित-ललित-वनमाल जय जय देव हरे ॥१॥
 दिनमणि-मण्डल-मण्डन भव-खण्डन ए ।
 मुनिजन-मानस-हंस जय जय देव हरे ॥२॥
 कालिय-विषधर-गञ्जन जनरञ्जन ए ।
 यदुकुल-नलिन-दिनेश जय जय देव हरे ॥३॥
 मधु-मुर-नरक-विनाशन गरुडासन ए ।
 सुरकुल-केलि-निदान जय जय देव हरे ॥४॥
 अमल-कमल-दल-लोचन भवमोचन ए ।
 त्रिभुव-भवन-निधान जय जय देव हरे ॥५॥

जनकसुता-कृतभूषण जितदूषण ए।
 समर-शमित-दशकण्ठ जय जय देव हरे ॥६॥
 अभिनव-जलधर-सुन्दर धृतमन्दर ए।
 श्रीमुख-चन्द्र-चकोर जय जय देव हरे ॥७॥
 तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए।
 कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥८॥
 श्रीजयदेवकवेरुदितमिदं कुरुते मुदम्।
 मङ्गल-मञ्जुल-गीतं जय जय देव हरे ॥९॥

॥ इति मंगलगीतं सम्पूर्णम् ॥१३१॥

132. भगवत्-स्तुतिः

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूनि।
 स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥१॥
 त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
 वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेनवद्या ॥२॥
 युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक् कचलुलितश्रमवार्यलङ्कृतास्ये।
 मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचे स्तु कृष्ण आत्मा ॥३॥
 सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य।
 स्थितवति परसैनिकायुरक्षणा हतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥४॥
 व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या।
 कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मे स्तु ॥५॥
 स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः।
 धृतरथचरणो भ्ययाच्चलदुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥६॥
 शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।
 प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥७॥
 विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रयेक्षणीये।
 भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥८॥

ललितगतिविलासवल्गुहास - प्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
 कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥१॥
 मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।
 अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥१०॥
 तमिमहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।
 प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समाधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥११॥

इति भगवत्स्तुतिः सम्पूर्णा ॥१३२॥

133. परमेश्वर-स्तोत्रम्

जगदीश सुशीश भवेश विभो परमेश परात्पर पूत पितः ।
 प्रणतं पतितं हतबुद्धिबलं जनतारण तारय तापितकम् ॥१॥
 गुणहीनसुदीनमलीनमतिं त्वयि पातरि दातरि चापरतिम् ।
 तमसा रजसावृतवृत्तिमिमं जनतारण तारय तापितकम् ॥२॥
 मम जीवनमीनमिमं पतितं मरुधोरभुवीह सुवीहमहो ।
 करुणाब्धिचलोर्मिजलानयनं जनतारण तारय तापितकम् ॥३॥
 भववारण कारण कर्मततौ भवसिन्धुजले शिव मग्नमतः ।
 करुणाञ्च समर्प्य तरिं त्वरितं जनतारण तारय तापितकम् ॥४॥
 अतिनाश्य अनुर्मम पुण्यरुचे दुरितौघभरैः परिपूर्णभुवः ।
 सुजघन्यमगण्यमपुण्यरुचिं जनतारण तारय तापितकम् ॥५॥
 भवकारक नारकहारक हे भवतारक पातकदारक हे ।
 हर शङ्कर किङ्करकर्मचयं जनतारण तारय तापितकम् ॥६॥
 तृषितश्चिरमस्मि सुधां हित मे च्युत चिन्मय देहि वदान्यवर ।
 अतिमोहवशेन विनष्टकृतं जनतारण तारय तापितकम् ॥७॥
 प्रणमामि नमामि नमामि भवं भवजन्मकृतिप्रणिषूदनकम् ।
 गुणहीनमनन्तमितं शरणं जनतारण तारय तापितकम् ॥८॥

इति परमेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३३॥

134. अभिलाषाष्टकम्

कदा पक्षीन्द्रांसोपरि गतमजं कञ्चनयनं रमासंश्लिष्टाङ्गं गगनरुचमापीतवसनम् ।
 सदा शङ्खाम्भोजारिवरकरमालोक्य सुचिरं गमिष्यत्वेतन्मेननु सफलतां नेत्रयुगलम् ॥१॥
 कदा क्षीराब्ध्यन्तः सुरतरुवनान्तर्मणिमये समासीनं पीठे जलधितनयालिङ्गिततनुम् ।
 स्तुतं देवैर्नित्यं मुनिवरकदम्बैरभिनुतं स्तवैः संस्तोष्यामि श्रुतिवचनगर्भैः सुरगुरुम् ॥२॥
 कदा मामाभीतं भवजलधितस्तापसतनुं गता रागं गङ्गातटगिरिगुहावाससहनम् ।
 लपन्तं हेविष्णो सुरवर रमेशेति सततं समभ्येत्योदारं कमलनयनो वक्ष्यति वचः ॥३॥
 कदा मे हृत्पद्मे भ्रमर इव पद्मे प्रतिवसन् सदा ध्यानाभ्यासादनिशमुपहृतो विभुरसौ ।
 स्फुटज्जयोतीरूपो रविरिव रमासेव्यचरणो हरिष्यत्यज्ञानाज्जनिततिमिरं तूर्णमखिलम् ॥४॥
 कदा मे भोगाशानिविड भवपाशादुपरतं तपः शुद्धं बुद्धं गुरुवचनतोदैरचपलम् ।
 मनोमौनं कृत्वा हरिचरणयोश्चारु सुचिरं स्थितिं स्थाणुप्रायां भवभयहरां यास्यति पराम् ॥५॥
 कदा मे संरुद्धाखिलकरणजालस्य परितो जिताशेषप्राणानिलपरिकरस्य प्रजपतः ।
 सदोङ्कारं चित्तं हरिपदसरोजे धृतवतः समेष्यत्युल्लासं मुहुर्खिलरोमावलिरीरयम् ॥६॥
 कदा प्रारब्धान्ते परिशिथिलतां गच्छति शनैः शरीरं चाक्षौघेष्युपरतवति प्राणपवने ।
 वदत्यूर्ध्वं शश्वन्मम वदनकञ्जे मुहुर्हो करिष्यत्यावासं हरिरित पदं पावनतमम् ॥७॥
 कदा हित्वा जीर्णां त्वचमिव भुजङ्गस्तनुमिमां चतुर्बाहुश्चक्राम्बुजदरकरः पीतवसनः ।
 घनश्यामो दूतैर्गगनगतिनीतो नतिपरैर्गमिष्यामीशस्यान्तिकमखिलदुःखान्तकमिति ॥८॥

॥ इति अभिलाषाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१३४॥

135. हरिहरात्मकस्तोत्रम्

यम उवाच

गोविन्द माधव मुकुन्द हरे मुरारे शम्भो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे ।
 दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव त्याज्या भटा य इति सन्तमामनन्ति ॥१॥
 गङ्गाध रान्धकरिपो हर नीलकण्ठ वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे ।
 भूतेश खण्डपरशो मृड चण्डिकेश त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥२॥
 विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे गौरीपते गिरिश शङ्कर चन्द्रचूड ।
 नारायणासुरनिबर्हण शार्ङ्गपाणे त्याज्या भटा य इति सन्ततमामनन्ति ॥३॥

मृत्युञ्जयोग्रविषमेक्षणकामशत्रो श्रीकान्तपीतवसनाम्बुदनीलशौरै ।
 ईशानकृत्तिवसनत्रिदशैकनाथत्याज्याभटाय इति सन्ततमामनन्ति ॥४॥
 लक्ष्मीपतेमधुरिपोपुरुषोत्तमाद्यश्रीकण्ठदिग्वसनशान्तपिनाकपाणे ।
 आनन्दकन्दधरणीधरपद्मनाभत्याज्याभटाय इति सन्ततमामनन्ति ॥५॥
 सर्वेश्वरत्रिपुरसूदनदेवदेवब्रह्मण्यदेवगरुडध्वजशङ्खपाऽणे ।
 त्रयक्षोरगाभरणबालमृगाङ्गमौलेत्याज्याभटाय इति सन्ततमामनन्ति ॥६॥
 श्रीरामराघवरमेश्वररावणारेभूतेशमन्मथरिपोप्रमथाधिनाथ ।
 चाणूरमर्दनहृषीकपतेमुरारेत्याज्याभटाय इति सन्ततमामनन्ति ॥७॥
 शूलिन्गिरीशरजनीशकलावतसकंसप्रणाशनसनातनकेशिनाश ।
 भर्गत्रिनेत्रभवभूतपतेपुरारेत्याज्याभटाय इति सन्ततमामनन्ति ॥८॥
 गोपीपतेयदुपतेवसुदेवसूनोकर्पूरगौरवृषभध्वजभालनेत्र ।
 गोवर्धनोद्धरणधर्मधुरीणगोपत्याज्याभटाय इति सन्ततमामनन्ति ॥९॥
 स्थाणोत्रिलोचनपिनाकधरस्मरारकृष्णनिरुद्धकमलाकरकल्मषारे ।
 विश्वेश्वरत्रिपथगार्द्रजटाकलापत्याज्याभटाय इति सन्ततमामनन्ति ॥१०॥
 अष्टोत्तराधिकशतेनसुचारुनाम्नांसन्दर्भितांललितरत्नकदम्बकेन ।
 सन्नायकांदृढगुणांनिजकण्ठगांयःकुर्यादिमांस्रजमहोसयमंनपश्येत् ॥११॥

गणावूचतुः

इत्थं द्विजेन्द्रनिजभृत्यगणान्सदैवसंशिक्षयत्यवनिगान्सहिधर्मराजः ।
 अन्येपि तेहरिहराङ्गधराधरायांतेदूरतःपुनरहोपरिवर्जनीयाः ॥१२॥

अगस्त्य उवाच

योधर्मराजरचितांललितप्रबन्धांनामावलिंसकलकल्पवीजहन्त्रीम् ।
 धीरोत्रकौस्तुभभृतःशशिभूषणस्यनित्यंजपेत्तनरसंनपिबेत्समातुः ॥१३॥
 इतिश्रृण्वन्कथांरम्यांशिवशर्माप्रियेऽनघाम् ।
 प्रहर्षवक्त्रंपुरतोददर्शसरसांपुरीम् ॥१४॥

इति हरिहरात्मकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३५॥

॥ इति विष्णुस्तोत्राणि सम्पूर्णानि ॥



5. सूर्यस्तोत्राणि

136. सूर्यकवचम्

याज्ञवल्क्य उवाच

शृणुष्व मुनिशार्दूल! सूर्यस्य कवचं शुभम्।
 शरीरारोग्यदं दिव्यं सर्वसौभाग्यदायकम् ॥१॥
 देदीप्यमानमुकुटं स्फुरन्मकरकुण्डलम्।
 ध्यात्वा सहस्रकिरणं स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥२॥
 शिरो मे भास्करः पातु ललाटं मेऽमितद्युतिः।
 नेत्रे दिनमणिः पातु श्रवणे वासरेश्वरः ॥३॥
 घ्राणं धर्मघृणिः पातु वदनं वेदवाहनः।
 जिह्वां मे मानदः पातु कण्ठं मे सुरवन्दितः ॥४॥
 स्कन्धौ प्रभाकरः पातु वक्षः पातु जनप्रियः।
 पातु पादौ द्वादशात्मा सर्वाङ्गं सकलेश्वरः ॥५॥
 सूर्यरक्षात्मकं स्तोत्रं लिखित्वा भूर्जपत्रक।
 दधाति यः करे तस्य वशगाः सर्वसिद्धयः ॥६॥
 सुस्नातो यो जपेत् सम्यग् योऽधीते स्वस्थमानसः।
 स रोगमुक्तो दीर्घायुः सुखं पुष्टिं च विन्दति ॥७॥

॥ इति सूर्यकवचस्तोत्र सम्पूर्णम् ॥१३६॥

137. सूर्यकवच-स्तोत्रम्

श्रीसूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु मे कवचं शुभम्।
 त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१॥

यज्ज्ञात्वा मन्त्रवित् सम्यक् फलं प्राप्नोति निश्चितम् ।
 यद्धृत्वा च महादेवो गणानामधिपोऽभवत् ॥२॥
 पठनाद्धारणाद् विष्णुः सर्वेषां पालकः सदा ।
 एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥३॥
 कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतः ।
 श्रीसूर्यो देवता चाऽत्र सर्वदेवनमस्कृतः ॥४॥
 यश-आरोग्य-मोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
 प्रणवो मे शिरः पातु घृणिर्मे पातु भालकम् ॥५॥
 सूर्योऽव्यान्नयनद्वन्द्वमादित्यः कर्णयुग्मकम् ।
 अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥६॥
 ह्रीं बीजं मे मुखं पातु हृदयं भुवनेश्वरी ।
 चन्द्रबिम्बं विंशदाद्यं पातु मे गुह्यदेशकम् ॥७॥
 अक्षरोऽसौ महामन्त्रः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ।
 शिवो वह्निसमायुक्तो वामाक्षीबिन्दुभूषितः ।
 एकाक्षरो महामन्त्रः श्रीसूर्यस्य प्रकीर्तितः ॥८॥
 गुह्याद् गुह्यतरो मन्त्रो वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः ।
 शीर्षादि-पादपर्यन्तं सदा पातु मनूत्तमः ॥९॥
 इति ते कथितं दिव्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
 श्रीपदं कान्तिदं नित्यं धनारोग्य-विवर्धनम् ॥१०॥
 कुष्ठादिरोगशमनं महाव्याधिविनाशनम् ।
 त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान् भवेत् ॥११॥
 बहुना किमिहोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ।
 तत्तत् सर्वं भवेत्तस्य कवचस्य च धारणात् ॥१२॥
 भूत-प्रेत-पिशाचाश्च यक्ष-गन्धर्व-राक्षसाः ।
 ब्रह्म-राक्षस-वेताला न द्रष्टुमपि तं क्षमाः ॥१३॥
 दूरादेव पलायन्ते तस्य सङ्कीर्तनादपि ।
 भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागरुकुङ्कुमैः ॥१४॥

रविवारे च सङ्क्रान्त्यां सप्तम्यां च विशेषतः ।
 धारयेत् साधकश्रेष्ठः स परो मे प्रियो भवेत् ॥१५॥
 त्रिलोहमध्यगं कृत्वा धारयेद् दक्षिणे करे ।
 शिखायामथवा कण्ठे सोऽपि सूर्यो न संशयः ॥१६॥
 इति ते कथितं साम्ब! त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ।
 कवचं दुर्लभं लोके तव स्नेहात् प्रकाशितम् ॥१७॥
 अज्ञात्वा कवचं दिव्यं यो जपेत् सूर्यमुत्तमम् ।
 सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥१८॥

॥ इति सूर्यकवचं सम्पूर्णम् ॥१३७॥

138. सूर्यस्तोत्रम् (1)

ॐ सप्ताश्वं समारुह्याऽरुणसारथिमुत्तमम् ।
 श्वेतपद्मधरं देवं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥१॥
 बन्धूक-पुष्पसङ्काशं हारकुण्डलभूषणम् ।
 एकचक्रधरं देवं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥२॥
 लोहितस्वर्णसङ्काशं सर्वलोकपितामहम् ।
 सर्वव्याधिहरं देवं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥३॥
 त्वं देव ईश्वरः शक्र-ब्रह्मा-विष्णु-महेशराट् ।
 परं धर्मं परं ज्ञानं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥४॥
 त्वं देवलोककर्ता च कीर्त्यात्मा करणांशकम् ।
 तेजो रुद्रधरं देवं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥५॥
 पृथिव्यसेजो वायुश्चाऽऽत्माऽप्याकाशमेव च ।
 सर्वज्ञं श्रीजगन्नाथं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥६॥
 अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराऽचरम् ।
 गगनलिङ्गमाराध्यं त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥७॥
 निर्मलं निर्विकल्पं च निर्विकारं निरामयम् ।
 जगत्कर्ता जगद्धर्तस्त्वां सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥८॥

सूर्यस्तोत्रं जपेन्नित्यं ग्रहपीडाविनाशनम् ।
 धन्नं धान्यं मनोवाञ्छांश्रियः प्राप्नोति नित्यशः ॥१॥
 शिवरात्रिसहस्रेषु कृत्वा जागरणं भवेत् ।
 यत्फलं लभते सर्वं तं वै सूर्यस्य दर्शनात् ॥१०॥
 एकादशीसहस्राणि संक्रान्त्ययुतमेव च ।
 सप्तकोटिसु दर्शेषु तत्फलं सूर्यदर्शनात् ॥११॥
 अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
 कोटिकन्याप्रदानानि तत्फलं सूर्यदर्शनात् ॥१२॥
 गयापिण्डः परं दाने पितृणां च समुद्धरम् ।
 दृष्ट्वा ह्यग्रयेश्वरं देवं तत्फलं समवाप्नुयात् ॥१३॥
 अग्रयेश्वरसमोपेतो सोमनाथस्तथैव च ।
 कैदारमुदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥१४॥
 सूर्यस्तोत्रं पठेन्नित्यमेकचित्तः समाहितः ।
 दुःखदारिद्र्यनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति ॥१५॥

॥ इति सूर्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३८॥

139. सूर्यस्तोत्रम् (2)

यस्योदयास्तसमये शिवाद्या अपि चाञ्जलिम् ।
 बध्नन्ति विश्वसाक्षी स प्रत्यक्षः श्रूयते रविः ॥१॥
 यदधीना कालगतिर्यदधीनाः क्रियाः समाः ।
 यन्मन्त्रेण द्विजत्वामिर्यन्मन्त्रेण कृतार्थता ॥२॥
 लौकिक्यपि व्यवहतिर्यत्प्रसादात् वर्तते ।
 स्मर्यतेऽस्माद् विश्वसृष्टिः सवितुः श्रूयतेऽपि च ॥३॥
 जगतस्तस्थुषश्चात्मा सूर्यस्तं बहुधा जगुः ।
 मूर्ताऽमूर्तं जगत्सर्वं प्राणापानात्मकं श्रुतम् ॥४॥
 प्राणः सूर्योऽपरश्चन्द्रस्तयो सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
 श्रीसूर्यकिरणावेशाच्चन्द्रस्यापि च चन्द्रमा ॥५॥
 अतश्चन्द्रो न भिन्नोऽस्मात् स सूर्यः सकलात्मकः ।
 यं विना जगदान्धं हि स देवः केन पूज्यते ॥६॥

तमोऽमुं ग्रसतीत्येष दृष्ट्वादौ न तात्त्विकः ।
तस्माद्भक्तेष्टदो देवो वरोऽर्कश्चापराजितः ॥७॥

इति सूर्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३९॥

140. सूर्यवरदस्तोत्रम्

धौम्य उवाच

सूर्योऽर्मया भगस्त्वष्टा पूषाऽर्कः सविता रविः ।
गभस्तिमाजनः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥१॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम् ।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥२॥
इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥३॥
वैद्युतो जागरश्चाग्निः रैन्धनस्तेजसां पतिः ।
धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥४॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वमालाश्रयः ।
कला-काष्ठा-मुहूर्ताश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः ॥५॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः ।
पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताऽव्यक्तः सनातनः ॥६॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः ।
वरुणः सागरोऽशश्च जीमूतो जीवनाऽरिहा ॥७॥
भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्वष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥८॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः ।
जयो विशालो वरदः सर्वधातृनिषेचिता ॥९॥
मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः ।
धन्वन्तरिर्धूमकेतु रादिदेवो दितेः सुतः ॥१०॥
द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः ।
संवर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टम् ॥११॥

देहकर्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
 चरा चरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः ॥१२॥
 एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्याऽमिततेजसः ।
 नामाऽष्टकशतकं चेदं प्रोक्तमेतत् स्वयम्भुवा ॥१३॥
 सुरगण - पितृयज्ञसेवितं ह्यसुर - निशाचर-सिद्धवन्दितम् ।
 वरकनक - हुताशनप्रभं प्रणिपतितोऽस्मिहिताय भास्करम् ॥१४॥
 सूर्योदये यः सुसमाहितः पठन् स-पुत्र-दारान् धन-रत्न-सञ्चयान् ।
 लभेत जातिस्मरतां नरः सदा धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ॥१५॥
 इमं स्तवं देववरस्य मानवः प्रकीर्तयेच्छुचि-सुमना समाहितः ।
 विमुच्यते शोक-दवाग्नि-सागरात् लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान् ॥१६॥

॥ इति सूर्यवरदस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४०॥

141. आदित्यहृदयस्तोत्रम्

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।
 रावणं चाऽग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥१॥
 दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् ।
 उपगम्याऽब्रवीद् राममगस्त्यो भगवांस्तदा ॥२॥
 राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम् ।
 येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे ॥३॥
 आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रु विनाशनम् ।
 जयावहं जपेन्नित्यमक्षयं परमं शिवम् ॥४॥
 सर्वमङ्गल-माङ्गल्यं सर्वपाप-प्रणाशनम् ।
 चिन्ता-शोक-प्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥५॥
 रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवा-ऽसुर-नमस्कृतम् ।
 पूजयस्य विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥६॥
 सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वीरश्मिभावनः ।
 एष देवः सुरगणाल्लोकान् पातु गभस्तिभिः ॥७॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ।
 महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपांपतिः ॥८॥
 पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः ।
 पायुर्वह्निः प्रजा प्राणा ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥९॥
 आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ।
 सुवर्णस्तपो भानुः स्वर्णरेता दिवाकरः ॥१०॥
 हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ।
 तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकोऽशुमान् ॥११॥
 हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनो भास्करो रविः ।
 अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥१२॥
 व्योमनाथस्तमोभेद ऋग्यजुःसामपारगः ।
 धनुर्वष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवङ्गमः ॥१३॥
 आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्पतापनः ।
 कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥१४॥
 नक्षत्र-ग्रह-ताराणामधिपो विश्वभावनः ।
 तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते ॥१५॥
 नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाऽद्रये नमः ।
 ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥१६॥
 जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः ।
 नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः ॥१७॥
 नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः ।
 नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥१८॥
 ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरयादित्यवर्चसे ।
 भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः ॥१९॥
 तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायाऽमितात्मने ।
 कृतघ्नघ्नाय देवा ज्योतिषां पतये नमः ॥२०॥
 तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे ।
 नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥२१॥

नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभुः ।
 पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥२२॥
 एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः ।
 एष चैवाऽग्निहोत्रं च फलं चैवाऽग्निहोत्रिणाम् ॥२३॥
 देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च ।
 यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः ॥२४॥
 एनमापत्सु कच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
 कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥२५॥
 पूजयस्ववनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम् ।
 एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि ॥२६॥
 अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जयिष्यसि ।
 एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जंगाम स यथागतम् ॥२७॥
 एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा ।
 धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥२८॥
 आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान् ।
 त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥२९॥
 रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा युद्धार्थं समुपागतम् ।
 सर्वयत्नेन महता वधे तस्य धृतोऽभवत् ॥३०॥
 अथ रविरवदन्निरीक्ष्यं रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः ।
 निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वेति ॥३१॥

॥ इति आदित्यहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४१॥

142. सूर्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

वैशम्पायन उवाच

शृणुष्वावहितो राजन् शुचिर्भूत्वा समाहितः ।
 क्षणं च कुरु राजेन्द्रं गुह्यं वक्ष्यामि ते हितम् ॥१॥
 धौम्येन तु यथा प्रोक्तं पार्थाय सुमहात्मने ।
 नाम्नामष्टोत्तरं पुण्यं शतं तच्छृणु भूपते ॥२॥

सूर्योऽयमा भगस्त्वष्टा पूषार्क सविता रविः ।
 गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः ॥३॥
 पृथिव्यापश्च तेजश्च ख वायुश्च परायणम् ।
 सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च ॥४॥
 इन्द्रो विवस्वान् दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः ।
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः ॥५॥
 वैद्युतो जाठरश्चाऽग्निरैन्धनस्तेजसांपतिः ।
 धर्मध्वजो वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥६॥
 कृतंत्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः ।
 कला काष्ठा मुहूर्तश्च क्षपा यामस्तथा क्षणः ॥७॥
 संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः ।
 पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताऽव्यक्तः सनातनः ॥८॥
 कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्मा तमोनुदः ।
 वरुणः सागरोऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा ॥९॥
 भूताश्रयो भूतपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
 स्वष्टा संवर्तको वह्निः सर्वस्यादिरलोलुपः ॥१०॥
 अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः ।
 शयो विशालो वरदः सर्वधातुनिषेचिता ॥११॥
 मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारकः ।
 धन्वन्तरिधूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः ॥१२॥
 द्वादशात्मारविन्दाक्षः पिता माता पितामहः ।
 स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥१३॥
 देहकर्त्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
 चराऽचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेण वपुषान्वितः ॥१४॥
 एतद् वै कीर्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः ।
 नाम्नामष्टशतं पुण्यं प्रोक्तमेतत् स्वयम्भुवा ॥१५॥
 सुरगण-पितृ-यक्षसवितं ह्यसुरनिशाचरसिद्धवन्दितम् ।
 वरकनकहुताशनप्रभं पुणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम् ॥१६॥

सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत् स पुत्र-दारान् धनरत्नसञ्चयान् ।
 लभेत जातिस्मरतां नरः सदा धृतिं च मेधां च स विन्दते पुमान् ॥१७॥
 इमं स्तवं देवनरस्य यो नरः प्रकीर्तयेच्छुचिसुमनाः समाहितः ।
 विमुच्यते शोक-दवाग्निसागराल्लभेत कामान् मनसा यथेप्सितान् ॥१८॥

॥ इति सूर्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४२॥

143. सूर्याष्टकम् (1)

साम्ब उवाच

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर ! ।
 दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥१॥
 सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम् ।
 श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥२॥
 लोहितं रथमारूढं सर्वलोकपितामहम् ।
 महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥३॥
 त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरम् ।
 महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥४॥
 बृंहितं तेजःपुञ्जं च वायुमाकाशमेव च ।
 प्रभुं च सर्वलोकानां तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥५॥
 बन्धूकपुष्प-सङ्काशं हारकुण्डलभूषितम् ।
 एकचक्रधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥६॥
 तं सूर्यं जगत्कर्तारं महातेज-प्रदीपनम् ।
 महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥७॥
 तं सूर्यं जगतां नाथ ज्ञान-विज्ञान-मोक्षदम् ।
 महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम् ॥८॥
 सूर्याष्टकं पठेत्रित्यं ग्रहपीडाप्रणाशनम् ।
 अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत् ॥९॥
 आमिषं मधुपानं च यः करोति रवेर्दिने ।
 सप्तजन्म भवेद्रोगी प्रतिजन्म दरिद्रता ॥१०॥

स्त्री-तैल-मधु-मांसानि यस्त्यजेत्तु रवेर्दिने ।
न व्याधिः शोक-दारिद्र्यं सूर्यलोकं स गच्छति ॥११॥

॥ इति सूर्याष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४३॥

144. सूर्याष्टकम् (2)

प्रभाते यस्मिन्नभ्युदितसमये कर्मसु नृणां
प्रवर्तेद् वै चेतो गतिरपि च शीतापहरणम् ।
गतो मैत्र्यं पृथ्वीसुरकुलपतेर्यश्च तमहं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥१॥

त्रिनेत्रोऽप्यञ्जल्या सुरमुकुटसंधृष्टचरणो
बलिं नीत्वा नित्यं स्तुति-मुदित-कालास्तसमये ।
निधानं यस्यास्यं कुरुत इति धाम्नामधिपति-
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥२॥

मृगाङ्गे मूर्तित्वं ह्यमरणभर्ताऽकृत इति
नृणां वर्त्माऽऽत्मात्मेक्षणितविदुषां यश्च यजताम् ।
क्रतुर्लोकानां यो लयभरभवेषु प्रभुरयं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥३॥

दिशः खं कालो भूरुदधिरचलं चाक्षु षमिदं
स्वयं शुद्धं संविन्निरतिशयमानन्दमजरं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥४॥

वृषात्पञ्चस्वेत्यौढयति दिनमानन्दगमन-
स्तथा वृद्धिं रात्रौ प्रकटयति कीटाज्जवगतिः ।
तुले मेषे यातो रचयति समानं दिननिशं
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥५॥

वहन्ते यं ह्यश्वा अरुणविनियुक्ताः प्रमुदिता-
स्त्रयीरूपं साक्षाद् दधति च रथं मुक्तिसदनम् ।
न जीवानां यं वै विषयति मनो वागवसरो
नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥६॥

तथा ब्रह्मा नित्यं मुनिजनयुता यस्य पुरत-
 श्रलन्ते नृत्यन्तोऽयुतमुत रसेनानुगुणितम् ।
 निबध्नन्तो नागा रथमपि च नागायुतबला
 नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥७॥
 प्रभाते ब्रह्माणं शिवतनुभृतं मध्यदिवसे
 तथा सायं विष्णुं जगति हितकारी सुखकरम् ।
 सदा तेजोराशिं त्रिविधमथ पापौघशमनं
 नमामि श्रीसूर्यं तिमिरहरणं शान्तशरणम् ॥८॥
 मतं शास्त्राणां यत्तदनु रघुनाथेन रचितं
 शुभे चुराग्रामे तिमिरहरसूर्याष्टकमिदम् ।
 त्रिसन्ध्यायां नित्यं पठति मनुजोऽनन्यगतिकां-
 श्रतुर्वर्गप्राप्तौ प्रभवति सदा तस्य विजयम् ॥९॥
 नन्देन्दुङ्कक्षितावब्दे (१९१९) मार्गमासे शुभे दले
 सूर्याष्टकमिदं प्रोक्तं दशम्यां रविवासरे ॥१०॥

॥ इति श्रीसूर्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥१४४॥

145. सूर्यमण्डलाष्टकम्

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूति-स्थिति-नाश-हेतवे ।
 त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरिञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥१॥
 यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम् ।
 दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥२॥
 यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः स्तुतं भावनमुक्तिकोविदम् ।
 तं देवदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥३॥
 यन्मण्डलं ज्ञानधनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम् ।
 समस्त-तेजोमय-दिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥४॥
 यन्मण्डलं गूढमतिप्रबोधं धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम् ।
 यत्सर्वपापशयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥५॥
 यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्-यजुः-सामसु संप्रगीतम् ।
 प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥६॥

यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः ।
 यद्योगिनो योगज्जुषां च सङ्घाः पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥७॥
 यन्मण्डलं सर्वजनेषु पूजितं ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके ।
 यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥८॥
 यन्मण्डलं विश्वसृजां प्रसिद्धमुत्पत्ति-रक्षा-प्रलय-प्रगल्भम् ।
 यस्मिञ्जगत्संहरतेऽखिलञ्च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥९॥
 यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम् ।
 सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१०॥
 यन्मण्डलं वेदविदो वदन्ति गायन्ति तच्चारणसिद्धसङ्घाः ।
 यन्मण्डलं वेदविदः स्मरन्ति पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥११॥
 यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपथानुगम्यम् ।
 तत्सर्ववेदं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् ॥१२॥
 मण्डलाष्टतयं पुण्यं यः पठेत् सततं नरः ।
 सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते ॥१३॥

॥ इति सूर्यमण्डलाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१४५॥

146. सूर्यार्यास्तोत्रम्

शुक्रतुण्डच्छविसवितुश्चण्डरुचेः पुण्डरीकवनबन्धोः ।
 मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलयाखण्डलाशायाः ॥१॥
 यस्योदयास्तसमये सुरमुकुट-निघृष्टचरणकमलोऽपि ।
 कुरुतेऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति धाम्नां निधिः सूर्यः ॥२॥
 उदयाचलतिलकायं प्रणतोऽस्मि विवस्वते ग्रहेशाय ।
 अम्बरचूडामणये दिग्वनिताकर्णपूराय ॥३॥
 जयति जनानन्दकरः करनिकर-निरस्त-तिमिरसंघातः ।
 लोकालोकालोकः कमलारुणमण्डलः सूर्यः ॥४॥
 प्रतिबोधितकमलवनः कृतघटनश्चक्रवाक-मिथुनानाम् ।
 दर्शितसमस्तभुवनः परहितनिरतो रविः सदा जयति ॥५॥
 अपनयतु सकल-कलिकृत-मलपटलं सुप्रतप्तकनकाभः ।
 अरविन्दवृन्द-विघटन-पटुतर-किरणत्करः सविता ॥६॥

उदयाद्रिचारुचामर-हरितहय-खुरपरिहत-रेणुरागः ।
 हरितहय-हरितपरिकर गगनाङ्गणदीपक नमस्ते ॥७॥
 उदितवति त्वयि विलसति मुकुलीयति समस्तमितबिम्ब ।
 न ह्यन्यस्मिन् दिनकर सकलं कमलायते भुवनम् ॥८॥
 जयति रविरुदयसमये बालातपः कनकसन्निभो यस्य ।
 कुसुमाञ्जलिरिव जलधौ तरन्ति रथसप्तयः सप्त ॥९॥
 आर्याः साम्बपुरे सप्त आकाशात् पतिता भुवि ।
 यस्य कण्ठे गृहे वाऽपि न स लक्ष्म्या वियुज्यते ॥१०॥
 आर्याः सप्त सदा यस्तु सप्तम्यां सप्तधा जपेत् ।
 तस्य गेहं च देहं च पद्मा सत्यं न मुञ्चति ॥११॥
 निधिरेष दरिद्राणां रोगिणां परमौषधम् ।
 सिद्धिः सकलकार्याणां गाथेयं संस्मृता रवे ॥१२॥

॥ इति सूर्यार्यास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४६॥

147. आदित्यस्तोत्रम्

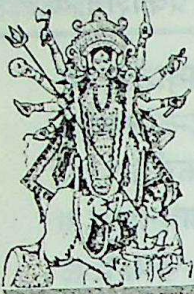
अस्य श्रीआदित्यस्तोत्रस्य आङ्गिरस ऋषिः, त्रिष्टुप् छन्दः सूर्यो देवता, सूर्यप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

नवग्रहाणां सर्वेषां सूर्यादीनां पृथक् पृथक् ।
 पीडा च दुःसमा राजन् जायते सततं नृणाम् ॥१॥
 पीडानाशाय राजेन्द्र नमामि शृणु भास्वतः ।
 सूर्यादीनां च सर्वेषां पीडा नश्यति शृण्वतः ॥२॥
 आदित्यः सविता सूर्यः पूषाऽर्कः शीघ्रगो रविः ।
 भगस्त्वष्टाऽर्यमा हंसो हेलिस्तेजोनिधिर्हरिः ॥३॥
 दिननाथो दिनकरः सप्तसप्तिः प्रभाकरः ।
 विभावसुर्वेदकर्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः ॥४॥
 हरिदश्वः कालवक्त्रः कर्मसाक्षी जगत्पतिः ।
 पद्मिनीबोधको भानुर्भास्करः करुणाकरः ॥५॥
 द्वादशात्मा विश्वकर्मा लोहिताङ्गस्तमोनुदः ।
 जगन्नाथोऽरविन्दाक्षः कालात्मा कश्यपात्मजः ॥६॥

भूताश्रयो ग्रहपतिः सर्वलोकनमस्कृतः ।
 जपा-कुसुम-सङ्काशो भास्वानदितिनन्दनः ॥७॥
 ध्वान्तेभसिंहः सर्वात्मा सर्वनेत्रो विकर्तनः ।
 मार्तण्डो मिहिरः सूरस्तपनो लोकतापनः ॥८॥
 जगत्कर्ता जगत्साक्षी शनैश्चरपिता जयः ।
 सहस्ररश्मिस्तरणिर्भगवान् भक्तवत्सलः ॥९॥
 विवस्वानादिदेवश्च देवदेवो दिवाकरः ।
 धन्वन्तरिव्याधिहर्ता दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥१०॥
 चराऽचरात्मा मैत्रेयोऽमितो विष्णुर्विकर्तनः ।
 लोकशोकापहर्ता च कमलाकर आत्मभूः ॥११॥
 नारायणो महादेवो रुद्रः पुरुष ईश्वरः ।
 जीवात्मा परमात्मा च सूक्ष्मात्मा सर्वतोमुखः ॥१२॥
 इन्द्रोऽनलो यमश्चैव नैर्ऋतो वरुणोऽनिल-
 श्रीद ईशान इन्दुश्च भौमः सौम्यो गुरुः कविः ॥१३॥
 शौरिर्विधुन्तुदः केतुः कालः कालात्मको विभुः ।
 सर्वदेवमयो देवः कृष्णः कामप्रदायकः ॥१४॥
 य एतैर्नामभिर्मर्त्यो भक्त्या स्तौति दिवाकरम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ॥१५॥
 पुत्रवान् धनवान् श्रीमान् जायते स न संशयः ।
 रविवारे पठेद्यस्तु नामान्येतानि भास्वतः ॥१६॥
 पीडाशान्तिर्भवेत्तस्य ग्रहाणां च विशेषतः ।
 सद्यः सुखमवाप्नोति चायुर्दीर्घं च नीरुजम् ॥१७॥

॥ इति आदित्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१४७॥

॥ इति सूर्यस्तोत्राणि सम्पूर्णानि ॥



6. देवीस्तोत्राणि

148. भारत-विजय-स्तोत्रम्

माङ्गल्योल्लासलीलः करट-मदनदी-स्नान-पानप्रमत्त-
 शञ्चद्भिश्चञ्चरीकैः कलित-कलकलः स्वस्ति-पुण्याहघोषैः ।
 दोर्दण्डैरस्त्र-शस्त्र-प्रहरणपटुभिर्ज्वाल-माला-जटालैः
 प्रत्यूह-व्यूहहन्ता जनयतु विजयं कुञ्जरग्रामणीर्नः ॥१॥
 दिव्यैस्तेजोभिरिद्धा प्रबल-भुजवनोत्ताल-कीलायुधाढ्या
 सिंहस्कन्धाधिरूढा विपुलबल-वलद्वाहिनी-व्यूहभीमा ।
 गर्जातर्जाः सृजन्ती महिषमरिचमूं मश्वती रिष्टिवृष्ट्या
 तुष्टा स्वेष्टा विशिष्टा घटयतु घटनाश्रृण्डिका नः प्रचण्डा ॥२॥
 सङ्कल्पानल्पलीला-क्षण-गण-जनितान्त-सृष्टिप्रवाहः
 सर्वज्ञ सर्वशक्तिः श्रुतनुतमहिमा मेदुर-श्रीमनोज्ञः ।
 लोकग्रास-प्रसक्त-प्रलय-घनघटाटोप-घोरान् मयादीन्
 धुन्वन् ध्वस्तान् धिनोतु ध्वनित-जयरवैर्धूधरो धूर्जटीनः ॥३॥
 लोकालोकग्रजाग्रन्मद मुदिर-महाचण्टशौण्डोग्रदण्डः
 प्रोदण्डो दानवेन्द्रो विजितवसुमतीवैभवः स्वर्णशय्यः ।
 यतीव्राघातरूक्षा-क्षत-खरनखरैर्दीर्घनिद्रां सहेलं
 प्राप्तः सोऽव्याजभव्य-कलयुत कुशलं भारतस्याद्यसिंहः ॥४॥
 सर्वा सृष्टिं समस्ताञ् जनगणनिकरान् व्यश्रुवानं समन्ताद्
 ध्वान्त व्यात्तास्यघोरं मलिनितजगती-जालमुद्यन् विभिन्दन् ।
 तीव्रै जाग्रतप्रवेगैर्ज्वलन-कण-गणोद्गूण-गर्वैरखवै-
 रुस्त्रैरश्रान्त-नेमिर्दिशतु विजयिनीं सुश्रियं श्रीरविर्नः ॥५॥
 श्रीमन् भूताधिनाथ-प्रमथगमपते सर्वशक्ते पुरारे
 सर्वोत्तुङ्गे हिमाद्रे सुरुचिरशिखरे वैजयन्ती जयन्ती ।

प्रोच्चैरुड्डीयमाना चिरतरमहिमा भारतीया लसन्तीं
 प्राग्वद् दोधूयमाना विहरतु गगने विश्ववन्द्याभिनन्द्या ॥६॥
 वेदाः शास्त्राणि यागाः शुचिरुचिरुचिरा आश्रमा वर्णभागा-
 स्तीर्थान्यस्वप्नसौधा जनगणवितता संस्कृतिः सभ्यता च ।
 सम्पूर्णो धर्मराशिः प्रशमितविपुलापत्तिराष्ट्रं समग्रं
 वृद्धिः सिद्धिः समृद्धिः सकलसुरपतेऽक्षुण्णतां नीयतां नः ॥७॥
 सर्वाधिष्ठानभूमन् भरतभुवमिमां व्योमयानैरसंख्यैः
 शस्त्रास्त्रैर्नैक भेदैरतुलित-विभवैघोरे-सामर्थ्य-सार्थैः ।
 दुर्धर्षा दुर्विभेद्या कलित-नवनवोत्साहपूर्णाभ्युदीर्णा
 संख्यातीताप्रतूर्ण जयतु खलबलं वाहिनी भारतीया ॥८॥
 देशेऽस्मिन् द्राक् समस्ते विपुल-जयरवो दुन्दुभिध्वानधीरः
 यूनामुत्साह-सिंह-ध्वनिभिरविरतं श्रूयतां श्रीनिवास ।
 किञ्चार्यावर्त-भूमिर्निज-विजयलसत् प्राज्य-सौराज्यसिम्हां
 पूर्णाखण्डद्यूतीनां प्रगुणितगरिमा स्यात् खनिर्वर्धितानाम् ॥९॥
 ध्वस्तानः शत्रवः स्युस्त्वरितमिह सुखाः सन्तु गावः समग्राः
 सर्वे नार्यो नराश्च प्रमथित-विपुलापत्तयः सन्त्वदीनाः ।
 भूमिः सस्याभ्युदीर्णा खल-बलजयिनी वाहिनी नोऽस्त्वजय्या
 भयात् भूयो भवानीप्रभुरयमाखलानुग्रहे रक्षको नः ॥१०॥
 सर्वैर्नव्यैरसंख्यैर्गुणगण-भरितैः सज्जितानो युवानः
 सोत्साहाः सङ्घबद्धाः प्रबलरपिचमूनाथलीलावदानाः ।
 संख्यातीताः पतन्तः करिनिकरदलत् सिंहविक्रान्तवीर्याः
 श्रीनाथनुग्रहात्ते विजयमलमरं मोदमाना लभन्ताम् ॥११॥
 ॥ इति भारतविजयस्तोत्रं समाप्तम् ॥१४८॥

149. श्रीकनकधारास्तोत्रम्

वन्देवन्दारु-मन्दार-मिन्दिरानन्द-कन्दलम् । अमन्दानन्द-सन्दोह-बन्धुरसिन्धुराननम् ।
 अङ्गहरेः पुलक भूषणमाश्रयन्ती भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम् ।
 अङ्गीकृता-ऽखिल-विभूतिरपाङ्गलीला माङ्गल्यादाऽस्तु मम मङ्गलदेवतायाः ॥१॥

१. २०१९ संवदि चीनाग्रणावसरे वाराणसेय-संस्कृत-विश्वविद्यालयोपकुलपति-श्रीसुरतिनारायणमणित्रिपाठिमहोदयैः प्रार्थनया स्तोत्रमिदं विरचितम् । न्यूनाधिकभावेन तत्राऽन्यत्र च संस्कृतसंस्थानेषु प्रार्थनायां सुगृहीतप्रभवत ।

मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः प्रेमत्रपा प्रणिहितानि गताऽऽगतानि ।
 माला-दृशोर्मधुकरीव महोत्पले या सा मे श्रियं दिशतु सागर-सम्भवायाः ॥२॥
 विश्वामरेन्द्र-पदविभ्रम-दानदक्षमानन्द-हेतुरधिकं मुर-विद्विषोऽपि ।
 ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्धमिन्दीवरोदर-सहोदर-मिन्दिरायाः ॥३॥
 आमीलिताक्ष-मधिगम्य मुदा मुकुन्दमानन्द-कन्दमनिमेष-मनङ्ग-तन्त्रम् ।
 आकेकर-स्थित-कनीनिक-पक्ष्मनेत्रं भूत्यै भवेन्मम भुजङ्ग-शयाङ्गनायाः ॥४॥
 बाह्वन्तरे मुरजितः श्रितकौस्तुभे या हारावलीव हरिनीलमयी विभाति ।
 कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥५॥
 कालाम्बुदालि-ललितोरसि कैटभारेर्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव ।
 मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्तिर्भद्राणि मे दिशतु भार्गव-नन्दनायाः ॥६॥
 प्राप्तं पदं प्रथमतः खलुयत् प्रभावान् माङ्गल्यभाजि मधु-माथिनि मन्मथेन ।
 मय्यापतेत् तदिह मन्थर-मीक्षणार्धमन्दाऽलसं च मकरालयं-कन्यकायाः ॥७॥
 दद्याद् दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारामस्मिन्न किञ्चन-विहङ्गशिशौ विषण्णे ।
 दुष्कर्म-धर्ममपनीय चिराय दूरं नारायण-प्रणयिनी-नयनाम्बुवाहः ॥८॥
 इष्टा-विशिष्ट-मतयोऽपि यया दयार्द्रदृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं भजन्ते ।
 दृष्टिः प्रहृष्ट-कमलोदर-दीप्तिरिष्टां पुष्टिं कृषीष्ट मम पुष्कर-विष्टरायाः ॥९॥
 गीर्देवतेति गरुडध्वज-सुन्दरीति शाकम्भरीति शशिशेखर-वल्लभेति ।
 सृष्टि-स्थिति-प्रलय-केलिषु संस्थिता या तस्यै नमस्त्रिभुवनैक-गुरोस्तरुण्यै ॥१०॥
 श्रुत्यै नमोऽस्तु शुभकर्म-फलप्रसूत्यै रत्यै नमोऽस्तु रमणीय-गुणार्णवायै ।
 शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्र-निकेतनायै पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तम-वल्लभायै ॥११॥
 नमोऽस्तु नालीक-निभाननायै नमोऽस्तु दुग्धोदधि-जन्मभूम्यै ।
 नमोऽस्तु सोमामृत-सोदरायै नमोऽस्तु नारायण-वल्लभायै ॥१२॥
 नमोऽस्तु हेमाम्बुज-पीठिकायै नमोऽस्तु भूमण्डलनायिकायै ।
 नमोऽस्तु देवादि-दयापरायै नमोऽस्तु शार्ङ्गायुध-वल्लभायै ॥१३॥
 नमोऽस्तु देव्यै भृगुनन्दनायै नमोऽस्तु विष्णोरुरसि स्थितायै ।
 नमोऽस्तु लक्ष्म्यै कमलालयायै नमोऽस्तु दामोदरवल्लभायै ॥१४॥
 नमोऽस्तु कान्त्यै कमलेक्षणायै नमोऽस्तु भूत्यै भुवनप्रसूत्यै ।
 नमोऽस्तु देवादिभिरर्चितायै नमोऽस्तु नन्दात्मज-वल्लभायै ॥१५॥

सम्पत्कराणि सकलेन्द्रिय-नन्दनानि साम्राज्य-दान-निरतानि सरोरुहाक्षि ।
 त्वद्-वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्ये ॥१६॥
 यत्कटाक्ष-समुपासनाविधिः सेवकस्य सकलार्थसम्पदः ।
 सन्तनोति वचनाङ्गमानसै-स्त्वां मुरारि-हृदयेश्वरीं भजे ॥१७॥
 सरसिजनयने! सरोजहस्ते! धवलतमांशुक-गन्ध-माल्यशोभे ।
 भगवति हरिवल्लभे! मनोज्ञे! त्रिभुवन-भूतिकरि! प्रसीद मह्यम् ॥१८॥
 दिग्धस्तिभिः कनक-कुम्भ-मुखावसृष्टवर्वाहिनी-विमल-चारुजल-प्लुताङ्गीम् ।
 प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष लोकाधिनाथ-गृहिणीममृताब्धि-पुत्रीम् ॥१९॥
 कमले! कमलाक्षवल्लभे! तं करुणापूर-तरङ्गितैरपाङ्गैः ।
 अवलोकय मामकिञ्चनानां प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ॥२०॥
 स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमूभिरन्वहं त्रयीमयीं त्रिभुवन-मातरं रमाम् ।
 गुणाधिका गुरुतर-भाग्य-भाजिनो भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशयाः ॥२१॥

सुवर्णधारा-स्तोत्रं यच्छङ्कराचार्य-निर्मितम् ।
 त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स कुबेरसमो भवेत् ॥२२॥

॥ इति कनकधारास्तोत्रं समाप्तम् ॥१४९॥

150. देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
 न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
 न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
 परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम् ॥१॥
 विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
 विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत् ।
 तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणी शिवे
 कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥२॥
 पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
 परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।

मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
 कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥
 जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
 न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
 तथापि त्वं स्नेहं मयि निरूपमं यत्प्रकुरुषे
 कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४॥
 परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुलतया
 मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
 इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
 निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५॥
 श्रृपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
 निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः ।
 तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
 जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥६॥
 चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
 जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
 कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
 भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटी फलमिदम् ॥७॥
 न मोक्षस्याकांक्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
 न विज्ञानापेक्षाशशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।
 अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
 मृडानि रूद्राणि शिव शिव भवानीति जपतः ॥८॥
 नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
 किं रूक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।
 श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
 धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥९॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
 करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
 नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
 क्षुधा-तृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥
 जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
 अपराधपरम्परापरं न हि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥
 मत्समः पातकी नास्ति पापधनी त्वत्समा न हि ।
 एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु ॥१२॥

॥ इति देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५०॥

151. भवानीभुजङ्गप्रयातस्तोत्रम्

षडाधारपङ्केरुहान्तर्विराजत्सुषुम्नान्तरालेऽतितेजोल्लसन्तीम् ।
 सुधामण्डलं द्रावयन्तीं पिबन्तीं सुधामूर्तिमीडेऽहमानन्दरूपाम् ॥१॥
 ज्वलत्कोटिबालार्क-भाषारुणाङ्गीं सुलावण्यशृङ्गारशोभाभिरामाम् ।
 महापद्मकिञ्जल्कमध्ये विराजन्त्रिकोणोल्लसन्तीं भजे श्रीभवानीम् ॥२॥
 कणत्किङ्किणी-नूपुरोद्भासिरल-प्रभालीढलाक्षार्द्र-पादारविन्दाम् ।
 अजेशाच्युताद्यैः सुरैः सेव्यमानां महादेवि मन्मूर्ध्नि ते भावयामि ॥३॥
 सुशोणाम्बराबद्धनीवीविराजन् महारत्नकाञ्चीकलापं नितम्बम् ।
 स्फुरद्दक्षिणावर्तनाभिं च तिस्रो बली रम्यते रोमराजीं भजेऽहम् ॥४॥
 लसद्वृत्तमुत्तुङ्गमाणिक्यकुम्भोपमश्री-स्तनद्वन्द्वमम्बाम्बुजाक्षीम् ।
 भजे पूर्णदुग्धाभिरामं तवेदं महाहारदीप्तं सदा प्रस्तुतास्यम् ॥५॥
 शिरीषप्रसूनोल्लसद्बाहुदण्डैर्ज्वलद्बाण-कोदण्ड-पाशांकुशैश्च ।
 चलत्कङ्कणोदार-केयूरभूषा-ज्वलद्भिः स्फुरन्तीं भजे श्रीभवानीम् ॥६॥
 शरत्पूर्णचन्द्र-प्रभापूर्णबिम्बाधरस्मेरवक्त्रारविन्दश्रियं ते ।
 सुरलावली-हारताटङ्कशोभां भजे सुप्रसन्नामहं श्रीभवानीम् ॥७॥
 सुनासापुटं पद्मपत्रायताक्षं यजन्तः श्रियं दानदक्षं कटाक्षम् ।
 ललाटोल्लसदगन्ध-कस्तुरिभूषो-ज्वलद्भिः स्फुरन्तीं भजे श्रीभवानीम् ॥८॥

चलत्कुण्डलां ते भ्रमद्भृङ्गवृन्दां घनस्निग्धधम्मिल्लभूषोज्ज्वलन्तीम् ।
 स्फुरन्मौलि-माणिक्य-मध्येन्दुरेखा-विलासोल्लसद्विव्यमूर्धानमीडे ॥१॥
 स्फुरत्वम्ब बिम्बस्य ते हृत्सरोजे सदा वाङ्मयं सर्वतेजोमयं च ।
 इति श्रीभवानीस्वरूपं तदेवं प्रपञ्चात्परं चाऽतिसूक्ष्मं प्रसन्नम् ॥१०॥
 गणेशाणिमाद्याखिलैः शक्तिवृन्दैः स्फुरच्छ्रीमहाचक्रराजोल्लसन्तीम् ।
 परां राजराजेश्वरीं त्वां भवानीं शिवाङ्गोपरिस्थां शिवां भावयेऽहम् ॥११॥
 त्वमर्कस्त्वमग्निस्त्वमिन्दुस्त्वमापस्त्वमाकाशभूवायवस्त्वं चिदात्मा ।
 त्वदन्यो न कश्चित् प्रकाशोऽस्ति सर्वं सदानन्दसंवित्स्वरूपं तवेदम् ॥१२॥
 गुरुस्त्वं शिवस्त्वं च शक्तिस्त्वमेव त्वमेवाऽसि माता पिताऽसि त्वमेव ।
 त्वमेवाऽसि विद्या त्वमेवाऽसि बुद्धिर्गतिर्मे मतिर्देवि सर्वं त्वमेव ॥१३॥
 श्रुतीनामगम्यं सुवेदागमाद्यैर्महिम्नो न जानाति पारं तवेदम् ।
 स्तुतिं कर्तुमिच्छामि ते त्वं भवानि क्षमस्वेदमम्ब प्रमुग्धः किलाहम् ॥१४॥
 शरण्ये वरेण्ये सुकारुण्यपूर्णे हिरण्योदराद्यैरगम्येऽतिपुण्ये ।
 भवारण्यभीतं च मां पाहि भद्रे नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि! ॥१५॥
 इमामन्वहं श्रीभवानीभुजङ्गस्तुतिं यः पठेच्छ्रोतुमिच्छेत तस्मै ।
 स्वकीयं पदं शाश्वतं चैव सारं श्रियं चाऽष्टसिद्धिश्च देवी ददाति ॥१६॥

॥ इति भवानीभुजङ्गस्तुतिः सम्पूर्णा ॥१५१॥

152. भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता ।
 न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥१॥
 भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः ।
 कुसंसार-पाश-प्रबद्धः सदाऽहं गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥२॥
 न जानामि दानं न च ध्यान-योगं न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्र-मन्त्रम् ।
 न जानामि पूजां न च न्यासयोगं गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥३॥
 न जानामि पुण्यं न जानानि तीर्थं न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित् ।
 न जानामि भक्तिं व्रतं वाऽपि मातर्गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥४॥
 कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः कुलाचारहीनः कदाचारलीनः ।
 कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाऽहं गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥५॥

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित् ।
 न जानामि चाऽन्यत् सदाऽहं शरण्ये गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥६॥
 विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे जले चाऽनले पर्वते शत्रुमध्ये ।
 अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥७॥
 अनाथो दरिद्रो जरा-रोगयुक्तो महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः ।
 विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाऽहं गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥८॥

॥ इति भवान्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥१५२॥

153. भवानीस्तुतिः

आनन्दमन्थरपुरन्दरमुक्तमाल्यं मौलो हठेन निहितं महिषासुरस्य ।
 पादाम्बुजं भवतु वो विजयाय मञ्जु-मञ्जीरशिञ्जितमनोहरमम्बिकायाः ॥१॥
 ब्रह्मादयोऽपि यदपाङ्गतरङ्गभङ्गा सृष्टि स्थिति-प्रलयकारणतां व्रजन्ति ।
 लावण्यवारिनिधिवीचिपरिप्लुतायै तस्यै नमोऽस्तु सततं हरवल्लभायै ॥२॥
 पौलस्त्यपीनभुजसम्पदुदस्यमानकैलासम्भ्रमविलोलदृशः प्रियायाः ।
 श्रेयांसिवोदिशतुनिहनुतकोपचिह्नमालिङ्गनोत्पुलकभासितमिन्दुमौलेः ॥३॥
 दिश्यान्महासुरशिरः सरसीप्सितानि प्रेङ्खन्नखावलिमयूखमृणालनालम् ।
 चण्ड्याश्चलच्चटुलनूपुरचञ्चरीकङ्काङ्कारहारि चरणाम्बुरुहद्वयं वः ॥४॥

॥ इति भवानीस्तुतिः सम्पूर्णा ॥१५३॥

154. भगवतीस्तोत्रम्

जय भगवति देवि नमो वरदे जय पापनिवाशिनि बहुफलदे ।
 जय शुम्भ-निशुम्भ-कपालधरे प्रणमामि तु देवि नरार्तिहरे ॥१॥
 जय चन्द्रदिवाकर-नेत्रधरे जय पावकभूषितवक्त्रहरे ।
 जय भैरवदेहनिलीनपरे जय अन्धकदैत्यविशोषकरे ॥२॥
 जय महिषविमर्दिनिशूलकरे जय लोकसमस्तकपापहरे ।
 जय देवि पितामहविष्णुनुते जय भास्करशक्रशिराऽवनते ॥३॥
 जय षण्मुख-सायुध-ईशानुते जय सागरगामिनि शम्भुनुते ।
 जय दुःख-दरिद्र-विनाशकरे जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे ॥४॥

जय देवि समस्तशरीरधरे जय नाकविदर्शिनि दुःखहरे ।
 जय व्याधिविनाशिनि मोक्षकरे जय वाञ्छितदायिनि सिद्धिकरे ॥५॥
 एतद्व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेन्नियतः शुचिः ।
 गृहे वा शुद्धभावेन प्रीता भगवती सदा ॥६॥

॥ इति भगवतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५४॥

155. भगवत्यष्टकम्

नमोऽस्तु ते सरस्वति त्रिशूल-चक्र-धारिणि
 सिताम्बरावृते शुभे मृगेन्द्रपीठसंस्थिते ।
 सुवर्णबन्धुराधरे सुझल्लरीशिरोरुहे
 सुवर्णपद्मभूषिते नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥१॥
 पितामहादिभिर्नुते स्वकान्तिलुप्तचन्द्रभे
 सरत्नमालयावृते भवाब्धिकष्टहारिणि ।
 तमालहस्तमण्डिते तमाल-भाल-शोभिते
 गिरामगोचरे इले नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥२॥
 स्वभक्तवत्सलेऽनघे सदापवर्गभोगदे
 दरिद्र-दुखहारिणि त्रिलोकशङ्करीश्वरि ।
 भवानि भीम अम्बिके प्रचण्डतेज-उज्ज्वले
 भुजाकलापमण्डिते नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥३॥
 प्रपन्नभीतिनाशिके प्रसूनमाल्यकन्धरे
 धियस्तमोनिवारिके विशुद्धबुद्धिकारिके ।
 सुरार्चिताऽङ्घ्रिपङ्कजे प्रचण्डविक्रमेऽक्षरे
 विशालपद्मलोचने नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥४॥
 हतस्त्वया स दैत्यधूम्रलोचनो यदा रणे
 तदा प्रसूनवृष्टयस्त्रिविष्टपे सुरैः कृताः ।
 निरीक्ष्य तत्र ते प्रभामलज्जत प्रभाकर-
 स्त्वयि दयाकरे ध्रुवे नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥५॥
 ननाद केसरी यदा चचाल मेदिनी तदा
 जगाम दैत्यनायकः स्वसेनया द्रुतं भिया ।

सकोप-कम्पदच्छदे सचण्ड-मुण्डघातिके
 मृगेन्द्रनादनादिते नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥६॥
 कुचन्दनार्चितालके सितोष्णवारणाधरे
 सर्वकरानने वरे निशुम्भ-शुम्भ-मर्दिके ।
 प्रसीद चण्डिके अजे समस्त-दोषघातिके
 शुभामतिप्रदेऽचले नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥७॥
 त्वमेव विश्वधारिणी त्वमेव विश्वकारिणी
 त्वमेव सर्वहारिणी न गम्यसेऽजितात्मभिः ।
 दिवौकसां हिते रता करोषि दैत्यनाशन
 शताक्षि रक्तदन्तिके नमोऽस्तु ते महेश्वरि ॥८॥
 पठन्ति ये समाहिता इमं स्तवं सदा नराः
 अनन्यभक्तिसंयुताः अहर्मुखेऽनुवासरम् ।
 भवन्ति ते तु पण्डिताः सुपुत्रधान्य-संयुताः
 कलत्रभूतिसंयुता व्रजन्ति चाऽमृतं सुखम् ॥९॥

॥ इति भगवत्यष्टकं समाप्तम् ॥१५५॥

156. त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रम्

कदम्बवनचारिणीं मुनिकदम्ब-कादम्बिनीं
 नितम्बजितभूधरां सुरनितम्बिनीसेविताम् ।
 नवाम्बुरुह-लोचनामभिनवाम्बुद-श्यामलां
 त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥१॥
 कदम्बवनवासिनीं कनक-वल्लकी-धारिणीं
 महार्हमणिहारिणीं मुखसमुल्लसद्धारुणीम् ।
 दयाविभवकारिणीं विशदलोचनीं चारिणीं
 त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥२॥
 कदम्बवनशालया कुचभरोल्लसन्मालया
 कुचोपमितशैलया गुरुकृपालसद्वेलया ।

मदारुणकपोलया मधुरगीतवाचालया
 कन्याऽपि घननीलयां कवचिता वयं लीलया ॥३॥
 कदम्बवनमध्यगां कनकमण्डलोपस्थितां
 षडम्बुरुहवासिनीं सततसिद्धसौदामिनीम् ।
 विडम्बितजपारुचिं विकचचन्द्रचूडामणिं
 त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥४॥
 कुचाञ्चितविपञ्चिकां कुटिलकुन्तलालङ्कृतां
 कुशेशयनिवासिनीं कुटिलचित्तविद्वेषिणीम् ।
 मदारुणविलोचनां मनसिजारिसम्मोहिनीं
 मतङ्गमुनिकन्यकां मधुरभाषिणीमाश्रये ॥५॥
 स्मेरप्रथमपुष्पिणीं रुधिर-बिन्दु-नीलाम्बरां
 गृहीतमधुपात्रिकां मधुविघूर्णनेत्राञ्चलाम् ।
 घनस्तन-भरोन्नतां गलितचूलिकां श्यामलां
 त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये ॥६॥
 सकुङ्कुम-विलेपनामलक-चुम्बिकस्तूरिकां
 समन्दहसितेक्षणां स-शरचाप-पाशाङ्कुशाम् ।
 अशेषजनमोहिनीमरुणमाल्यभूषाम्बरां
 जपाकुसुम-भासुरां जपविधौ स्मराम्यम्बिकाम् ॥७॥
 पुरन्दर-पुरन्धिका-चिकुरबन्ध-सैरन्ध्रिकां
 पितामहपतिव्रतां पटुपाटीर-चर्चारताम् ।
 मुकुन्दरमणीं मणिलसदलक्रियाकारिणीं
 भजामि भुवनाम्बिकां सुरवधूटिकाचेटिकाम् ॥८॥

॥ इति त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५६॥

157. आनन्दलहरी

भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भिर्न वदनैः
 प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पञ्चभिरपि ।
 न षडभिः सेनानीर्दशशतमुखैरप्यहिपति-
 स्तदाऽन्येषां केषां कथय कथमस्मिन्नवसरः ॥१॥

घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदै-
 विंशिष्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः ।
 तथा ते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः
 कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे ॥२॥
 मुखे ते ताम्बूलं नयनयुगले कज्जलकला
 ललाटे काशमीरं विलसति गले मौक्तिकलता ।
 स्फुरत्काञ्ची शाटी पृथुकटितटे हाटकमयी
 भजामि त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविरतम् ॥३॥
 विराजन्मन्दार-द्रुमकुसुमहार-स्तनतटी
 नदद् वीणानाद-श्रवणविलसत्कुण्डलगुणा ।
 नताङ्गी मातङ्गी-रुचिरगतिभङ्गी भगवती
 सती शम्भोरम्भोरुहचटुलचक्षुर्विजयते ॥४॥
 नवीनार्कभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरै-
 र्वृताङ्गी सारङ्गीरुचिरनयनाङ्गीकृतशिवा ।
 तडित्पीता पीताम्बरललितमञ्जीरसुभगा
 ममापर्णा पूर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी ॥५॥
 हिमादेः सम्भूता सुललितकरैः पल्लवयुता
 सुपुष्पा मुक्ताभिर्भ्रमरकलिता चालकभरैः ।
 कृतस्थाणुस्थाना कुचफलनता सूक्तिसरसा
 रुजां हन्त्री गन्त्री विलसति चिदानन्दलतिका ॥६॥
 सपर्णामाकीर्णा कतिपयगुणैः सादरमिह
 श्रयन्त्यन्ये वल्लीं मम तु मतिरेवं विलसति ।
 अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः
 पुराणोऽपि स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम् ॥७॥
 विधात्री धर्माणां त्वमसि सकलाम्नायजननी
 त्वमर्थानां मूलं धनदनमनीयाङ्घ्रिकमले ।
 त्वमादिः कामानां जननि कृतकन्दर्पविजये
 सतां मुक्तेर्बीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी ॥८॥
 प्रभूता भक्तिस्ते यदपि न ममालोलमनस-
 स्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योऽहमधुना ।

पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे
 भृशं शङ्के कैर्वा विधिभिरनुनीता मम मतिः ॥९॥
 कृपापाङ्गालोकं वितर तरसा साधुचरिते
 न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते ।
 न चेदिष्टं दद्यादनुपदमहो कल्पलतिका
 विशेषः सामान्यैः कथमितरवल्लीपरिकरैः ॥१०॥
 महान्तं विश्वासं तव चरणपङ्केरुहयुगे
 निधायाऽन्यन् नैवाश्रितमिह मय दैवतमुमे ।
 तथापि त्वच्चेतो यदि मम मयि न जायेत सदयं
 निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥११॥
 अयः स्पर्शं लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं
 यथा रथ्यापाथः शुचिभवति गङ्गौघमिलितम् ।
 तथा तत्तत्पापैरतिभलिनमन्तर्मम यदि
 त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ॥१२॥
 त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभेन नियम-
 स्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्थं वितरण ।
 इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
 स्त्वदासक्तं नक्तंदिवमुचितमीशानि कुरु तत् ॥१३॥
 स्फुरन्नानारत्न-स्फटिकमयभित्ति-प्रतिफलं
 त्वदाकारं चञ्चच्छशधरशिलासौधशिखरम् ।
 मुकुन्द-ब्रह्मन्दिप्रभृतिपरिवारं विजयते
 तवागारं रम्यं त्रिभुवनमहाराजगृहिणी ॥१४॥
 निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः
 कुटुम्बं त्रैलोक्यं कृतकरपुटः सिद्धनिकरः ।
 महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीशतनये
 न ते सौभाग्यस्य क्वचिदपि मनागस्ति तुलना ॥१५॥
 वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशा निवसनं
 श्मशानं क्रीडाभूर्भुजगनिबहो भूषणविधिः ।
 समग्रा सामग्री जगति विदितैवं स्मररिपो-
 र्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा ॥१६॥

अशेषब्रह्माण्ड-प्रलयविधि-नैसर्गिकमतिः

श्मशानेष्वासीनः कृतभसितलेपः पशुपतिः ।
 दधौ कण्ठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया
 भवत्या सङ्गत्याः फलमिति च कल्याणिकलये ॥१७॥
 त्वदीयं सौन्दर्यं निरतिशयमालोक्य परया
 भियैवासीद् गङ्गा जलमयतनु शैलतनये ।
 तदैतस्यास्तस्माद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया
 प्रतिष्ठामातन्वन् निजशिरसिवासेन गिरिशः ॥१८॥
 विशालश्रीखण्डद्रवमृगमदाकीर्णघुसृण-
 प्रसूनव्यामिश्रं भगवति तवाभ्यङ्गसलिलम् ।
 समादाय स्त्रष्टा चलितपदपांसूत्रिजकरैः
 समाधत्ते सृष्टिं विबुधपुरपङ्केरुहदृशाम् ॥१९॥
 वसन्ते सानन्दे कुसुमितलताभिः परिवृते
 स्फुरन्नानापद्मे सरसि कलहंसालिसुभगे ।
 सखीभिः खेलन्तीं मलयपवनान्दोलितजलैः
 स्मरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपीडाऽपसरति ॥२०॥

॥ इति आनन्दलहरी सम्पूर्णा ॥१५७॥

158. सङ्कष्टाष्टकस्तोत्रम्

ध्यानम्

ध्यायेऽहं परमेश्वरीं दशभुजां नेत्रत्रयोद्भूषितां
 सद्यः सङ्कटतारिणीं गुणमयीमारक्तवर्णां शुभाम् ।
 अक्ष-स्त्रग्-जलपूर्णकुम्भ-कमलं शङ्खं गदं विभ्रतीं
 त्रैशूलं डमरुश्च खड्ग-विधृतां चक्राभयाढ्यां पराम् ॥

नारद उवाच

जैगीषव्य मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञ सुखदायक ! ।
 आख्यातानि सुपुण्यानि श्रुतानि त्वत्प्रसादतः ॥१॥
 न तृप्तिमधिगच्छामि तव वागमृतेन च ।
 वदस्वैकं महाभाग सङ्कटाख्यानमुत्तमम् ॥२॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा जैगीषव्योऽब्रवीत्ततः ।
 सङ्कष्टनाशनं स्तोत्रं शृणु देवर्षिसत्तम ॥३॥
 द्वापरे तु पुरावृत्ते भ्रष्टराज्यो युधिष्ठिरः ।
 भ्रातृभिः सहितो राज्य-निर्वेदं परमङ्गतः ॥४॥
 तदानीं तु ततः काशीं पुरीं यातो महामुनिः ।
 मार्कण्डेय इति ख्यातः सह-शिष्यैर्महायशाः ॥५॥
 तं दृष्ट्वा स समुत्थाय प्रणिपत्य सुपूजितः ।
 किमर्थं म्लानवदनमेतत् त्वं मां निवेदय ॥६॥

युधिष्ठिर उवाच

सङ्कष्टं मे महत्प्राप्तमेतादृग्वदनं ततः ।
 एतन्निवारणोपायं किञ्चिद् ब्रूहि मुने मम ॥७॥

मार्कण्डेय उवाच

आनन्दकानने देवी सङ्कटानाम विश्रुता ।
 वीरेश्वरोत्तरे भागे पूर्वं चन्द्रेश्वरस्य च ॥८॥
 शृणु नामाऽष्टकं तस्याः सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ।
 सङ्कटा प्रथमं नाम द्वितीयं विजया तथा ॥९॥
 तृतीयं कामदा प्रोक्तं चतुर्थं दुःखहारिणी ।
 शर्वाणी पञ्चमं नाम षष्ठं कात्यायनी तथा ॥१०॥
 सप्तमं भीमनयना सर्वरोगहराऽष्टमम् ।
 नामाऽष्टकमिदं पुण्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ॥११॥
 यः पठेत् पाठयेद् वाऽपि नरो मुच्येत सङ्कटात् ।
 इत्युक्त्वा तु द्विजश्रेष्ठमृषिर्वाराणसीं ययौ ॥१२॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदो हर्षनिर्भरः ।
 ततः सम्पूज्य तां देवीं वीरेश्वरसमन्विताम् ॥१३॥
 भुजैस्तु दशभिर्युक्तां लोचनत्रयभूषिताम् ।
 मालाकमण्डलुयुतां पद्म-शङ्ख-गदायुताम् ॥१४॥
 त्रिशूलडमरुधरां खड्गचर्मविभूषिताम् ।
 वरदाभयहस्तां तां प्रणम्य विधिनन्दनः ॥१५॥

वरत्रयं गृहीत्वा तु ततो विष्णुपुरं ययौ ।
 एतत् स्तोत्रस्य पठनं पुत्र-पौत्र-विवर्धनम् ॥१६॥
 सङ्कष्टनाशनं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
 गोपनीयं प्रयत्नेन महाबन्ध्याप्रसूतिकृत् ॥१७॥

॥ इति सङ्कटाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५८॥

159. सङ्कटास्तुतिः

सदावृन्दारकोद्वृन्दा-ऽऽनन्द-सन्दोह दायकम् ।
 अमन्दमङ्गलागारं वन्दे शङ्करनन्दनम् ॥१॥
 किं कार्यं कठिनं कुतः परिभव कुत्रापवादाद् भयं
 किं मित्रं न हि किन्तु राजसदनं गम्यं न विद्या च का ।
 किं वाऽन्यज्जगतीतले प्रवद यत्तेषामसम्भावितं
 येषां हृत्कमले सदा वसति सा तोषप्रदा सङ्कटा ॥२॥
 अयि गिरिनन्दिनि नन्दितमेदिनी विश्वविनोदिनि नन्दिनुते
 गिरिवरविन्ध्य-शिरोऽधि-निवासिनी विष्णुविलासिनि जिष्णुनुते ।
 भगवति हे शितिकण्ठ-कुटुम्बिनि भूरिकुटुम्बिनि भूतिकृते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१॥
 सुरवरवर्षिणी दुर्धरधर्षिणी दुर्मुख-मर्षिणी हर्षरते
 त्रिभुवनपोषिणि शङ्करतोषिणी कल्मषमोषिणि घोषरते ।
 दनुजनिरोषिणि दुर्मदशोषिणि दुर्मुनिरोषिणि सिन्धुसुते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥२॥
 अयि जगदम्ब कदम्बवन-प्रियवासिनि तोषिणि हासरते
 शिखरि-शिरोमणि-तुङ्गहिमालय-शृङ्गनिजालय-मध्यगते ।
 मधुमधुरे मधु-कैटभ-गञ्जिनि महिषविदारिणि रासरते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥३॥
 अयि निजहुंकृति-मात्रनिराकृत-धूम्रविलोचन-धूम्रशते
 समरविशोषित-रोषित-शोणित-बीजसमुद्भव-बीजलते ।

शिव-शिव-शुम्भ-निशुम्भ महाहव-तर्पित-भूत-पिशाचरते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥४॥
 अयि शतखण्ड-विखण्डित-रुण्ड-वितुण्डित-शुण्ड-गजाधिपते
 निजभुजदण्ड-निपातितचण्ड-विपाटितमुण्ड भटाधिपते ।
 रिपुगजगण्ड-विदारण-चण्डपराक्रम-शौण्डमृगाधिपते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥५॥
 धनुरनुषङ्ग-रणक्षणसङ्ग-परिस्फुरदङ्ग-नटत्कटके -
 कनक-पिशङ्ग-पृषत्कनिषङ्ग-रसद्भटशृङ्ग-हताबटुके ।
 हतचतुरङ्गबल-क्षितिरङ्ग-घटद्-बहुरङ्ग-रटद्-बटुके
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥६॥
 अयि रणदुर्मद-शत्रुबधाद्धुर-दुर्धर-निर्भर-शक्तिभूते
 चतुर-विचार-धुरीण-महाशयदूतकृत-प्रमथाधिपते ।
 दुरित-दुरीह-दुराशय-दुर्मति-दानवदूत-दुरन्तगते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥७॥
 अयि शरणागत-वैरिवधूजन-वीरवराभय-दायिकरे
 त्रिभुवनमस्तक-शूलविरोधि-शिरोधिकृतामल-शूलकरे ।
 दुमिदुमितामर-दुन्दुभिनाद-मुहुर्मुखरीकृत-दिङ्निकरे
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥८॥
 सुरललना-ततथेयित-थेयित-थाभिनयोत्तर-नृत्यरते
 कृतकुकुथा-कुकुथोदि-डदाडिक-तालकुतूहल गानरते ।
 धुधुकुट-धूधुटिधन्धि-मितध्वनि-धीरमृदङ्ग-निनादरते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥९॥
 जय जय जाप्यजये जयशब्द-परस्तुति-तत्पर-विशवनुते
 झणझण-झिंझिम-झिंकृत-नूपुर-शिञ्जित-मोहित-भूतपते ।
 नटितनटार्थ-नटीनटनायक-नाटन-नाटित-नाट्यरते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१०॥
 अयि सुमनः-सुमनः-सुमनः-सुमनः-सुमनोरमकान्तियुते
 श्रितरजनी-रजनी-रजनी-रजनीरजनीकर-वक्त्रभूते ।

सुनयन-विभ्रमर-भ्रमर-भ्रमर-भ्रमर-भ्रमराभिटूते

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥११॥

महित-महाहव-मल्लमतल्लिक-वल्लित-रल्लित-भल्लिरते

विरचितवल्लि-कपालिक-पल्लिक-झिल्लिक-भिल्लिकवर्गवृते ।

श्रुतकृतफुल्ल-समुल्लसितारुण-तल्लज-पल्लव-सल्ललिते

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१२॥

अयि सुदतीजन-लालस-मानस-मोहन-मन्थरराजसुते

अविरल-गण्डगलन्-मदमेदुर-मत्त-मतङ्गगजराजगते ।

त्रिभुवन-भूषण-भूत-कलानिधिरूप-पयोनिधिराजसुते

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१३॥

कमलदलामल-कोमलकान्ति-कलाकलितामल-भालतले

सकल-विलास-कलानिलय-क्रमकेलिचलत्-कलहंसकुले ।

अलिकुलसंकुल-कुन्तलमण्डल-मौलिमिलद्-बकुलालिकुले

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१४॥

करमुरलीरव-वर्जित-कूजित-लज्जित-कोकिल-मञ्जुमते

मिलित-मिलिन्द-मनोहरगुञ्जित-रञ्जित-शैलनिकुञ्जगते ।

निजगण-भूतमहाशबरीगण-रङ्गणसम्भृत-केलिरते

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१५॥

कटितटपीत-दुकूलविचित्र मयूखतिरस्कृत चण्डरुचे

जितकनकाचल-मौलिमदोर्जित-गर्जितकुञ्जर-कुम्भकुचे ।

प्रणतसुराऽसुर-मौलिमणि-स्फुरदंशुलसन्नखचन्द्ररुचे

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१६॥

विजित-सहस्रकरैक-सहस्रकरैक-सहस्रकरैकनुते

कृतसुरतारक-सङ्गरतारक-सङ्गरतारक-सूनुनुते ।

सुरथसमाधि-समानसमाधि-समानसमाधि-सुजाप्यरते

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१७॥

पदकमलं करुणानिलये वरिवस्यति योऽनुदिनं सुशिवे

अयि कमले कमलानिलये कमलानिलयः स कथं न भवेत् ।

तव पदमेव परं पदमस्त्विति शील्यतो मम किं न शिवे

जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१८॥

कनकलसत्-कलशीकजलैरनुषिञ्चति तेऽङ्गणरङ्गभुवम्
 भजति स किं न शचीकुचकुम्भ-नटीपरिस्म-सुखानुभवम् ।
 तव चरणं शरणं करवाणि सुवाणि पथं मम देहि शिवम्
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥१९॥
 तव विमलेन्दुकलं वदनेन्दुमलं कलयन्ननुकूलयते
 किमु पुरुहूत-पुरीन्दुमुखी-सुमुखीभिरसौ विमुखीक्रियते ।
 मम तु मतं शिवमानधने भवती कृपया किमु न क्रियते
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥२०॥
 अयि मयि दीनदयालुतया कृपयैव त्वया भवितव्यमुमे
 अयि जगतो जननीति यथाऽसि मयाऽसि तथाऽनुमतासि रमे ।
 यदुचितमत्र भवत्पुरंग कुरु शाम्भवि देवि दयां कुरु मे
 जय जय हे महिषासुरमर्दिनि रम्यकपर्दिनि शैलसुते ॥२१॥
 स्तुतिमिमां स्तिमितः सुसमाधिना नियमतो यमतोऽनुदिनं पठेत् ।
 परमया रमया स निषेव्यते परिजनोऽरिजनोऽपि च तं भजेत् ॥२२॥
 ॥ इति सङ्कटास्तुतिः समाप्ताः ॥१५९॥

160. श्रीसङ्कटासहसनामस्तोत्रम्

मेरुपृष्ठे सुखासीनं भैरवं परिपृच्छति ।
 बद्धञ्जलिपुटा देवी भैरवी भुवनेश्वरी ॥१॥

श्रीभैरव्युवाच

यत् सूचितं त्वया नाथ! नाम्नामष्टसहस्रकम् ।
 तन्मे वद महाकाल! यद्यहं तव वल्लभा ॥२॥

श्रीभैरव उवाच

शृणु देवि! महेशानि नाम्नामष्टसहस्रकम् ।
 पुरा त्रिपुरनाशार्थं यन्मया निर्मितं शुभे ॥३॥
 यस्याः प्रसादमात्रेण भस्मीभूतं पुरत्रयम् ।
 तस्याः श्रीसङ्कटादे व्या नामाख्यानं वदामि ते ॥४॥
 अष्टोत्तरसहस्रस्य महाकालऋषिः स्मृतः ।
 छन्दोऽनुष्टुबदेवता च सङ्कटा कष्टहारिणी ॥५॥

हां हीं हौं बीजमित्युक्तं शक्तिः श्रीसङ्कटेति च ।
कीलकं सङ्कटं मेऽद्य परमं नाशय नाशय स्वाहेति च ॥६॥
नानासङ्कटविध्वस्त्यै विनियोगः प्रकीर्तितः ।

विनियोगः-अस्य श्रीसङ्कटाऽष्टोत्तरसहस्रनामस्तोत्रस्य महाकालऋषिः,
अनुष्टुपछन्दः, श्रीसङ्कटहारिणी सङ्कटादेवता हां हीं हौं बीजं, सङ्केति शक्तिः,
सङ्कटमेऽद्य परमं नाशय नाशय स्वाहेति कीलकं, नानासङ्कटविध्वस्त्यै विनियोगः ।

मूलेन प्राणायामं कृत्वा, महाकालऋषये नमः, शिरसि । अनुष्टुप्-छन्दसे
नमः, मुखे । श्रीकष्टहारिण्यै सङ्कटादेवतायै नमो हृदि । हां हीं हौं बीजाय
नमः, गुह्ये । सङ्कटेति शक्तये नमः, पादयोः । सङ्कटं मेऽद्य परमं नाशय
नाशय स्वाहेति कीलकायनमः, सवाङ्गे । इति पठेत् ।

करन्यासः-हां सङ्कटे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । हीं रोगं तर्जनीभ्यां नमः । हूं मेऽद्य
मध्यमाभ्यां नमः । है परमम् अनामिकाभ्यां नमः । हौं नाशय नाशय कनिष्ठिकाभ्यां
नमः । हः स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

एवं षडङ्गन्यासः-हां सङ्कटे हृदयाय नमः । हीं रोगं शिरसे स्वाहा । हूं मेऽद्य
शिखायै वषट् । एवं विन्यस्य, ध्यानं कुर्यात् ।

ध्यानम्

ध्यायेऽहं परमेश्वरीं दशभुजां नेत्रत्रयोदभूषितां
सद्यः सङ्कटतारिणीं गुणमयीमारक्तवर्णां शिवाम् ।
अक्षस्त्रगजलपूर्णकुम्भकमलं शङ्खं गदां विभर्तीं
त्रैशूल डमरुं च खड्गविधृता चक्राभयाढ्यां पराम् ॥

सहस्रनामस्तोत्रम्

सङ्कटा विजया नित्या कामदा दुःखहारिणी ।
सर्वगाव्याहतगतिः कात्यायनी मृडेश्वरी ॥१॥
भीमरावा रोग-शोक - सर्वापद्विनिवारिणी ।
हकाराद्या महेशानी हकारक्षररूपिणी ॥२॥
हंसेशी हंसजननी हंसरूपा हिरण्यमयी ।
हेममाली हिमेशी च हेमालयनिवासिनी ॥३॥
हेममुक्ति - हेमकान्ति - हेमपीठ - निवासिनी ।
हंसयानसमारूढा हंसकोटिसमप्रभा ॥४॥

हारमालाविराजी च हुङ्कारनादिनी तथा ।
 हासपद्याहनी मन्दा हंसपूरनिवासिनी ॥५॥
 संसारतापहरणी संसारार्णवतारिणी ।
 संहारिणी संग्रहणी सर्वसङ्कटतारिणी ॥६॥
 शम्भुर्माहेश्वरी चैव सर्वेषां च गुणाग्रणीः ।
 सङ्कटा परमानन्दा शाङ्करी शङ्करप्रिया ॥७॥
 संसाररूपिणी वाणी संसारजन-पालिनी ।
 संसारभोगिनी योगा स्वयंभूश्च गुणेश्वरी ॥८॥
 सुरेश्वरी सुरापाना सुखदा भोगवत्सला ।
 सुन्दरी सुन्दराकान्तिः सुमङ्गला शुभङ्करी ॥९॥
 सुमार्गधारिणी देवी शार्वरी स्वर्गभूषणी ।
 सुकेशी सुभगा देवी स्वर्णरौप्य-विराजिनी ॥१०॥
 सुगन्धिनी सुवसिनी सुभाशीः सुन्दरानना ।
 षट्चक्रा च षडाधारा षट्चक्रविनिवासिनी ॥११॥
 षड्गुणैश्वर्यसम्पन्ना षडङ्गकुलवासिनी ।
 षड्भुजा रक्तनयना षट्पुरा च षडेश्वरी ॥१२॥
 षड्वक्त्रराजिनी वीरा षट्सुरङ्गनिवासिनी ।
 षडाम्नाया षडिन्द्राणी षट्पुरी च षडानना ॥१३॥
 सोमा पाठन्द्रिया वाग्मी षड्-रूपा च षडिन्द्रिया ।
 षडाधारा च षड्वर्णा षट्पुरवासिनी षडा ॥१४॥
 षण्डा भागीरथी चैव षड्शमशाननिवासिनी ।
 श्मशानसाधिनी मातात श्मशानराजिनी वरा ॥१५॥
 श्मशान-योगिनी कौली श्मशानमध्यमोदिनी ।
 श्रीदेवी श्रीकरी श्री च श्रीविद्या परमेश्वरी ॥१६॥
 श्रीं ह्रीं क्रीं श्रीमहाकाली श्रीमतिः श्रीभगेश्वरी ।
 श्रीकृष्णा श्रीमती श्रीमान् श्रीपुरा मेघमेदुरा ॥१७॥
 श्रीं क्लीं कूटदशाख्या च श्राद्धदेवप्रपूजिता ।
 श्रीयोगी श्रीप्रिया श्रीश्च श्रेया श्रीपतिसिद्धिदा ॥१८॥

श्रीदुर्गा श्रीगुणमयी श्रोत्रिणी श्रोत्रवासिनी ।
 श्रीकाली श्रीकामिनी च श्रीपतिपरिपालिनी ॥१९॥
 श्वेतकेशी श्वेतवर्णा श्वेचचिह्नविनाशिनी ।
 श्वेतचन्दनलिप्ताङ्गी श्वेतवासाः पिनाकिनी ॥२०॥
 श्वेताङ्गी श्वेतपद्माख्या स्मृता मधुरभाषिणी ।
 श्रीमुखी श्रीसुनिर्वाणी ॐ ह्रीं श्रीं सङ्कटे स्वाहा ॥२१॥
 श्वेतमुक्त - सुवर्णाभा शुद्धकर्मा शुभङ्करी ।
 क्षेमङ्करी शुभा वाचा शीतला शीतलेश्वरी ॥२२॥
 श्रीमङ्गला मङ्गलकृत् श्रीमुख्या सङ्कटेश्वरी ।
 हं सं आं हां स्वां घ्रीं घूं घ्रः सङ्कटे स्वाहा ॥२३॥
 शुक्लवस्त्रा शुक्रपूज्या शुक्रशोणितशोषिणी ।
 श्रीमाया ह्रीं माहादेवी शुभा शुभफलप्रदा ॥२४॥
 शङ्करी शाम्भवी सौरी स्वर्णमाला विशोभिनी ।
 शवासिनी शवेशानी शवपीठनिवासिनी ॥२५॥
 शबरी शाम्बरी गौरी सुवराग्रविराजिनी ।
 वासुकी नागमाला च वङ्कारा शिवकामिनी ॥२६॥
 वासुदेवी वामचारी वामेश्वरी महेश्वरी ।
 लवली लालिनी लाली लक्ष्मीर्लक्षणलक्षिता ॥२७॥
 लीला लक्षं तु लोकेशी लोमराजी जनेश्वरी ।
 लोमकूपा भानुमती लोलार्कनयना परा ॥२८॥
 लोकेशी लोकनारी च लोकशोक-विमर्दिनी ।
 लावली ललजिह्वा च ललिता च ललानना ॥२९॥
 लीलावती लालिता च लोहिनी लोकपालिनी ।
 लोहिताक्षा लोहकारा लोकशत्रुविनाशिनी ॥३०॥
 लोकसाक्षी लोकधरी लीलादैत्यविनाशिनी ।
 लोभदात्री लोभमतिर्लिङ्ग - त्रिशूलधारिणी ॥३१॥
 लङ्केश्वरी लङ्कमाला लावण्यामृतवर्षिणी ।
 लीला लक्षा तु निर्वाणा लोकतुष्टिः शुभप्रदा ॥३२॥

रक्तवर्णारक्त रक्तनखा रक्ताक्षी रक्तलोचनी ।
 रक्तदन्ता विशालाक्षी रक्ताङ्गी रक्तपायिनी ॥३३॥
 रक्तबीजा रक्तपा ना लम्बोदरी महेश्वरी ।
 रक्तबीज - शिरोमाला रक्तपुष्प - सुशोभिनी ॥३४॥
 रक्ताक्षी रुद्ररमणी रोग - शोक - विनाशिनी ।
 रागिणी रञ्जितशिरा रागरञ्जितलोचना ॥३५॥
 रमा रामा रम्यरूपा रामेशी रामपूजिता ।
 रामेश्वरी राजकुला रामराजेश्वरी परा ॥३६॥
 राजिनी राजमाता चराजेन्द्रनाशिनी जरा ।
 रागमाला रागवती रागेशी रागसारिणी ॥३७॥
 रम्भा हेरम्बवर्णा च लम्बोष्ठी लम्बनी तथा ।
 यज्ञमाता यज्ञकर्त्री यज्ञानन्तफलप्रदा ॥३८॥
 यज्ञाङ्गी यज्ञतारी च यज्ञराट् यज्ञेश्वरी ।
 यज्ञाहुतिः संग्रही च यज्ञमोक्ष-प्रदायिनी ॥३९॥
 यज्ञसाक्षी यज्ञमयी यज्ञश्रुतिप्रवाहिनी ।
 योगिनी योगपीठस्था योगकर्मविलासिनी ॥४०॥
 योगिनां योगमध्यस्था योगमार्गप्रदर्शिनी ।
 योगमाया योगरूपा योगिनीगणसेविता ॥४१॥
 योगज्ञानप्रदा ज्येष्ठा योगरूपा यशस्करी ।
 योगिनीसङ्घ-मध्यस्था यज्ञचारी पितामही ॥४२॥
 यतिसेव्या योगम्या योगिनां मुक्तिदायिनी ।
 यमेश्वरी यमचरी यमशासनमोचिनी ॥४३॥
 यमेन्द्रोचिनी शीला यमस्यालयवासिनी ।
 यानस्था यानगमनी योगिनी योगमोहिनी ॥४४॥
 यज्ञभोक्त्री यज्ञमाता यज्ञनिष्ठाप्रसादिनी ।
 माहामाया महेशी च महिषासुरमर्दिनी ॥४५॥
 महासिंहसमारूढा महादेवविलासिनी ।
 महोदया कुमारीशी महामालविभूषिणी ॥४६॥

महासङ्कटतारी	च	महासिधारिणी	स्वरा ।
मालाधरी	महानादा	महालक्ष्मीस्वरूपिणी ।।४७।।	
महाविभवदात्री	च	मिहिरारूणभूषिणी ।	
महाविश्वम्भरी	रौद्री	महासुरविनाशिनी ।।४८।।	
महाप्रभावा	महती	महासङ्कटहारिणी ।	
महाभैरवरावा	च	महिषासुरखण्डिनी ।।४९।।	
महाशान्तिर्महामारी	मङ्गला	वसुमङ्गला ।	
मालिनी	च महाकाली	मोक्षदा भोगदाग्रणीः ।।५०।।	
महामोहप्रशमनी		महामहेशनन्दिनी ।	
महिम्ना	महिषारूढा	महावीरासनी	मही ।।५१।।
महेशार्चित	- योगेशी	महाश्मशानवासिनी ।	
महाकारुण्यजननी		महादेवसुखप्रदा ।।५२।।	
महोदरी	महावाणी	मान्या महेशमोहिनी ।	
मोक्षदा	मुक्तिदा	मोक्षा मोहमालाप्रकाशिनी ।।५३।।	
मुराख्यनाशिनी	चण्डी	महाविष्णुवरप्रदा ।	
महाभोगी	जनेशी	च मुक्तिदा मुक्तिदा क्षमा ।।५४।।	
महानन्दा	महासुण्डा	महाबुद्धिकरी	मही ।
महाकमण्डलुधरा		महाविषविनाशिनी ।।५५।।	
महाकलपालधारी	च	महायुद्धपरायणा ।	
महाचण्डी	मुष्टिका	च मुमुक्षुमुक्तिभाविनी ।।५६।।	
महागुणमयी	मान्या	मोहजाल - विमोक्षिणी ।	
मार्तण्डमण्डलस्था	च मातङ्गी	मोहिनीश्वरी ।।५७।।	
मन्दाकिनी	वियद्विन्दुर्महेश्वरी	गुणाग्रहणीः ।	
मङ्गला	भद्रकाली	च मदिरामत्तमोहिनी ।।५८।।	
महासुरधरा	काली	मण्डली मण्डलप्रिया ।	
श्मशानपीठमध्यस्था	मण्डला	भैरवाकृतिः ।।५९।।	
भवानी	भगमाला	च भवदुःखप्रभञ्जिनी ।	
भूतधारा	भूतसारा	भूधरा भूधरात्मिका ।।६०।।	
भाविनी	भगमाला	च भावसिद्धिप्रदा शिवा ।	
भावमुक्तिर्मुक्तिदात्री	भासा	च भास्वती वरा ।।६१।।	

भुवनेश्वरी भव्यरूपा भक्ष्यभोज्य - सुखप्रदा ।
 भैषणी भैषजी माता भक्तिदा भक्तपालिनी ॥६२॥
 भाग्यसिद्धिर्भाग्यवती भवभारप्रभञ्जनी ।
 भूपेशी चामरी भूपा भ्रमा भ्रमरभाषिणी ॥६३॥
 भूतेशी भूतरात्री च भूश्रीभूषणशोभिनी ।
 भैरवी भैरवानन्दा भैमी भीमा भयङ्करी ॥६४॥
 भानुमती भानुकान्ति - भानुकोटि - शुभाङ्गिनी ।
 भवज्येष्ठा भवमान्या भान्विन्दुशि - त्रिलोचनी ॥६५॥
 भीष्मिणी भुवना भर्त्री भूतिदा भूसरेश्वरी ।
 भवप्रिया भवेशी च भक्तजन - निवासिनी ॥६६॥
 भावा लोचनभावज्ञा भवसङ्कटनाशिनी ।
 भाषिणी भासुरी ज्योतिर्भक्तसङ्कट - तारिणी ॥६७॥
 भगिनी भवताङ्गी च भारती भवसुन्दरी ।
 भावितात्मा भावमूर्ति - विभूतिर्विश्वतो मुखी ॥६८॥
 विभूति - विश्वमूर्तिश्च विश्वेशी विश्वभाविनी ।
 वीरेशी वैष्णवी - पूज्या विश्वेशी विश्वभाविनी ॥६९॥
 विद्याधरी विशालाक्षी वामेशी वसुधारिणी ।
 विश्वमाता विश्वरूपा बुद्धिदा बुद्धिचारिणी ॥७०॥
 विपञ्ची वाद्यवादित्रा वागीशा वाग्वती धृतिः ।
 वागीशा वरदा वाग्भी वीणावादनशाम्बरी ॥७१॥
 वृत्तिकर्त्री वृत्तिदात्री वृत्तिकृद् वृत्तबन्धुरा ।
 व्यक्ताक्षी विमलाक्षी च विमला विबुधप्रिया ॥७२॥
 विश्वकृद् विश्वकर्माणि विश्वेशार्चित-रूपिणी ।
 विलोचनी विश्वसाक्षी विश्वात्मा विश्वसाधिनी ॥७३॥
 विशालाक्षी विरूपाक्षी विश्वेश्वरी वराधरी ।
 विम्बोष्ठी रक्तवसना विन्दुवक्त्रा शुभङ्करी ॥७४॥
 फक्कारा वृद्धिरूपा च फ्रां फ्रीं फ्रूं फ्रैं फ्रौं फ्रः स्वाहा ।
 परमेश्वरी परा वृद्धिः परमा ज्योतिरूपिणी ॥७५॥
 पद्मालया परादेवी पालिनी कमलेश्वरी ।
 परानन्दी पराभिक्षा प्रतिष्ठा पालिनी परा ॥७६॥

परसन्धि-परावृद्धिः

परमानन्दरूपिणी ।

परमैश्वर्यजननी

परावाणी

मनोहरा ॥७७॥

परमार्थस्वरूपा

च

परंपारा

महेश्वरी ।

पद्माक्षी

पद्मध्यस्था

पद्ममाला

शुभानना ॥७८॥

परा पाली

परेशी

च

परानन्दपरेश्वरी ।

पञ्चमी

स्वस्तिरूपा

च

पन्थानी

पथरक्षिणी ॥७९॥

परं

पारा

बालबाला

बालाबालस्वरूपिणी ।

पारेश्वरी

पकारात्मा

परमेष्ठी

परमेश्वरी ॥८०॥

प्राणेशी

प्राणरूपा

च

प्राणदात्री

कृपानिधीः ।

परानन्दा

परापुण्या

रिनञ्जनस्वरूपिणी ॥८१॥

निर्मला

निर्ममा

धात्री

निगभागमरूपिणी ।

निन्दिता

तुष्टिरूपा

च

निःशेषप्राणितापहृत् ॥८२॥

निश्वेश्वरी

दशा

देवी

दोषपापहरा

जया ।

नन्दिनी

नन्दजा

माया

निरालम्बा

महेश्वरी ॥८३॥

नादेश्वरी

नादरूपा

नाममाला

विभूषणी ।

निरेश्वरी

निराकारी

नीलोत्पल

-

परेश्वरी ॥८४॥

नीलरूपा

निराकारा

निर्लोका

निर्गुमात्मिका ।

धर्माध्यक्षा

धर्मवती

धनदा

धर्ममोचनी ॥८५॥

धनेश्वरी

धकारात्मा

धर्मराजनुतेश्वरी ।

धर्मज्येष्ठी

धर्मचारी

धूम्रवर्णाधरामयी ॥८६॥

धर्मेशी

धर्मयुक्तात्मा

धर्मज्ञा

धनदायिनी ।

धरा

धरात्मा

धरणी

धूम्रलोचन-मर्दिनी ॥८७॥

धुरन्धरी

धर्मशीला

धर्मधात्री

स्वरूपिणी ।

दिनेश्वरी

दिनपती

दुर्बला

दुर्गनाशिनी ॥८८॥

दुर्गबन्ध्या

दुर्गरावा

दुर्गदैत्यविनाशिनी ।

दुर्गा

शाकम्भरी

देवी

दिननाथसुपूजिता ॥८९॥

दैत्यारिदैत्यदमनी

दुःख

-

दारिद्र्य

-

नाशिनी ।

दुर्गसङ्कटतारी

च

दुःस्वप्ननाशिनी

परा ॥९०॥

दीर्घदा

दीर्घदन्ता

चदीर्घदर्शी

दशेश्वरी ।

दीर्घायुवर्धनी

काली

बन्धमोक्षकरी

शुभा ॥९१॥

दीर्घनेत्रा दीर्घकेशी दीर्घरूपा दिगीश्वरी ।
 द्वापिचर्म - परीधाना दीर्घशीर्ष - सुशोभिनी ॥१२॥
 दीर्घमाला नरशिरा दीर्घहारिस्थितानना ।
 दिव्यरूपा दीर्घरावा योगमाता दिगम्बरी ॥१३॥
 दिव्यरूपा पीतवस्त्रा दिव्यगन्धानुलेपनी ।
 दिव्यमाल्यबरधरा दिव्यपीठ - निवासिनी ॥१४॥
 स्थानेश्वरी स्थानदात्री सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
 तारिणी तरिणी माता त्रैलोक्यपावनी त्रयी ॥१५॥
 त्रिलोचनी त्रिशूली च त्रिपुरा त्रिदिवेश्वरी ।
 त्रिमात्रा च त्रिवर्णाख्या त्रिमूर्तिर्निगमेश्वरी ॥१६॥
 तापशान्तिस्तापहन्त्री त्रितापदुःखनाशिनी ।
 निर्णेत्री च निरातङ्गा निर्गुणा च निमूचका ॥१७॥
 ढक्कावाद्य - विहसिता दृग्निहभैरव - सङ्गिनी ।
 दण्डचामरधारी च डमडुमरुवादिनी ॥१८॥
 डाकिनी शाकिनी रौद्री लाकिनी काकिनीश्वरी ।
 दङ्कारकारिणी शैवा दौलिनी योगरूपिणी ॥१९॥
 जेश्वरी सर्वलोकेशी अकारा शाम्भवी तथा ।
 अकारनाशिका देवी झञ्झकारस्वरूपिणी ॥२०॥
 क्षिनिशा योगिनी शैवा झञ्झरी च झशेश्वरी ।
 जन्मनी जन्ममाला च जन्मकोटिवृतानना ॥२०१॥
 ज्योतिरूपा ज्योतिःप्राणायोगयोगान्तरूपिणी ।
 जगेश्वरी जगन्माता जगज्ज्योतिः - प्रपूजिता ॥२०२॥
 ज्योतिःपीठस्थिताज्योतिरष्टज्योति - महेश्वरी ।
 ज्योतिकारा ज्योतिर्लिङ्गीजातिपुष्परताङ्गिनी ॥२०३॥
 ज्योतिरावा ज्योतिर्हारा ज्योतिः काञ्चनरूपिणी ।
 छत्रेश्वरी छत्रपतिश्छादिनी छेदरूपिणी ॥२०४॥
 छुरीधरी छन्दकरी छेदनी छेदनाशनी ।
 चतुर्भुजा चन्दमाता चामुण्डा चञ्चरेश्वरी ॥२०५॥
 चण्डरूपा महाचण्डी चाण्डिका चण्डनाशिनी ।
 चण्डाट्टहासा मुरभी चञ्चला चपलद्युतिः ॥२०६॥

चन्द्रिका चन्द्रकान्ता च चन्द्रसूर्यानिलोचनी ।
 चञ्चला चारिणी देवी चन्द्रचूडा विलोचनी ॥१०७॥
 चित्रप्रिया चित्रवती चित्रकेशी चिरन्तना ।
 चित्रवस्त्रपरीधाना चित्राङ्गी चित्ररूपिणी ॥१०८॥
 चित्रेश्वरी चित्रमतिश्चित्रकारान्तराश्रया ।
 डङ्कारमङ्गला काली डकारेशी सुरेश्वरी ॥१०९॥
 घर्घरावा घुर्घरिणी घर्घरी घर्घरस्वना ।
 घोरमुखी घनानन्दा घोरहुङ्कारना दिनी ॥११०॥
 घातिनी घ्राणिनी घोरा घोरमूर्तिर्भयङ्करी ।
 घ्राणप्रिया घ्राणरुचि - घोरनादा घनेश्वरी ॥१११॥
 घनेश्वरी घनानन्दा घनवर्णा परेश्वरी ।
 घनकेशी घनचरी घननामप्रदायिनी ॥११२॥
 घनज्योतिर्मखेशी च घनरूपा घनस्वना ।
 गानप्रिया गानरुचिर्ग्रामिणी ग्रामवासिनी ॥११३॥
 गोपाला गोपपाली च गोपेशी कंसमर्दिनी ।
 गोकुला गोकुलीमान्या गोवर्धनसखी सुहृत् ॥११४॥
 गिरिरूपा च सुलभा गिरीशी गिरिरूपिणी ।
 गुणकरी गुणानन्दा गायत्री गिरिजा मही ॥११५॥
 खगेश्वरी खगेशी च खवर्णा खगमालिनी ।
 खगमाला खवर्णाभा खगसन्ध्यास्वरूपिणी ॥११६॥
 खगवर्णा नखी नौद्री खसमा खसमेश्वरी ।
 खडगधारा खगाधारा खमणिः शतरूपिणी ॥११७॥
 कालिका कालदमनी कालिकागणभाविनी ।
 कपाली हारमाला च कुमारी स्वर्णभूषिणी ॥११८॥
 कलावती कमलिनी कङ्काली कालभैरवी ।
 कामेश्वरी कामराज्ञी कमलाकररूपिणी ॥११९॥
 कामदात्री काममूर्तिः कौलेशी च कुलेश्वरी ।
 कमनीयकुलादेशी कौमुदी-शतरूपिणी ॥१२०॥
 मङ्गला मङ्गलानन्दा यशोदा द्रव्यदायिनी ।
 चन्द्रमाता चन्द्रपत्नी चन्द्राणी चन्द्रशेखरा ॥१२१॥

पिङ्गलापिङ्गला पिङ्गा पिङ्गाक्षी शोकहारिणी ।
 सूर्यमाता सूर्यपत्नी सूर्याणि सूर्यसन्निभा ॥१२२॥
 धन्या धनप्रदा धान्या धनेशी धनदा धना ।
 जीवमाता जीवभार्या जीवती जीवनी शुभा ॥१२३॥
 भ्रमरी भ्रामरी भ्राम्या भ्रमघ्नी भ्रमदा भ्रमा ।
 भौममाता भौमपत्नी मङ्गला मङ्गलेश्वरी ॥१२४॥
 भद्रिका भद्रदा भद्रा भद्रेशी भद्रदायिनी ।
 सौम्यमाता सौम्यपत्नी बुद्धिस्था बुद्धितोषदा ॥१२५॥
 उल्कोल्लिककामहोल्कोल्का नाशिनी मन्दमातृका ।
 सौरमाता सौरपत्नी रशनी स्वनश्विना ॥१२६॥
 सिद्धा सिद्धिकरी सिद्धिः सिद्धिदा सिद्धपूजिता ।
 शुक्रपत्नी शुक्रमाता शुक्लाङ्गी शुक्रसुन्दरी ॥१२७॥
 सङ्कटा सङ्कटेशी च सर्वसङ्कटतारिणी ।
 अभक्तमारिणी भक्त - पालिनी गणमातृका ॥१२८॥
 अकष्टा सङ्कटान्तस्था सङ्कष्टा-ऽऽपन्निवारिणी ।
 रोगदा रोगहन्त्री च मृत्युदा मृत्युहारिणी ॥१२९॥
 राहुमाता राहुजाया सर्पिणी विषमोचिनी ।
 विकटा विकटान्तस्था गर्भस्था विटाङ्गिनी ॥१३०॥
 गर्भपाली वीरविद्या शकटान्तःप्रचारिणी ।
 केतुमाता केतुजाया ध्वजिनी ध्वजपूजिता ॥१३१॥
 अन्तिका अन्तमाला च अङ्गारकनकारुणा ।
 अम्बिका अन्तकरणी अन्नपूर्णान्नकारिणी ॥१३२॥
 अंशिनी कारिणी चैव हौङ्गारहोमरूपिणी ।
 होमभुक् होमवह्नीशालद्विकालद्विकारिणी ॥१३३॥
 ऋद्धेश्वरी ऋद्धिरूपा ऋद्धिवरप्रदायिनी ।
 ऋग्रूपा ऋषिसेव्या च ऋषिगणविनोदिनी ॥१३४॥
 ऋषिपालस्य तनया ऋजुमार्गप्रदर्शिनी ।
 एकाररूपिणी मान्या एकारा एकचारिणी ॥१३५॥
 ऐरावती हैमवती हिममाली हिमेश्वरी ।
 ऐङ्गाररूपिणी हैमी ऐश्वरी ऐ महेश्वरी ॥१३६॥

ओङ्कारा चापि हौङ्कारा अं अः पदस्वरूपिणी ।
 उँ उँ उँ उँ कारिणी फट् फट् फट् फट् फट् उमेश्वरी ॥१३७॥
 ईश्वरी लोकईशानी ई ई ईशाकुलेश्वरी ।
 ई ई ई ई हनुरूपा ईकारा ईश्वरी तथा ॥१३८॥
 इङ्गिता कालिका रूपा ईशामानमहेश्वरी ।
 आं हीं ह्रीं क्रौं हैं हौं हः आंक्लौं क्लं क्लीं क्लां क्लुं स्वाहा ॥१३९॥
 अम्बिका कामदा ज्योत्सना अमरी अमरावती ।
 अङ्गरी अम्बुदा अम्बा अंसांसीसूं सैसोंसः सङ्कटे रोगं हन हन स्वाहा ॥१४०॥
 श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः हं हूं ह्रीं सङ्कटे रोगं मे हन हन स्वाहा ।
 ह्रीं सङ्कटे रोगं मे परमं नाशय नाशय स्वाहा ॥१४१॥
 भवेत् सङ्कटानाम् देव्यस्त्वसंख्या यथा मेघमालोत्थिता विन्दुसंख्याः ।
 यथा गाङ्गवरुतकृते नान्तसंख्यास्तथा सङ्कटाव्याधि-निर्णाशयित्र्याः ॥१४२॥
 इमां नाम-मालां पठन्ते जपन्ते हरेदाधिरोगानशेषान् क्षणेन ।
 कृता याङ्गमा लाः समस्ताः समस्ताः पठन्तो न्वहं सङ्कटा नाममालाम् ॥१४३॥
 इत्येतत् कथितं कालि! यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
 न भवेत् सङ्कटं तस्य पाठकस्य कदाचन ॥१४४॥
 सर्वतीर्थस्नानफलं त्रिसन्धं पाठनाद् भवेत् ।
 रोगार्त्तो मुच्यते रोगात् कुष्ठ - व्याधेर्न संशयः ॥१४५॥
 राजदुष्टे राजवश्ये सम्भने मोहने पि च ।
 राजशत्रुविनाशाय पठेद्यस्तु महेश्वरि! ॥१४६॥
 एकविंशाद्दिनैकेन मारणं क्षोभणं भवेत् ।
 देवालये पठेत् पुण्ये शुभे देशे सदा पठेत् ॥१४७॥
 पुरश्चरणमेतस्य नामसंख्यासमीरितम् ।
 तद्दशांशं प्रजहुयाद्रक्तद्रव्येण साधकाः ॥१४८॥
 मार्जनं तद्दशांशेन तद्दशांशेन भोजनम् ।
 दक्षिणा स्वर्णवस्त्रान् यथाशक्त्या निवेदयेत् ॥१४९॥
 यः करोति महेशानि चतुर्वर्गफलं लभेत् ।
 पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम् ॥१५०॥

अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
 शूलरोगं तथा कुष्ठं मस्तरोगं च नश्यति ॥१५१॥
 पठेद् वा पाठयेद् वाऽपि सङ्कटं नश्यति क्षणात् ।
 राजशत्रुविनाशार्थमेकविंशतिधा जपेत् ॥१५२॥
 धन - पुत्र - कलत्रार्थी पठेन्मासचतुष्टयम् ।
 ग्रहदोषविनाशार्थं पठेद् वै मासपञ्चकम् ॥१५३॥
 वने राजकुले वाऽपि श्मशाने दुर्जये रिपौ ।
 पठेन्नामसहस्राख्यां भयं तस्य न जायते ॥१५४॥
 डाकिनी - शाकिनी - भूत - वेतालादिभयं न च ।
 राजवश्ये राजमाने मोहनोच्चाटनेऽपि च ॥१५५॥
 पठेद् द्वात्रिंशदावृत्तिर्होमेन सहितं बलिम् ।
 दत्त्वा तत्कामना सिद्धिस्तत्क्षणादेव जायते ॥१५६॥
 सर्वसङ्कष्टहरणं सर्वदारिद्र्यघातनम् ।
 सङ्कटोत्थौघनाशार्थं बलिं दद्यात् प्रयतनतः ॥१५७॥
 सङ्कटायाः सङ्कटाया भ्रामर्यास्त्वन्तरे क्रमात् ।
 ध्यातं तदर्द्धं प्रपठेन्नामामष्टसहस्रकम् ॥१५८॥
 तस्यामुल्कान्तरे प्राप्ते सपादं शतधा पठेत् ।
 पिङ्गलान्तर्दशाप्राप्ते पठेद् द्वादशधा सुधीः ॥१५९॥
 तद् - दुष्टफलनाशार्थं बलिं तद्यादतन्द्रितः ।
 गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं स्तवमुत्तमम् ॥१६०॥
 न दातव्यं न दातव्यं दुर्जनाय सुरेश्वरिः ।
 निन्दकाय कुशीलाय शक्तिनिन्दापराय च ॥१६१॥
 सत्कुलीनाय ऋजवे साधकाय सुरेश्वरिः ।
 प्रदातव्यमिदं पुण्यं तापत्रयविनाशकम् ॥१६२॥
 यस्मै कस्मै न दातव्यं सङ्कटायाः सहस्रकम् ।
 यो ददाति विमूढात्मा स सङ्कष्टफलं लभेत् ॥१६३॥

यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वव्याधि - विवर्जितः ।
 यावज्जीवं सुखं भुक्त्वा शिवलोकः स गच्छति ॥१६४॥
 अष्टम्या च चतुर्दश्यां वारे भौमशनैश्चरे ।
 रक्तचन्दन - रक्तार्क - पुष्पाऽक्षत - समन्वितम् ।
 पूजयित्वा पठेत् सद्यो नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥१६५॥

॥ इति सङ्कटासहस्रनामाख्यं स्तोत्रं समाप्तम् ॥१६०॥

161. विन्ध्येश्वरीस्तोत्रम्

निशुम्भ-शुम्भ-मर्दिनी प्रचण्ड-मुण्ड-खण्डनीम् ।
 वने रणे प्रकाशिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥१॥
 त्रिशूल-मुण्डधारिणीं धराविघात-हारिणीम् ।
 गृहे गृहे निवासिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥२॥
 दरिद्र-दुःख-हारिणीं सतां विभूतिकारिणीम् ।
 वियोग-शोक-हारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥३॥
 लसत्सुलोचलोचनं लतासदेवरप्रदम् ।
 कपाल शूलधारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥४॥
 करो मुदा गदाधरो शिवां शिवप्रदायिनीम् ।
 वरावराननां शुभां भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥५॥
 ऋषीन्द्रजामिनिप्रदं त्रिधास्यरूपधारिणीम् ।
 जले स्थले निवासिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥६॥
 विशिष्ट-सृष्टि-कारिणीं विशाल-रूपधारिणीम् ।
 महोदरे विशालिनीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥७॥
 पुरन्दरादिसेवितां मुरादिवंशखण्डनीम् ।
 विशुद्ध-बुद्धि-कारिणीं भजामि विन्ध्यवासिनीम् ॥८॥

॥ इति विन्ध्येश्वरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१६१॥

162. विन्ध्यवासिनीस्तोत्रम्

श्रीनन्दगोपगृहिणीप्रभवा तनोतु
 भद्रं सदा मम सुरार्थपरा प्रसन्ना ।
 विन्ध्यादि-गह्वरगताष्टभुजा प्रसिद्धा
 सिद्धैः सुसेवित-पदाब्जयुगा त्रिरूपा ॥१॥
 वेदैरगम्यमहिमा निजबोधतुष्टा
 नित्या गुणत्रयपराऽखिलभेदशून्या ।
 एका प्रपञ्चकरणे त्रिगुणोरुशक्ति-
 रुच्चावचाकृतिरथोऽचलजङ्गमात्मा ॥२॥
 पीयूष-सिन्धु-सुरपादपवाटिरत्न -
 द्वीपे सुनीपवनशालिनि दुष्प्रवेशे ।
 चिन्तामणि-प्रखचिते भवने निषण्णा
 विन्ध्येश्वरी श्रियमनल्पतरां करोतु ॥३॥
 श्रुत्वा स्तुतिं विधिकृतां करुणार्द्रचित्ता
 नारायणेन सबलौ मधुकैटभास्यौ ।
 या संजहार जगतां प्रलये तथा सा
 विन्ध्येश्वरी वितनुतां सुमनोरथान् मे ॥४॥
 ब्रह्मेश-विष्णु-पुरुहूत-हुताशनादि
 तेजोभवा महिषपीडित-निर्जराणाम् ।
 स्थानाप्तयेऽतिकृपया महिषं ममर्द
 विन्ध्येश्वरी हरतु रोगविपत्तिमाशु ॥५॥
 या धूम्रचण्ड-बलिमुण्ड-निशुम्भ-शुम्भ-
 रक्तान् पिपेष सुरकार्यरताप्यनेका ।
 दुःखाम्बुधौ निपतितस्य विमूढबुद्धे-
 विन्ध्येश्वरी मम ददातु सुबुद्धिमम्बा ॥६॥
 या दुर्गमं दनुभवं परिमर्द्य नाम्ना
 दुर्गा बभूव च ततान शुभं सुराणाम् ।
 स्वाचारकर्म-विमुखस्य जुगुप्सितस्य
 विन्ध्येश्वरी दहतु वैरिगणान् समस्तान् ॥७॥

सम्प्राप्य जन्म वपुषः परिपोषणाय
 संख्यातिग-वृजिन-पुञ्जविधायिनो मे ।
 चण्डासुरप्रमथिनी ललिता च नाम्ना
 विन्ध्येश्वरी हरतु जाड्यमहान्धकारम् ॥८॥
 या तारयत्यखिल-दुष्कृतिलोकपुञ्जात्
 'तारे'ति नाम गदिता भुवनेषु देवी ।
 अज्ञानसिन्धुतरणे दृढनौस्वरूपा
 विन्ध्येश्वरी मम गुणाग्रयसुतं ददातु ॥९॥
 रक्ताम्बरा तरुणभानुरुचिः प्रसन्ना
 रक्ताम्बुजासन-कृताङ्घ्रियुगा धृतास्त्रा ।
 रक्तैः स्वलंकृत-तनुर्मणिभूषणैश्च
 विन्ध्येश्वरी मम गिरं विशदां करोतु ॥१०॥
 रात्रीशकान्त-मणिकान्त-तनुर्विशाल-
 मुक्तालता-ललितवृत्त-कुचाकृशाङ्गी ।
 श्वेताम्बरा सितसरोजकृताधिवासा
 विन्ध्येश्वरी मम वचांसि पुनातु नित्यम् ॥११॥
 आकर्ण्य दीनवचनं जननीव देवी
 पुत्रस्य मे सपदि सर्वगदान् जहार ।
 लेखाङ्गनामुकुट-गुम्फित-चित्रपुष्प-
 रेणूत्करार्चित-पदाग्रनखांशुचन्द्रा ॥१२॥
 देवान् विहाय सकलानथ कर्म सर्व
 लब्ध्वा जनुर्न कृतवास्तव देवि! पूजाम् ।
 मातर्नमामि सततं मनसा च वाचा
 देहेन पादकमलं शरणागतोऽहम् ॥१३॥
 देहीष्टमाशु विपुलं निजसेवकेभ्यो
 दारिद्र्यम्ब हर चाऽरिवधं कुरुष्व ।
 शान्तिं च सर्वजगतां विशदां च बुद्धिं
 त्वं पालयातिकृपया चरणाब्जं माम् ॥१४॥

देव्या स्तवं पठति यः शिवदं मनुष्यः
 पूतः शृणोति च मनो विविधैरभीष्टैः ।
 पूर्णं हि तस्य भवति प्रसभं गदाश्च
 यान्ति क्षयं झटिति मायुकफानिलोत्थाः ॥१५॥
 त्र्यर्घ्यष्टभूमिमित-सर्वजिदाख्यवर्षे
 ईषे च मासि सितपक्षयुते कवीशः ।
 स्तोत्रं लिलेख मथुरेश्वरमालवीयः
 सन्नाहमोचनभवो विधुरद्रशम्याम् ॥१६॥

॥ इति विन्ध्यवासिनीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१६२॥

163. गीनाक्षीस्तोत्रम्

श्रीविद्ये शिववामभागनिलये श्रीराजराजार्चिते
 श्रीनाथादिगुरुस्वरूपविभवे चिन्तामणीपीठिके ।
 श्रीवाणीगिरिजानुताङ्घ्रिकमले श्रीशाम्भवे श्रीशिवे
 मध्याह्ने भलयध्वजाधिपसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥१॥
 चक्रस्थेऽचपले चराऽचरजगन्नाथे जगत्पूजिते
 आर्तालीवरदे नताभयकरे वक्षोजभारान्विते ।
 विद्ये वेदकलापमौलिविदिते विद्युद्भृताविग्रहे
 मातः पूर्णसुधारसार्द्रहृदये मां पाहि मीनाम्बिके ॥२॥
 कोटीराङ्गदरलकुण्डलधरे कोदण्डबाणाञ्जिते
 कोकाकार-कुचद्वयोपरिलसत् प्रालम्बहाराञ्जिते ।
 शिञ्जन्नूपुर-पादसारसमणी-श्रीपादुकालंकृते
 मदारिद्यभुजङ्गगारुडखगे मां पाहि मीनाम्बिके ॥३॥
 ब्रह्मेशाच्युतगीयमानचरिते प्रेतासनान्तःस्थिते
 पाशोदङ्कुशचापबाणकलिते बालेन्दुचूडाञ्जिते ।
 बाले बालकुरङ्गलोलनयने बालार्ककोटयुज्वले
 मुद्राराधितदैवते मुनिसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥४॥
 गन्धर्वामर-यक्ष-पन्नगनुते गङ्गाधरालिङ्गिते
 गायत्रीगरुडासने कमलजे सुश्यामले सुस्थिते ।

खातीते खलदारुपावकशिखे खद्योतकोद्युज्ज्वले
 मन्वारातिदैवते मुनिसुते मां पाहि मीनाम्बिके ॥५॥
 नादे नारदतुम्बुराद्यविनुते नादान्तनादात्मिके
 नित्ये नीललतात्मिके निरुपमे नीवारशूकोपमे ।
 कान्ते कामकले कदम्बनिलये कामेश्वराङ्गस्थिते
 मद्विद्ये मदभीष्टकल्पलतिके मां पाहि मीनाम्बिके ॥६॥
 वीणानादनिमीलतार्धनयने विस्त्रस्तचूलीभरे
 ताम्बूलारुणपद्मवाधरयुते ताटङ्कहारान्विते ।
 श्यामे चन्द्रकलावत्सकलिते करसूरिकफालिके
 पूर्णे पूर्णकलाधिरामवदने मां पाहि मीनाम्बिके ॥७॥
 शब्दब्रह्मभयी चराचरभयी ज्योतिर्मयी बाह्मभयी
 नित्यानन्दभयी निरञ्जनभयी तत्त्वंभयी चिन्मयी ।
 तत्त्वातीतभयी परात्परभयी मायामयी श्रीमयी
 सर्वैश्वर्यभयी सदाशिवभयी मां पाहि मीनाम्बिके ॥८॥

॥ इति मीनाक्षोस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥६३॥

164. मीनाक्षीपञ्चरत्नम्

उद्यद्भानुसहस्रकोटिसदृशां केयूर-हारोज्ज्वलां
 बिम्बोष्ठीं स्मितदन्तपङ्क्तिरुचिरां पीताम्बरालङ्कृताम् ।
 विष्णु-ब्रह्म-सुरेन्द्र-सेवितपदां तत्त्वस्वरूपां शिवां
 मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥१॥
 मुक्ताहार-लसत्किरीटरुचिरां पूर्णेन्दुवक्त्रप्रभां
 शिञ्जन्नूपुर-किङ्किणीमणिधरां पद्मप्रभाभासुराम् ।
 सर्वाभीष्टफलप्रदां गिरिसुतां वाणीरमासेवितां
 मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥२॥
 श्रीविद्यां शिवधामभागनिलयां हींकारमन्त्रोज्ज्वलां
 श्रीचक्राङ्कितबिन्दुमध्यवसतिं श्रीमत्सभानायकीम् ।
 श्रीमत्पण्मुखविघ्नराजजननीं श्रीमज्जगन्मोहिनीं
 मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥३॥

श्रीमत्सुन्दरनायकीं भयहरीं ज्ञानप्रदां निर्मलां
 श्यामाभां कमलासनार्चितपदां नारायणस्यानुजाम् ।
 वीणा-वेणु-मृदङ्ग-वाद्यरसिकां नानाविधाडम्बिकां
 मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥४॥
 नानायोगिमुनीन्द्रहन्निवसतीं नानार्थ-सिद्धिप्रदां
 नानापुष्पविराजिताङ्घ्रियुगलां नारायणेनार्चिताम् ।
 नादब्रह्ममयीं परात्परतरां नानार्थतत्त्वात्मिकां
 मीनाक्षीं प्रणतोऽस्मि सन्ततमहं कारुण्यवारांनिधिम् ॥५॥

॥ इति मीनाक्षीपञ्चरत्नं सम्पूर्णम् ॥१६४॥

165. ललितापञ्चरत्नम्

प्रातः स्मरामि ललितावदनारविन्दं बिम्बाधरं पृथुल-मौक्तिक-शोभिनासम् ।
 आकर्णदीर्घनयनं मणिकुण्डलाढ्यं मन्दस्मितं मृगमदोज्ज्वल-भालदेशम् ॥१॥
 प्रातर्भजामि ललिताभुजकल्पवल्लीं रक्ताङ्गुलीय-लसदङ्गुलि-पल्लवाढ्याम् ।
 माणिक्य-हेम-वलयाङ्गद-शोभमानां पुण्ड्रेषु-चाप-कुसुमेषु-सृणीर्दधानाम् ॥२॥
 प्रातर्नमामि ललिताचरणारविन्दं भक्तेष्टदाननिरतं भवसिन्धुपोतम् ।
 पद्मासनादि-सुरनायक-पूजनीयं पद्माङ्कुश-ध्वज-सुदर्शन-लाञ्छनाढ्यम् ॥३॥
 प्रातः स्तुवे परशिवां ललितां भवानीं त्रय्यन्तवेद्यविभवां करुणानवद्याम् ।
 विश्वस्य सृष्टि-विलय-स्थितिहेतुभूतां विद्येश्वरीं निगमवाङ्मनसाविदूराम् ॥४॥
 प्रातर्वदामि ललिते तव पुण्यनाम-कामेश्वरीति कमलेति महेश्वरीति ।
 श्रीशाम्भवीति जगतां जननी परेति वाग्देवतेति वचसा त्रिपुरेश्वरीति ॥५॥
 यः श्लोकपञ्चकमिदं ललिताम्बिकायाः सौभाग्यदं सुललितं पठति प्रभाते ।
 तस्मै ददाति ललिता झटिति प्रसन्ना विद्यां श्रियं विमलसौख्यमनन्तकीर्तिम् ॥६॥

॥ इति ललितापञ्चरत्नं सम्पूर्णम् ॥१६५॥

166. शीतलाष्टकम्

ॐ अस्य श्रीशीतलाष्टकस्तोत्रस्य महादेव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः,
शीतलादेवता, लक्ष्मीबीजम्, भवानी शक्तिः, सर्वविस्फोटक-निवृत्तये
जपे विनियोगः ।

ईश्वर उवाच

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ।
मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालङ्कृतमस्तकाम् ॥१॥
वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगभयापहाम् ।
यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥२॥
शीतले शीतेले चेति यो ब्रूयाद् दाहपीडितः ।
विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥३॥
यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा पूजयते नरः ।
विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते ॥४॥
शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धयुतस्य च ।
प्रणाष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् ॥५॥
शीतले तनुजान् रोगान्नृणां हरसि दुस्त्यजान्
विस्फोटक-विदीर्णानां त्वमेकाऽमृतवर्षिणी ॥६॥
गलगण्डग्रहा रोगा ये चाऽन्ये दारुणा नृणाम् ।
त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्ति संक्षयम् ॥७॥
न मन्त्रो नौषधं तस्य पापरोगस्य विद्यते ।
त्वामेकां शीतले धात्रीं नाऽन्यां पश्यामि देवताम् ॥८॥
मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहन्मध्यसंस्थिताम् ।
यस्त्वां सञ्चिन्तयेद् देवि तस्य मृत्युर्न जायते ॥९॥
अष्टकं शीतलादेव्या यो नरः प्रपठेत् सदा ।
विस्फोटकभयं घोरं गृहे तस्य न जायते ॥१०॥
श्रोतव्यं पठितव्यं च श्रद्धा-भक्ति-समन्वितैः ।
उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥११॥

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत् पिता ।
 शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमो नमः ॥१२॥
 रासभो गर्दभश्चैवं खरो वैशाखनन्दनः ।
 शीतलावाहनश्चैव दूर्वाकन्दनिकृन्तनः ॥१३॥
 एतानि खरनामानि शीतलाग्रे तु यः पठेत् ।
 तस्य गेहे शिशूनां च शीतलारुद्धं न जायते ॥१४॥
 शीतलाष्टकमेवेदं न देयं यस्य-कस्यचित् ।
 दातव्यं च सदा तस्मै श्रद्धा-भक्ति-युताय वै ॥१५॥

॥ इति शीतलाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१६॥ ॥

167. वाराहीनिगदाष्टकम्

देवि क्रोडमुखि त्वदङ्घ्रिकमल-दुन्द्यानुरक्तात्मने
 मह्यं द्रुहति यो महेशि मनसा कायेन वाचा नरः ।
 तस्याशु त्वदयोऽग्निपुष्टहला-घात-प्रभूत-व्यथा-
 पर्यस्यन्मनसो भवन्तु वपुषः प्राणाः प्रयाणोन्मुखाः ॥१॥
 देवि त्वत्पदगदम-भक्तिविभव-प्रक्षीण-दुष्कर्मणि
 प्रादुर्भूतनृशंसभावमलिनां वृत्तिं विधत्ते मयि ।
 यो देही भुवने तदीयहृदयान् निर्गत्वरैर्लोहितैः
 सद्यः पूरयसे कराब्ज-चषकं वाञ्छाफलैर्मा मपि ॥२॥
 चण्डोत्तुण्ड-विदीर्णदंष्ट्रहृदय-प्रोद्धिन्नरक्तच्छटा-
 हालाफन-मदादुहास-निनदाटोप-प्रतापोत्कटम् ।
 मातर्मत्परिपन्थिनामपहृतैः प्राणैस्त्वदङ्घ्रिद्वयं
 ध्यानोद्दामरवैर्भवोदयवशात् सन्तर्पयामि क्षणात् ॥३॥
 श्यामां तामरसाननाङ्घ्रिनयनां सोमार्धचूडां जगत्-
 त्राण-व्यग्र-हलायुधग्रमुसलां सन्त्रासमुद्रावतीम् ।
 ये त्वां रक्तकपालिनी हरवरारोहे वराहाननां
 भावैः सन्दधते कथं क्षणमपि प्राणान्ति तेषां द्विषः ॥४॥

विश्वाधीश्वरवल्लभे विजयसे या त्वं नियन्त्र्यात्मिका
 भूतान्ता पुरुषायुषावधिकरी पाकप्रदा कर्मणाम्।
 त्वां याचे भवतीं किमप्यवितथं यो मद्विरोधी जन-
 स्तस्यायुर्मम वाञ्छितावधि भवेन्मातस्तवैवाज्ञया ॥५॥
 मातः सम्यगुपासितुं जडमतिस्त्वां नैव शक्नोम्यहं
 यद्यप्यन्वित-दैशिकाङ्घ्रिकमला-ऽनुक्रोशपात्रस्य मे।
 जन्तुः कश्चन चिन्तयत्यकुशलं यस्तस्य तद्वैशसं
 भूयाद् देवि विरोधिनो मम च ते श्रेयः पदासङ्गिनः ॥६॥
 वाराहि व्यथमान-मानसगलन् सौख्यं तदाशाबलिं
 सीदन्तं यमपाकृताध्यवसितं प्राप्ताखिलोत्पावितम्।
 क्रदन्-बन्धुजनैः कलङ्कितकुलं कण्ठव्रणोद्यत्कृमिं
 पश्यामि प्रतिपक्षमाशु पतितं भ्रान्तत लुठन्तं मुहुः ॥७॥
 वाराहि त्वमशेषजन्तुषु पुनः प्राणात्मिका स्पन्दसे
 शक्तिव्याप्त-चराऽचरा खलु यतस्त्वामेतदभ्यर्थये।
 त्वत्पादाम्बुजसङ्गिनो मम सकृत्पापं चिकर्षन्ति ये
 तेषां मा कुरु शङ्करप्रियतमे देहान्तरावस्थितिम् ॥८॥

॥ इति श्रीवाराहीनिग्रहाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१६७॥

168. धाराहानुग्रहाष्टकम्

ईश्वर उवाच

मातर्जगद्रचन-नाटक-सूत्रधार-

स्वद्रूपमाकलयितुं परमार्थतोऽयम्।
 ईशोऽप्यनीश्वरपदं समुपैति तादृक्
 कोऽन्यः स्तवं किमिव तावकमादधातु ॥१॥
 नामानि किन्तु गृणतस्तव लोकतुण्डे
 नाडम्बरं स्पृशति दण्डधरस्य दण्डः।
 यल्लेशलम्बित-भवाम्बुनिधिर्यतो यत्
 त्वन्नामसंसृतिरियं ननु नः स्तुतिस्ते ॥२॥

त्वच्चिन्तनादर-समुल्लसदप्रमेया-
 ऽऽनन्दोदयात् समुदितः स्फुटरोमहर्षः ।
 मातर्नमामि सुदिनानि सदेत्यमुं त्वा-
 मभ्यर्थयेऽर्थमिति पूरयताद् दयालो ॥३॥
 इन्द्रैन्दुमौलि-विजि-केशवमौलिरत्न-
 रोचिश्रयोज्ज्वलित-पादसरोजयुग्मे ।
 चेतो मतो मम सदा प्रतिबिम्बिता त्वं
 भूया भवानि विदधातु सदोरुहारे ॥४॥
 लीलोद्धतक्षितितलस्य वराहमूर्ते-
 वाराहमूर्तिरखिलार्थकरी त्वमेव ।
 प्रालेयरश्मिसुकलोल्लसितावतंसा
 त्वं देवि वामतनुभागहरा रहस्यं ॥५॥
 त्वामम्ब तप्तकनकोज्ज्वलकान्तिमन्त-
 र्ये चिन्तयन्ति युवतीतनुमागलान्ताम् ।
 चक्रायुधत्रिनयनाम्बरपोतृवक्त्रां
 तेषां पदाम्बुजयुगं प्रणमन्ति देवाः ॥६॥
 त्वत्स्नेवनस्खलितपापचयस्य मात-
 र्मोक्षोऽपि यत्र न सतां गणनामुपैति ।
 देवासुरोरगनृपालनमस्य पाद-
 स्तत्र श्रियः पटुगिरः कियदेवमस्तु ॥७॥
 किं दुष्करं त्वयि मनोविषयं गतायां
 किं दुर्लभं त्वयि विधानवदर्चितायाम् ।
 किं दुष्करं त्वयि सकृत्स्मृतिमागतायां
 किं दुर्जयं त्वयि कृतस्तुतिवादपुंसाम् ॥८॥

॥ इति श्रीवाराहनुग्रहाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१६८॥

169. कात्यायन्यष्टकम्

अवर्षिसंज्ञं पुरमस्ति लोके कात्यायनी तत्र विराजते या ।
 यन्माददा या प्रतिमा प्रदीया सा क्षत्रपुर्या जयतीह गेया ॥१॥

त्वमस्य भिन्नैव विभासि तस्यास्तेजस्विनी दीपजदीपकल्पा ।
 कात्यायनी स्वाश्रितदुःखहर्त्री पवित्रगात्री मतिमानदात्री ॥२॥
 ब्रह्मोरु-बेतालक-सिंहदाढो-सुभैरवैरग्नगणाभिधेन ।
 संसेव्यमाना गणपत्यभिख्या युजा च देवि स्वगणैरिहासि ॥३॥
 गोत्रेषु जातेर्जमदग्नि-भारद्वाजा-ऽत्रि-सत्काश्य-कौशिकानाम् ।
 कौण्डिन्यवत्सान्वयजैश्च विप्रैर्निजैर्निषेव्ये वरदे नमस्ते ॥४॥
 भजामि गोक्षीरकृताभिषेके रक्ताम्बरे रक्तसुचन्दनाक्ते ।
 त्वां बिल्वपत्रीशुभदामशोभे भक्ष्यप्रिये हृत्प्रियदीपमाले ॥५॥
 खड्गं च शङ्खं महिषासुरीयं पुच्छं त्रिशूलं महिषासुरास्ये ।
 प्रवेशितं देवि करैर्दधाने रक्षानिशं मां महिषासुरघ्ने ॥६॥
 स्वाग्रस्थबाणेश्वरनामलिङ्गं सुरलोकं रुक्ममयं किरीटम् ।
 शीर्षे दधाने जय हे शरण्ये विद्युत्प्रभे मां जयिनं कुरुष्व ॥७॥
 नेत्रावती-दक्षिणपार्श्वसंस्थे विद्याधरैर्नागगणैश्च सेव्ये ।
 दयाचने प्रापय शं सदाऽस्मान् मातर्यशोदे शुभदे शुभाक्षि ॥८॥
 इदं कात्यायनीदेव्याः प्रसादाष्टकमिष्टदम् ।
 कुमठाचार्यजं भक्त्या पठेद्यः स सुखी भवेत् ॥९॥

॥ इति श्रीकात्यायन्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥१६९॥

170. कालिकाकवचम्

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
 शङ्करं परिपप्रच्छ पार्वती परमेश्वरम् ॥१॥

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश देवानां भोगद प्रभो ।
 प्रबूहि मे महादेव गोप्यं चेद् यदि हे प्रभो ॥२॥
 शत्रूणां येन नाशः स्यादात्मनो रक्षणं भवेत् ।
 परमैश्वर्यमतुलं लभेद्येन हि तद्वद ॥३॥

भैरव उवाच

वक्ष्यामि ते महादेवि सर्वधर्मविदां वरे ।
 अब्रूतं कवचं देव्याः सर्वकामप्रसाधकम् ॥४॥

विशेषतः शत्रुनाशं सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
 सर्वारिष्टप्रशमनं सर्वाभद्रविनाशनम् ॥५॥
 सुखदं भोगदं चैव वशीकरणमुत्तमम् ।
 शत्रुसङ्घाः क्षयं यान्ति भवन्ति व्याधिपीडिताः ॥६॥
 दुःखिनो ज्वरिणश्चैव स्वाभीष्टद्रोहिणस्तथा ।
 भोग-मोक्षप्रदं चैव कालिकाकवचं पठेत् ॥७॥

ॐ अस्य श्रीकालिकाकवचस्य भैरव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः,
 श्रीकालिका देवता, शत्रुसंहारार्थं जपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ध्यायेत् कालीं महामायां त्रिनेत्रां बहुरूपिणीम् ।
 चतुर्भुजां ललज्जिह्वां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥८॥
 नीलोत्पलदलश्यामां शत्रुसङ्घविदारिणीम् ।
 नरमुण्डं तथा खड्गं कमलं च वरं तथा ॥९॥
 निर्भयां रक्तवदनां दंष्ट्रालीघोररूपिणीम् ।
 साट्टहासाननां देवीं सर्वदां च दिगम्बरीम् ॥१०॥
 शवासनस्थितां कालीं मुण्डमालाविभूषिताम् ।
 इति ध्यात्वा महाकालीं ततस्तु कवचं पठेत् ॥११॥
 ॐ कालिका घोररूपा सर्वकामप्रदा शुभा ।
 सर्वदेवस्तुता देवी शत्रुनाशं करोतु मे ॥१२॥
 ॐ ह्रीं ह्रींरूपिणीं चैव ह्रां ह्रीं ह्रांरूपिणीं तथा ।
 ह्रां ह्रीं क्षौं क्षौंस्वरूपा सा सदा शत्रून् विदारयेत् ॥१३॥
 श्रीं ह्रीं ऐंरूपिणी देवी भवबन्धविमोचनी ।
 हुंरूपिणी महाकाली रक्षाऽस्मान् देवि सर्वदा ॥१४॥
 यया शुम्भो हतो दैत्यो निशुम्भश्च महासुरः ।
 वैरिनाशाय वन्दे तां कालिकां शङ्करप्रियाम् ॥१५॥
 ब्राह्मी शैवी वैष्णवी च वाराही नारसिंहिका ।
 कौमार्येन्द्री च चामुण्डा खादन्तु मम विद्विषः ॥१६॥

सुरेश्वरी घोररूपा चण्डमुण्डविनाशिनी ।
मुण्डमालावृताङ्गी च सर्वतः पातु मां सदा ॥१७॥
हीं हीं हीं कालिके घोरे दंष्ट्रेव रुधिरप्रिये ।
रुधिरापूर्णवक्त्रे च रुधिरेणावृतस्तनि ॥१८॥

मम शत्रून् खादय खादय हिंस हिंस मारय मारय भिन्धि भिन्धि छिन्धि
छिन्धि उच्चाटय उच्चाटय द्रावय द्रावय शोषय शोषय स्वाहा । हीं हीं
कालिकायै मदीयशत्रून् समर्पयामि स्वाहा । ॐ जय जय किरि किरि
किटि किटि कट कट मर्द मर्द मोहय मोहय हर हर मम रिपून् ध्वंस ध्वंस
भक्षय भक्षय त्रोटय त्रोटय यातुधानान् चामुण्डे सर्वजनान् राज्ञो
राजपुरुषान् स्त्रियो मम वश्यान् कुरु कुरु तनु तनु धान्यं धनं मेऽश्वान्
गजान् रत्नानि दिव्यकामिनीः पुत्रान् राजश्रियं देहि यच्छ क्षां क्षीं क्षूं क्षैं
क्षौं क्षः स्वाहा ।

इत्येतत् कवचं दिव्यं कथितं शम्भुना पुरा ।
ये पठन्ति सदा तेषां ध्रुवं नश्यन्ति शत्रवः ॥१९॥
वैरिणः प्रलयं यान्ति व्याधिता वा भवन्ति हि ।
बलहीनाः पुत्रहीनाः शत्रवस्तस्य सर्वदा ॥२०॥
सहस्रपठनात् सिद्धिः कवचस्य भवेत्तदा ।
तत्कार्याणि च सिध्यन्ति यथा शङ्करभाषितम् ॥२१॥
श्मशानाङ्गारमादाय चूर्णं कृत्वा प्रयत्नतः ।
पादोदकेन पिष्ट्वा तल्लिखेल्लोहशलाकया ॥२२॥
भूमौ शत्रून् हीनरूपानुत्तराशिरसस्तथा ।
हस्तं दत्त्वा तु हृदये कवचं तु स्वयं पठेत् ॥२३॥
शत्रोः प्राणप्रतिष्ठां तु कुर्यान्मन्त्रेण मन्त्रवित् ।
हन्यादस्त्रं प्रहारेण शत्रो गच्छ यमक्षयम् ॥२४॥
ज्वलदङ्गारतापेन भवन्ति ज्वरिता भृशम् ।
प्रोज्झनैर्वामपादेन दरिद्रो भवति ध्रुवम् ॥२५॥
वैरिनाशकरं प्रोक्तं कवचं वश्यकारकम् ।
परमैश्वर्यदं चैव पुत्र-पौत्रादि-वृद्धिदम् ॥२६॥

प्रभातसमये चैव पूजाकाले च यत्नतः ।
 सायङ्काले तथा पाठात् सर्वसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥२७॥
 शत्रुरुच्चाटनं याति देशाद् वा विच्युतो भवेत् ।
 पश्चात् किङ्करतामेति सत्यं सत्यं न संशयः ॥२८॥
 शत्रुनाशकरे देवि सर्वसम्पत्करे शुभे ।
 सर्वदेवस्तुते देवि कालिके! त्वां नमाम्यहम् ॥२९॥

॥ इति रुद्रयामले कालिकाकवचं सम्पूर्णम् ॥१७०॥

171. ताराष्टकम्

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्यसम्पत्प्रदे
 प्रत्यालीढपदस्थिते शिवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे ।
 फुल्लेन्दीवरलोचनत्रययुते कर्त्री कपालोत्पले
 खड्गे चादधती त्वमेव शरणं त्वामीश्वरीमाश्रये ॥१॥
 वाचामीश्वरि भक्तकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धिप्रदे ।
 नीलेन्दीवरलोचनत्रययुते कारुण्यवारां निधे
 सौभाग्यामृतवर्षणेन कृपया सिञ्च त्वमस्मादृशम् ॥२॥
 शर्वे गर्वसमूहपूरिततनो सर्पादिवेषोज्ज्वले
 व्याघ्रत्वक्परिवीतसुन्दरकटि- व्याधूतघण्टाङ्किते ।
 सद्यः कृत्तगलद्रजः परिमिलन्मुण्डद्वयीमूर्धज-
 ग्रन्थेश्रेणिनृमुण्डदामललिते भीमे भयं नाशय ॥३॥
 मायानङ्गविकाररूपललना - बिन्दुर्ध्वचन्द्रात्मिके
 हुंफट्कारययि त्वमेव शरणं मन्त्रात्मिके मादृशः ।
 मूर्तिस्ते जननि त्रिधामघटिता - स्थूलाऽतिसूक्ष्मा परा
 वेदानां न हि गोचरा कथमपि प्राप्तां तु तामाश्रये ॥४॥
 यत्पादाम्बुजसेवया सुयमिनो गच्छन्ति सायुज्यतां
 तस्य स्त्री परमेश्वरी त्रिनयन-ब्रह्मादिसाम्यात्मनः ।
 संसाराम्बुधिभजने पटुतनून्देवेन्द्रमुख्यान्सुरान् -
 मातस्त्वत्पदसेवने हि विमुखो यो मन्दधीः सेवते ॥५॥

मातस्त्वत्पदपङ्कजद्वयरजो - मुद्राङ्गकोटीरिणस्ते
 स्ते देवा जयसङ्गरे विजयिनो निःशङ्कमङ्के गता ।
 देवोऽहं भुवने न मे मम इति स्पर्धा वहन्त परे
 तत्तुल्य नियतं यथाऽसुभिरमी नाशं व्रजन्ति स्वयम् ॥६॥
 त्वन्नामस्मरणात्पलायनपरा द्रष्टुं च शक्ता न ते
 भूतप्रेतपिशाचराक्षसगणा यक्षाश्च नागाधिपाः ।
 दैत्या दानवपुङ्गवाश्च खचरा व्याघ्रादिका जन्तवो
 डाकिन्यः कुपितान्तकाश्च मनुजं मातः क्षणं भूतले ॥७॥
 लक्ष्मीः सिद्धगणाश्च पादुकमुखाः सिद्धास्तथा चारणाः
 स्तम्भश्चापि रणाङ्गणे गजघटास्तम्भस्तथा मोहनम् ।
 मातस्त्वत्पदसेवया खलु नृणां सिद्ध्यन्ति ते ते गुणाः
 कान्तिः कान्तमनोभवस्य भवति क्षुद्रोऽपि वाचस्पतिः ॥८॥
 ताराष्टकमिदं रम्यं भक्तिमान् यः पठेन्नरः ।
 प्रातर्मध्याह्नकाले च सायाहे नियतः शुचिः ॥९॥
 लभते कथितां दिव्यां सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत् ।
 लक्ष्मीमनश्चरां प्राप्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान् ॥१०॥
 कीर्तिं कान्तिं च नैरुज्यं सर्वेषां प्रियतां व्रजेत् ।
 विख्यातिं चापि लोकेषु प्राप्यान्ते मोक्षमाप्नुयात् ॥११॥

॥ इति ताराष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७१॥

172. चण्डिकाष्टकम्

सहस्रचन्द्रनिन्दकातिकान्त-चन्द्रिकाचयै-

दिशोऽभिपूरयद् विदूरयद् दुराग्रहं कलेः ।
 कृतामलाऽवलाकलेवरं वरं भजामहे
 महेशमानसाश्रयन्वहो महो महोदयम् ॥१॥
 विशाल-शैलकन्दरान्तराल-वासशालिनी
 त्रिलोकपालिनीं कपालिनीं मनोरमामिमाम् ।
 उमामुपासितां सुरैरुपास्महे महेश्वरीं
 परां गणेश्वरप्रसूं नगेश्वरस्य नन्दिनीम् ॥२॥

अये महेशि! ते महेन्द्रमुख्यनिर्जराः समे
 समानयन्ति मूर्द्धरागतः परामङ्घ्रिजम् ।
 महाविरागिशङ्कराऽनुरागिणीं नुरागिणी
 स्मरामि चेतसाऽतसीमुमामवाससं नुताम् ॥३॥
 भजेऽमराङ्गनाकरोच्छलत्सुचामरोच्चलन्
 निचोल-लोलकुन्तलां स्वलोक-शोक-नाशिनीम् ।
 अद्रभ-सम्भृतातिसम्भ्रम-प्रभूत-विभ्रम-
 प्रवृत्त-ताण्डव-प्रकाण्ड-पण्डितकृतेश्वराम् ॥४॥
 अपीह पामरं विधाय चामरं तथाऽमरं
 नुपामरं परेशिदृग्-विभाविता-वितंत्रिके ।
 प्रवर्तते प्रतोष-रोष-खेलन तव स्वदोष-
 मोषहेतवे समृद्धिमेलनं पदन्तुमः ॥५॥
 भभूव्-भभूव्-भभूव्-भभाभितो-विभासि-भास्वर -
 प्रभाभर-प्रभासिताग-गह्वराधिभासिनीम् ।
 मिलत्तर-ज्वलत्तरोद्वलत्तर-क्षपाकर-
 प्रभूत-भाभर-प्रभासि-भालपट्टिकां भजे ॥६॥
 कपोतकम्बु-काम्यकण्ठ-कण्ठ्यकङ्कणाङ्गदा-
 दिकान्त-काश्चिकाश्चितां कपालिकामिनीमहम् ।
 वराङ्घ्रिपूरध्वनि-प्रवृत्तिसम्भवद् विशेष-
 काव्यकल्पकौशलां कपालकुण्डलां भजे ॥७॥
 भवाभय-प्रभावितद्भवोत्तरप्रभावि भव्य
 भूमिभूतिभावनं प्रभूतिभावुकं भवे ।
 भवानि नेति ते भवानि! पादपङ्कजं भजे
 भवन्ति तत्र शत्रवो न यत्र तद्विभावनम् ॥८॥
 दुर्गाग्रतोऽतिगरिमप्रभवां भवान्या
 भव्यमिमां स्तुतिमुमापतिना प्रणीताम् ।
 यः श्रावयेत् सपुरुहूतपुराधिपत्य-
 भाग्यं लभेत रिपवश्च तृणानि तस्य ॥९॥
 रामाष्टाङ्क-शशाङ्केऽब्देऽष्टम्यां शुक्लाश्विने गुरौ ।
 शाक्तश्रीजगदानन्दशर्मण्युपहृता स्तुतिः ॥१०॥

॥ इति चण्डिकाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७२॥

173. दुर्गाष्टकम्

दुर्गे परेशि शुभदेशि परात्परेशि!
 वन्द्ये महेशदयिते करुणार्णवेशि!
 स्तुत्ये स्वधे सकलतापहरे सुरेशि!
 कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि! ॥१॥
 दिव्ये नुते श्रुतिशतैर्विमले भवेशि!
 कन्दर्पदारशतसुन्दरि माधवेशि!
 मेधे गिरीशतनये नियते शिवेशि!
 कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि! ॥२॥
 रासेश्वरि प्रणततापहरे कुलेशि!
 धर्मप्रिये भयहरे वरदाग्रगेशि!
 वाग्देवते विधिनुते कमलासनेशि!
 कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि! ॥३॥
 पूज्ये महावृषभवाहिनि मंगलेशि!
 पद्मे दिगम्बरि महेश्वरि काननेशि!
 रम्ये धरे सकलदेवनुते गयेशि!
 कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि! ॥४॥
 श्रद्धे सुराऽसुरनुते सकले जलेशि!
 गङ्गे गिरीशदयिते गणनायकेशि!
 दक्षे स्मशाननिलये सुरनायकेशि!
 कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि! ॥५॥
 तारे कृपार्द्रनयने मधुकैटभेशि!
 विद्येश्वरेश्वरि यमे निखलाक्षरेशि!
 ऊर्जे चतुःस्तनि सनातनि मुक्तकेशि!
 कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि! ॥६॥
 मोक्षेऽस्थिरे त्रिपुरसुन्दरि पाटलेशि!
 माहेश्वरि त्रिनयने प्रबले मखेशि!
 तृष्णे तरङ्गिणि बले गतिदे ध्रुवेशि!
 कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि! ॥७॥

विश्वम्भरे सकलदे विदिते जयेशि!
 विन्ध्यस्थिते शशिमुखे क्षणदे दयेशि!!
 मातः सरोजनयने रसिके स्मरेशि!
 कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि! ॥८॥
 दुर्गाष्टकं पठति य प्रयतः प्रभाते
 सर्वार्थदं हरिहरादिनुतां वरेण्याम्।
 दुर्गां सुपूज्य महितां विविधोपचारैः
 प्राप्नोति वाञ्छितफलं न चिरान्मनुष्यः ॥९॥

॥ इति श्रीदुर्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१७३॥

174. रात्रिसूक्तम्

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम्।
 निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥१॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।
 सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ॥२॥
 अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।
 त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥३॥
 त्वयैतद् धार्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
 त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥४॥
 विसृष्टौ सृष्टिरूपां त्वं स्थितिरूपा च पालने।
 तथा संहति-रूपान्ते जगतो स्य जगन्मये ॥५॥
 महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
 महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ॥६॥
 प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रय-विभाविनी।
 कालरात्रि-र्महारात्रि-र्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥७॥
 त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
 लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥८॥
 खड्गिणी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
 खड्गिनी चापिनी बाणभुशुण्डी परिधायुधा ॥९॥

सौम्या सौम्यतराशेष-सौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ।
 परा पराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥१०॥
 यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
 तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ॥११॥
 यया त्वया जगत्स्त्रष्टा जगत् पात्यति यो जगत् ।
 सो पि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥१२॥
 विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
 कारितास्ते यतो तस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥१३॥
 सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
 मोहयैतो दुराधर्षावसुरौ मधु-कैटभी ॥१४॥
 प्रबोधं चजगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
 बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरी ॥१५॥

॥इति रात्रिसूक्तं समाप्ता ॥१७४॥

175. सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच

देवि! त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी ।
 कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः ॥१॥

देव्युवाच

शृणु देव! प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम् ।
 मया तवैव स्नेहना प्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते ॥२॥
 ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकी-स्तोत्रमन्त्रस्य नारायण-ऋषिः, अनुष्टुप्
 छन्दः श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वत्यो देवताः, श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं
 सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः ।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
 बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥१॥
 दुर्गे स्मृता हरसि भीतमशेषजन्तोः
 स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।

दारिद्र्य - दुःख - भयहारिणि का त्वदन्या
 सर्वोपकारकरणाय सदाद्र्चिता ॥२॥
 सर्वमङ्गल - मङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
 शरणागत - दीनार्त - परित्राण - परायणे ।
 सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोस्तु ते ॥४॥
 सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्ति - समन्विते ।
 भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमो स्तु ते ॥५॥
 रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।
 त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥६॥
 सर्वाबाधा - प्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।
 एवमेव त्वया कार्यमस्मद् - वैरिविनाशनम् ॥७॥

इति सप्तश्लोकी-दुर्गा समाप्ता ॥१७५॥

176. सार्द्धश्लोकी दुर्गा

मधु - कैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।
 शक्रादिस्तुतिकं चैव दूत - संवाद एव च ॥१॥
 शम्भुराजवधश्चैव नारायण - स्तुतिः ।
 सार्द्धपाठमिदं प्रोक्तं न व - पाठफलप्रदम् ॥२॥

177. सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ।
 येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत् ॥१॥
 न कवचं नाऽर्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम् ।
 न सूक्तं नाऽपि ध्यानं च न न्यासो न च वाऽर्चनम् ॥२॥
 कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत् ।
 अति गुह्यतरं देवि! देवानामपि दुर्लभम् ॥३॥
 गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति! ।
 मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम् ॥

पाठमात्रेण संसिद्धयेत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम् ॥४॥

मन्त्रः-ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे। ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः
ज्वालय-ज्वालय ज्वल-ज्वल प्रज्जवल-प्रज्जवल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै
विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा।

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि।

नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि ॥१॥

नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि ॥२॥

जाग्रतं हि महादेवि ! जपं सिद्धं कुरुष्व मे।

ऐंकारी - सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका ॥३॥

क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते।

चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी ॥४॥

विच्चे चाऽभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणी ॥५॥

धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वां वूं वागधीश्वरी।

क्रां क्रीं कूं कालिका देवि! शां शीं शूं मे शुभं कुरु ॥६॥

हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी।

भ्रां भ्रीं भूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः ॥७॥

अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं

धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा।

पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा।

सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्र सिद्धि कुरुष्व मे ॥८॥

इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे।

अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्षं पार्वति ॥९॥

यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत्।

न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा ॥१०॥

॥ इति सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१७७॥

178. दुर्गा-द्वात्रिंशन्नाममाला-स्तुतिः

दुर्गा	दुर्गतिशमनी	दुर्गनाशिनी ॥१॥	
दुर्गमच्छेदिनी	दुर्गसाधिनी	दुर्गमापहा ।	
दुर्गमज्ञानदा	दुर्ग - दैत्यलोक	- दवानला ॥२॥	
दुर्गमा	दुर्गमालोका	दुर्गमात्मस्वरूपिणी ।	
दुर्गमार्गप्रदा	दुर्गविद्या	दुर्गमाश्रिता ॥३॥	
दुर्गम - ज्ञान - संस्थाना	दुर्गम - ध्यानभासिनी ।		
दुर्गमोहा	दुर्गमगा	दुर्गमार्थस्वरूपिणी ॥४॥	
दुर्गमासुरसंहन्त्री		दुर्गमायुधधारिणी ।	
दुर्गमाङ्गी	दुर्गमता	दुर्गम्या	दुर्गमेश्वरी ॥५॥
दुर्गभीमा	दुर्गभमा	दुर्गभा	दुर्गदारिणी ।
नामवलिमिमां	यस्तु	दुर्गाया	मय मानवः ॥६॥
पठेत्	सर्वभयान्	मुक्तो	भविष्यति न संशयः ॥७॥

॥ इति दुर्गा-द्वात्रिंशन्नाममाला-स्तुतिः समाप्ता ॥१७८॥

179. दैत्यष्टकम्

महादेवी	महाशक्तिं	भवानी	भवल्लभाम् ।
भवार्ति -	भञ्जनकरीं	वन्दे	त्वां लोकमातरम् ॥१॥
भक्तप्रियां	भक्तिगम्यां	भक्तानां	कीर्ति-वर्धिकाम् ।
भवप्रियां	सतीं देवीं	वन्दे	त्वां भक्तवत्सलाम् ॥२॥
अन्नपूर्णा	सदापूर्णा	पार्वतीं	पर्वपूजिताम् ।
महेश्वरीं	वृषारूढां	वन्दे	त्वां परमेश्वरीम् ॥३॥
कालरात्रिं	महारात्रिं	मोहरात्रिं	जनेश्वरीम् ।
शिवकान्तां	शम्भुशक्तिं	वन्दे	त्वां जननीमुमाम् ॥४॥
जगत्कर्त्री	जगद्धात्रीं		जगत्संहारकारिणीम् ।
मुनिभिः संस्तुतां	भद्रां	वन्दे	त्वां मोक्षदायिनीम् ॥५॥
देवदुःखहरामम्बां	सदा		देवसहायकाम् ।
मुनिदेवैः	सदा	सेव्यां	वन्दे त्वां देवपूजिताम् ॥६॥
त्रिनेत्रां	शङ्करीं	गौरीं	भोगमोक्षप्रदां शिवाम् ।
महामायां	जगद्बीजां	वन्दे	त्वां देवपूजिताम् ॥६॥

त्रिनेत्रां शङ्करी गौरीं भोगमोक्षप्रदां शिवाम्।
 महामायां जगद्बीजां वन्दे त्वां जगदीश्वरीम्॥७॥
 शरणागतजीवानां सर्वदुःख - विनाशिनीम्।
 सुख - सम्पत्करीं नित्यां वन्दे त्वां प्रकृतिं पराम्॥८॥
 देव्यष्टकमिदं पुण्यं योगानन्देन निर्मितम्।
 यः पठेत् भक्तिभावने लभते स परं सुखम्॥९॥

॥इति देव्यष्टकं सम्पूर्णम्॥१७९॥

180. देवीस्तोत्रम्

नमस्तेऽस्तु दुर्गे सदानन्दरूपे सुरैः स्तूयमाने मुनीनां सुपूज्ये।
 नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे नमस्ते भवाम्भोधिसन्तारदक्षे॥१॥
 नमस्ते नमस्ते सदा दैवतेज्ये तथा दीनदुःखे दयाक्रान्तचित्ते।
 नमस्ते महादेवमान्ये भवानि सुदीनं स्वदासं जनं पाहि शश्वत्॥२॥
 नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे सदा योगिगम्ये स्वभक्तयैकलभ्ये।
 रमा-शारदा-शम्भुकान्तास्वरूपे नमस्ते महाकालिके शुद्धरूपे॥३॥
 नमस्ते म्बिके भक्तसंसेव्यपादे नमस्तेऽघविध्वंसिके सर्वशक्ते।
 जगत्कानने क्रोध-कामादिहंस्रैः परीतोऽस्मि मातः सदा रक्ष रक्ष॥४॥
 नमस्ते जगद्बीजरूपे महेशि स्वभक्तेषु रक्ते शरण्ये त्रिनेत्रे।
 त्वदन्या न चास्ते विपन्नाशकारी सुसम्पत्प्रदां त्वां सदा सन्नतोऽस्मि॥५॥
 अहं देवि याचे पदाम्भोजसेवां भवत्यास्तथा भक्तिभावं भवेड्ये।
 प्रसीदाऽम्ब दासे सदा शैलपुत्रि शिवां शङ्करीं पार्वतीं त्वा भजामि॥६॥
 त्वदन्यो न मान्यो न चाऽन्यश्च गण्यस्त्वमेकाऽसि मातर्जगज्जालहेतुः।
 जगन्नाशिका पालिका च त्वमेव गिरेर्बालिकांकालिकां सन्नतोऽहम्॥७॥
 श्रियं शारदां शम्भुशक्तिं महेशीं त्रिनेत्रीं च दुर्गां तथा कालरात्रिम्।
 तुषारादिपुत्रीं जगद्-दुःखहन्त्रीं स्मरन् दुःखनाशो भवेन्मानवानाम्॥८॥
 इदं स्तोत्रं महादेव्या योगानन्देन निर्मितम्।
 यः पठेत् प्रातरुत्थाय स नरो वाञ्छितं लभेत्॥९॥

॥इति देवीस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥१८०॥

181. लघुस्तोत्रम्

आधारे तरुणार्कबिम्बरुचिरं सोमप्रभं वाग्भवं
 बीजं मन्मथमिन्द्रगोपकनिभं हृतपङ्कजे संस्थितम् ।
 रन्ध्रे ब्रह्मपदे च शाक्तमपरं चन्द्रप्रभाभासुरं
 ये ध्यायन्ति पदत्रयं तव शिवे ते यान्ति सौख्यं पदम् ॥
 ॐ अस्य श्रीलघुस्तवस्तोत्रस्य वृद्धसारस्वतऋषिः, त्रिपुराभैरवी देवता
 शार्दूलविक्रीडितं छन्दः, मम सर्वकामफल-प्राप्तयर्थे जपे विनियोगः ।
 ॐ ऐन्द्रस्येव शरासनस्य दधतो मध्ये ललाटप्रभां
 शौक्लीं कान्तिममुष्य गोरिव शिरस्यातन्वती सर्वतः ।
 एषाऽसौ त्रिपुरा हृदि द्युतिरिवोष्मांशोः सदा संस्थिता
 छिद्यान्नः सहसा पदैस्त्रिभिरघं ज्योतिर्मयी वाङ्मयी ॥१॥
 या मात्रा त्रिपुषीलतातनुलसत्तन्तुस्थितिस्पर्धिनी
 वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम् ।
 शक्तिं कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमा
 ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः ॥२॥
 दृष्ट्वा सम्भ्रमकारि वस्तु सहसा ऐं ऐमित व्याहृतं
 येनाकूतव शादपीह वरदे बिन्दु बिनाप्यक्षरम् ।
 तस्यापि ध्रुवमेव देवि तरसा जाते तवानुग्रहे
 वाचः सूक्तिसु धारसद्रवमुचो निर्यान्ति वक्त्रोदरात् ॥३॥
 यन्नित्ये तव कामराजमपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं
 तत्सारस्वतिमत्यवैति विरलः कश्चिद्बुधश्चेद्भुवि ।
 आख्यानं प्रतिपर्व सत्यपसो यत्कीर्तयन्तो द्विजाः
 प्रारम्भे प्रणवास्पदं प्रणयितुं नित्योच्चरन्ति स्फुटम् ॥४॥
 यत्सद्यो वचसां प्रवृत्तिकरणे दृष्टप्रभावं बुधै-
 स्तार्तीयं तदहं नमामि मनसा तदबीजमिन्दुप्रभम् ।
 अस्तवौवोऽपि सरस्वतीमनुगते जाड्याम्बुविच्छिन्नये
 गोशब्दो गिरि वर्तते सुनियतं योगं विना सिद्धितः ॥५॥
 एकैकं तव देवि जन्म ह्यनघं सव्यञ्जनाव्यञ्जनं
 तस्थं यं तव क्रमगतं यद्वा स्थितं व्यक्तमानम् ।

यं यं काममपेक्ष्य येन विधिना केनापि वा चिन्तितं
 जप्तं वा सफलीकरोति तरसा तं तं समस्तं नृणाम् ॥६॥
 वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्त्रजं दक्षिणे
 भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां सर्पूरकन्दोज्ज्वलाम् ।
 उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तिनयां स्निग्धप्रभालोकिनीं
 ये त्वामम्ब न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥७॥
 ये त्वां पाण्डुरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां
 सिञ्चतीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम् ।
 अश्रान्तं विकटं स्फुटाक्षरपदा निर्यान्ति वक्त्राम्बुजा-
 त्तेषां भारति भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मयछ ॥८॥
 ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमा-
 मुर्वी चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्रामिव ।
 पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-
 क्लान्तास्त्रस्तकुरङ्गदारकदृशो वश्या भवानी ध्रुवम् ॥९॥
 चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरामाबद्धकाञ्चिस्त्रजं
 ये त्वां चेतसि तद्गतेक्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थिराम् ।
 तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहःकारीभवन्त्यशिचरं
 माद्यत्कुञ्जरकर्णं तालतरलाः स्थैर्यं भजन्ति श्रियः ॥१०॥
 आर्भक् या शशिखण्डमण्डितटाजूटां नृमुण्डस्त्रजं
 बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम् ।
 त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं
 मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं त्वद्रूपकं चिन्तये ॥११॥
 जातोप्यल्पहरिच्छिदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
 निःशेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
 यद्विद्याधरवृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजो भवद्
 देवि त्वच्चरणाम्बुजप्रणतितः सो यं प्रसादोदयः ॥१२॥
 चण्डि त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते बिल्वीदलोल्लुण्ठानात्
 तुट्यत्कण्टककोटिभीः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।
 ते दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्सवत्साङ्कितै -
 र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥

विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवै-
 स्त्वां देवि त्रिपुरे परां परकलां सन्तर्प्य पूजाविधौ ।
 यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरधियां येषां त एवं ध्रुवं
 तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ॥१४॥
 शब्दानां जननि त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
 त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति ध्रुवम् ।
 लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्ते प्यमी
 सा त्वं काचिदचिन्त्य रूपगहना शक्तिः परा गीयसे ॥१५॥
 देवानां त्रितयं त्रयीहुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-
 स्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिर्ब्रह्मकर्णास्त्रयः ।
 यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकं
 तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते सत्त्वतः ॥१६॥
 लक्ष्मीं राजकुले जयं रणमुखे क्षेमङ्करीमध्वनि
 क्रव्यादद्विपसर्प भाजि शबरीकान्तारदुर्गं गिरौः
 भूतप्रेतपिशाच - जृम्भकभयं स्मृत्वा महाभैरवी
 व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारञ्च तां यत्पलवे ॥१७॥
 या या कुण्डलिनी क्रिया मधुमती देवी शिवा शाम्भवी ।
 शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
 ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥१८॥
 आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमाद्यक्षरैः
 काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः ।
 नामानि त्रिपुरे भवन्ति खलु या नित्यं तु गह्यानि ते
 तेभ्यो भैरवपत्नि विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥१९॥
 बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्मृतुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं
 भारत्यास्त्रिपुरेत्यन्यन्यमनसा यत्राद्यवृत्तिः स्फुटम् ।
 एकद्वित्रिपदक्रमेण कथितस्तत्पादसंख्याक्षरै-
 र्मन्त्रोद्धारविधिर्विशेषसहितः सत्संप्रदायान्वितः ॥२०॥
 सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किंवाऽनया चिन्तया
 नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति जनो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि ।

सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात् -
 त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यत्स्यान्मया पिऽधुवम् ॥२१॥
 आनन्दोद्भवकम्पधूर्णनयनं निद्रादृहासादिकं
 वेदव्याकरणावगाहकवितातर्कोक्तिमुक्तिप्रदम् ।
 वश्याकर्षपुरप्रवेशनगरक्षोभादिसिद्ध्यष्टकं
 लघ्वाचार्य इदं करोति सततं सौभाग्यमारोग्यताम् ॥२२॥
 गौरि त्रयम्बकपत्नि पार्वति सति त्रैलोक्यगाने शिवे
 शर्वाणि त्रिपुरे भवानि वरदे रुद्राणि कात्यायनि ।
 भीमे भैरवि चण्डिसर्ववरदे कालेक्षय शूलिनि
 त्वत्पादप्रणतं ह्यनन्यमनसा पर्याकुलं पाहि माम् ॥२३॥
 यदि भजति जडात्मा त्रैपुरं मन्त्रराजं स हि भवति कवीन्द्रः सर्ववादीन्द्रजेता ।
 इदमपि कवि भानुर्मत्तमातङ्गचण्डा च्यवतिमदगजानां पिच्छलद्वारदेशे ॥२४॥
 आईमवल्लरजनीवरबिन्दुनाद मेकाक्षरं पदमिनं क्रमु का वदन्ति ।
 मन्त्रं येन भुवनत्रयकांक्षितस्य सृष्टिस्थितिप्रलयहेतुमचिन्तयरूप ॥२५॥

॥इति श्रीलघुस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१८१॥

182. दुर्गाष्टकम्

दुर्गे परेशि शुभदेशि परात्परेशि ! वन्द्ये महेशदयिते करुणार्णवेशि !
 स्तुत्ये स्वधे सकलतापहरे सुरेशि ! कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥१॥
 दिव्ये नुते श्रुतिशतैर्विमले भवेशि ! कन्दर्पदारशतसुन्दरि माधवेशि !
 मेघे गिरीशतनये नियते शिवेशि ! कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥२॥
 रासेश्वरि प्रणततापहरे कुलेशि ! धर्मप्रिये भयहरे वरदाग्रेशि !
 वाग्देवते विधिनुते कमलाशनेति ! कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽग्रिलेशि ! ॥३॥
 पूज्ये महावृषभवाहिनी मङ्गलेशि ! पद्मे दिगम्बरि महेश्वरि काननेशि ।
 रम्ये धरे सकलदेवनुते गयेशि ! कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥४॥
 श्रद्धे सुराऽसुरनुते सकले जलेशि ! गङ्गे गिरीशदयिते गणनायकेशि !
 दक्षे स्मशाननिलये सुरनायकेशि ! कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥५॥
 तारे कृपा र्दनयने मधुकैटभेशि ! विद्येश्वरेश्वरि यमे निखिलाक्षरेशि ।
 ऊर्जे चतुःस्तनि सनातनि मुक्तेशि ! कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ! ॥६॥

मोक्षेऽस्थिरे त्रिपुरसुन्दरि पाटलेशि ! माहेश्वरि त्रिनयने प्रबले मखेशि ।
 तृष्णे तरङ्गिणि बले गतिदे ध्रुवेशि ! कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ॥७॥
 विश्वम्भरे सकलदे विदिते जयेशि ! विन्ध्यस्थिते शशिमुखि क्षणदे दयेशि !
 मातः सरोजनयने रसिके स्मरेशि ! कृष्णस्तुते कुरु कृपां ललितेऽखिलेशि ॥८॥
 दुर्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते सर्वार्थदं हरिहरादिनुतां वरेण्याम् ।
 दुर्गां सुपूज्य महितां विविधोपचारैः प्राप्नोति वाञ्छितफलं न चिरान्मनुष्यः ॥९॥

॥ इति दुर्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥१८२॥

183. दुर्गापदुद्धारस्तवराजः

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे ।
 नमस्ते जगद्वन्द्य-पादारविन्दे नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥१॥
 नमस्ते जगच्चिन्त्यमानवरूपे नमस्ते महायोगिनि ज्ञानरूपे ।
 नमस्ते नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥२॥
 अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य भयार्तस्य भीतस्य बद्धस्य जन्तोः ।
 त्वमेका गतिर्देवि निस्तारकर्त्री नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥३॥
 अरण्ये रणे दारुणे शत्रुमध्येऽनले सागरे प्रान्तरे राजगेहे ।
 त्वमेका गतिर्देवि निस्तारनौका नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥४॥
 अपारे महादुस्तरेऽत्यन्तघोरे विपत्सागरे मज्जतां देहभाजाम् ।
 त्वमेका गतिर्देवि निस्तारहेतुर्नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥५॥
 नमश्चण्डिके चण्डदुर्दण्डलीला समुत्खण्डिताखण्डिताशेषशत्रो ।
 त्वमेका गतिर्देवि निस्तारबीजं नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥६॥
 त्वमेवाधभावाधृतासत्यवादीन जाताजितक्रोधनात् क्रोधनिष्ठा ।
 इडा पिंगला त्वं सुषुम्णा च नाडी नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥७॥
 नमो देवि दुर्गे शिवे भीमनादे सरस्वत्यरुन्धत्यमोघस्वरूपे ।
 विभूतिः शची कालरात्रिः सतिस्त्वं नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे ॥८॥
 शरणमसि सुराणां सिद्धविद्याधराणां
 मुनि-मनुज-पशूनां दस्युभिस्त्रासितानाम् ।
 नृपतिगृहगतानां व्याधिभिः पीडितानां
 त्वमसि शरणमेका देवि दुर्गे प्रसीद ॥९॥

इदं स्तोत्रं मया प्रोक्तमापदुद्धारहेतुकम् ।
 त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा पठनाद् घोरसङ्कटात् ॥१०॥
 मुच्यते नाऽत्र सन्देहो भुवि स्वर्गे रसातले ।
 स सर्वं वा श्लोकमेकं वा यः पठेद् भक्तिमान् सदा ॥११॥
 स सर्वं दुष्कृतं त्यक्त्वा प्राप्नोति परमं पदम् ।
 पठनादस्य देवेशि किं न सिध्यति भूतले ॥१२॥
 स्तवराजमिमं देवि संक्षेपात् कथितं मया ॥१३॥

॥ इति श्रीदुर्गापदुद्धार-स्वतवराजः सम्पूर्णः ॥१८३॥

184. दुर्गासिद्धमन्त्रस्तोत्रम्

विश्वेश्वरि! त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
 विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥१॥
 देवि! प्रपन्नार्ति हरे! प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
 प्रसीद विश्वेश्वरि! पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि! चराऽचरस्य ॥२॥
 दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।
 दारिद्र्य-दुःखभय-हारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदाद्रिचिन्ता ॥३॥
 विद्याः समस्तास्तव देहि! भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
 त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥४॥
 त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमाऽसि माया ।
 सम्पोहितं देवि! समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुविमुक्तिहेतुः ॥५॥
 सर्वमङ्गल-माङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
 शरण्ये त्र्यम्बके! गौरि! नारायणि! नमोऽस्तु ते ॥६॥
 शरणागत - दीनार्त - परित्राण - परायणे! ।
 सर्वस्यातिहरे देवि! नारायणि! नमोऽस्तु ते ॥७॥

॥ इति दुर्गासिद्धमन्त्रस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१८४॥

185. लघुसप्तशतीस्तोत्रम्

यत्कर्म धर्मनिलयं प्रवदन्ति तज्ज्ञा यज्ञादिकंत दखिलं सफलं त्वयैव ।
 त्वां चेतनायत इति प्रविचार्य चित्ते नित्यं त्वदीयचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥१॥
 पाथोधिनाथतनयापतिरेव शेषपर्यङ्कलालितवपुः पुरुषः पुराणः ।
 त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब-सोऽपि व्याघूर्ण-माननयनः शयनं चकार ॥२॥
 तत्कौतुकं जननि यस्य जनार्दनस्य कर्णप्रसूतमलजौ मधुकैटभा ख्यौ ।
 तस्यापि यो न भवतः सुलभौ निहन्तुं त्वन्मायया कविलितौ विलयं गतौ तौ ॥३॥
 यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरं च ।
 यल्लोकशोक - जनताप्रतिबद्धहार्दं तल्लीयैव दलितं गिरिजे भवत्या ॥४॥
 यो धूम्रलोचन इति प्रथिः पृथिव्यां भस्मी बभूव समरे तव हुंकृते न ।
 सर्वासुरक्षयकरे गिरिराजकन्ये मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः ॥५॥
 केयामपि त्रिदशनायकपूर्वकानां जेतुं न जातु सुलभाविति चण्ड-मुण्डौ ।
 तौ दुर्मदौ तु परमाभरतुल्यरूपे मातस्तवासिकुलिश त्वत्तितौ विशीणौ ॥६॥
 दौत्येन ते शिव इति प्रथितप्रभावो देवोऽपि दानवपतेः सदनं जगाम ।
 भूयोऽपि यस्य चरितं प्रथयाञ्चकार सा त्वं प्रतीति शिवदूति विजृम्भितातः ॥७॥
 चित्रं तदेतदमरैरपि ये न पेयाः शस्त्राभिघातपतिताद्रुधिरादपणौ ।
 भूमौ बभूवुर्गमिताः प्रतिरक्तबी जा स्तेऽपि स्वयैव गगने गलिताः समस्ताः ॥८॥
 आश्चर्यमेतदखिलं यदमूः सुरारी त्रैलोक्यवै भव - विलुण्ठन-जुष्टप्राणी ।
 शस्त्रैर्निहत्य भुवि शम्भुनिशुम्भसंज्ञौ नीतौ त्वया जननि तावपि नाकलोकम् ॥९॥
 त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मिन्नस्तं प्रयान्ति भुवानान्यखिलानि सद्यः ।
 तस्मिन्निपत्य शलभा इव दानवेन्द्रा भस्मीभवन्ति हि भवानि किमत्र चित्रम् ॥१०॥
 किं वर्णयामि भवतीं भवतीप्रताप संवर्धनप्रणयिनी ग्रणमज्जनेषु ।
 तत्किं गृणामि भवतीं भवतीप्रताप संवर्धनप्रणयिनी विपदास्थितेषु ॥११॥
 वामे करे तदितरे चतथोपरिष्ठात् पात्रं सुधारसयुतं वरमातुलुङ्गम् ।
 खेटं गदां च दधतीं भवतीं भवानीं ध्यायन्ति ये ऽरुणनिभां कृति नस्त एव ॥१२॥
 यद्धारुणात्परमिदं जगदम्ब यस्ते बीजं स्मरेदनुदिनं मदनाधिरूढम् ।
 मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुबिन्दुनादैरतीन्द्रमिह राज्यमसौ भुनक्ति ॥१३॥

आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्रं कर्मार्पणं तव विसर्जनमत्र देवि ।
 मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं मातः क्षमस्व वरदे बहिरन्तरस्थे ॥१४॥
 अन्तःस्थिता प्यखिलजन्तुषु तन्तुरूपा विद्योतसे बहिरिहाखिलवस्तुरूपा ।
 का भूरिशब्दरचनावचनातिगाऽसि दिनं जनं जननि मामिह निष्प्रपञ्चम् ॥१५॥
 एतत्पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि चण्डीचरित्रमतुलं भुवि यस्त्रिकालम् ।
 श्रीमान्मुखी दनुजपूर्णभगः क्षमी स्याद्योगी चिरन्तनवपुः कविचक्रवर्ती ॥१६॥
 श्रीसिद्धिगाथापरनामधेयः श्रीशम्भुनाथो भुवनैकनाथाः ।
 तस्य प्रसादात् सकलागमज्ञः पृथ्वीधरः स्तोत्रमिदं चकार ॥१७॥

॥ इति लघुसप्तशतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१८५॥

186. बन्दीमोचनस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीबन्दीमोचनमन्त्रस्य कण्वव्रतृषिः, त्रिष्टुप-छन्दः, ह्रीं बीजम्,
 ह्रूं कीलकम्, मम बन्दीमोचनार्थं जपे विनियोगः ।

ॐ ह्रीं ह्रूं बन्दीदेव्यै नमः । इति मन्त्रम् अष्टोत्तरशतं जपः ।
 बन्दीं देवीं नमस्कृत्य वरदाभयशोभिताम् ।
 तदग्रयां शरणं गच्छे शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥१॥
 बन्दी कमलपत्राक्षी लोहश्रङ्खलभञ्जिनी ।
 प्रसादं कुरु मे देवि शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥२॥
 त्वं बन्दी त्वं महामाया त्वं दुर्गा त्वं सरस्वती ।
 त्वं देवी रजनी चैव शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥३॥
 संसारतारिणी बन्दी सर्वकामप्रदायिनी ।
 सर्वलोकेश्वरी देवी शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥४॥
 त्वं ह्रीस्त्वमीश्वरी देवी ब्रह्माणी ब्रह्मवादिनी ।
 त्वं व कल्पक्षयं कर्त्री शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥५॥
 देवी धात्री धरित्री च धर्मशास्त्रार्थभाषिणी ।
 दुःश्राम्बरागिणी देवी शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥६॥
 नमोऽस्तु ते महालक्ष्मि रत्नकुण्डलभूषिते ।
 शिवस्यार्धाङ्गिनी चैव शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥७॥

नमस्कृत्य महादुर्गा भयादुत्तारिणीं शिवाम् ।
 महादुःखहरां चैव शीघ्रं मोक्षं ददातु मे ॥८॥
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं यः पठेन्नित्यमेव च ।
 सर्वबन्धविनिर्मुक्तो मोक्षं च लभते क्षणात् ॥९॥

॥ इति बन्दीमोचनस्तोत्रं समाप्तम् ॥१८६॥

187. अन्नपूर्णास्तोत्रम् (1)

ध्यानम्

सिन्दूरा-ऽरुण-विग्रहां त्रिनयनां माणिक्य-मौलिस्फुरत्
 तारानायक-शेखरां स्मितमुखीमापीन-वक्षोरुहाम् ।
 पाणिभ्यामलिपूर्ण-रत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
 सौम्यां रत्नघटस्त-रक्तचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥
 नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
 निर्धूताखिल-घोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी ।
 प्रालेयाचल-वंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेेश्वरी ॥१॥
 नानारत्न-विचित्र-भूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
 मुक्ताहार-विलम्बमान विलसद्वक्षोज-कुम्भान्तरी ।
 काश्मीरा-ऽगुरुवासिता रुचिकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेेश्वरी ॥२॥
 योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्माऽर्थनिष्ठाकरी
 चन्द्रार्कानल-भासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी ।
 सर्वेश्वर्य-समस्त-वाणिछितकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेेश्वरी ॥३॥
 कैलासाचल-कन्दरालयकरी गौरी उमा शङ्करी
 कौमारी निगमार्थगोचरकरी ओङ्कारबीजाक्षरी ।
 मोक्षद्वार-कपाट-पाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेेश्वरी ॥४॥

दृश्याऽदृश्य-प्रभूतवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
 लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपाङ्कुरी ।
 श्रीविश्वेशमन प्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥५॥
 उर्वी सर्वजनेश्वरी भगवती माताऽन्नपूर्णेश्वरी
 वेणीनील-समान-कुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी ।
 सर्वानन्दकरी दृशां शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥६॥
 आदिक्रान्त-समस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
 काश्मीरा त्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्याङ्कुरा शर्वरी ।
 कामाकांक्षकरी जनोदयकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥७॥
 देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
 वामस्वादु पयोधर-प्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी ।
 भक्ताऽभीष्टकरी दशाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥८॥
 चन्द्रार्कानल कोटिकोटिसदृशा चन्द्रांशुबिम्बाधरी
 चन्द्रार्काग्नि समान-कुन्तलहरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी ।
 माला पुस्तक पाश-साङ्कुशधरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥९॥
 क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
 साक्षान्मोक्षरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरी श्रीधरी ।
 दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी
 भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी ॥१०॥
 अन्नपूर्णं सदा पूर्णं शङ्करप्राणवल्लभे !
 ज्ञान वैराग्य-सिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ॥११॥
 माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः ।
 बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥१२॥

॥ इति अन्नपूर्णास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१८७॥

188. अन्नपूर्णास्तोत्रम् (2)

मन्दार-कल्प-हचिन्दन-पारिजात-
 मध्ये शशाङ्क-मणिमण्डत-वेदिसंस्थे ।
 अर्धेन्दु-मौलि-सुललाट-षडर्धनेत्रे
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥१॥
 केयूर-हार-कटाङ्गद-कर्णपूरे
 काञ्ची-कलाप-मणिकान्त-लसद्दुकूले ।
 दुग्धा-ऽन्नपात्र-वर-काञ्चन-दर्विहस्ते
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥२॥
 आली-कदम्ब-परिसेवित-पार्श्वभागे
 शक्रादिभि-मुकुलिताञ्जलिभिः पुरस्तात् ।
 देवि! त्वदीय-चरणौ शरणं प्रपद्ये
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥३॥
 गन्धर्व-देव-ऋषि-नारद-कौशिका-ऽत्रि
 व्यासाऽ-म्बरीष-कलशोद्भव-कश्यपाद्याः ।
 भक्त्या स्तुवन्ति निगमाऽऽगम-सूक्तमन्त्रै-
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥४॥
 लीला-वचांसि तव देवि! ऋगादिवेदाः
 सृष्ट्यादि-कर्मरचना भवदीय-चेष्टा ।
 त्वत्तेजसा जगदिदं प्रतिभाति नित्यं
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥५॥
 शब्दात्मिके शशिकलाभरणार्धदेहे
 शम्भोरुरस्थल-निकेतन-नित्यवासे ।
 दारिद्र्य-दुःख-भयहारिणि का त्वदन्या
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥६॥
 सन्ध्यात्रये सकल-भूसुर-सेव्यमाने
 स्वाहा स्वधासि पितृदेवगणार्तिहन्त्री ।
 जायाः सुताः परिजनातिथयोऽन्नकामाः
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥७॥

सद्भक्त-कल्पलतिके भुवनैकवन्द्ये
 भृतेश-हृत्कमलमग्न-कुचाग्रभृङ्गे
 कारुण्यपूर्णनयने किमुपेक्षसे मां
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥८॥
 अम्ब! त्वदीय-चरणाम्बुज-संश्रयेणं
 ब्रह्मादयोऽप्यविकलां श्रियमाश्रयन्ते ।
 तस्मादहं तव नतोऽस्मि पदारविन्दं
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥९॥
 एकाग्रमूलनिलयस्य महेश्वरस्य
 प्राणेश्वरी प्रणत-भक्तजनाय शीघ्रम् ।
 कामाक्षि-रक्षित-जगत्-त्रितयेऽन्नपूर्णे !
 भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् ॥१०॥
 भक्त्या पठन्ति गिरिजा-दशकं प्रभाते
 मोक्षार्थिनो बहुजनाः प्रथितोऽन्नकामाः ।
 प्रीता महेश-वनिता हिमशैलकन्या
 तेषां ददाति सुतरां मनसेप्सितानि ॥११॥

॥ इति अन्नपूर्णास्तोत्र सम्पूर्णम् ॥१८८॥

189. अन्नपूर्णाकवचम्

द्वात्रिंशद्वर्णमन्त्रोऽयं शङ्करप्रतिभाषितः ।
 अन्नपूर्णा महाविद्या सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमा ॥१॥
 पूर्वमुत्तरमुच्चार्य सम्पुटीकरणमुत्तमम् ।
 स्तोत्रमन्त्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दो त्रिष्टुबुदाहतः ॥२॥
 देवता अन्नपूर्णा च ह्रीं बीजमम्बिका स्मृता ।
 स्वाहा शक्तिरिति ज्ञेयं भगवति कीलकं मतम् ॥३॥
 धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षेषु विनियोग उदाहतः ।
 ॐ ह्रीं भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णायै स्वाहा ।
 सप्तार्णवमनुष्याणां जपमन्त्रः समाहितः ॥४॥

अन्नपूर्णे इमं मन्त्रं मनुसप्तदशाक्षरम् ।
 सर्वसम्पत्प्रदो नित्यं सर्वविश्वकरी तथा ॥५॥
 भुवनेश्वरीति विख्याता सर्वाऽभीष्टं प्रयच्छति ।
 हल्लेखेयमिति ज्ञेयमोङ्काराक्षरूपिणी ॥६॥
 कान्ति पुष्टि-धना-ऽऽरोग्यं यशांसि लभते श्रियम् ।
 अस्मिन् मन्त्रे रतो नित्यं वशयेदखिलं जगत् ॥७॥

अङ्गन्यासः-ॐ अस्य श्रीअन्नपूर्णामालामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषये नमः
 शिरसि । ॐ अन्नपूर्णादेवतायै नमः हृदये । ॐ ह्रीं बीजाय नमः नाभौ ।
 ॐ स्वाहा शक्तये नमः पादयोः । ॐ धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षेषु विनियोगाय
 नमः सर्वाङ्गे ।

करन्यासः-ॐ हाम् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ
 हूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं कनिष्ठिकाभ्यां
 नमः । ॐ हः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः-ॐहां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ हूं
 शिखायै वषट् । ॐ ह्रैं कवचाय हुम् । ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ हः
 अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूडाम्
 अन्नप्रदान-निरतां स्तनभारनम्राम् ।
 नृत्यन्तमिन्दु-सकलाभरणं विलोक्य
 हृष्टां भजे भगवतीं भव-दुःखहन्त्रीम् ॥

मालामन्त्रः-ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे!
 ममाऽभिलषितमन्त्रं देहि स्वाहा ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं मन्दार-कल्प-हरिचन्दन-पारिजात-मध्ये शशाङ्क-
 मणिमण्डित-वेदिसंस्थे । अर्धेन्दु-मौलि-सुललाट-षडर्धनेत्रे भिक्षां प्रदेहि
 गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥१॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं । केयूर-हार-कनकाङ्गदकर्णपूरे काञ्चीकलाप-
 मणिकान्ति-लसददुकूले । दुग्धा-ऽन्नपात्र-वर-काञ्चन-दर्विहस्ते भिक्षां
 प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् । क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥२॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं । आली-कदम्बपरिसेवित-पार्श्वभागे
शक्रादिभिर्मुकुलिताञ्जलिभिः पुरस्तात् देवि! त्वदीय-चरणौ शरणं प्रपद्ये
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥३॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं गन्धर्व-देव-ऋषि-नारद-कौशिकाऽत्रि-व्यासा-
ऽम्बरीष-कलशोद्भव-कश्यपाद्याः भक्त्या स्तुवन्ति निगमा-ऽऽगम-सूक्त-
मन्त्रैर्भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥४॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं लीलावचांसि तव देवि! ऋगादिवेदाः
सृष्ट्यादिकर्मरचना भवदीयचेष्टा । त्वत्तेजसा जगदिदं प्रतिभाति नित्यं भिक्षां
प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥५॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं शब्दात्मिके शशिकलाभरणार्धदेहे शम्भो-
रुरस्थल-निकेतननित्यवासे । दारिद्र्य दुःखभयहारिणि का त्वदन्या भिक्षां
प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥६॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सन्ध्यात्रये सकलभूसुरसेव्यमाने स्वाहा स्वधासि
पितृदेवगणार्तिहन्त्री । जायाः सुताः परिजनातिथयोऽन्नकामाः भिक्षां प्रदेहि
गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥७॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सद्भक्तकल्पलतिके भुवनैकवन्द्ये
भूतेशाहृत्कमलमग्न-कुचाग्रभृङ्गे । कारुण्यपूर्णनयने किमुपेक्षसे मां भिक्षां
प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥८॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं अम्ब! त्वदीय-चरणाम्बुज-संश्रयेण ब्रह्मादयो-
ऽप्यविकलां श्रियमाश्रयन्ते । तस्मादहं तव नतोऽस्मि पदारविन्दे भिक्षां
प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥९॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं एकाग्रमूलनिलयस्य महेश्वरस्य प्राणेश्वरि! प्रणत-
भक्तजनाय शीघ्रम् । कामाक्षि-रक्षित-जगत्-त्रितयेऽन्नपूर्णे भिक्षां प्रदेहि
गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम् क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥१०॥

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं भक्त्या पठन्ति गिरिजादशकं प्रभाते मोक्षार्थिनो
बहुजनाः प्रथितान्नकामा । प्रीता महेशवनिता हिमशैलकन्या तेषां ददाति
सुतरां मनसेप्सितानि क्लीं श्रीं ह्रीं ऐं ॐ ॥११॥

॥ इति अन्नपूर्णाकवचं समाप्तम् ॥१८९॥

190. श्रीपूर्णाष्टकम्

भगवति भवबन्धच्छेदिनि ब्रह्मवन्द्ये
 शशिमुखि रुचिपूर्णे भालचन्द्रेऽन्नपूर्णे ।
 सकलदुरितहन्त्रि स्वर्गमोक्षादिदात्रि
 जननि नितिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥१॥

तव गुणगरिमाणं वर्णितुं नैव-शक्ता
 विधि-हरि-हरदेवा नैव लोका न वेदाः ।
 कथमहमनभिज्ञो वागतीतां स्तुवीयां
 जननि नितिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥२॥

भगवति वसुकामाः स्वर्गमोक्षादिकामा-
 दितिजसुर-मुनीन्द्रास्त्वां भजन्त्यम्ब सर्वे ।
 तव पदयुगभक्तिं भिक्षुकस्त्वां नमामि
 जननि नितिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥३॥

यदवधि भवमातस्ते कृपा नास्ति जन्तौ
 तदवधिं भवजालं कः समर्थो विहातुम् ।
 भवकृतभयभीतस्त्वां शिवेऽहं प्रसन्नो
 जननि नितिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥४॥

सुरसुरपतिवन्द्ये कोटिरित्येकरम्ये
 निखिलभवनधन्ये कामदे कामदेहे ।
 भवति भवपयोधस्तारिणीं त्वां नतोऽहं
 जननि नितिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥५॥

त्वमिह जगति पूर्णा त्वद्विहीनं न किञ्चिद्
 रजनि यदि विहीनं तत्स्वरूपं तु मिथ्या ।
 इति निगदति वेदो ब्रह्मभिन्नं न सत्यं
 जननि नितिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥६॥

स्वजनशरणदक्षे दक्षजे पूर्णकामे
 सुरहितकृतरूपे निर्विकल्पे निरीहे ।
 श्रुतिसमुदयगीते सच्चिदानन्दरूपे
 जननि नितिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥७॥

भगवति तव पुर्या त्वां समाराध्य याचे
 भवतु गणपमातभक्तितस्तेऽविरामः ।
 त्वदितरजन आर्ये पूर्णकामो न पूर्ण
 जननि निटिलनेत्रे देवि पूर्णे प्रसीद ॥८॥

॥ इति श्रीपूर्णाष्टकम् सम्पूर्णम् ॥१९०॥

191. लक्ष्मीस्तोत्रम्

क्षमस्व भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे ।
 शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिवर्जिते ॥१॥
 उपमे सर्वसाध्वीनां देवीनां देवपूजिते ।
 त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यं च निष्फलम् ॥२॥
 सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी ।
 रासेश्चर्यधिदेवी त्वं त्वत्कलाः सर्वयोषितः ॥३॥
 कैलासे पार्वती त्वं च क्षारोदे सिन्धुकन्यका ।
 स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले ॥४॥
 वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती ।
 गङ्गा च तुलसी त्वं च सावित्री ब्रह्मलोकतः ॥५॥
 कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम् ।
 रासे रासेश्वरी त्वं च वृन्दावनवने वने ॥६॥
 कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने ।
 विरजा चम्पकवने शतशृङ्गे च सुन्दरी ॥७॥
 पद्मावती पद्मवने मालती मालतीवने ।
 कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने ॥८॥
 कदम्बमाला त्वं देवि! कदम्बकाननेऽपि च ।
 राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे ॥९॥
 इत्युक्त्वा देवताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा ।
 रुरुर्दुर्नम्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥१०॥

इति लक्ष्मीस्तवं पुण्यं सर्वदेवः कृतं शुभम् ।
 यः पठेत् प्रातरुत्थाय स वै सर्वं लभेद् ध्रुवम् ॥११॥
 अभार्यो लभते भार्या विनितां सुसुतां सतीम् ।
 सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिसुप्रियवादिनीम् ॥१२॥
 पुत्रपौत्रवतीं शुद्धां कुलजां कोमलां वराम् ।
 अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीविनम् ॥१३॥
 परमैश्वर्ययुक्तं च विद्यावन्तं यशस्विनम् ।
 भ्रष्टराज्यो लभेद्भ्राज्यं भ्रष्टश्रीर्लभते श्रियम् ॥१४॥
 हतबन्धुर्लभेद् बन्धुं धनभ्रष्टो धनं लभेत् ।
 कीर्तिहीनो लभेत् कीर्तिं प्रतिष्ठां च लभेद् ध्रुवम् ॥१५॥
 सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोक-सन्ताप-नाशनम् ।
 हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्म-मोक्ष-सुहृत्प्रदम् ॥१६॥

॥ इति लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१९१॥

192. महालक्ष्म्यष्टकम्

इन्द्र उवाच

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते ।
 शङ्ख-चक्र-गदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥१॥
 नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि ।
 सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥२॥
 सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयङ्करि ।
 सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥३॥
 सिद्धि-बुद्धि-प्रदे देवि भुक्ति-मुक्ति-प्रदायिनि ।
 मन्त्रमूर्ते सदा देवि आद्यशक्ति महेश्वरि ॥४॥
 आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि ।
 योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥५॥
 स्थूल-सूक्ष्म-महारौद्रे महाशक्ति महोदरे ।
 महापापहरे देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥६॥

पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्म-स्वरूपिणि ।
 परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥७॥
 श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभूषिते ।
 जगत्-स्थिते जगन्मार्तमहालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥८॥
 महालक्ष्म्यष्टकस्तोत्रं यः पठेद् भक्तिमान्नरः ।
 सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यं प्राप्नोति सर्वदा ॥९॥
 एककाले पठेन्नित्यं महापापविनाशनम् ।
 द्विकालं यः पठेन्नित्यं धन-धान्य-समन्वितः ॥१०॥
 त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम् ।
 महालक्ष्मी भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा ॥११॥

॥ इतीन्द्रकृतं महालक्ष्म्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥११२॥

193. सिद्धसरस्वतीस्तोत्रम् (1)

सौन्दर्य-माधुर्य-सुधासमुद्र-विनिद्र-पद्मासन-सन्निविष्टाम् ।
 चञ्चद्-विपञ्चीकल-नादमुग्धां शुद्धां दधेऽन्तर्विसरत्सुगन्धाम् ॥१॥
 श्रुतिः-स्मृतिस्तत्पद-पद्मगन्धि-प्रभामयं वाङ्मयमस्तपारम् ।
 यत्कोण-कोणाभिनिविष्टमिष्टं तामम्बिकां सर्वसितां श्रिताः स्मः ॥२॥
 न कान्दिशीकं रवितोऽतिवेलं तं कौशिकं संस्पृष्टो निशातम् ।
 सावित्र-सारस्वतधामपश्यं शस्यं तपोब्राह्मणमाद्रिये तम् ॥३॥
 श्रीशारदां प्रार्थित-सिद्धविद्यां श्रीशारदाम्भोज-सगोत्रनेत्राम् ।
 श्रीशारदाम्भोज-निवीज्यमानां श्रीशारदाङ्गानुजर्णि भजामि ॥४॥
 चक्राङ्ग-राजाञ्जित-पादपद्मां पद्मालयाऽभ्यर्थित-सुस्मितश्रीः ।
 स्मितश्रिया वर्षित-सर्वकामा वामा विधेः पूरयतां प्रियं नः ॥५॥
 बाहो रमायाः किल कौशिकोऽसौ हंसो भवत्याः प्रथितो विविक्तः ।
 जगद्-विधातुर्महिषि त्वमस्मान् विधेहि सभ्यान्नहि मातरिभ्यान् ॥६॥
 स्वच्छव्रतः स्वच्छचरित्रचुञ्चुः स्वच्छान्तरः स्वच्छ-समस्त-वृत्तिः ।
 स्वच्छं भक्त्या प्रपदं प्रपन्नः स्वच्छे त्वयि ब्रह्मणि जातु यातु ॥७॥

रवीन्दु-वह्नि-द्युति-कोटि-दीप्तं सिंहासनं सन्तत-वाद्य-गानम् ।
 विदीपयन्मातृकधाम यामः कारुण्य-पूर्णामृत-वारिवाहम् ॥८॥
 शुभ्रां शुभ्र-सरोज-मुग्धवदनां शुभ्राम्बरालङ्कृता
 शुभ्राङ्गी शुभ्र-शुभ्रहास्यविशदां शुभ्रस्त्रगाशोभिनीम् ।
 शुभ्रोद्दाम-ललाम-धाममहिमां शुभ्रान्तरङ्गागतां
 शुभ्राभां भयहारि-भाव-भरितां श्रीभारतीं भावये ॥९॥
 मुक्तालङ्कृत-कुन्तलान्तसरणिं रत्नालिहारावलिं
 काञ्ची-कान्त-चलग्न-लग्नवलयां वज्राङ्गुलीयाङ्गुलिम् ।
 लीला-चञ्चल-लोचनाञ्चल-चलल्लोकेश-लोलालकां
 कल्यामाकलयेऽतिवेलमतुलां वित्कल्पवल्लीकलाम् ॥१०॥
 प्रयतो धारयेद् यस्तु सारस्वतमिमं स्तवम् ।
 सारस्वतं तस्य महः प्रत्यक्षमचिराद् भवेत् ॥११॥
 वाग्बीजसम्पुटं स्तोत्रं जगन्मातुः प्रसादजम् ।
 शिवालये जपन् मर्त्यः प्राप्नुयाद् बुद्धिवैभवम् ॥१२॥
 सूर्यग्रहे प्रजपितः स्तवः सिद्धिकरः परः ।
 वाराणस्यां पुण्यतीर्थे सद्यो वाञ्छितदायकः ॥१३॥
 पादाम्भोजे सरस्वत्याः शङ्कराचार्यभिक्षुणा ।
 काशीपीठाधिपतिनां गुम्फिता स्वक् समर्पिता ॥१४॥

॥ इति सिद्धसरस्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ॥१९३॥

194. सिद्धसरस्वतीस्तोत्रम् (2)

ॐ अस्य श्रीसरस्वतीस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेयऋषिः, स्वर्धरा-ऽनुष्टुप्-छन्दः, सरस्वतीदेवता, ऐं बीजं, वद वद शक्तिः, स्वाहा कीलकं मम वाक्सिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

न्यासः-ॐ ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ऐं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ धीं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ क्लीं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ सौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

हृदयादिन्यासः-ॐ ह्रीं हृदयाय नमः । ॐ ऐं शिरसे स्वाहा ॐ धीं
शिखायै वषट् । ॐ क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ सौं कवचाय हुम् । ॐ
श्रीं अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

शुक्लां ब्रह्मविचार-सार-परमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणा-पुस्तक-धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिक-मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥१॥
दोर्भिर्युक्तैश्चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधानां
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण ।
पाशं वीणां मुकुन्द-स्फटिकमणिनिभां भासमाना समाना
सा मे वादे च तथ्यं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना ॥२॥
या कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणा-वरदण्ड-मण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्मा-ऽच्युत-शङ्कर-प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥३॥
इति ध्यात्वा, १०८ मन्त्रं जपेत् । ॐ ऐं धीं क्लीं सौं श्रीं सरस्वत्यै नमः ।
ह्रीं ह्रीं ह्रीं हृद्यैकबीजे शशि-रुचि-कमले कल्पविस्पष्टशोभे
भव्ये व्यानुकूले शुभमतिवरदे विश्ववन्द्याङ्घ्रिपद्मे ।
पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणत-जनमनोमोद-सम्पादयित्रि
प्रोत्फुल्लज्ञानकूले हरिहरनमिते देवि! संसारसारे ॥१॥
ऐं ऐं ऐं जाप्यतुष्टे हिमरुचि-मुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते
मातर्मातर्नमस्ते दह दह जडतां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम् ।
विद्ये वेदान्तवेद्ये श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे
मार्गातीतस्वरूपे भव मम वरदे शारदे शुभ्रहारे ॥२॥
धीं धीं धीं धारणाख्ये धृति-मति-नुतिभिर्नामभिः कीर्त्तनीये
नित्ये नित्ये निमित्ते मुनिजन-नमिते नूतने वै पुराणे ।
पुण्ये पुण्यप्रभावे हरिहरनमिते पूर्णतत्त्वस्वरूपे
मातर्मात्रार्थतत्त्वे! मति-मति-मतिदे! माधवप्रीतिनादे ॥३॥

क्लीं क्लीं क्लीं सुस्वरूपे दह दह दुरितं पुस्तकं व्यग्रहस्ते
 सन्तुष्टकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे जृम्भिणि स्तम्भनीये ।
 मोहे मुग्धप्रबोधे मम कुरु कुमति-ध्वान्त-विध्वंसमीड्ये
 गी-गौ-वाग्भारतीत्वं कविधृतरसने सिद्धिदे सिद्धिसाध्ये ॥४॥
 सौं सौं सौं शक्तिबीजे कमल-भवमुखाम्भोजमूर्तिस्वरूपे
 रूपे रूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकल्पे ।
 न स्थूले नैव सूक्ष्मेऽप्यविदितविभवे जाप्यविज्ञानतुष्टे
 विश्वे विश्वान्तराले सकलगुणमये निष्कले नित्यशुद्धे ॥५॥
 श्रीं श्रीं श्रीं स्तौमि त्वाऽहं मम खलु रसनां मा कदाचित् त्यजत्वं
 मा मे बुद्धिर्विरुद्धा भवतु मम मनो पातु मां देवि! पापात् ।
 मा मे दुःखं कदाचित् क्वचिदपि विषये पुस्तके नाकुलत्वं
 शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्मास्तु कुण्ठा कदाऽपि ॥६॥
 इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो
 वाणी वाचस्पतेरप्यविदितविभवो वाक्यतत्त्वार्थवेत्ता ।
 स स्यादिष्टार्थलाभी सुतमिव सततं पातु तं सा च देवी
 सौभाग्यं तस्य लोके प्रसरतु कविता विघ्नमस्तं प्रयातु ॥७॥
 निर्विघ्नं तस्य विद्या प्रभवति सततं चाऽऽशु ग्रन्थप्रबोधः
 कीर्त्तिस्त्रैलोक्यमध्ये निवसति वदने शारदा तस्य साक्षाद् ।
 दीर्घायुर्लोकपूज्यः सकलगुणनिधिः सन्ततं राजमान्यो
 वाग्देव्याः सम्प्रसादात्त्रिजगति विजयो जायते तस्य साक्षाद् ॥८॥
 ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यामहर्निशम् ।
 सारस्वतो जनः पाठाद् भवेदिष्टार्थलाभवान् ॥९॥
 पक्षद्वये त्रयोदश्यामेकविंशतिसंख्यया ।
 अविच्छिन्नं पठेद्यस्तु सुभगो लोकविश्रुतः ।
 वाञ्छितं फलमाप्नोति षण्मासैर्नाऽत्र संशयः ॥१०॥
 ॐ ह्रीं ऐं धीं क्लीं सौं श्रीं वद वद वाग्वादिन्यै स्वाहा । मालां शिरसि धृत्वा-
 त्वं माले! सर्वदेवानां सर्वकामप्रदा मता ।
 तेन सत्येन मे सिद्धिं देहि मातर्नमोऽस्तु ते ॥ इत्यर्पणम् ॥

॥ इति सिद्धसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१९४॥

195. सरस्वतीस्तोत्रम्

श्वेत-पद्मासना देवी श्वेत-पुष्पोप-शोभिता ।
 श्वेताम्बर-धरा नित्या श्वेत-गन्धानुलेपना ॥१॥
 श्वेताक्षी शुक्लवस्त्रा च श्वेत-चन्दन-चर्चिता ।
 वरदा सिन्धु-गन्धर्वैर्ऋषिभिः स्तूयते सदा ॥२॥
 स्तोत्रेणाऽनेन तां देवीं जगद्धात्रीं सरस्वतीम् ।
 ये स्तुवन्ति त्रिकालेषु सर्वविद्या लभन्ति ते ॥३॥
 या देवी स्तूयते नित्यं ब्रह्मेन्द्र-सुर-किन्नरैः ।
 सा ममैवाऽस्तु जिह्वाग्रे पद्महस्ता सरस्वती ॥४॥

॥ इति सरस्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ॥१९५॥

196. सरस्वतीकवचम्

गुरु रुवाच

शृणु शिष्य! प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम् ।
 धृत्वा सततं सर्वैः प्रपाठ्योऽयं स्तवः शुभः ॥
 अस्य श्रीसरस्वतीस्तोत्रकवचस्य प्रजापतिर्ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः,
 शारदादेवता, 'सर्वतत्त्वपरिज्ञाने सर्वार्थसाधनेषु च । कवितासु च सर्वासु
 विनियोगः प्रकीर्तितः ॥' इति पठित्वा, विनियोगं कुर्यात् ।

ॐ श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः ।
 ॐ श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदाऽवतु ।
 ॐ सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम् ।
 ॐ ह्रीं श्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदाऽवतु ।
 ॐ ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदाऽवतु ।
 ॐ ह्रीं विद्याऽधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदाऽवतु ।
 ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्तिं सदाऽवतु ।
 ॐ ऐं इत्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदाऽवतु ।
 ॐ ह्रीं विद्याऽधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ।

ॐ ह्रीं विद्याऽधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम् ।
 ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तो सदाऽवतु ।
 ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदाऽवतु ।
 ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्व सदाऽवतु ।
 तत्पश्चादाशाबन्धं कुर्यात्—

ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदाऽवतु ।
 ॐ सर्वजिह्वाऽग्रवासिन्यै स्वाहाऽग्निदिशि रक्षतु ।
 ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा ।
 ॐ सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदाऽवतु ।
 ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्ये सर्वदाऽवतु ।
 ॐ ऐं ह्रीं जिह्वाऽग्रवासिन्यै स्वाहा प्रतीच्यां मां सर्वदाऽवतु ।
 ॐ सर्वाऽम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदाऽवतु ।
 ॐ ऐं ह्रीं क्लीं गद्य-पद्य वासिन्यै स्वाहा मामुत्तरे सदाऽवतु ।
 ॐ ऐं सर्वशास्त्रवादिन्यै स्वाहेशान्ये सदाऽवतु ।
 ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदाऽवतु ।
 ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै सदाऽधो मां सदाऽवतु ।
 ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु ।
 इति ते कथितं शिष्य! ब्रह्म-मन्त्रौघ-विग्रहम् ।
 इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥

॥ इति श्रीसरस्वतीकवचं समाप्तम् ॥१९६॥

197. सरस्वत्यष्टकम्

शतानीक उवाच

महामते! महाप्राज्ञ! सर्वशास्त्र-विशारद ।
 अक्षीणकर्मबन्धस्तु पुरुषो द्विजसत्तम! ॥१॥
 मरणे यज्जपेज्जाप्यं पञ्चभावमनुस्मरन् ।
 परम्पदमवाप्नोति तन्मे ब्रूहि महामुने! ॥२॥

शौनक उवाच

इदमेव महाराज! पृष्ठवांस्ते पितामहः ।
भीष्मं धर्मविदां श्रेष्ठ धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥३॥

युधिष्ठिर उवाच

पितामह! महाप्राज्ञ! सर्वशास्त्रविशारद! ।
बृहस्पतिस्तुता देवी वागीशाय महात्मने ।
आत्मानं दर्शयामास सूर्यकोटि-समप्रभम् ॥४॥

सरस्वत्युवाच

वरं वृणीष्व भगवन्! यत्ते मनसि वर्तते

बृहस्पतिरुवाच

यदि मे वरदा देवि! दिव्यज्ञानं प्रयच्छ नः ॥५॥

देव्युवाच

हन्त ते निर्मलं ज्ञानं कुमतिध्वंसकारकम् ।
स्तोत्रेणाऽनेन भक्त्या मां स्तुवन्ति मनीषिणः ॥६॥

बृहस्पतिरुवाच

लभते परमं ज्ञानं यत् सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ॥७॥

सरस्वत्युवाच

त्रिसन्ध्यं प्रयतो नित्यं पठेदष्टकमुत्तमम् ।
तस्य कण्ठे वासं करिष्यामि न संशयः ॥८॥

॥ इति सरस्वत्यष्टकं समाप्तम् ॥१९७॥

198. नीलसरस्वतीस्तोत्रम्

घोररूपे महारावे सर्वशत्रुभयङ्करि ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥१॥
ॐ सुराऽसुरार्चिते देवि सिद्धगन्धर्वसेविते ।
जाड्य-पापहरे देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥२॥
जटाजूटसमायुक्ते लोलजिह्वान्तकारिणि ।
द्रुतबुद्धिकरे देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥३॥

सौम्यक्रोधधरे रूप चण्डरूपे नमोऽस्तु ते ।
 सृष्टिरूपे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम् ॥४॥
 जडानां जडतां हन्ति भक्तानां भक्तवत्सला ।
 मूढतां हर मे देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥५॥
 वं हं हूं कामये देवि बलिहोमप्रिये नमः ।
 उग्रतारे नमो नित्यं त्राहि मां शरणागतम् ॥६॥
 बुद्धिं देहि यशो देहि कवित्वं देहि देहि मे ।
 मूढत्वं च हरेद् देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥७॥
 इन्द्रादि-विलसद्-द्वन्द्ववन्दिते करुणामयि ।
 तारे ताराधिनाथास्ये त्राहि मां शरणागतम् ॥८॥
 अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां यः पठेन्नरः ।
 षण्मासैः सिद्धिमाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥९॥
 मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी लभते धनम् ।
 विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकम् ॥१०॥
 इदं स्तोत्रं पठेद्यस्तु सततं श्रद्धयाऽन्वितः ।
 तस्य शत्रुः क्षयं जाति महाप्रज्ञा प्रजायते ॥११॥
 पीडायां वाऽपि संग्रामे जाड्ये दाने तथा भये ।
 य इदं पठति स्तोत्रं शुभं तस्य न संशयः ।
 इति प्रणम्य स्तुत्वा च योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥१२॥

॥ इति नीलसरस्वतीस्तोत्रं समाप्तम् ॥१९८॥

199. श्री सरस्वतीगीतिः

एहि लसत्सितशतदलवासिनी भारति मामकमास्यम् ।
 देहि चच मे त्वदमरनिकरार्चितपादतले निजदास्यम् ॥ध्रुवम् ॥१॥
 जगदघहारिणी मधुरिपुजाये हिमगिरिजित्वरसिततमकाये ।
 श्रुतिततिसंस्कृतपदकमलादृतमिह भुवि नान्यदुपास्यम् ॥भारति० ॥२॥
 जडतरजीवनमहह मदीयं श्रुतिविरहान्न हि नृषु गणनीयम् ।
 निरवधि कृपां कुरुष्व दयामयि व्यपगच्छेन्मम दास्यम् ॥भारति० ॥३॥

विकसितनीलजलजलकुलवासे विहितबृहस्पतिसमनिजदासे ।
 जननि कृशोदरि मम रसनोपरि विरचय शाश्वतहास्यम् । भारति० । १४ ॥
 भवमुखभावितभवदवदानं रचयतु मानसमविरतगानम् ।
 निपततु ते मयि दृगयि दयामयि किमपरमात्मजभाष्यम् । भारति० । १५ ॥

॥ इति श्रीसरस्वतीगीतिः समाप्ताः ॥१९९॥

200. सरस्वतीस्तोत्रम्

या कुन्देन्दुतुषारहार - धवला या शुभ्रवस्त्रावृता
 या वीणावरदण्ड - मण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
 या ब्रह्माच्युत - शङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
 सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेष - जाड्यापहा ॥१॥
 आशासु राशीभवदङ्गवल्ली भासैव दासीकृतदुग्धसिन्धुम् ।
 मन्दस्मितैर्निन्दिशारदेन्दुं वन्दे रविदासनसुन्दरि त्वाम् ॥२॥
 शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे ।
 सर्वदा सर्वदास्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥३॥
 सरस्वती च तां नौमि वागधिष्ठातृदेवताम् ।
 देवत्वं प्रतिपद्यन्ते यदनुग्रहतो जनाः ॥४॥
 पातु नो निकषग्रावा मतिहेमः सरस्वती ।
 प्राज्ञेतरपरिच्छेदं वचसैव करोति या ॥५॥
 शुक्लां ब्रह्मविचार - सारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
 वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापाहाम् ।
 हस्ते स्फाटिकमालिकां च दधतीं पद्मासने संस्थितां
 वन्दे तां परमेश्वरी भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥६॥
 वीणाधरेविपुलमङ्गलदानशीले भक्तार्तिनाशिनी विरञ्जिहरीशबन्धे ।
 कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महार्हे विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥७॥
 श्वेताब्जपूर्णविमलासनसंस्थिते हे श्वेताम्बरावृतमनोहरमञ्जुमात्रे ।
 उद्यन्मनोज्ञसितपङ्कजमञ्जुलास्ये विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥८॥
 मातस्त्वदीयपदपङ्कजभक्तियुक्ता ये त्वां भजन्ति निखिलानपरान् विहाय ।
 ते निर्जरत्वमिह यान्ति कलेवरेण भूवह्निवायुगगनाम्बुविनिर्मितेन ॥९॥

मोहान्धकारभरिते हृदये मदीये मातः सदैव कुरु वासमुदारभावे ।
 स्वीयाखिलावयवनिर्मलसुप्रभाभिः शीघ्रं विनाशय मनोगतमन्धकारम् ॥१०॥
 ब्रह्मा जगत् सृजति पालयतीन्दिरेशः शम्भुर्विनाशयति देवि तव प्रभावैः ।
 न स्यात्कृपया यदि तव प्रकटप्रभावेन स्युः कथञ्चिदपि ते निजकार्यदक्षाः ॥११॥
 लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा धृतिः ।
 एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मा सरस्वतिः ॥१२॥
 सरस्वत्यै नमो नित्यं भद्रकाल्यै नमो नमः ।
 वेद - वेदान्त - वेदाङ्ग - विद्यास्थानेभ्य एव च ॥१३॥
 सरस्वति महाभागे विद्ये कमललोचने ।
 विद्यारूपे विशालाक्षि विद्यां देहि नमोऽस्तु ते ॥१४॥
 यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
 तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥१५॥

॥ इति श्रीसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२००॥

201. देव्या आरात्रिकम्

प्रवरातीरनिवासिनि निगमप्रतिपाद्ये पारावारविहारिणि नारायणि हृद्ये ।
 प्रपञ्चसारे जगदाधारे श्रीविद्ये प्रपन्नपालनरिते मुनिवृन्दाराध्ये ॥१॥
 जय देवि जय देवि जय मोहनरूपे! मामिह जननि समुद्धर पतितं भवकूपे । (ध्रुवपदम्)
 दिव्यसुधारकवदने कुन्दोज्ज्वलरदने पदनखनिनिर्जतमदने मधुकैटभकदने ।
 विकसितपङ्कजन यने पन्नगपतिशयने खगपति गहने गहने सङ्कटवहन दहने जय ।
 मञ्जिराङ्कितचरणे मणिमुक्ताभरणे कञ्चुकवस्त्रावरणे वक्त्राम्बुजधरणे ।
 शक्रामयभयहरणे भूसुरसुखकरणे करुणां कुरु मे शरणे गजनक्रोद्धरणे जय ।
 छित्त्वा राहुग्रीवां पासि त्वं विबुधान् ददासि मृत्युमनिष्पीयूषं विबुधान् ।
 विहरसि दानव ऋद्धान् समरे संसिद्धान् मध्वमुनीश्वरवरदे पालय संसिद्धान् जय ।

॥ इति देव्या आरात्रिकं समाप्तम् ॥२०१॥

202. अम्बाष्टकम्

चेटीभवन्निखिलखेटीकदम्ब-तरुवाटीषु नाकिपटलीकोटी-
 चारुतरकोटी मणिकिरणकोटी करम्बितपदा ।
 पाटीरगन्धकुचशाटीकवित्वपरिपाटीनगाधिपसुता
 घोटी कुलादधिकघाटीमुदारमुखवीटीरसेन तनुताम् ॥१॥
 कूलातिगामिभयतूलावलिज्वलनशीला निजस्तुति-
 विधाकोलाहलक्षपितकालामरौ कुशलकीलालपोषनभाः ।
 स्थूला कुचे जलदनीला कचे कलितलीला कदम्बविपिने
 शूलायुधप्रणतिशीला विभातु हृदि शैलाधिराजतनया ॥२॥
 यत्राशयो लगति तत्रागजा वस्तु कुत्रापि निस्तुलशुका
 सुत्रामकलामुखसन्त्रासनप्रकरसुत्राणकारिचरणा
 छत्रानिलातिरयपत्राभिरामगुणमित्रामरीसमवधूः
 कुत्रासहम्णिविचित्राकृति स्फुरितपुत्रादिनदाननिपुणा ॥३॥
 द्वैपायनप्रभृतिशापायुधात्रिदेवसोपानधूलिचरणा
 पापापहस्वमनुजापानुलीनजनतापापनोदनिपुणा
 नीपालया सुरभिधूपालका दुरितकूपादुदञ्चयतु मां
 रूपाधिका शिखरिभूपालवंशमणिदीपायिता भगवती ॥४॥
 यालीभिरात्मतनुताली सकृत्प्रियकपालीषु खेलति
 भयव्यालीनकुल्यासितचूलीभरा चरणधूलीलसन्मुनिवरा ।
 बालीभृति श्रवसि तालीदलं वहति यालीकशोभितिलका
 सालीकरोतु मम काली मनः स्वपदनालीकसेवनविधौ ॥५॥
 न्यङ्ककारे वपुषि कङ्कादिरक्तपुषि कङ्कादिपक्षिविषये त्वं
 कामनामय्यसि किं कारणं हृदयपङ्कारिमेहि गिरिजाम् ।
 शङ्काशिलानिशितटङ्कायमानपदसङ्काशमानसुमनो-
 झङ्कारिमानततिमङ्कातटङ्कानुपेतशशिसङ्काशिवक्त्रकमलम् ॥६॥
 कुम्बावतीसमविडम्बा गलेन नवतुम्बाभवीणासविधा
 शं बाहुलेयशशिबिम्बाभिराममुखसंबाधितस्तनभरा ।
 अम्बाकुरङ्गमदजम्बालरोचिरिह लम्बालका दिशतु मे
 बिम्बाधराविनतशम्बायुधादिनकुरम्बा कदम्बविपिने ॥७॥

इन्धानकीरमणिबन्धा भवे हृदयबन्धावतीवरसिका
सन्धावती भुवनसन्धारणेऽप्यमृतसिन्धावुदारनिलया ।
गन्धानुमानमुहुरन्धालिवीतकचबन्धा समर्पयतु मे शं
धाम भानुमपि सन्धानमाशु पदसन्धानमप्यगसुता ॥८॥

॥इति अम्बाष्टकम् समाप्तम् ॥२०२॥

203. श्रीदेव्याः

चाञ्चल्यारुणलोचनाञ्चितकृपा चन्द्रार्कचूडामणिं
चारुस्मेरमुखां चराऽचरजगत्संरक्षणीं सत्पदाम् ।
चञ्चच्चम्पक - नासिकाग्रविलसन् - मुक्तामणीरञ्जितां
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरं भावये ॥१॥
कस्तूरीतिलकाञ्चितेन्दुविलसत्प्रोद्धासिभालस्थलीं
कर्पूरद्रवमिश्रचूर्णखदिरामोदोल्लसद्वीटिकाम् ।
लोलापाङ्गतरङ्गितैरधिकृपा - सारैर्नतानन्दिनीं
श्रीशैलस्थलवासिनीं भगवतीं श्रीमातरं भावये ॥२॥

॥ इति श्रीदेव्याः प्रातः स्मरणम् ॥२०३॥

204. गायत्रीस्तोत्रम्

नमस्ते देवि गायत्रि सावित्रि त्रिपदेऽक्षरे ।
अजरे अमरे मातस्त्राहि मां भवसागरात् ॥१॥
नमस्ते सूर्यसङ्काशे सूर्यसावित्रिकेऽमले ।
ब्रह्मविद्ये महाविद्ये वेदमातर्नमोऽस्तु ते ॥२॥
अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डव्यापिनि ब्रह्मचारिणि ।
नित्यानन्दे महामाये परेशानि नमोऽस्तु ते ॥३॥
त्वं ब्रह्मा त्वं हरिः साक्षादरुद्रस्त्वमिन्द्रदेवता ।
मित्रस्त्वं वरुणस्त्वं च त्वमग्निरश्विनौ भगः ॥४॥
पूषाऽर्यमा मरुत्वांश्च ऋषयोऽपि मुनीश्वराः ।
पितरो नागा यक्षाश्च गन्धर्वाऽप्सरसां गणाः ॥५॥

रक्षो-भूत-पिशाचाश्च त्वमेव परमेश्वरि ।
 ऋग्-यजुः-सामविद्याश्च ह्यथर्वाङ्गिरसानि च ॥६॥
 त्वमेव सर्वशास्त्राणि त्वमेव सर्वसंहिताः ।
 पुराणानि च तन्त्राणि महागममतानि च ॥७॥
 त्वमेव पञ्च भूतानि तत्त्वानि जगदीश्वरि ।
 ब्राह्मी सरस्वती सन्ध्या तुरीया त्वं महेश्वरि ॥८॥
 तत्सद्ब्रह्मस्वरूपा त्वं किञ्चित् सदसदात्मिका ।
 परात्परेषि गायत्रि नमस्ते मातरम्बिके ॥९॥
 चन्द्रे कलात्मिके नित्ये कालरात्रि स्वधे स्वरे ।
 स्वाहाकारेऽग्निवक्त्रे त्वां नमामि जगदीश्वरि ॥१०॥
 नमो नमस्ते गायत्रि सावित्रि त्वां नमाम्यहम् ।
 सरस्वति नमस्तुभ्यं तुरीये ब्रह्मरूपिणि ॥११॥
 अपराधसहस्राणि त्वसत्कर्मशतानि च ।
 मत्तो जातानि देवेशि त्वं क्षमस्व दिने दिने ॥१२॥

॥ इति गायत्रीस्तोत्रं समाप्तम् ॥२०४॥

205. गायत्री-कवचम्

विनियोगः—अस्य श्रीगायत्रीकवचस्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा ऋषयः, ऋग्-यजुः-सामा-ऽथर्वाणि छन्दांसि, परब्रह्मस्वरूपिणी गायत्री देवता, तद्बीजम्, भर्गः शक्तिः, धियः कीलकम्, मोक्षार्थं जपे विनियोगः ।

न्यासः—ॐ तत्सवितुर्ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः, ॐ वरेण्यं विष्ण्वात्मने शिरसे स्वाहा, ॐ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै वषट्, ॐ धीमहि ईश्वरात्मने कवचाय हुम् ॐ धियो यो नः सदाशिवात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ प्रचोदयात् परब्रह्मतत्त्वात्मने अस्त्राय फट् ।

ध्यानम्

मुक्ता-विद्रुम-हेम-नील-धवलच्छायैर्मुखस्त्रीक्षणै-
 र्युक्तामिन्दुकला-निबद्धमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ।
 गायत्रीं वरदा-ऽभया-ङ्कुश-कशाः शुभ्रं कपालं गुणं
 शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्ती भजे ।

कवचम्

गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे ।
 ब्रह्मसन्ध्या तु मे पश्चादुत्तरस्यां सरस्वती ॥१॥
 पावकीं च दिशं रक्षेत् पावमानी विलासिनी ।
 दिशं रौद्रीं च मे पातु रुद्राणि रुद्ररूपिणी ॥२॥
 ऊर्ध्वं ब्रह्माणी मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ।
 एवं दश दिशो रक्षेत् सर्वाङ्गे भुवनेश्वरी ॥३॥
 तत्पदं पातु मे पादो जङ्घे मे सवितुः पदम् ।
 वरेण्यं कटिदेशे तु नाभिं भर्गस्तथैव च ॥४॥
 देवस्य मे तु हृदयं धीमहीति च गल्लयोः ।
 धियः पदं च मे नेत्रे यःपदं मे ललाटके ॥५॥
 नःपदं पातु मे मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात् ।
 तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातु भालकम् ॥६॥
 चक्षुषी तु विकारार्णं तुकास्तु कपोलयोः ।
 नासापुटे वकारश्च रेकारस्तु मुखे तथा ॥७॥
 णिकार ऊर्ध्वं ओष्ठे तु यकारस्त्वधरोष्ठके ।
 आस्यमध्ये भकारस्तु गौकारश्चिबुके तथा ॥८॥
 देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कन्धदेशके ।
 स्यकारो दक्षिणे हस्ते धीकारो वामहस्तके ॥९॥
 मकारो हृदयं रक्षेद्विकार उदरे तथा ।
 धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा ॥१०॥
 गुह्यं रक्षतु योकार ऊरुणी नःपदाक्षरम् ।
 प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जङ्घदेशकम् ॥११॥
 दकारो गुल्फदेशेषु याकारः पादयुग्मकम् ।
 तकारव्यञ्जनं चैव देवताभ्यो नमो नमः ॥१२॥
 इदं तु कवचं दिव्यं बद्ध्वा शत्रून् विनाशयेत् ।
 चतुःषष्टिकला विद्या अङ्गाद्यखिलपातकैः ।
 मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१३॥

॥ इति गायत्रीकवचं समाप्तम् ॥२०५॥

206. पार्वती-पञ्चकम्

विनोदमोद-मोदिता दयोदयोज्जवलान्तरा निशुम्भशुम्भदारणे सुदारुणारुणा ।
 अखण्डगण्डदण्ड-मुण्डमण्डली-विमण्डिता प्रचण्ड-चण्डरश्मिरश्मि-राशि-शोभिता शिवा ॥१॥
 अमन्दनन्दनन्दिनी धराधरेन्द्रनन्दिनी प्रतीर्णशीर्णतारिणी सदार्यकार्यकारिणी ।
 तदन्धकान्त-कान्तक-प्रियेशकान्तकान्तका मुरारिकामचारिकाम-मारिधारिणी शिवा ॥२॥
 अशेषवेषशून्यदेश-भर्तृकेशशोभिता गणेशदेवतेशशेष-निर्निमेषवीक्षिता ।
 जितस्वशिञ्जिता लिकुञ्ज-पुञ्जमञ्जुञ्जिता समस्तमस्तकस्थिता निस्तकामकस्तवा ॥३॥
 ससंभ्रमं भ्रमं भ्रमं भ्रमन्ति मूढमानवा मुधा बुधाः सुधां विहाय धावमानमानसाः ।
 अधीनदीनहीनवारि-हीनमीनजीवना ददातु शंप्रदाऽनिशं वशंवदार्थमाशिषम् ॥४॥
 विलोललोचनाञ्चितैश्चितागुणै रपास्यदास्यमेवमास्य-हास्यलायस्यकारिणी ।
 निराश्रया श्रयाश्रयेश्वरी सदा वरीयसी करोतु शं शिवा निशंहि शङ्कराङ्कशोभिनी ॥५॥

॥ इति पार्वती-पञ्चकं समाप्तम् ॥२०६॥

207. मातृस्तुति-रत्न-पञ्चकम्

ललिता ललितानेन्दुबिम्बा बिजिताब्जातदलप्रभायताक्षी ।
 विनताश्रितभक्तपोषिणी साभवतापं तनुतां नयत्वजस्त्रम् ॥१॥
 करुणावरुणालया गुणाचरणा सर्वसुपर्ववन्दिता ।
 चरणानतसिद्धचारणा शरणं मे स्तुऽसदा मुदाऽम्बिका ॥२॥
 गिरिजा मुनिजातसन्नुता दनुजारण्यमहत्कुठारिका ।
 मनुजापकसर्वकामदा तनुजान्नोऽवतु भारतोद्भवान् ॥३॥
 या कालिदासादिमहाकवीन्द्रैः सुपूजिता सर्वकलाप्रपूत्यै ।
 सा श्यामला संस्कृतराष्ट्रभाषा-प्रचारकाणां सहकारिणी स्यात् ॥४॥
 दुर्गानर्गलवाग्द्वरीविलसिता स्वर्गादिसन्धायिनी ।
 शुम्भोद्दम्भ - निशुम्भमुख्यदनुज - ग्रावोग्रदम्भोलिका
 माता संस्कृतभारती विकसनं कुर्यात् सदा भारते ॥५॥

॥ इति मातृस्तुतिरत्नपञ्चकं समाप्तम् ॥२०७॥

208. श्रीस्तोत्रम्

पुक्षर उवाच

राजलक्ष्मीस्थिरत्वाय यथेन्द्रेण पुरा श्रियः ।
स्तुतिः कृता तथा राजन् जयार्थं स्तुतिमाचरेत् ॥१॥

इन्द्र उवाच

नमस्ते सर्वलोकानां जननीमब्धिसम्भवाम् ।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षः स्थलस्थिताम् ॥२॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी ।
सन्ध्या रात्रिः प्रभा मूर्तिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ॥३॥
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने ।
आत्मविद्या च देवी त्वं विमुक्तफलदायिनी ॥४॥
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च ।
सौम्याऽसौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम् ॥५॥
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः ।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः ॥६॥
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम् ।
विनष्टप्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितम् ॥७॥
दाराः पुत्रास्तथागारं सुहृद्भान्यधनादिकम् ।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ॥८॥
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम् ।
देवि त्वददृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम् ॥९॥
त्वमम्बा सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता ।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम् ॥१०॥
मानं कोपं तथा कोषं मा गृहं मा परिच्छदम् ।
मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ॥११॥
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गान् मा पशून्मा विभूषणम् ।
त्यजेथाः मम देवस्य विष्णोर्वक्षः स्थलालये ॥१२॥

सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ।
 त्यजन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयाऽमले ॥१३॥
 त्वयाऽवलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः ।
 कुलैश्चयैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥१४॥
 स शलध्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः सबुद्धिमान् ।
 स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ॥१५॥
 सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।
 पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ॥१६॥
 न ते वर्णयितुं शक्ता गुणान् जिह्वापि वेधसः ।
 प्रसीद देवि पद्माक्षि माऽस्मांस्त्याक्षीः कदाचन ॥१७॥

पुष्कर उवाच

एवं स्तुता ददौ श्रीश्च वरमिन्द्राय चेप्सितम् ।
 सुस्थिरत्वं च राज्यस्य संग्रामविजयादिकम् ॥१८॥
 स्वस्तोत्रपाठश्रवणकर्तृणां भुक्तिमुक्तिदम् ।
 श्रीस्तोत्रं सततं तस्मात्पठेच्च शृणुयान्नरः ॥१९॥

॥ इति श्रीस्तोत्रं समाप्तम् ॥२०८॥

209 .राधाकृपाकटाक्षस्तोत्रम्

मुनीन्द्रवृन्दवन्दिते त्रिलोकशोकहारिणी प्रसन्नवक्त्रपङ्कजे निकुञ्जभूवि लासिनी ।
 व्रजेन्द्रभानुनन्दिनि व्रजेन्द्रसुनुसङ्गते कदा करिष्यसीह मां कृपा कटाक्षभाजनम् ॥१॥
 अशोकवृक्ष-वल्लरी-वितानमण्डपस्थिते प्रवालबालपल्लव-प्रभारुणाङ्घ्रिकोमले ।
 वराभयस्फुरत्करे प्रभूतसम्पदालये कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥२॥
 अनङ्गरङ्ग-मङ्गल-प्रसङ्गभङ्गुरभुवां सुविभ्रमैः ससम्भ्रमैः दृगन्तबाण-पातनैः ।
 निरन्तरं वशीकृत-प्रतीत-नन्दनन्दने कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥३॥
 तडित्सुवर्णचम्पक-प्रदीप्तगौरविग्रहे मुखप्रभा-परास्तकोटि-शारदेन्दुमण्डले ।
 विचित्रचित्रसञ्चार-च्चकोरशावलोचने कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥४॥
 मन्दोन्मदातिथौवने प्रमोदमान-मण्डिते प्रियानुरागरञ्जिते कलाविलासपण्डिते ।
 अनन्यधन्य-कुञ्जराज-कामकेलिकोविदे कदा करिष्यसीह मां कृपाकटाक्षभाजनम् ॥५॥

अशेषहावभावधीर-हीरहारभूषिते प्रभूतशात-कुम्भकुम्भ-कुम्भिकुम्भसुस्तनि ।
 प्रशस्तमन्द-हास्यचूर्ण-पूर्णसौख्यसागरे कदा करिष्यसीह मां कृपा कटाक्षभाजनम् ॥६॥
 मृणालबालवल्लरी-तरङ्गरङ्गदोर्लते लताग्रलास्यलोलनीय-लोचनावलोकने ।
 ललल्लुलन-मिलमोज्ञ-मुग्धमोहनाश्रये कदा करिष्यसीह मां कृपा कटाक्षभाजनम् ॥७॥
 सुवर्णमालिकाञ्चिते त्रिरेखकम्बुकण्ठगे त्रिसूत्रमङ्गलीगुण-त्रिरत्नदीप्तिदीधिते ।
 सलोलनीलकुन्तले प्रसूनगुच्छगुम्फिते कदा करिष्यसीह मां कृपा कटाक्षभाजनम् ॥८॥
 नितम्ब-बिम्बलम्बमान-पुष्पमेखलागुणप्रशस्तरत्न-किङ्किणी-कलापमध्यमञ्जुले ।
 करीन्द्रशुण्डदण्डिका-वरोहसौभागोरुके कदा करिष्यसीह मां कृपा कटाक्षभाजनम् ॥९॥
 अनेकमन्त्रनादमञ्जु-नूपुरारवस्खलत् समाजराजहंसवंश-निक्वणातिगौरवे ।
 विल्लोहेमवल्लरी-विडम्बिचारु-चङ्क्रमे कदा करिष्यसीह मां कृपा कटाक्षभाजनम् ॥१०॥
 अनन्तकोटि-विष्णुलोक-नम्रपद्मजार्चितेहिमाद्रिजा-पुलोमजा-विरञ्जिजा-वख्रदे ।
 अपारसिद्धि-वृद्धिदिग्ध-सत्पदाङ्गुलीनखे कदा करिष्यसीह मां कृपा कटाक्षभाजनम् ॥११॥
 मखेश्वरि क्रियेश्वरि स्वधेश्वरि सुरेश्वरि त्रिवेदभारतीश्वरी प्रमाणशासनेश्वरि ।
 रमेश्वरि क्षमेश्वरि प्रमोदकाननेश्वरि व्रजेश्वरि व्रजाधिपे श्रीराधिके नमोस्तु ते ॥१२॥
 इतन्तीदमदभुतस्तवं निशम्य भानुनन्दिनि करोतु सन्ततं जनं कृपा कटाक्षभाजनम् ।
 भवेत्तदैव सञ्चित-त्रिरूपकर्मनाशनम् लभेत्तदा व्रजेन्द्रसुनु-मण्डलप्रवेशनम् ॥१३॥
 राकायां च सिताष्टम्यां दशम्यां च विशुद्धया ।
 एकादश्यां त्रयोदश्यां यः पठेत् साधकः सुधीः ॥१४॥
 यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति साधकः ।
 राधाकृपा कटाक्षेण भक्तिः स्यात् प्रेमलक्षणा ॥१५॥
 ऊरुमात्रे नाभिमात्रे हन्मात्रे कण्ठमात्रके ।
 राधाकुण्डजले स्थित्वा यः पठेत् साधकः शतम् ॥१६॥
 तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याद् वाञ्छितार्थफलं लभेत् ।
 ऐश्वर्यं च लभेत् साक्षाद् दृशा पश्यति राधिकाम् ॥१७॥
 तेन सा तत्क्षणादेव तुष्टा दत्ते महावरम् ।
 येन पश्यति नेत्राभ्यां तत्प्रियं श्यामसुन्दरम् ॥१८॥
 नित्यलीलाप्रवेशं च ददाति श्रीव्रजाधिपः ।
 अतः परतरं प्राप्यं वैष्णवानां न विद्यते ॥१९॥

॥ इति राधाकृपा कटाक्षस्तोत्रं समाप्तम् ॥२०९॥

210. श्रीराधास्तोत्रम्

स्तोत्रं च सामवेदोक्तं प्रपठेत् भक्तिपूर्वकम् ।
 राधा रासेश्वरी रम्या परमा च परात्मनः ॥१॥
 रासोद्भवा कृष्णकान्ता कृष्णवक्षःस्थलस्थिता ।
 कृष्णप्राणाधिदेवी च महाविष्णुप्रसूरपि ॥२॥
 सर्वथा विष्णुमाया च सत्या सत्या सनातनी ।
 ब्रह्मस्वरूपा परमा निर्लिप्ता निर्गुणा परा ॥३॥
 वृन्दावनेशा विजया यमुनातटनिवासिनी ।
 गोलकवासिनी गोपी गोपीशा गोपमातृका ॥४॥
 सानन्दा परमानन्दा नन्दनन्दनकामिनी ।
 वृषभानुसुता शान्ता कान्ता पूर्णतमस्य च ॥५॥
 काम्या कलावती कन्या तीर्थपूता सती निभा ।
 सप्तत्रिंशच्च नामानि वेदोक्तानि शुभानि च ॥६॥
 सारभूतानि पुण्यानि सर्वनामसु नारद ।
 यः पठेत् संयतः शुद्धो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥७॥
 इह वै निश्चलां भक्तिं लब्ध्वा याति हरेःपदम् ।
 हरिं भक्तिं हरेदस्मिन्लभते नात्र संशयः ॥८॥
 भक्तो लक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।
 स्तोत्रस्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥९॥
 पदे पदे श्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम् ।
 कोटिजन्मार्जितात् पापात् ब्रह्महत्याशतादपि ॥१०॥
 स्तोत्रस्मरणमात्रेण मुच्यते नात्र संशयः ।
 मृतबन्ध्या काकबन्ध्या महाबन्ध्या प्रसूयते ॥११॥
 श्रुणोति वर्षमेकं या शुद्धा स्निग्धान्नभोजनी ।
 श्रुणोति मासमेकं यः सर्वाभीष्टं लभेन्नरः ॥१२॥
 सामवेदे कुमारं तमित्याह कमलोद्भवः ॥१३॥

॥ इति श्रीराधास्तोत्रं समाप्तम् ॥२१०॥

211. राधासहस्रनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

इति ते कथितं देवि किमन्यत् कथयामि ते।
श्रोत्री त्वं परमेशानि अहं वक्ता च शाश्वतः॥१॥

देव्युवाच

किमप्यन्यन्महादेव पृच्छामि यदि रोचते।
हृदये तव देवेश नाना तन्त्राणि सन्ति वै॥२॥
नाना तन्त्राणि मन्त्राणि रहस्यानि पृथक् - पृथक्।
बहूनि तव देवेश हृदये देव सुव्रत ॥३॥
कृपया परमेशान कथयस्व दयानिधे॥४॥

ईश्वर उवाच

पद्मिन्याः परमेशानि रहस्यं नास्ति सुन्दरी।
त्वयि सर्वं महेशानि कथितं परमेश्वरि॥५॥
किञ्चिदन्यन्महेशानि नास्ति मे गोचरे प्रिये।
यद् यदस्ति महेशानि रहस्यं कथितं मया॥६॥

देव्युवाच

पद्मिन्याः परमेशान रहस्यं कथय प्रभो।
यदि नो कथ्यते देव त्यजामि विग्रहं तदा॥७॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि कुरङ्गाक्षि एतत् प्रौढं कथं तव।
प्रौढत्वं यदि चार्वङ्गि रहस्यं कथयामि ते॥८॥
रहस्यं शृणु चार्वङ्गि स्तोत्र परमदुर्लभम्।
स्तोत्रं सहस्रनामाख्यं उपविद्यासुसम्मतम्॥९॥
उपविद्यासु देवेशि अतिगुप्तं मनोहरम्।
एतत् स्तोत्रं महेशानि पद्मिनीसम्मतं सदा॥१०॥
एतत्तत्तु पद्मिनीस्तोत्रमाश्चर्यं परमाद्भुतम्।
यन्नोक्तं सर्वतन्त्रेषु तव भक्त्या प्रकाशितम्॥११॥

अस्य श्रीपद्मिनीसहस्रनामस्तोत्रस्य श्रीकृष्णऋषिर्महिषमर्दिन्यधिष्ठात्री देवता
गायत्रीछन्दो महाविद्यासिद्ध्यर्थे विनियोगः । ॐ ह्रीं ऐं पद्मिन्यै राधिकायै ।
श्रीराधा रमणीरूपा निरूपमरूपवती ।

रूपधन्या विशालाक्षी वश्या वामा रजोगुणा ॥१२॥
रक्ताङ्गी रक्तपुष्पाभा राधा रासपरायणा ।
रम्भावती रूपशीला रदनी रञ्जिनी रतिः ॥१३॥
रतिप्रिया रमणीया रसपुण्डा रसायना ।
रासमध्ये रासरूपा रसवेशा रसोत्सुका ॥१४॥
रसवती रसोल्लासा रसिका रसभूषणा ।
रसमालाधरी रङ्गी रसपट्टपरिच्छदा ॥१५॥
कमला कल्पलतिका कुलव्रतपरायणा ।
कामिनी कमला कुन्ती कलिकल्मषनाशिनी ॥१६॥
कुलीना कुलवती कामी - काम - संदीपनी तथा ।
कौमारी कृष्णवनिता कामार्ता कामरूपिणी ॥१७॥
कामुकी कलुषघ्नी च कुलज्ञा कुलपण्डिता ।
कृष्णवर्णा कृशाङ्गी च कृष्णवस्त्र - परिच्छदा ॥१८॥
कान्ता कामस्वरूपा च कामरूपा कृपावती ।
क्षेमा क्षमावती चैव खेलत्खञ्जनगामिनी ॥१९॥
खस्था खगाखगस्थात्री खगणस्य विहारिणी ।
गरिष्ठा गरिमा गङ्गा गया गोदावरी गतिः ॥२०॥
गान्धारी गुणिनी गौरी गङ्गा गोकुलवासिनी ।
गान्धर्वी गानकुशला गुणा गुप्तविलासिनी ॥२१॥
घर्घरा घर्मदा घर्मा घनस्था घनवासिनी ।
घृणा घृणावती घोरा घोरकर्मविवर्जिता ॥२२॥
चन्द्रा चन्द्रप्रभा चैव चन्द्रमूर्तिपरिच्छदा ।
चन्द्ररूपा च चन्द्राख्या चञ्चला चारुभूषणा ॥२३॥
चतुरा चारुशीला च चम्पा चम्पावती तथा ।
चन्द्रेखा चन्द्रकला चारुवेशा विनोदिनी ॥२४॥

चन्द्रचन्दनभूषाङ्गी चार्चङ्गी चन्द्रभूषणा ।
 चित्रिणी चित्ररूपा च चित्रमूर्तिधरा सदा ॥२५॥
 छद्मरूपा छद्मवेशी श्वेतच्छत्र - विधारिणी ।
 छत्रातपा च छत्राङ्गी छत्रघ्नी छत्रपालिनी ॥२६॥
 छुरितामृतधारौघा छद्मवेश - निवासिनी ।
 छटीकृतमरालौघा छटीकृत - निजामृता ॥२७॥
 जयन्ती च जगन्माता जननी जन्मदायिनी ।
 जया जैत्री च जरती जीवनी जगदम्बिका ॥२८॥
 जीवा जीवस्वरूपा च जाड्य - विध्वंसकारिणी ।
 जगज्जननि संश्रेष्ठा जगद्धेतुर्जगन्मयी ॥२९॥
 जगदानन्दजननी जनयित्री जनास्पदा ।
 झङ्कारवाहिनी झञ्झा झञ्झार - निर्झरावती ॥३०॥
 टङ्कारटङ्किनी टङ्का टङ्किता टङ्करूपिणी ।
 डम्बरा डम्भरा डम्बा डमडम्बा च डम्बुरा ॥३१॥
 ढोकिता शेषनिर्घोषा ढलढेलितलोचना ।
 तापिनी त्रिपथा तीर्थवासिनी त्रिदशेश्वरी ॥३२॥
 त्रिलोक्यत्रयी त्रैलोक्यतरणी तरणे तरुः ।
 तापहन्त्री तपा तापा तपनीया तपावती ॥३३॥
 तापिनी त्रिपुरादेवी त्रिपुराज्ञाकरी सदा ।
 त्रिलक्षा तारिणी तारा तारामायक - मोहिनी ॥३४॥
 त्रैलोक्य - गमना तीर्णा तुष्टिता त्वरिता त्वरा ।
 तृष्णा तरङ्गिणी तीर्था त्रिविक्रम - विधारिणी ॥३५॥
 तपोमयी तापसी च तपस्या तपसः फला ।
 त्रैलोक्यव्यापिनी तुष्टा तृप्तिस्तुत्या तुला तथा ॥३६॥
 त्रैलोक्यमोहिनी तूर्णा त्रैलोक्यविभवप्रदा ।
 त्रिपदी च तथा तथ्या तिमिरध्वंसचन्द्रिका ॥३७॥
 तेजोरूपा तपःपारा त्रिपुरा त्रिपदस्थिता ।
 त्रयी तन्वी तापहरा तपनाङ्गजवाहिनी ॥३८॥

तरिस्तरणितारुण्या तपिता तरणी प्रिया ।
 तीव्रपापहरा तुल्या तुलपापतनूनपात् ॥३९॥
 दारिद्र्यनाशिनी दात्री दक्षा देया दयावती ।
 दिव्या दिव्यस्वरूपा च दीक्षा दक्षा दया द्रवा ॥४०॥
 दिव्यरूपा दिव्यमूर्तिर्दैत्येन्द्रप्राणनाशिनी ।
 दुता च दूतरूपा च दन्दशूकविनाशिनी ॥४१॥
 दुर्वारा दमनीया च देवकार्यकरी सदा ।
 देवप्रिया देवयाज्या दैवा दैवधिया सदा ॥४२॥
 दिक्पालपददात्री च दीर्घाद्या दीर्घलोचना ।
 दुष्टद्वेषकामदुघा दोग्ध्री दूषणवर्जिता ॥४३॥
 दुग्धाब्धि सदृशाभाषा दिव्या दिव्यगतिप्रिया ।
 द्युनदी दीनशरणा दिव्यदेह - विहारिणी ॥४४॥
 दुर्गमा दरिमा दामा दूरघ्नी दूरवासिनी ।
 दुर्विगाह्या दयाधारा दूरसन्तापनाशिनी ॥४५॥
 दुराशया दुराधारा द्राविणी द्रुहिनस्तुता ।
 दैत्यशुद्धिकरी देवी सदा दानवसिद्धिदा ॥४६॥
 दुर्बुद्धिनाशिनी देवी सततं दानदायिनी ।
 दानदात्री च देवेशी द्यावाभूमि - विगाहिनी ॥४७॥
 दृष्टिदा दृष्टिफलदा देवता गृहसंस्थिता ।
 दीर्घव्रतकरी दीर्घा दीर्घधर्मा दयावती ॥४८॥
 दण्डिनी दण्डनीतिश्च दीप्तदण्डधरार्चिता ।
 दानार्चिता द्रवद्रव्या द्रव्यैकनियमापरा ॥४९॥
 दुष्टसन्तापशाम्या च दात्री द्रवद्युरोधिनी ।
 देवी दिव्या बलवती दान्ता दतजनप्रिया ॥५०॥
 दारिद्रादितटा दुर्गा दुर्गादन्यप्रचारिणी ।
 धर्मरूपा धर्मधुरा धेनुरूपा धृतिर्धुवा ॥५१॥
 धेनुदाना ध्रुवस्पर्शा धर्मकामार्थ - मोक्षदा ।
 धर्मिणी धर्ममाता च धर्मधात्री धनुर्धरा ॥५२॥

धात्री ध्येया धरा धर्मधारिणी धृतकल्मषी ।
 धनदा धर्मदा धन्या धन्यदा धान्यदा धना ॥५३॥
 धन्या धनाधिरूपा च धरित्री धनपूरिता ।
 धारणा धनरूपा च धर्माधर्म - प्रचारिणी ॥५४॥
 धर्मिणी धर्मतन्त्राख्या धम्मिल्लामलकेशिनी ।
 धर्मप्रचारनिरता धर्मरूपा धुरन्धरी ॥५५॥
 धनुर्विद्या धरी धात्री धनुर्विद्या विशारदा ।
 निरानन्दा निरीहा च निर्वाणद्वार - संस्थिता ॥५६॥
 निर्वाणपदवीदात्री नन्दिनी नाकनायिका ।
 नारायणी निषिद्धघ्नी निजरूपप्रकाशिनी ॥५७॥
 नमस्या निर्द्वयानन्दनता नूतनरूपिणी ।
 निर्मला निर्मलाभा सा निरख्या निरपत्रपा ॥५८॥
 नित्यानन्दमयी नित्या नित्या-नूतन-विग्रहा ।
 निषिद्धा नीतिधैर्या च निर्वाणपददीपिका ॥५९॥
 निःशङ्का च निरातङ्का निर्नाशित - महामनाः ।
 निर्मलानन्दजननी निर्मलश्यामवेशिनी ॥६०॥
 निरवद्यकुलस्रष्टी नित्यानन्दस्वरूपिणी ।
 निर्णया निर्णयज्ञाता निषिद्धकर्मवर्जिता ॥६१॥
 नित्योत्सवा नित्यतृप्ता नमस्कार्या निरञ्जना ।
 निष्ठावती निरातङ्का निर्लेपा निश्चलात्मिका ॥६२॥
 निरवद्या निरीशा च निरंजनपुरस्थिता ।
 पुण्यप्रदा पुण्यकरी पुण्यगर्भा पुरातनी ॥६३॥
 पुण्यरूपा पुण्यदेहा पुण्यगीता च पावनी ।
 पूजा पवित्रा परमा परा पुण्यविभूषणा ॥६४॥
 पुण्यदात्री पुण्यधरा पुण्या पुण्यप्रवाहिनी ।
 पुण्यदेहा पुण्यवती पूर्णिमा पूर्णचन्द्रभा ॥६५॥
 पौर्णमासीपरा पद्मा पथज्ञा पद्मगन्धिनी ।
 पद्मिनी पद्मवस्त्रा च पद्ममालाधरा सदा ॥६६॥

पद्मोद्भवा परथ्या च परमानन्दरूपिणी ।
 प्रकाश्या परमाश्चर्या पद्मगर्भनिवासिनी ॥६७॥
 पावनी च तथा पूता पवित्रा परमाकला ।
 पद्मार्चिता पद्मसंस्था पद्ममाता पुरातनी ॥६८॥
 पद्मासनगता नित्या पद्मासन - परिच्छदा ।
 शुक्लपद्मासनगता रक्तपद्मासना तथा ॥६९॥
 पीतपद्मासनगता कृष्णपद्मस्थिता तथा ।
 परार्थ - दायिनी पद्मा वनवासपरायणा ॥७०॥
 प्रकाशिनी प्रगल्भा च पुण्यश्लोका च चपावनी ।
 फलहन्त्री फलहरा फलिनी फलरूपिणी ॥७१॥
 फुल्लेन्दीलोचना फुल्ला फुल्लकोरकगन्धिनी ।
 फलिनी फालिनी फेणा फुल्लच्छादितपातका ॥७२॥
 विश्वमाता च विश्वेशी विश्वा विश्ववरप्रिया ।
 ब्रह्मण्या ब्राह्मणी ब्राह्मी ब्रह्मज्ञा विमलामला ॥७३॥
 बहुला बाहुला बल्ली बल्लरी वनदायिनी ।
 विक्रा-ता विक्रमा माला बहुभाग्यविलोचना ॥७४॥
 विश्वामित विष्णुसखी वैष्णवी विष्णुवल्लभा ।
 विरूपाक्षप्रिया देवी विभूतिविश्वतोमुखी ॥७५॥
 वेद्यवेदरता वाणी वेदाक्षरसमन्विता ।
 विद्या विद्यावती वन्द्या बृहती ब्रह्मवादिनी ॥७६॥
 वरदा विप्रहृष्टा च वरिष्ठा च विशोधिनी ।
 विद्याधरी वसुमती विप्रवृद्धा विशोधिता ॥७७॥
 व्योमस्थानवती वामा विधात्री बिबुधप्रिया ।
 बुद्धिर्विनाशिनी वित्ता ब्रह्मरूपा वरानना ॥७८॥
 वासिनी ब्रह्मजननी ब्रह्महत्यापहारिणी ।
 ब्रह्मविष्णुस्वरूपा च सदा विभववर्धिनी ॥७९॥
 विभासिणी व्यापिनी च व्यापिका परिचारिका ।
 विपन्नार्तिहरा देवी विनयव्रतचारिणी ॥८०॥

विपन्नशोकसंहर्त्री	विपञ्ची	वाद्यत्परा ।
वेणुवाद्यपरा	देवी	वेणुश्रुतिपरायणा ॥८१॥
वर्चस्विनी	बलकरी	बलमूला विवस्वती ।
विपाप्मा	विशिखा	चैव विकल्पपरिवर्जिता ॥८२॥
बुद्धिदा	बृहती	देवी विधिवच्छिन्न - संशया ।
विचित्राङ्गी	विचित्राभा	विच्छा विभववर्धिनी ॥८३॥
विजया	विनया	वन्द्या वामदेवी वरप्रदा ।
विषघ्नी	च	विशालाक्षी विज्ञानवित्तमानिनी ॥८४॥
भद्रा	भोगवती	भव्या भवानी भयनासिनी ।
भूतधात्री	भयहरी	भक्तवश्या भयापहा ॥८५॥
भक्तिदा	भयहा	भेरी भक्तदुर्गप्रदारिणी ।
भागीरथी	भानुमती	भाग्यदा भगनिर्हिता ॥८६॥
भवप्रिया	भूततुष्टिभूतिदा	भूतभूषणा ।
भोगवती	भूतिमती	भव्यरूपा भ्रमिर्भ्रमा ॥८७॥
भूरिदा	भक्तिसुलभा	भाग्यवृद्धिकरी सदा ।
भिक्षुमाता	भिक्षुनिभा	भव्या भवस्वरूपिणी ॥८८॥
महामाया	मातृप्रिया	महानन्दा महोदरी ।
मतिर्मुक्तिर्मनोज्ञा	च	महामङ्गलदायिनी ॥८९॥
महापुण्या	महादात्री	मैथुनप्रियलालसा ।
मनोज्ञा	मालिनी	माल्या मणिमामिष्यधारिणी ॥९०॥
मुनिस्तुता	मोहकारी	मोहहन्त्री मदोत्कटा ।
मधुपानरता	मद्या	मदाघूर्णितलोचना ॥९१॥
मधुपानप्रमत्ता	च	मधुलुब्धा मधुव्रता ।
माधवी	मालिनी	मान्या मनोरथपथातिगा ॥९२॥
मोक्षैश्वर्यप्रदा	मर्त्या	महापद्मवनाश्रिता ।
महाप्रभावा	महती	मृगाक्षी मीनलोचना ॥९३॥
महाकाठिन्यसम्पूर्ण	महाक्षी	महती कला ।
मुक्तिरूपा	महामुक्ता	मणिमाणिक्यभूषणा ॥९४॥
मुक्ताफलविचित्राङ्गी		मुक्तारञ्जितनासिका ।

महामाणिक्यरचि ता महाभूषणभूषिता ।
मायावती मोहमन्त्री महाविद्या विधारिणी ॥१६॥
महामेधा महाभूतिर्महामाया प्रिया सखी ।
मनोहारी महोपाया महामणिविभूषिता ॥१७॥
महामहोप्रणयिनी महामङ्गलदायिनी ।
यशस्विनी यशोदा च यमुनावारिहारिणी ॥१८॥
योगसिद्धिकरी यज्ञा यज्ञेशवन्दितप्रिया ।
यज्ञेशी यज्ञफलदा यजनीया यशस्करी ॥१९॥
योगयोनिर्योगसिद्धा योगिनी योगबुद्धिदा ।
योगयुक्ता यमाद्यष्टसिद्धि - र्यज्ञैकधारिणी ॥२०॥
यमुनाजलसेव्या च यमुनाजलहारिणी ।
यामिनी यमुना याम्या यमलोक - निवासिनी ॥२१॥
लोकालोकविलासा च लोलकल्लोलमालिका ।
लोलाक्षी लोकमाता च लोकानन्दप्रदायिनी ॥२२॥
लोकबन्धुलोकधात्री लोकालोकनिवासिनी ।
लोकत्रयनिवासा च लक्षलक्षणलक्षिता ॥२३॥
लीलालोका च लावण्या लघिमा लसदीक्षणा ।
वासुदेवप्रिया वामा वसन्तसमयप्रिया ॥२४॥
वासन्ती वसुदा वज्रा वेणुवादपरायणा ।
वीणावाद्यप्रमत्ता च वीणानादविभूषणा ॥२५॥
वेणुवाद्यरता चैव वंशीनादविभूषणा ।
शुभाऽशुभरतिः शान्तिः च शैशवा शान्तिविग्रहा ॥२६॥
शीतला शोषिता शोभा शुभदा शुभदायिनी ।
शिवप्रिया शिवानन्दा शिवपूजासु तत्परा ॥२७॥
शिवस्तुत्या शिवसत्या शिवनित्यपरायणा ।
श्रीमती श्रीनिवासा च श्रुतिरूपा शुभव्रता ॥२८॥
शुद्धविद्या जपकरी शुभकर्त्री शुभाशया ।
श्रुतानन्दा श्रुतिः च श्रोत्री शिवप्रेमपरायणा ॥२९॥

शोषणी शुभवार्ता च शालिनी शिवनर्तकी ।
 षड्गुणा यूपदा क्रान्ता षडङ्गश्रुतिरूपिणी ॥११०॥
 सरसा सुप्रभा सिद्धा सिद्धसिद्धिप्रदायिनी ।
 सेव्या सङ्गा सती सूक्ता सूक्तिरूपा सदा प्रिया ॥१११॥
 सम्पत्प्रदा स्तुतिःस्तुत्या स्तवनीया स्तवप्रिया ।
 स्थैर्यदा स्थैर्यगा सौख्या त्रैणसौभाग्यदायिनी ॥११२॥
 सूक्ष्मसूक्ष्मा स्वधा स्वाहा स्वधालेप - प्रमोदिनी ।
 स्वर्गप्रिया समुद्राभा सर्वपातकनाशिनी ॥११३॥
 संसारवारिणी राधा सौभाग्यवर्धिनी सदा ।
 हरप्रिया हिरण्याभा हरिणाक्षी हिरण्मयी ॥११४॥
 हंसरूपा हरिद्राभा हरिद्वर्णा शुचिस्मिता ।
 क्षेमदा क्षालिता क्षेमा क्षुद्रघण्टा विधारिणी ॥११५॥
 अपरैकं शृणु प्रौढे स्वराक्षरसमन्वितम् ।
 स्तोत्रं सहस्रनामाख्यं स्वरव्यञ्जनसंयुतम् ॥११६॥
 अजपा अतुलानन्ता अनन्तामृतदायिनी ।
 अन्नदाना अशोका च अलका अमृतश्रवा ॥११७॥
 अनाथवल्लभानन्ता अयोनिसम्भवा प्रिये ।
 अव्यक्तलक्षणा क्षुण्णा विच्छिन्ना चापराजिता ॥११८॥
 अनाथा नामभीष्टार्थ - सिद्धिदा नन्दवर्धिनी ।
 अणिमादिगुणाधारा अगण्यालिकहारिणी ॥११९॥
 अचित्तन्तयशक्ति - वलयाद्भुतरूपा च हारिणी ।
 आदिराजसुता दूती अष्टयोगसमन्विता ॥१२०॥
 अच्युता अनवच्छिन्ना अक्षुण्णशक्तिधारिणी ।
 अनन्ततीर्थरूपा च अनन्तामृतरूपिणी ॥१२१॥
 अनन्तमहिमा पारा अनन्तसुखदायिनी ।
 अर्थदा अन्नदा अर्था सदा अमृतवर्षिणी ॥१२२॥
 अविद्याजालशमनी अप्रतर्क्यगतिप्रदा ।
 अशेषविघ्नसंहन्त्री अशेषगुणगुम्फिता ॥१२३॥

अज्ञाननाशिनी	देवी	अनन्तसिद्धिदायिनी ।
अशेषपापसंहन्त्री		अशेषदेवतामयी ॥१२४॥
अघोरा	अमृतदेवी	अज्ञानतिमिरप्रदा ।
अनुग्रहपरा	देवी	अभिरामविनोदिनी ॥१२५॥
अनवद्यापरिच्छिन्ना		अत्यनन्तकलङ्किणी ।
आरोग्यदात्री	आनन्दा	आपन्नार्तिविनाशिनी ॥१२६॥
आश्चर्यरूपा	आद्यस्था	आप्तविद्या सदा प्रिया ।
आप्यायिनी	च	आलस्या आपदाहामृतप्रदा ॥१२७॥
इष्टारतिरिष्टदात्री		इष्टपूर्णफलप्रदा ।
इतिहासस्मृतिः	श्वेता	इहामुत्रफलप्रदा ॥१२८॥
इष्टा	च	इष्टरूपा च इत्यादिपरिवन्दिता ।
इन्दिरा	इतराक्षी	च इलङ्कार इधारिणी ॥१२९॥
इन्द्राणि	सेवितपदा	इन्द्रियप्रीतिदायिनी ।
ईश्वरी	ईशजननी	ईशस्यैश्वर्यदायिनी ॥१३०॥
उतङ्कशक्तिसंयुक्ता		उपमानविवर्जिता ।
उत्तमश्लोकसंसेव्या		उत्तमोत्तमरूपिणी ॥१३१॥
उक्षा उषा उधा	राधा उर्मिला	च शुचिस्मिता ।
ऊहा ऊह -	वितर्का च ऊर्ध्वधारा	च ऊर्ध्वगा ॥१३२॥
ऊर्ध्वधारा	ऊर्ध्वयोनी	उपपाविनाशिनी ।
ऋषिवृन्दस्तुता		ऋद्धिकरणत्रयनाशिनी ॥१३३॥
ऋतम्भरा	ऋद्धिदात्री	ऋक्था ऋक्थ - स्वरूपिणी ।
ऋतुप्रिया	ऋक्षमाता	ऋक्षार्चि - ऋक्षमार्गणा ॥१३४॥
ऋतुलक्षणरूपा	च	ऋतुमार्गप्रदर्शिनी ।
ऐषिताखिलसर्वस्वा		एकैकायुतदायिनी ॥१३५॥
ऐश्वर्यतर्प्यरूपा	च	ऐतिरैन्द्रशिरोमणिः ।
ओजस्विनी	औषधी	च ओजोनादौजदायिनी ॥१३६॥
ओङ्कारजनी	देवि	ओङ्कारप्रतिपादिता ।
औदार्यप्रकरा	भद्रे	औपेन्द्रौषधिविग्रहा ॥१३७॥

अश्वस्था च अमृता अम्बा अम्बालिका तथा ।
 अम्बुजाक्षी च अन्धाना अम्बुस्निग्धाम्बुजानना ॥१३८॥
 अंशुमाली अंशमुती अंशीत्यंशांशसम्भवा ।
 अन्धतामिस्रहा भद्रे अत्यन्तशोभनस्वरा ॥१३९॥
 अर्थेशा अर्थदात्री च अर्शा रूपा अनाहता ।
 शृणु नामान्तरं भद्रे ककारादिवरानने ॥१४०॥
 अत्यन्तं सुन्दरं शुद्धं निर्मलोत्पलगन्धिनी ।
 कुटन्ता करुणा कान्ता कर्मजालविनाशिनी ॥१४१॥
 कमला कल्पलतिका कलिकल्मषनाशिनी ।
 कमनीयकला कर्णा कर्परिपूजनप्रिया ॥१४२॥
 कदम्बकुसुमाभाषा सदा कोकनदेक्षणा ।
 कालिन्दीकेलिकलिता कणाकादम्बमालिका ॥१४३॥
 कान्ता लोकत्रयाकन्था कन्थरूपा मनोहरा ।
 खड्गिणी खड्गधाराभा खगाखगेन्दुधारिणी ॥१४४॥
 खे खेलगामिनी खड्गा खड्गेन्दुतलकाण्ठिता ।
 खेचरी खेचरीविद्या खगतिः ख्यातिदायिनी ॥१४५॥
 खण्डिताशेषपापौघा खलवृद्धिविनाशिनी ।
 खातेन कन्दसन्दोहा खड्गखट्वाङ्गधारिणी ॥१४६॥
 खरसन्तापशमनी खरदुःखनिकृन्तनी ।
 गुहागन्धगतिगौरी गन्धर्वनगरप्रिया ॥१४७॥
 गूढरूपा गुणवती गुर्वी गौरवरङ्गिणी ।
 ग्रहपीडाहरा गुप्ता गूढस्मिग्धमनाप्रिया ॥१४८॥
 चाम्पेयलोचना चारु चार्वङ्गी चारुरूपिणी ।
 चन्द्रचन्दनसिक्ताङ्गी चर्वनीया चिरस्थिता ॥१४९॥
 चारुचम्पकमालाड्या चलिताशेषदुष्कृता ।
 चारिताशेषवृजिना चारुताशेषमस्तुला ॥१५०॥
 रक्तचन्दनसिक्ताङ्गी रक्ताङ्गी रक्तमालिका ।
 शुक्लचन्दनसिक्ताङ्गी शुक्लाङ्गी शुक्लमालिका ॥१५१॥

पीतचन्दनसिक्ताङ्गी पीताङ्गी पीतमालिका ।
 कृष्णचन्दनसिक्ताङ्गी कृष्णाङ्गी कृष्णमालिका ॥१५२॥
 शुक्लवस्त्रपरीधाना शुक्लवस्त्रोत्तरीयका ।
 रक्तवस्त्रपरीधाना - रक्तवस्त्रोत्तरीयका ॥१५३॥
 पीतवस्त्रपरीधाना - पीतवस्त्रोत्तरीयका ।
 कृष्णपट्टपरीधाना - कृष्णपट्टोत्तरीयका ॥१५४॥
 वृन्दावनेश्वरी राधा कृष्णकार्यप्रकाशिनी ।
 पद्मिनी नागिनी गोपी कालिन्दी - अवगाहिनी ॥१५५॥
 गण्योपीश्वरप्रिया भृत्या सदा - नगरमोहिनी ।
 त्रिपुरा त्रिपुरादेवी त्रिपुराज्ञाकरी सदा ॥१५६॥
 त्रिपुरासन्निकर्षस्था त्रिपुरापरिचारिका ।
 त्रिपुरापुरसंस्था तु या राधा पद्मिनी परा ॥१५७॥
 नानासौभाग्यसम्पन्ना नानाभरणभूषिता ।
 स्तोत्रं सहस्रनामाख्यं कथितं तव भक्तितः ॥१५८॥
 एतत् स्तोत्रं च मन्त्रं च कवचं च वरानने ।
 कल्पे कल्पे च देवेशि प्रपठेद्यदि मानवः ॥१५९॥
 उपास्य राधिकां विद्याकेवलं कमलेक्षणे ।
 बहुकालेन देवेशि! उपविद्यापि सिद्ध्यति ॥१६०॥
 पद्मिनी राधिका विद्या उपविद्या सुनिश्चिता ।
 महाविद्यां महेशानि उपास्य यत्नतः स्वयम् ॥१६१॥
 प्रकटं परमेशानि राधामन्त्रेण सुन्दरी ।
 शृणु नामसहस्राणि प्रकटेयत्तुशस्यते ॥१६२॥
 कृष्णास्तु कालिका साक्षात् राधाप्रकृतिपद्मिनी ।
 हे कृष्ण राधे गोविन्द इदमुच्चार्य यत्नतः ॥१६३॥
 सदासौ वैष्णवो देवि सर्वत्रैव प्रकाशते ।
 गोविन्दो यस्तु देवेशि स्वः त्रिपुरसुन्दरी ॥१६४॥
 विना मन्त्रं विना होमं विना पूजां विना बलिम् ।
 विना पुष्पं विना गन्धं विना नित्योदितां क्रियाम् ॥१६५॥

प्राणायामं विना ध्यानं विना भूतविशोधनम् ।
 विना जपं विना दानं येन राधा प्रसीदति ॥१६६॥
 राधासहस्रनामाख्य - स्तोत्रमार्गेण पार्वती ।
 योजयेद् वैष्णवं मन्त्रं राधिकामन्त्रमेव च ॥१६७॥
 सम्पतेन्नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
 श्रुत्वा गुरुमुखान् मन्त्रं राधिकामन्त्रमेव च ॥१६७॥
 सम्पतेन्नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
 श्रुत्वा गुरुमुखान् मन्त्रं वैष्णरो भक्तितत्परः ॥१६८॥
 ततः पुरश्चरी कुर्यादिकविंशतिसंख्यकाम् ।
 पूर्णाभिषेकसिक्तस्य ततो गुरुपदार्चनम् ॥१६९॥
 विना पूर्णाभिषेकं च भवाब्धौ पारमिच्छति ।
 अज्ञस्य तस्य दुर्बुद्धेर्निरये पतनं भवेत् ॥१७०॥
 सत्यं सत्यं महेशानि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।
 भवाब्धितरणं नास्ति विना पूर्णाभिषेचनम् ॥१७१॥
 नानागमपुराणानि वेदवेदाङ्गशास्त्रतः ।
 मयोद्धृतं महेशानि सारं पूर्णाभिषेचनम् ॥१७२॥
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कुर्यात् पूर्णाभिषेचनम् ।
 कृत्वा पूर्णाभिषेकं च पठेत् राधास्तवं प्रिये ॥१७३॥
 स्तवपाठान्महेशानि सम्भवेदभनन्दनः ।
 स्तोत्रं सहस्रनामाख्यं न यस्य जपतो भयम् ॥१७४॥
 राधा कृष्णस्य देवेशि तस्य पापफलं शृणु ।
 कुम्भीपाके स पच्येत यावद् वै ब्रह्मणः शतम् ॥१७५॥
 निम्नगानां यथा श्रेष्ठा भवेद् भागीरथी प्रिये ।
 वैष्णवानां यथा शम्भुः प्रकृतीनां यथा सती ॥१७६॥
 पुरुषाणां यथा विष्णुर्नक्षत्राणां यथा शशी ।
 स्तवानां च तथा श्रेष्ठं राधास्तोत्रमिदं प्रिये ॥१७७॥
 जपपूजादिकं यद् यद् बलिहोमादिकं तथा ।
 श्रीराधास्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् ॥१७८॥

॥इति राधासहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२११॥

212. राधाकवचम्

पार्वत्युवाच

कैलास वासिन् भगवन् भक्तानु ग्रहकारक ।
 राधिकाकवचं पुण्यं कथयस्व मम प्रभो ॥१॥
 यद्यस्ति करुणा नाथ त्राहि मां दुःखतो भयात् ।
 त्वमेव शरणं नाथ शूलपाणे पिनाकधृक् ॥२॥

शिव उवाच

शृणुष्व गिरिजे तुभ्यं कवचं पूर्वसूचितम् ।
 सर्वरक्षाकरं पुण्यं सर्वहत्याहरं परम् ॥३॥
 हरिभक्तिप्रदं साक्षाद् भुक्तिमुक्ति - प्रसाधनम् ।
 त्रैलोक्या कर्षणं देवि हरिसान्निध्यकारकम् ॥४॥
 सर्वत्र जयदं देवि सर्वशत्रु - भयावहम् ।
 सर्वेषां चैव भूतानां मनोवृत्तिहरं परम् ॥५॥
 चतुर्धा मुक्तिजनकं सदानन्दकरं परम् ।
 राजसूयाश्वमेधानां यज्ञानां फलदायकम् ॥६॥
 इदं कवचमज्ञात्वा राधामन्त्रं च यो जपेत् ।
 स नाप्नोति फलं तस्य विघ्नास्तस्य पदे पदे ॥७॥
 ऋषिरस्य महादेवोऽनुष्ठुप्छन्दश्च कीर्तितम् ।
 राधाऽस्य देवता प्रोक्ता रां बीजं कीलकं स्मृतम् ॥८॥
 धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ।
 श्रीराधा मे शिरः पातु ललाटं राधिका तथा ॥९॥
 श्रीमती नेत्रयुगलं कर्णौ गोपेन्द्रनन्दिनी ।
 हरिप्रिया नासिकां च भ्रूयुगं शशिशोभना ॥१०॥
 ओष्ठं पातु कृपा देवी अधरं गोपिका तथा ।
 वृषभानुसुता दन्तांश्चिबुकं गोपनन्दिनी ॥११॥
 चन्द्रावली पातु गण्डं जिह्वां कृष्णप्रिया तथा ।
 कण्ठं पातु हरिप्राणा हृदयं विजया तथा ॥१२॥
 बाहू द्वौ चन्द्रवदना उदरं सुबलस्वना ।
 कोटियोगान्विता पातु पादौ सौभद्रिका तथा ॥१३॥
 नखांश्चन्द्रमुखी पातु गुल्फौ गोपालवल्लभा ।
 नखान् विधुमुखी देवी गोपी पादतलं तथा ॥१४॥

शुभप्रदा पातु पृष्ठं कुक्षी श्रीकान्तवल्लभा ।
 जानुदेशं जया पातु हरिणी पातु सर्वतः ॥१५॥
 वाक्यं वाणी सदा पातु धनागारं धनेश्वरी ।
 पूर्वा दिशं कृष्णरता कृष्णप्राणा च पश्चिमाम् ॥१६॥
 उत्तरां हरिता पातु दक्षिणां वृषभानुजा ।
 चन्द्रावली नैशमेव दिवा क्ष्वेडितमेखला ॥१७॥
 सौभाग्यदा मध्यदिनं सायाह्ने कामरूपिणी ।
 रौद्री प्रातः पातु मां हि गोपिनी रजनीक्षये ॥१८॥
 हेतुदा सङ्गवे पातु केतुमाला दिवार्धकः ।
 शेषाऽपराहणसमये शमिता सर्वसन्धिषु ॥१९॥
 योगिनी भोगसमये रतौ रतिप्रिया सदा ।
 कामेशी कौतुके नित्यं योगे रत्नावली मम ॥२०॥
 सर्वदा सर्वकार्येषु राधिका कृष्णमानसा ।
 इत्येतत् कथितं देवि कवचं परमाद्भुतम् ॥२१॥
 सर्वरक्षाकरं नाम महारक्षाकरं परम् ।
 प्रातर्मध्याह्नसमये सायाह्ने प्रपठेद्यदि ॥२२॥
 सर्वार्थसिद्धिस्तस्य स्याद्यद्यन्मनसि वर्तते ।
 राजद्वारे सभायां च संग्रामे शत्रुसङ्कटे ॥२३॥
 प्राणार्थनाशसमये यः पठेत् प्रयतो नरः ।
 तस्य सिद्धिर्भवेद्देवि न भयं विद्यते क्वचित् ॥२४॥
 आराधिता राधिका च तेन सत्यं न संशयः ।
 गङ्गास्नानाद्धरेर्नाम ग्रहणाद्यत्फलं लभेत् ॥२५॥
 तत्फलं तस्य भवति यः पठेत् प्रयतः शुचिः ।
 हरिद्रारोचना चन्द्रमण्डितं हरिचन्दनम् ॥२६॥
 कृत्वा लिखित्वा भूर्जे च धारयेन्मस्तके भुजे ।
 कण्ठे वा देवदेवेशि स हरिर्नात्र संशयः ॥२७॥
 कवचस्य प्रसादेन ब्रह्मा सृष्टिं स्थितिं हरिः ।
 संहारं नियतं चाऽहं करोमि कुरुते तथा ॥२८॥
 वैष्णवाय विशुद्धाय विरागगुणशालिने ।
 दद्यात् कवचमव्यग्रन् यथा नाशमवाप्नुयात् ॥२९॥

॥ इति राधाकवचं समाप्तम् ॥२१२॥

॥ इति देवीस्तोत्राणि समाप्तानि ॥

7. गङ्गादितीर्थस्तोत्राणि

213. गङ्गाष्टकम् (1)

मातः शैलसुतासपत्नि-वसुधा-शृङ्गार-हारावलि
स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये ।
त्वत्तीरे वसतस्त्वदम्बु पिबतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खत-
स्त्वन्नामस्मरतस्त्वदर्पितदृशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥१॥
त्वत्तीरे तरुकोटरान्तर्गतो गङ्गे विहङ्गो वरं
त्वन्तीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः ।
नैवाऽन्यत्र मदान्ध-सिन्धुरघटा-सङ्घट्ट-घण्टारणत्
कारत्रस्त-समस्त-वैरिवनिता-लब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥२॥
उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा
वाराणस्यां जननमरण-क्लेश-दुःखासहिष्णुः ।
न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्-कङ्कणक्काणमिश्रं
वारस्त्रीभिश्चमरमरुता वीजितो भूमिपालः ॥३॥
काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिलुण्ठितं
स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम् ।
दिव्यस्त्री-करचारु-चामरमरुत्संवीज्यमानः कदा
द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वर्वपुः ॥४॥
अभिनवबिसवल्ली पादपद्मस्य विष्णो-
र्मदन-मथन-मौलेर्मालतीपुष्पमाला ।
जयति जयपताका काऽप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातुः ॥५॥
एतत्ताल-तमाल-सालसरल-व्यालोलवल्लीलता-
च्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दु-कुन्दोज्ज्वलम् ।
गन्धर्वामर-सिद्ध-किन्नरवधूतुङ्गस्तनास्फालितं
स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥६॥

गाङ्गं वारि मनोहारि मुराचिरणच्युतम् ।
 त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥७॥
 पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि
 शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि ।
 झङ्कारकारि हरिपादरजोपहारि
 गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥८॥
 गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते
 वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः ।
 प्रक्षाल्य गात्रकलि-कल्मष-पङ्कमाशु
 मोक्षं लभेत् पतति नैव नरो भवाब्धौ ॥९॥

॥ इति गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२१३॥

214. गङ्गाष्टकम् (2)

नमस्तेऽस्तु गङ्गे त्वदङ्गप्रसङ्गाद्भुजङ्गास्तुरङ्गा कुरङ्गा प्लवङ्गाः ।
 अनुङ्गारिरङ्गाः ससङ्गा शिवाङ्गा भुजङ्गाधिपाङ्गीकृताङ्गा भवन्ति ॥१॥
 नमो जह्नुकन्ये न मन्ये त्वदन्यैर्निसर्गेन्दुचिह्नादिभिर्लोकभर्तुः ।
 अतोऽहं नतोऽहं सतो गौरतोये वसिष्ठादिभिर्गीयमानाभिधेये ॥२॥
 त्वदामज्जनात् सज्जनो दुर्जनो वा विमानैः समानः समानैर्हि मानैः ।
 समायाति तस्मिन् पुरारातिलोके पुरद्वार-संरुद्ध-दिक्पाललोके ॥३॥
 स्वरावासदम्भोलिदम्भोऽपि रम्भा-परीरम्भ-सम्भावनाधीरचेताः ।
 समाकाङ्क्षते त्वत्तटे वृक्षवाटीकुटीरे वसन्नर्तुमायुर्दिनानि ॥४॥
 त्रिलोकस्य भर्तुर्जटा-जूटबन्धात् स्वसीमान्तभागे मनाक्प्रस्खलन्तः ।
 भवान्या रुषा प्रौढसापल-भावात् करेणाहतास्त्वत्तरङ्गा जयन्ति ॥५॥
 जलोन्मज्जदैरावतोद्धानकुम्भ-स्फुरत्-प्रस्खलन्-सान्द्रसिन्दूररागे ।
 क्वचित् पद्मिनीरेणुभङ्गे प्रसङ्गे मनः खेलतां जहनुकन्यातरङ्गे ॥६॥
 भवत्तीर-वानीरं-वातोत्थधूली-लवस्पर्शतस्तत्क्षणं क्षीणपापः ।
 जनोऽयं जगत्पावने त्वत्प्रसादात् पदे पौरुहूतेऽपि धत्तेऽवहेलाम् ॥७॥
 त्रिसन्ध्यानमल्लेखकोटीरनानाविधानैक-रत्नांशुबिम्बप्रभाभिः ।
 स्फुरत्पादपीठे हठेनाष्टमूर्तेर्जटाजूटवासे नताः स्मः पदं ते ॥८॥
 इदं यः पठेदष्टकं जहनुपुत्र्यास्त्रिकालं कृतं कालिदासेन रम्यम् ।
 समायास्यतीन्द्रादिभिर्गीयमानं पदं कैशवं शैशवं न लभेत् सः ॥९॥

॥ इति गङ्गाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२१४॥

215. गङ्गाष्टकम् (3)

भगवति भवलीलामौलिमाले तवाम्भः
 कणमणुपरिमाणं प्राणिनो ये स्पृशन्ति ।
 अमर-नगरनारी-चामरग्राहिणीनां
 विगत-कलिकलङ्का-तङ्कमङ्के लुठन्ति ॥१॥
 ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
 स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहा-गण्डशैलात् स्खलन्ती ।
 क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दरितचयचमूर्निभरं भर्त्सयन्ती
 पाथोर्धि पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातुः ॥२॥
 मज्जन्मातङ्गकुम्भ-च्युतमदमदिरामोद-मत्तालजालं
 स्नानैः सिद्धाङ्गनानां कुचयुगविगलत्-कुङ्कुमासङ्गपिङ्गम् ।
 सायं-प्रातर्मुनीनां कुशकुसुमचयैश्छन्नतीरस्थनीरं
 पायात्रो गाङ्गम्भः करिकलभ-कराक्रान्तरंहस्तरङ्गम् ॥३॥
 आदावादिपितामहस्य नियमव्यापारपात्रे जलं
 पश्चात् पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् ।
 भूयः शम्भुजटाविभूषणमणिजंहोर्महर्षेरियं
 कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी भूतले ॥४॥
 शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जन्नोत्तारिणी
 पारावारविहारिणी भवभयश्रेणीसमुत्सारिणी ।
 शेषाङ्गैरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी
 काशीप्रान्तविहारिणी विजयते गङ्गा मनोहारिणी ॥५॥
 कुतो वीचिवीचिस्तव यदि गता लोचनपथं
 त्वमापीता पीताम्बरपुरनिवासं वितरसि ।
 त्वदुत्सङ्गे गङ्गे पतति यदि कायस्तनुभृतां
 तदा मातः शातक्रतवपदलाभोऽप्यतिलघुः ॥६॥
 गङ्गे त्रैलोक्यसारे सकलसुरवधूधौतविस्तीर्णतोये
 पूर्णब्रह्मस्वरूपे हरिचरणरजोहारिणी स्वर्गमार्गे ।
 प्रायश्चित्तं यदि स्यात्तव जलकणिका ब्रह्महत्यादिपापे
 कस्त्वां स्तोतुं समर्थस्त्रिजगदघहरे देवि गङ्गे प्रसीद ॥७॥

भगवति तव तीरे नीरमात्राशनोऽहं
 विगतविषयतृष्णाः कृष्णमाराधयामि ।
 सकलकलुषभङ्गे स्वर्गसोपानसङ्गे
 तरलतरतरङ्गे देवि गङ्गे प्रसीद ॥८॥
 मातः शाम्भवि शम्भुसङ्गमिलिते मौलौ निधायाञ्जलिं
 त्वत्तीरे वपुषोऽवसानसमये नारायणाङ्घ्रिद्वयम् ।
 सानन्दं स्मरतो भविष्यति मम प्राणप्रयाणोत्सवे
 भूयाद् भक्तिरविच्युता हरिहरद्वैतात्मिका शाश्वती ॥९॥
 गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतो नरः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥१०॥

॥ इति गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२१५॥

216. गङ्गाष्टकम् (4)

न शक्तास्त्वां स्तोतुं विधिहरिहरा जह्नुतनये
 गुणोत्कर्षाख्यानं त्वयि न घटते निर्गुणपदे ।
 अतस्ते संस्तुत्यै कृतमतिरहं देवि सुधियां
 विनिन्द्यो यद्वेदाश्चकितमभिगायन्ति भवतीम् ॥१॥
 तथापि त्वां पापः पतितजनतोद्धारनिपुणे
 प्रवृत्तोऽहं स्तोतुं प्रकृतिचलया बालकधिया ।
 अतो दृष्टोत्साहे भवति भवभारैकदहने
 मयि स्तुत्ये गङ्गे कुरु परकृपां पर्वतसुते ॥२॥
 न संसारे तावत्कलुषमिह यावत्तव पयो
 दहत्यार्ये सद्यो दहन इव शुष्कं तृणचयम् ।
 पलायन्ते दृष्ट्वा तव परिचरानन्तकजना
 यथा वन्या वाऽन्ये वनपतिभयाद् वामनमृगाः ॥३॥
 जना ये ते मातर्निधनसमये तोयकणिकां
 मुखे कृत्वा प्राणाञ्जहति सुरसङ्घैरनुवृता ।
 विमाने क्रीडन्तोऽमरपतिपदं यान्ति नियतं
 कथा तेषां का वा जननि तव तीरे निवसताम् ॥४॥

शिवः सर्वाराध्यो जननि विषतापोपशमनं
 चरीकर्तुं गङ्गे कलिकलुषभङ्गे पशुपतिः ।
 जटायां सन्धत्ते ललितलहरीं त्वां सुरनदी
 त्वदन्या का वन्द्या परममहिता वा त्रिभुवने ॥५॥
 जनस्तावन्मातर्दुरितभयतो बिभ्यति सृतौ
 न यावत्त्वत्तीरं नयनपथमायाति विमलम् ।
 यदाप्तं त्वत्तीरं तदनु दुरितानां न-गणना
 ततो गङ्गे! वन्द्या मुनिसमुदयास्त्वां न जहति ॥६॥
 नमामि त्वां गङ्गे श्रुतिवनविहारैकनिपुणे
 जगन्मातर्मातस्त्रिपुरहरसेव्ये विधिनुते ।
 त्वमेवाद्या दुर्गा जनहितकृते त्वं द्रवमयी
 स्वयं जाता देवि त्वमसि परमं ब्रह्म विदितम् ॥७॥
 कदा गङ्गे रम्ये तटमधिवसस्ते शिवनुते
 शिवे दुर्गे मातः सकलफलदे देवदयिते ।
 परेशे सर्वेशे श्रुतिशतनुते दक्षतनये
 सदाऽहं सञ्जलपन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥८॥
 गङ्गाष्टकमिदं पुण्यं प्रभाते यः पठेच्छुचिः ।
 सर्वाभीष्टं ततस्तस्मै ददाति सुरनिम्नगा ॥९॥

॥ इति गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२१६॥

217. गङ्गास्तोत्रम्

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
 शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले ॥१॥
 भागिरथि सुखदायिनि मातस्तव जलमहिमा निगमे ख्यातः ।
 नाऽहं जाने तव महिमानं पाहि कृपामयि मामज्ञानम् ॥२॥
 हरिपदपाद्यतरङ्गिणि गङ्गे हिमविधुमुक्ताधवलतरङ्गे ।
 दुरीकुरु मम दुष्कृतिभारं कुरु कृपया भवसागरपारम् ॥३॥
 तव जलममलं येन निपीतं परमपदं खलु तेन गृहीतम् ।
 मातर्गङ्गे त्वयि यो भक्तः किल तं द्रष्टुं न यमः शक्तः ॥४॥
 पतितोद्धारिणि जाह्नवि गङ्गे खण्डितगिरिवरमण्डितभङ्गे ।
 भीष्मजननि हे मुनिवरकन्ये पतितनिवारिणि त्रिभुवनधन्ये ॥५॥

कल्पलतामिव फलदां लोके प्रणमति यस्त्वां न पतति शोके ।
 पारावारविहारिणि गङ्गे विमुखयुवतिकृततरलापाङ्गे ॥६॥
 तव चेन्मातः स्रोतः स्नातः पुनरपि जठरे सोऽपि न जातः ।
 नरकनिवारिणि जाह्नवि गङ्गे कलुषविनाशिनि महिमोत्तुङ्गे ॥७॥
 पुनरसदङ्गे पुण्यतरङ्गे जय जय जाह्नवि करुणापाङ्गे ।
 इन्द्र-मुकुटमणि-राजितचरणे सुखदे शुभदे भृत्यशरण्ये ॥८॥
 रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम् ।
 त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मय खलु संसारे ॥९॥
 अलकानन्दे परमानन्दे कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये ।
 तव तटनिकटे यस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः ॥१०॥
 वरमिह नीरे कमठो मीनः किं वा तीरे शरटः क्षीणः ।
 अथवा श्वपचो मलिनो दीनस्तव न हि दूरे नृपतिकुलीनः ॥११॥
 भो भुवनेश्वरि पुण्ये धन्ये देवि द्रवमयि मुनिवरकन्ये ।
 गङ्गास्तवमिममलं नित्यं पठति नरोः यः स जयति सत्यम् ॥१२॥
 येषां हृदये गङ्गाभक्तिस्तेषां भवति सदा सुखमुक्तिः ।
 मधुराकान्तपद्मटिकाभिः परमानन्दकलितललिताभिः ॥१३॥
 गङ्गास्तोत्रमिदं भवसारं वाञ्छितफलदं विमलं सारम् ।
 शङ्करसेवकशङ्कररचितं पठति सुखी स्तव इति च समाप्तः ॥१४॥

॥ इति गङ्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२१७॥

218. गङ्गास्तवः

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे गङ्गास्तवकमुत्तमम् ।
 शोक-मोह-हरं पुंसामृषिभिः परिकीर्तितम् ॥१॥

ऋषयः ऊचुः

इयं सुरतरङ्गिणी भुवनवारिधेस्तारिणी
 स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्संसदः ।
 सुमेरुशिखरामरप्रियजला मलक्षालिनी
 प्रसन्नवदना शुभा भवभयस्य विद्राविणी ॥२॥

भगीरथरथानुगा सुकरीन्द्रदर्पापहा
 महेशमुकुटप्रभा गिरिशरःपताका सिता ।
 सुराऽसुरनरोरगैरजभवाच्युतैः संस्तुता
 विमुक्तिफलशालिनी कलुषनाशिनी राजते ॥३॥
 पितामह-कमण्डलुप्रभव-मुक्तिबीजा लता
 श्रुति-स्मृतिगणस्तुत-द्विजकुलालबालावृता ।
 सुमेरुशिखराभिदानिनिपातिता त्रिलोकवृता
 सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते ॥४॥
 चरद्विहगमालिनी सगरवंशमुक्तिप्रदा
 मुनीन्द्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
 सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसन्दर्शन-
 प्रणामगुणकीर्तनादिषु जगत्सु संराजते ॥५॥
 महाविषसुताङ्गना हिमगिरीशकूटस्तना
 सफेनजलहासिनी सितमरालसञ्चारिणी ।
 चलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
 रसोल्लसितगामिनी जलाधिकामिनी राजते ॥६॥
 क्वचिन्मुनिगणैः स्तुता क्वचिदनङ्गसम्पूजिता
 क्वचित्कलकलस्वना क्वचिदधीरयादोगणा ।
 क्वचिद्रविकरोज्ज्वला क्वचिदुग्रपाताकुला
 क्वचिज्जगनविगाहिता जयति भीष्ममाता सती ॥७॥
 स एव कुशली जनः प्रणमतीह भागीरथी
 स एव तपसा निधिर्जपति जाह्नवीमादरात् ।
 स एव पुरुषोत्तमः स्मरति साधु मन्दाकिनीं
 स एव विजयी प्रभुः सुरतरङ्गिणीं सेवते ॥८॥
 तवामलजलाचितं खगशृगालमीनक्षतं
 चलल्लहरिलोलितं रुचिरतीरजम्बालितम् ।
 कदा निजवपुर्मुदा सुरनरोरगैः
 संस्तुतोऽप्यहं त्रिपथगामिनि प्रियमतीव पश्याम्यहो ॥९॥
 त्वत्तीरे वसतिस्तवामलजलस्नानं तव प्रेक्षणं
 त्वन्नामस्मरणं तवोदयकथासंस्लापनं पावनम् ।

गङ्गे मे तव सेवनैकनिपुणाऽप्यानन्दितश्चादृतः
 स्तुत्वा चोद्धतपातकी भुवि कदा शान्तश्चरिष्याम्यहम् ॥१०॥
 इत्येतदृषिभिः प्रोक्तं गङ्गास्तवनमुत्तमम् ।
 स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं पठनाच्छ्रवणादपि ॥११॥
 सर्वपापहरं पुंसां बलमायुर्विवर्धनम् ।
 प्रात-र्मध्याह्न-सायाह्ने गङ्गासान्निध्यता भवेत् ॥१२॥
 इत्येतद् भार्गवाख्यानं शुकदेवान्मया श्रुतम् ।
 पाठितं श्रावितं चाऽत्र पुण्यं धन्यं यशस्करम् ॥१३॥
 अवतारं महाविष्णोः कल्केः परममद्भुतम् ।
 पठतां शृण्वतां भक्त्या सर्वाऽशुभविनाशनम् ॥१४॥

॥ इति गङ्गास्तवः समाप्तः ॥२१८॥

219. दशहरा गङ्गास्तुतिः

ब्रह्मोवाच

नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः ।
 नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः ॥१॥
 नमस्ते विश्वरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमो नमः ।
 सर्वदेवस्वरूपिण्यै ततो भेषजमूर्तये ॥२॥
 सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोऽस्तु ते ।
 स्थाणु-जङ्गम-सम्भूत-विषहन्त्र्यै नमो नमः ॥३॥
 भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः ।
 मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः ॥४॥
 नमस्त्रैलोक्यभूषायै जगद्धात्र्यै नमो नमः ।
 नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै तेजोवत्यै नमो नमः ॥५॥
 नन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमो नमः ।
 नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमो नमः ॥६॥
 बृहत्यै ते नमस्तेऽस्तु लोकधात्रे नमो नमः ।
 नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमो नमः ॥७॥

पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुदृशायै नमो नमः ।
 शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमो नमः ॥८॥
 उमायै सुखदोग्ध्रयै च सञ्जीविन्यै नमो नमः ।
 ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नमः ॥९॥
 प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोऽस्तु ते ।
 सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नमः ॥१०॥
 शरणागत-दीनार्त-परित्राणपरायणे ।
 सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥११॥
 निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नमः ।
 परात्परतरे तुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा ॥१२॥
 गङ्गे ममाऽग्रतो भूया गङ्गे मे देवि पृष्ठतः ।
 गङ्गे मे पार्श्वयोरेहि त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः ॥१३॥
 आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शिवे ।
 त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः परः ॥१४॥
 गङ्गे त्वं परमात्मा च शिव तुभ्यं नमः शिवे ।
 य इदं पठति स्तोत्रं भक्त्या नित्यं नरोऽपि यः ॥१५॥
 शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तः काय-वाक्-चित्तसम्भवैः ।
 दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते ॥१६॥
 सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते ।
 ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता ॥१७॥
 तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः ।
 यः पठेद् दशकृत्वस्तु दरिद्रो वाऽपि चाऽक्षमः ॥१८॥
 सोऽपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां सम्पूज्य यत्नतः ।
 अदत्तानामपादानं हिंसा चैवाविधानतः ॥१९॥
 परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ।
 पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चाऽपि सर्वशः ॥२०॥
 असम्बद्धप्रलापञ्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ।
 परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् ॥२१॥
 वितथाऽभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ।
 एतानि दश पापानि हर त्वं मम जाह्नवि! ॥२२॥

दशपापहरा यस्मात्तस्माद्दशहरा स्मृता ।
 त्रयस्त्रिंशच्छतं पूर्वात् पितृनथ पितामहान् ॥२३॥
 उद्धरत्येव संसारान् मन्त्रेणाऽनेन पूजिता ॥२४॥
 नमो भगवत्यै दशपापहरायै गङ्गायै
 नारायण्यै रेवत्यै शिवायै ।
 दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै
 नन्दिन्यै ते नमो नमः ॥२५॥
 सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां
 करधृत-कलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम् ।
 विधि-हरि-हररूपां सेन्दुकोटीरजुष्टां
 ललितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥२६॥
 आदावादिपितामहस्यं निगमव्यापारपात्रे जलं
 पश्चात् पन्नगशायिनी भगवतः पादोदकं पावनम् ।
 भूयः शम्भुजटा-विभूषणमणि-र्जह्मोर्महर्षेरियं
 कन्या कल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥२७॥
 गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥

॥ इति दशहरा-गङ्गास्तुति सम्पूर्णा ॥२१९॥

220. गङ्गालहरी

समृद्धं सौभातयं सकलवसुधायाः किमपितन्महैश्वर्यलीलाजनितजगतः खण्डपरशोः ।
 श्रुतीनां सर्वस्व सकृतमथ मूर्तं सुमनसां सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं न शयतु ॥१॥
 दद्रिणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां द्रुतं दूरीकुर्वान् सकृदपि गतो दृष्टिसरणम् ।
 अपि द्रगाविद्याद्रुमदलनदीक्षागुरुरिह प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः ॥२॥
 उदञ्चन्मार्तण्डस्फुटकपटहे रम्बजननी कटाक्षव्याक्षेपणजनितसंक्षोभनिवहाः ।
 भवन्तु त्वङ्गन्तो हरशिरसि गङ्गातनुभवस्तरङ्गा प्रोत्तुङ्गा दुरितभयभङ्गाय भवताम् ॥३॥
 तवारम्बादम्ब स्फुरदलघुगर्वेण सहसा
 मया सर्वे वज्रासरणिमथ नीताः सुरगणाः ।

इदानीमौदास्यं भजसि यदि भागीरथि तदा
 निराधारः केषामिह कथय हा रौदिमि पुरः॥४॥
 स्मृतिं याता पुंसामकृतसुकृतानामपि च या
 हरत्यन्तस्तन्द्रां तिमिरमिव चन्द्रांशुसरणिः ।
 इयं सा ते मूर्तिः सकलसुरसंसेव्यसलिला
 ममान्तः सन्तापं त्रिविधमपि पापं च हरताम्॥५॥
 अपि प्राज्यं राज्यं तृणमिव परित्यज्य सहसा
 विलोलद्वानीरं तव जननि तीरं श्रितवताम् ।
 सुधातः स्वादीयः सलिलभरमातृप्ति पिबतां
 जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम्॥६॥
 प्रभाते स्नान्तीनां नृपतिरमणीनां कुचत टी-
 गतो यावन्मातर्मिलति तव तोयैर्मृगमदः ।
 मृगास्तावद्वैमानिकशतसहस्रैः परिवृता
 विशन्ति स्वच्छन्दं विमलवपुषो नन्दवनम्॥७॥
 स्मृतं सद्यः स्वान्तं विरचयति शान्तं सकृदपि
 प्रगीतं यत्पापं झटिति भवतापं च हरति ।
 इदं तद्गङ्गेतिश्रवणरमणीयं खलु पदं
 मम प्राणप्रान्ते वदनकमलान्तर्विलसतु॥८॥
 यदन्तः खेलन्तो बहुलतरसन्तोषभारिता
 न काका नाकाधीश्वरनगरसाकाङ्क्षमनसः ।
 निवासाल्लोकानां जनिमरणशोकापहरणं
 तदेतत्ते तीरं श्रमशमनधीरं भवतु नः॥९॥
 न यत्साक्षाद्वेदैरपि गलितभेदैरवसितं
 न यस्मिन् जीवानां प्रसरति मनोवागवसरः ।
 निराकारं नित्यं निजमहिमनिर्वासिततमो
 विशुद्धं यत्तत्त्वं सुरतटिनि तत्त्वं न विषयः॥१०॥
 हादनैर्ध्यानैर्बहुविधवितानैरपि च य -
 न्न लभ्यं घोराभिः सुविमलतपोराशिरपि ।

अनित्यं तद्विष्णोः पदमखिलसाधारणतया
 ददाना केनासि त्वमिह तुलनीया कथय नः॥११॥
 नृणामीक्षामात्रादपि परिहरन्त्या भवभयं
 शिवायास्ते मूर्तेः क इह महिमानं निगदतु।
 अमर्षम्लानायं परमनुरोधं गिरिभवो
 विहाय श्रीकण्ठः शिरसि नियं धारयति याम्॥१२॥
 विनिन्द्यान्युन्मत्तैरपि च परिहार्याणि पतितै-
 रवाच्यानि ब्रात्यैः सपुरकमपास्यानि पिशुनैः।
 हरन्ती लोकानामनवरतमेनांसि कियतां
 कदाप्यश्रान्ता त्वं जगति पुनरेका विजयसे॥१३॥
 स्वखलन्ती स्वर्लोकादवनितशलोकापहतये
 जटाजूटग्रन्थौ यदसि विनिबद्धा पुरभिदा।
 अये निर्लोभानामपि मनसि लोभं जनयतां
 गुणानामेवायं तव जननि दोषः परिणतः॥१४॥
 जडानन्धान्यङ्गुप्रकृतिबधिरानुक्तिविकलान्
 ग्रहग्रस्तानस्ताखिलदुरितनिस्तारसरीन् ।
 निलिम्पैर्निर्मुक्तानपि च निरयान्तर्निपततो
 नरानम्ब त्रातुं त्वमिह परमं भेषजमसि॥१५॥
 स्वभावच्छानां सहजशिशिराणामयमपा-
 मपारस्ते मातर्जयति महिमा को पिञ्जगति।
 मुदा यं गायन्ति द्युतलमनवद्यद्युतिभृतः
 समासाद्याद्यापि स्फुटपुलकसान्द्राः सगरजाः॥१६॥
 कृतक्षुद्रैर्नस्त्वानथ झटिति सन्तप्तमनसः
 समुद्धर्तु सन्ति त्रिभुवनतले तीर्थनिवहाः।
 अपि प्रायश्चित्तप्रसरणपथातीतचरिता-
 न्नारान्दूरीकर्तुं त्वमिव जननि त्वं विजयसे॥१७॥
 निधानं धर्माणां किमपि च विधानं नवमुदां
 प्रधानं तीर्थानाममलपरिधानं त्रिजगतः।

समाधानं बुद्धेरथ खलु तिरोधानमधियां
 श्रियामाधानं नः परिहरतु तापं तव वपुः ॥१८॥
 पुरो धावंधावं द्रविणभदिराघूर्णितदृशां
 महीपानां नानातरुणतरखेदस्य नियतम् ।
 ममैवायं मन्तुः स्वहितशतहन्तुर्जडधियो
 वियोगस्ते मातर्यदिह करुणातः क्षणमपि ॥१९॥
 मरुल्लीलालोलल्लहरिलुलितामेजपटली-
 स्खलत्पांसुघ्रातच्छुरणविसरत्कौड्गुमरुचि ।
 सुरस्त्रीवक्षोजक्षरदगरुजम्बालजटिलं
 जलं ते जम्बालं मम जननजालं जरयतु ॥२०॥
 समुत्पत्तिः पद्मारमणपदपद्मामलनखा-
 त्रिवासःकन्दर्पप्रतिभटजटाजूटभवने ।
 अथायं व्यासङ्गो हतपतितनिस्तारणविधौ
 न कस्मादुत्कर्षस्तव जननि जागर्ति जगति ॥२१॥
 नगेभ्यो यान्तीनां कथय तटिनीनां कतमया
 पुराणां संहर्तुः सुरधुनि कपर्दीऽधिरुरुहे ।
 कया वा श्रीभर्तुः पदकमलमक्षालि सलिलै-
 स्तुलालेशो यस्यां तव जननि दीयेत कविभिः ॥२२॥
 विधत्तां निशङ्कं निरवधि समाधिं विधिरहो
 सुखं शेषे शेतां हरिरविरतं नृत्यतु हरः ।
 कृतं प्रायश्चित्तैरलमथ तपोदानयजनैः
 सवित्री कामानां यदि जगति जागर्ति भवती ॥२३॥
 अनाथः स्नेहार्दा विगलितगतिः पुण्यगतिदां
 पतन् विश्वोद्धर्त्री गदविगलितः सिद्धभिषजम् ।
 सुधासिन्धुं तृष्णाकुलतिहृदयो मातरमयं
 शिशुः सम्प्राप्तस्त्वामहमिह विदध्याः समुचितम् ॥२४॥
 विलीनो वै वैवस्वतनगरकोलाहलभरो
 गदा दूता दूरं कचिदपि परेतान्मृगयितुम् ।

विमानां व्रातो विदलयति वीथीर्दिविषदां
 कथा ते कल्याणी यदवधि महीमण्डलमगात् ॥२५॥
 स्फुरत्कामक्रोध प्रबलतरसञ्जातजटिल-
 ज्वरज्वालाजालज्वलितवपुषां नः प्रतिदिनम् ।
 हरन्ता सन्तापं कमपि मरुदुल्लासलहरि-
 च्छटाचञ्चत्पाथः कणसरणयो दिव्यसरितः ॥२६॥
 इदं हि ब्रह्माण्डं सकलभुवनाभोगभवं
 तरङ्गै - र्यस्यान्तर्लुठति परितस्तिन्दुकमिव ।
 स एष श्रीकण्ठप्रविततजटाजूटजटिलो
 जलानां सङ्घातस्तव जननि तापं हरतु नः ॥२७॥
 त्रपन्ते तीर्थानि त्वरितमिह यस्योद्धृतिविधौ
 करं कर्णे कुर्वन्त्यपि किल कपालिप्रभृतयः ।
 इमन्तं मामम्ब त्वमियमनुकम्पार्दहृदये
 पुनाना सर्वेषामघमथनदर्पं दलयसि ॥२८॥
 श्रपाकानां ब्रातैरमितविचिकित्साविचलितै-
 र्विमुक्तानामेकं किल सदनमेनः परिषदाम् ।
 अहो मामुद्धर्तुं जननि घटयन्त्या परिकरं
 तव श्लाघां कर्तुं कथमिव समर्थो नरपुशः ॥२९॥
 न कोऽप्येतावन्तं खलु समयमारभ्य मिलितो
 यदुद्धारादाराद्भवति जगतो विस्मयभरः ।
 इतीमामीहां ते मनसि चिरकालं स्थितवती-
 मयं सम्प्राप्तोऽहं सफलयितुमम्ब प्रणय नः ॥३०॥
 श्रवृत्तिव्यासङ्गो नियतमथ मिथ्याप्रत्नपनं
 कुतर्केष्वभ्यासः सततपरपैशून्यमननम् ।
 अपि श्रावंश्रावं मम तु पुनरेवं गुणगणा-
 नृते त्वत्को नाम क्षणमपि निरीक्षेत वदनम् ॥३१॥
 विशालाभ्यामाभ्यां किमिह नयनाभ्यां खलु फलं
 न - नीडा परमरमणीया तव तनुः ।

अयं हि न्यक्कारो जननि मनुजस्य श्रवणयो-
 र्ययोर्मातिर्यातस्तव लहरिलीलाकलकलः ॥३२॥
 विमानैः स्वच्छन्दं सुरपुरमयन्ते सुकृतिनः
 पतन्ति द्राक्पापा जननि नरकान्तः परवशाः ।
 विभागोऽयं तस्मिन्नशुभमयमूर्तौ जनपदे
 न यत्र त्वं लीलादलितमनुजाशेषकलुषा ॥३३॥
 अपि घ्नन्तो विप्रानविरतमुशन्तो गुरुसतीः
 पिबन्तो मैरेयं पुनरपिहरन्तश्च कनकम् ।
 विहाय त्वय्यन्ते तनुमतनुदानाध्वरजुषा-
 मुपर्यम्ब क्रीडन्त्यखिलसुरसम्भावितपदाः ॥३४॥
 अलभ्यं सौरभ्यं हरति नियतं यः सुमनसां
 क्षणादेव प्राणानपि विरहशस्त्रक्षतभृताम् ।
 त्वदीयानां लीलाचलितलहरीणां व्यतिकरा-
 त्पुनीते सोऽपि द्रागहह पवमास्त्रिभुवनम् ॥३५॥
 कियन्तः सन्तेके नियतमिह लोकार्थघटकाः
 परे पूतात्मानः कति च परलोकप्रणयिनः ।
 सुखं शेते मातस्तव खलु कृपातः पुनरयं
 जगन्नाथः शश्वत्त्वयि निहितलोकद्वयभरः ॥३६॥
 भवत्या हि ब्रात्याधमपतियाखण्डपषि-
 त्परित्राणस्नेहः शलथयितुमशक्यः खलु यथा ।
 ममाप्येवं प्रेमा दुरितनिवहेष्वम्ब जगति
 स्वभावोऽयं सर्वैरपि खलु यतो दुष्परिहरः ॥३७॥
 प्रदोषान्तर्नृत्यत्पुरमथनलीलोद्धृतजटा-
 तटाभोगप्रेङ्खल्लहरिभुजसन्तानविधुतिः
 बिलक्रीडकोडज्जलडमरुडङ्कारसुभग-
 स्तिरोधत्तां तापं त्रिदशतटिनीताण्डवविधिः ॥३८॥
 सदैव त्वय्येवार्पितकुशलचिन्ताभरमिमं
 यदि त्वं माम्ब त्यजसि समये स्मिन्सुविषमे

तदा विश्वासोऽयं त्रिभुवनतलादस्तमयते
 निराधारा चेयं भवति खलु निर्व्याजकरुणा ॥३९॥
 कपर्दादुल्लस्य प्रणयमिलदर्धाङ्गयुवतेः
 पुरारेः प्रेङ्खन्त्यो मृदुलतरसीमन्तसरणौ ।
 भवान्या सापत्न्यस्फुरितनयनं कोमलरुचा
 करेणाक्षिसास्ते जननि विजयन्तां लहरयः ॥४०॥
 प्रपद्यन्ते लोकाः कति न भवतीमत्रभवती-
 मुपाधिस्तत्रायं स्फुरति यदभीष्टं वितरसि ।
 शपे तुभ्यं मातर्मम तु पुनरात्मासुरधुनि
 स्वभावादेव त्वय्यमितमनुरागं विधृतवान् ॥४१॥
 ललाटे या लौकैरिह खलु सलीलं तिलकिता
 तमो हन्तुं धत्ते तरुणतरमार्तण्डतुलनाम् ।
 विलुम्पन्ती सद्यो विधिलिखितदुर्वर्णसरणिं
 त्वदीया सन्मृत्ना मम हरतु कृतस्नामपि शुचम् ॥४२॥
 नरान्मूढांस्तत्तज्जनपदसमासक्तमनसो
 हसन्तः सोल्लासं विकचकुसमुव्रातमिषतः ।
 पुनानाः सौरभ्यैः सततमलिनो नित्यमलिनान्
 सखायो न सन्तु त्रिदशतटिनीतीरतरवः ॥४३॥
 यजन्येक देवान्कठिनतरसेवांस्तदपरे
 वितानव्यासक्ता यमनियमरक्ताः कतिपये ।
 अहं तु त्वन्नामस्मरणभृतकास्त्रिपथगे
 जगज्जालं जन्मावधि सुकतजन्मार्जनकृतां
 सतां श्रेयः कर्तुं कति न कृतिनः सन्ति विबुधाः ।
 निरस्ताल्बानामकृतसुकृतानां तु भवतीं
 विनामुष्मिल्लोके न परमवलोके हितकरम् ॥४५॥
 पयः पीत्वा मातस्तव सपदि यातः सहचरै-
 र्विमूढैः संरन्तुं कचिदपि न विश्रान्तिमगमम् ।
 इदानीमुत्सङ्गे मृदुपवनसञ्चारशिशिरे
 चिरदुन्निद्रं मां सदयहृदये शायय चिरम् ॥४६॥

बधान द्रागेव द्रढिमरमणीयं परिकरं
 किरीटे बालेन्दुं नियमय पुनः पन्नगणैः ।
 न कुर्यास्त्वं हेलामितरजनसाधारणतया
 जगन्नाथ्यायं सुरधुनि समुद्धारसमयः ॥४७॥
 शरच्चन्द्रश्चैतां शशिकलश्चेतालमुकुटां
 करैः कुम्भारभे जे वरभयनिरासौ च दधतीम् ।
 सुधाधाराकाराभरणवसनां शुभ्रमकर-
 स्थितां त्वां ते ध्यायन्त्युदयसि न तेषां परिभवः ॥४८॥
 दरस्तिमतसमुल्लसद्वदनकान्तिपूरामृतै-
 र्भवज्ज्वलनभर्जिताननिशमूर्जयन्ती नरान् ।
 चिदेकमयचन्द्रिकाचयचमत्कृति तन्वती
 तनोतु मम शं तनोः सपदि शन्तनोरङ्गना ॥४९॥
 मन्त्रैर्मीलितमौषधैर्विगलितं त्रस्तं सुराणां गणैः
 स्रस्तं सान्द्रसुधारसैर्विदलितं गारुत्मतैर्ग्रावभिः ।
 वीचिक्षालितकालियाहितपदे स्वर्लोककल्लोलिनी
 त्वं तापं तिराधुना मम भवज्वालावलीढात्मनः ॥५०॥
 द्यूते नागेन्द्रकृत्तिमप्रमथगणमणिश्रेणिनन्दीन्दुमुख्यं
 सर्वस्वं हारयित्वा स्वमथ पुरभिदि द्राक्पणीकर्तुंकामे ।
 साकूतं हैमवत्या मृदुलहसितया वीक्षितायास्तवाम्ब
 व्यालोलोल्लासिवल्गल्लहरिनटघटीताण्डवं नः पुनातु ॥५१॥
 विभूषितानङ्गरिपूतमाङ्गा सद्यः कृता नेकजनार्तिभङ्गा ।
 मनोहरोत्तुङ्गचलत्तरङ्गा गङ्गा ममाङ्गन्यमलीकरोतु ॥५२॥
 इमां पीयूषलहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम् ।
 यः पठेत्तस्य सर्वत्र जायन्ते सुखसम्पदः ॥५३॥

॥ इति गङ्गालहरी सम्पूर्णा ॥२२०॥

221. अमृतलहरी

मातः पातक पात कारिणी तव प्रातः प्रयास्तटं
 यः कालिन्दि महेन्द्र नीलपटल स्निग्धां तनुं वीक्षते ।
 तस्यारोहित किं न धन्यजनुषः स्वान्तं नितान्तोल्लस-
 श्रीलोम्भोधर वृन्दवन्दित रुचिर्देवो रमावल्लभः ॥१॥
 नित्यं पातकभङ्ग मङ्गलजुषां श्रीकण्ठ कण्ठत्विषां
 तोयानां यमुने तव स्तवविधौ को याति वाचालताम् ।
 येषु द्राग्विनिमज्जय सज्जतितरां रम्भाकराम्भोरुह-
 स्फूर्जच्छामर वीजितामरपदं जेतुं वकारो नरः ॥२॥
 दानान्धीकृत गन्ध सिन्धुरघटा गण्डप्रणालीलिल् -
 भङ्गालीमुखरीकृताय नृपतिद्वाराय बद्धोऽञ्जलिः ।
 त्वत्कूले फलमूलशालिनि मम श्लाध्यामुरीकुर्वतो
 वृत्तिं हन्त मुनेः प्रयान्तु यमुने वीतज्वरा वासराः ॥३॥
 अन्तर्मेक्तिक - पुञ्ज - मञ्जिमबहिः स्निग्धेन्द्रनीलप्रभं
 मातर्मे मुदमातनोतु करुणावत्या भवत्याः पयः ।
 यद्रूषद्वयधारणादिव नृणामा चूडमामज्जतां
 तत्कालं तनुतेतरां हरिहराकारामुदारां तनुम् ॥४॥
 तावत्पाप कदम्ब डम्बरमिदं तावत्कृतान्ताद्भयं
 तावन्मानसपद्मसद्गनि भवभ्रान्तेर्महानुत्सवः ।
 यावल्लोचनयोः प्रयाति न मनागम्भोजिनीबन्धुजे
 नृत्यत्तुङ्ग तरङ्ग भङ्गि रुचिरो वारां प्रवाहस्तव ॥५॥
 कालिन्दीति कदापि कौतुकवशात्त्वन्नामवर्णानिमान्
 व्यस्तानालपतां नृणां यदि करे खेलन्ति संसिद्धयः ।
 अन्तर्ध्वान्त कुलान्तकारिणि तव क्षिप्तामृते वारिणि
 स्नातानां पुनरन्वहं स महिमा केनाधुना वर्ण्यते ॥६॥
 स्वर्णस्तेय परानपेयरसिकान् पाथःकणास्ते यदि
 ब्रह्मघ्नान्गुरुतल्पगानपि परित्रतुं गृहीतव्रताः ।

प्रायश्चित्तकुलैरलं तदधुना मातः परेताधिप-
 प्रौढाहं कृतिहारिहुंकृतिमुचामग्रे तव स्रोतसाम् ॥७॥
 पायं पायमपायहारि जननि स्वादु त्वदीयं पयो
 नायं नायमनायनीमकृतिनां मूर्तिं दृशोः कैशवीम् ।
 स्मारं स्मारमपारपुण्यविभवं कृष्णोति वर्णद्वयं
 चारं चारमितस्ततस्तव तटे मुक्तो भवेयं कदा ॥८॥
 मातर्वारिणि पापहारिणि तव प्राणप्रयाणोत्सवं
 सम्प्राप्तेन कृतां नरेण सहतेऽवज्ञां कृतान्तोऽपि यत् ।
 यद्वा मण्डलभेदनादुदयिनीश्चण्डद्युतिर्वेदना-
 श्चित्रं तत्र किमप्रमेयमहिमा प्रेमा यदौत्पत्तिकः ॥९॥
 संज्ञाकान्तसुते कृतान्तभगिनि श्रीकृष्णानित्यप्रिये
 पापोन्मूलिनि पुण्यधात्रि यमुने कालिन्दि तुभ्यं नमः ।
 एवं स्नानविधौ पठन्ति खलु ये नित्यं गृहीतव्रता-
 स्तानामन्त्रित संख्यजन्म जनितं पापं क्षणादुज्झति ॥१०॥
 अयं पण्डितराजेन श्रीजगन्नाथशर्मणा ।
 स्तवः कलिन्दनन्दिन्या निर्मलो निरमीयत ॥११॥

॥ इति अमृतलहरी सम्पूर्णा ॥२२१॥

222. यमुनाष्टकम् (1)

कृपापारावारां तपनतनयां तापशमनीं
 मुरारि-प्रेयस्यां भवभयदवां भक्तिवरदाम् ।
 वियज्जालान्मुक्तां श्रियमपि सुखास्ते प्रतिदिनं
 सदा धीरो नूनं भजति यमुनां नित्यफलदाम् ॥१॥
 मधुवन-चारिणि भास्करवाहिनि जाह्नविसङ्गिनि सिन्धुसुते
 मधुरिपुभूषिणि माधव-तोषिणि गोकुलभीतिविनाशकृते ।
 जगदधमोचिनि मानसदायिनि केशव-केलि-निदानगते
 जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥२॥
 अयि मधुरे मधुमोदविलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे
 परिजनपालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकामविलासधरे ।

वज्रपुरवासि-जनार्जितपातक-हारिणि विश्वजनोद्धरिके
 जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥३॥
 अतिविषदम्बुधिमग्रजनं भवताप शताकुलमानसकं
 गति-मति-हीनमशेषभयाकुलमागतपाद-सरोजयुगम् ।
 ऋणभयभीतिमनिष्कृतिपातक-कोटिशतायुतपुञ्जतरं
 जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥४॥
 नवजलदद्युति-कोटिलसत्तनु-हेममयाभर-रञ्जितके
 तडिदवहेलि-पदाञ्चल-चञ्चल-शोभितपीत-सुचैलधरे ।
 मणिमय-भूषण-चित्रपटासन-रञ्जित-गञ्जित-भानुकरे
 जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥५॥
 शुभपुलिने मधुमत्तयदूद्भव-राममहोत्सव-केलिभरे
 उच्चकुलाचल-राजित-मौक्तिक-हारमयाभररोदसिके ।
 नवमणिकोटिक-भारकरकञ्चुकि-शोभिततारक-हारयुते
 जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥६॥
 करिवरमौक्तिक-नासिकभूषण-वातचमत्कृत-चञ्चलके
 मुखकमलामल-सौरभचञ्चल-मत्तमधुव्रतलोचनिके ।
 मणिगणकुण्डल-लोलपरिस्फुरदाकुल-गण्डयुगामलके
 जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥७॥
 कलरवनूपुर-हेममयाचित-पादसरोरुह-सारुणिके
 धिमि-धिमि-धिमि-धिमि-तालविनोदित-मानसमञ्जुल-पादगते ।
 तव पदपङ्कजमाश्रितमानव-चित्तसदाऽखिल-तापहरे
 जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥८॥
 भवोत्तापाम्भोधौ निपतितजनो दुर्गतियुतो
 यदि स्तौति प्रातः प्रतिदिनमनन्याश्रयतया ।
 हयाहेषैः कामं करकुसुमपुञ्जरविरतां
 सदा भोक्ता भोगान्मरणसमय याति हरिताम् ॥९॥

॥ इति यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२२२॥

223. यमुनाष्टकम् (2)

मुरारि-कायकालिमा-ललामवारि-धारिणी
 तृणीकृत-त्रिविष्टपा-त्रिलोक-शोहारिणी ।
 मनोऽकु कूल-कूलकुञ्ज-पुञ्जधूतदुर्मदा
 धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥१॥
 मलापहारि-वारिपूर-भूरिमण्डितामृता-
 भृशं प्रपातक-प्रवञ्चनातिपण्डितानिशम् ।
 सुनन्द-नन्दिनाङ्ग-सङ्ग-रागरञ्जिताहिता
 धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥२॥
 लसत्तरङ्ग-सङ्गधूत-भूतजातपातका
 नवीन-माधुरीधुरीण-भक्तिजात-चातका ।
 तटान्तवासदासहंस-संसृताह्निकामदा
 धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥३॥
 विहार-रास-खेदभेद-धीर-तीर-मारुता
 गता गिरामगोचरे यदीयनीरचारुता ।
 प्रवाहसाहचर्यपूत-मेदिनी-नदीनदा
 धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥४॥
 तरङ्गसङ्ग-सैकताञ्जितान्तरा सदाऽसिता
 शरत्रिशाखरांशुमञ्जु-मञ्जरीसभाजिता ।
 भवार्चनाय चारुणाम्बुनाधुना-विशारदा
 धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥५॥
 जलान्त-केलिकारि-चारु-राधिकाङ्गरागिणी
 स्वभर्तुरन्यदुर्लभाङ्ग-सङ्गतांशभागिनी ।
 स्वदत्त-सुप्तसप्तसिन्धु-भेदनातिकोविदा
 धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥६॥
 जलच्युता-ऽच्युताङ्गराग-लम्पटालिशालिनी
 विलोलराधिका-कचान्त-चम्पकालि-मालिनी
 सदावगाहनावतीर्ण-भर्तृ भृत्यनारदा
 धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥७॥

सदैव नन्दिनन्दकेलिशालिकुञ्ज-मञ्जुला
तटोत्थफुल्लमल्लिका-कदम्बरेणुसूज्वला ।
जलावगाहिनां नृणां भवाब्धिसिन्धुपारदा
धुनोतु मे मनोमलं कलिन्दनन्दिनी सदा ॥८॥

॥ इति यमुनाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२२३॥

224. नर्मदाष्टकम् (1)

सबिन्दु-सिन्धु-सुस्खलत्तरङ्ग-भृङ्गरञ्जितं
द्विषत्सु पाप-जातजातकारि-वारिसंयुतम् ।
कृतान्तदूत-कालभूत-भीतिहारिवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥१॥
त्वदम्बुलीन-दीन-मीन-दिव्य-सम्प्रदायकं
कलौ मलौघभारहारि सर्वतीर्थनायकम् ।
सुमच्छ-कच्छ-नक-चक वाकशर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥२॥
महागभीर-नीरपूर-पापधूत-भूतलं
ध्वनत्समस्त-पातकारि-दारितापदाचलम् ।
जगल्लये महाभये मृकण्डसूनु-हर्म्यदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥३॥
गतं सदैव मे भवं त्वदम्बु वीक्षितं यदा
मृकण्डसूनु-शौनकासुरारिसेवि सर्वदा ।
पुनर्भवाब्धिजन्मजं भवाब्धिदुःखवर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥४॥
अवक्ष-लक्ष-किन्नरामरासुरादि-पूजितं
सुलक्ष-नीर-तीर-धीरपक्षि-लक्षकूजितम् ।
वसिष्ठ-शिष्ट-पिप्पलादि-कर्दमादि-शर्मदे
त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥५॥
सनत्कुमार-नाचिकेत-कश्यपादिषट्पदै-
र्धृतं स्वकीय-मानसेषु नारदादिषट्पदैः ।

रवीन्दु- रन्तिदेव-देवराजकर्मशर्मदे
 त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥६॥
 अलक्ष-लक्ष-लक्षपाप-लक्षसार-सायुधं
 ततस्तु जीवजन्तुतन्तु-भुक्ति-मुक्तिदायम्।
 विरञ्चि-विष्णु-शङ्कर-स्वकीयधाम-वर्मदे
 त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥७॥
 अहोऽमृतं स्वनं श्रुतं महेश-केशजातटे
 किरातसूत-वाडवेषु पण्डिते शठे नटे।
 दुरन्तपापतापहारि-सर्वजन्तुशर्मदे
 त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे ॥८॥
 इदं तु नर्मदाष्टकं त्रिकालमेव ये सदा
 पठन्ति ते निरन्तरं न यान्ति दुर्गन्तिं कदा।
 सुलभ्य देहदुर्लभं महेशधामगौरवं
 पुनर्भवा नरा न वै विलोकयन्ति रौरवम् ॥९॥

॥ इति नर्मदाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२२४॥

225. नर्मदाष्टकम् (2)

श्रीनर्मदे सकल-दुःखहरे पवित्रे
 ईशान-नन्दिनि कृपाकरि देवि धन्ये।
 रेवे गिरीन्द्र-तनयातनये वदान्ये
 धर्मानुराग-रसिके सततं नमस्ते ॥१॥
 विन्ध्याद्रिमेकलसुते विदितप्रभावे
 शान्ते प्रशान्तजन-सेवितपापघ्ने।
 भक्तार्तिहारिणि मनोहर-दिव्यधारे
 सोमोद्भवे मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥२॥
 आमेकलादपर-सिन्धु-तरङ्गमाला
 यावद् बृहद्-विमल-वारि-विशालधारा।

सर्वत्र धार्मिकजनाऽऽप्लुत-तीर्थदेशा
 श्रीनर्मदा दिशतु मे निजभक्तिमीशा ॥३॥
 सर्वाः शिला यदनुषङ्गमवाप्य लोला
 विश्वेशरूपमधिगम्य चमत्कृताङ्गाः ।
 पूज्या भवन्ति जगतां स-सुराऽसुराणां
 तस्यै नमोऽस्तु सततं गिरिशाङ्गजायै ॥४॥
 यस्यास्तटीमुभयतः कृतसन्निवेशाः
 देशाः समीर-जलबिन्दु-कृताभिषेकाः ।
 सोत्कण्ठ-देवगण-वर्णित-पुण्यमालाः
 श्रीभारतस्य गुणगौरवमुद्गृणन्ति ॥५॥
 स्वास्थ्याय सर्वविधये धन-धान्य-सिध्यै
 वृद्धिप्रभावनिश्चये जनजागरायै ।
 दिव्यावबोध-विभवाय महेश्वरायै
 भूयो नमोऽस्तु वरमञ्जुल-मङ्गलायै ॥६॥
 कल्याण-मङ्गल-समुज्ज्वल-मञ्जुलायै
 पीयूषसार-सरसीरुह-राजहंस्यै
 मन्दाकिनी-कनक-नीरज-पूजितायै
 स्तोत्रार्चनान्यमर-कण्टक-कन्यकायै ॥७॥
 श्यामां मुग्धसुधा-मयूरवदनां रत्नोज्ज्वलालङ्कृतिं
 रामां फुल्ल-सहस्रपत्रनयनां हासोल्लसन्तीं शिवाम् ।
 वामां बाहुविशाल-वल्लिवलया-लोलाङ्गुलीपल्लवां
 लालित्योल्लसितालकावलिकलां श्रीनर्मदां भावये ॥८॥
 श्रीनर्मदाङ्घ्रि-सरसीरुह-राजहंसी
 स्तोत्राष्टकावलिरियं कलगीतवंशी ।
 संवाद्यतेऽनुदिनमेकसमां भजद्भि-
 र्यैस्ते भवन्ति जगदम्बिकयाऽनुकम्प्याः ॥९॥
 काशीपीठाधिनाथेन शङ्कराचार्यभिक्षुणा ।
 कृता महेश्वरानन्द-स्वामिनाऽऽस्तां सतां मुदे ॥१०॥

॥ इति नर्मदाष्टकम् सम्पूर्णम् ॥२२५॥

226. पुष्कराष्टकम्

श्रिया युतं त्रिदेहताप-पापराशि-नाशकं
 मुनीन्द्र-सिद्धसाध्यदेव-दानवैरभिष्टुतम् ।
 तटेऽस्ति यज्ञपर्वतस्य मुक्तिदं सुखाकरं
 नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥१॥
 सदार्यमास-शुष्कपञ्चवासरे वरागतं
 तदन्यथाऽन्तरिक्षगं सुतन्त्रभावनानुगम्
 तदम्बुपानमज्जनं दृशां सदामृताकरं
 नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥२॥
 त्रिपुष्कर त्रिपुष्कर त्रिपुष्करेति संस्मरेत्
 स दूरदेशगोऽपि यस्तदङ्गपापनाशनम् ।
 प्रपन्न-दुःख-भञ्जनं सुरञ्जनं सुखाकरं
 नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥३॥
 मृकण्डमङ्कणौ पुलस्त्य-कण्वपर्वतासिता
 अगस्त्य-भार्गवौ दधीचि-नारदौ शुकादयः ।
 सुपद्मतीर्थपावनैक-दृष्टयो दयाकरं
 नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥४॥
 सदा पितामहेक्षितं वराहविष्णुनेक्षितं
 तथाऽमरेश्वरेक्षितं सुराऽसुरैः समीक्षितम् ।
 इहैव भुक्ति-मुक्तिदं प्रजाकरं धनाकरं
 नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥५॥
 त्रिदण्डिदण्डि-ब्रह्मचारितापसैः सुसेवितं
 पुरार्धचन्द्र-प्राप्तदेव-नन्दिकेश्वराभिधैः ।
 सवैद्यनाथ-नीलकण्ठसेवितं सुधाकरं
 नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥६॥
 सुपञ्चधा सरस्वती विराजते यदन्तरे
 तथैकयोजनायतं विभाति तीर्थनायकम् ।

अनेकदैव-पैत्रतीर्थसागरं रसाकरं
 नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥७॥
 यमादिसंयुतो नरस्त्रिपुष्करं निमज्जति
 पितामहश्च माधवोऽप्युमाधवः प्रसन्नताम् ।
 प्रयाति तत्पदं ददात्ययत्नतो गुणाकरं
 नमामि ब्रह्मपुष्करं सवैष्णवं सशङ्करम् ॥८॥
 इदं हि पुष्कराष्टकं सुनीतिनीरजाश्रितं
 स्थितं मदीयमानसे कदाऽपि माऽपगच्छतु ।
 त्रिसन्ध्यमापठन्ति ये त्रिपुष्कराष्टकं नराः
 प्रदीप्तदेहभूषणा भवन्ति मेशकिङ्कराः ॥९॥

॥ इति श्रीपुष्कराष्टकं समाप्तम् ॥२२६॥

227. प्रयागराजाष्टकम्

मुनयः ऊचुः
 सुरमुनिदितिजेन्द्रैः सेव्यते योऽस्ततन्द्रै-
 गुरुतरदुरितानां का कथा मानवानाम् ।
 स भुवि सुकृतकर्तुर्वाञ्छिताऽवाप्तिहेतु-
 र्जयति विजितयागस्तीर्थराज प्रयागः ॥१॥
 श्रुतिः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं पुराणमप्यत्र परं प्रमाणम् ।
 यत्राऽस्ति गङ्गा यमुना प्रमाणं स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥२॥
 न यत्र योगाचरणप्रतीक्षा न यत्र यज्ञष्टिविशिष्टदीक्षा ।
 न तारकज्ञानगुरोरपेक्षा स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥३॥
 चिरं निवासं न समीक्षते यो ह्युदारचित्तः प्रददाति च क्रमात् ।
 यः कल्पितार्थाश्च ददाति पुंसः स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥४॥
 यत्राऽऽप्लुतानां न यमो नियन्ता यत्र स्थितानां सुगतिप्रदाता ।
 यत्राश्रितानाममृतप्रदाता स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥५॥
 पुर्यः सप्त प्रसिद्धाः प्रतिवचनकरीस्तीर्थराजस्य नार्यो
 नैकट्यान्मुक्तिदाने प्रभवति सुगुणा काश्यते ब्रह्म यस्याम् ।

सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी मुक्तिदानेन युक्ता
 येन ब्रह्माण्डमध्ये स जयति सुतरां तीर्थराजः प्रयागः ॥६॥
 तीर्थावली यस्य तु कण्ठभागे दानावली बल्गति पादमूले ।
 व्रतावली दक्षिणपादमूले स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥७॥
 आज्ञापि यज्ञाः प्रभवोऽपि यज्ञाः सप्तर्षिसिद्धाः सुकृतानभिज्ञाः ।
 विज्ञापयन्तः सततं हि काले स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥८॥
 सिताऽसिते यत्र तरङ्गचामरे नद्यौ विभाते मुनिभानुकन्यके ।
 लीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥९॥
 तीर्थराज-प्रयागस्य माहात्म्यं कथयिष्यति ।
 शृण्वतः सततं भक्त्या वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥१०॥

॥ इति प्रयागराजाष्टकं समाप्तम् ॥२२७॥

228. श्रीसिद्धसरयूस्तोत्राष्टकम्

श्रीरामनाम-महिमानमुदीरयन्ती तद्धाम-साम-गुण-गौरवमुद्गीरन्ती ।
 आपूर-पूर-परिपूत-गभीरघोषा दोषाटवी-विघटनं सरयूस्तनोतु ॥१॥
 श्रीभारतीय-विजय-ध्वज-शैलराज-प्रोड्डियमान-कलकेतन-कीर्तिवल्ली ।
 श्रीमानसोत्तरसरः-प्रभवाद्यशक्तिर्मूत्ता नदीशतनुता सरयूर्विभाति ॥२॥
 साकेत-गौरवगिरः परिबृहयन्ती श्रीराघवेन्द्रमभितः किल दर्शयन्ती ।
 गङ्गां भृगुप्रवरतीर्थमनुस्रवन्ती धन्या पुनातु सरयूर्गिरिराजकन्या ॥३॥
 इक्ष्वाकुमुख्य-रविवंश-समर्चिताङ्घ्रिर्दिव्यावदात-जलराशि-लसत्प्रवाहा ।
 पापौघ-काननघटा-दहनप्रभावादारिद्र्य-दुःख-दमनी सरयूर्धिनोतु ॥४॥
 त्रैलोक्यपुण्यमिव विद्रुतमेकनिष्ठं निस्तन्द्र-चन्द्रकिरणामृत-लोभनीयम् ।
 सर्वार्थदं सकल-मङ्गल-दानदक्षं वन्दे प्रवाहमतुलं ललितं सरख्याः ॥५॥
 नित्यं समस्त-जन-तापहरं पवित्रं देवासुरार्चितमुदग्र-समग्रधारम् ।
 हारं हरेर्हरिण-रेणुविलासकूलं श्रीसारवं सलिलमुद्धमुपघ्नमीडे ॥६॥
 वन्याः सरिद्-द्रुमलता-गज-वाजि-सिंहा हंसाः शुका हरिण-मर्कट-कोल-कीटाः ।
 मत्स्या भुजङ्ग-कमठा अपि संश्रितास्त्वां पूज्या भवन्ति जगतां महिता महार्हाः ॥७॥

एकादशीमथ महानवमीं भजन्तो दिव्यावगाहनरता समुपेत्य धीराः
 श्रीजानकीशचरणाम्बुज-दत्तचित्ता- नावर्तयन्ति भवमत्र जले सरखाः ॥८॥
 पुण्यैर्धन्यैर्वसिष्ठादिभिरथ मुनिभिः सेवितां दिव्यदेहां
 गौराङ्गीं स्वर्णरत्नोज्ज्वल-पटल-लसद्-भूषणाख्यां दयार्द्राम्।
 श्रीनागेशाभिमुख्यां सुरवरझरिणीं सर्वसिद्धिप्रदात्रीं
 तोष्टये ब्रह्मरूप-प्रकटित-सरयूं कोटिसूर्य-प्रकाशाम् ॥९॥
 देव्या सरखाः स्तवनं सर्वमङ्गल-मङ्गलम्।
 श्रीरामेश्वरयोः सहो वशीकरणमुत्तमम् ॥१०॥
 काशीपीठाधिनाथेन शङ्कराचार्यभिक्षुणा।
 महेश्वरेण रचितः स्तवोऽयं सत्सु राजताम् ॥११॥

॥ इति सिद्धसरयूस्तोत्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥२२८॥

229. त्रिवेणीस्तोत्रम्

मुक्तामयालंकृतमुद्रवेणी भक्ताभयत्राणसुबुद्धवेणी।
 मत्तालिगुञ्जन्मकरन्दवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥१॥
 लोकत्रयैश्वर्यनिदानवेणी तापत्रयोच्चाटनबद्धवेणी।
 धर्मा-ऽर्थ-कामाकलनैकवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥२॥
 मुक्ताङ्गनामोहन-सिद्धवेणी भक्तान्तरानन्द-सुबोधवेणी।
 वृत्त्यन्तरोद्वेगविवेकवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥३॥
 दुग्धोदधिस्फूर्जसुभद्रवेणी नीलाभ्रशोभाललिता च वेणी।
 स्वर्णप्रभाभासुरमध्यवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥४॥
 विश्वेश्वरोत्तुङ्गकपर्दिवेणी विरिञ्चिविष्णुप्रणतैकवेणी।
 त्रयीपुराणा सुरसार्धवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥५॥
 माङ्गल्यसम्पत्तिसमृद्धवेणी मात्रान्तरन्यस्तनिदानवेणी।
 परम्परापातकहारिवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥६॥
 निमज्जदुन्मज्जमनुष्यवेणी त्रयोदयोभाग्यविवेकवेणी।
 विमुक्तजन्माविभवैकवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥७॥

सौन्दर्यवेणी सुरसार्धवेणी माधुर्यवेणी महनीयवेणी ।
 रत्नैकवेणी रमणीयवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥८॥
 सारस्वताकार-विघातवेणी कालिन्दकन्यामयलक्ष्म्यवेणी ।
 भागीरथीरूप-महेशवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥९॥
 श्रीमद्भवानीभवनैकवेणी लक्ष्मीसरस्वत्यभिमानवेणी ।
 माता त्रिवेणी त्रयीरत्नवेणी श्रीमत्प्रयागे जयति त्रिवेणी ॥१०॥
 त्रिवेणीदशकं स्तोत्रं प्रातर्नित्यं पठेन्नरः ।
 तस्य वेणी प्रसन्ना स्याद् विष्णुलोकं स गच्छति ॥११॥

॥ इति त्रिवेणीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२२९॥

230. मणिकर्णिकाष्टकम्

त्वत्तीरे मणिकर्णिके हरिहरौ सायुज्यमुक्तिप्रदौ
 वादं तौ कुरुतः परस्परमुभौ जन्तोः प्रयाणोत्सवे ।
 मद्रूपो मनुजोऽयमस्तु हरिणा प्रोक्तः शिवस्तत्क्षणात्
 तन्मध्याद् भृगुलाञ्छनो गरुडगः पीताम्बरो निर्गतः ॥१॥
 इन्द्राद्यास्त्रिदशाः पतन्ति नियतं भोगक्षये ते पुन-
 र्जायन्ते मनुजास्ततोऽपि पशवः कीटाः पतङ्गादयः ।
 ये मातर्मणिकर्णिके तव जले मज्जन्ति निष्कल्मषाः
 सायुज्येऽपि किरीटकौस्तुभधरा नारायणाः स्युर्नराः ॥२॥
 काशी धन्यतमा विमुक्तिनगरी साऽलंकृता गङ्गाया
 तत्रेयं मणिकर्णिका सुखकरी मुक्तिर्हि तत्किङ्करी ।
 स्वर्लोकस्तुलितः सहैव विबुधैः काश्या समं ब्रह्मणा
 काशी क्षोणितले स्थिता गुरुतरा स्वर्गो लघुः खे गतः ॥३॥
 गङ्गातीरमनुत्तमं हि सकलं तत्राऽपि काश्युत्तमा
 तस्यां सा मणिकर्णिकोत्तमतमा यत्रेश्वरो मुक्तिदः ।
 देवानामपि दुर्लभं स्थलमिदं पापौघनाशक्षमं
 पूर्वोपार्जित-पुण्यपुञ्जगमकं पुण्यैर्जनैः प्राप्यते ॥४॥

दुःखाम्भोनिधि-मग्नजन्तुनिवहास्तेषां कथं निष्कृति-

ज्ञातवैतद्धि विरञ्चिना विरचिता वाराणसी शर्मदा ।

लोकाः स्वर्गमुखास्ततोऽपि लघवो भोगान्तप्रातप्रदाः

काशी मुक्तिपुरी सदा शिवकरी धर्मार्थकामोत्तरा ॥५॥

एको वेणुधरो धराधरः श्रीवत्सभूषाधरो

यो ह्येकः किल शङ्करो विषधरो गङ्गाधरो माधवः ।

ये मातर्मणिकर्णिके तव जले मज्जन्ति ते मानवा

रुद्रा वा हरयो भवन्ति बहवस्तेषां बहुत्वं कथम् ॥६॥

त्वत्तीरे मरणं तु मङ्गलकरं देवैरपि श्लाघ्यते

शक्रस्तं मनुजं सहस्रनयनैर्द्रष्टुं सदा तत्परः ।

आयान्तं सविता सहस्रकिरणैः प्रत्युद्गतोऽभूत् सदा

पुण्योऽसौ वृषगोऽथवा गरुडगः किं मन्दिरं यास्यति ॥७॥

मध्याह्ने मणिकर्णिकास्नपनजं पुण्यं न वक्तुं क्षमः

स्वीयैरब्दशतैश्चतुर्मुखसुरो वेदार्थदीक्षागुरुः ।

योगाभ्यासबलेन चन्द्रशिखरस्तत्पुण्यपारं गत-

स्त्वत्तीरे प्रकरोति सुप्तपुरुषं नारायणं वा शिवम् ॥८॥

कृच्छ्रैः कोटिशतैः स्वपापनिधनं यच्चाऽश्वमेधैः फलं

तत्सर्वं मणिकर्णिकास्नपनजे पुण्ये प्रविष्टं भवेत् ।

स्नात्वा स्तोत्रमिदं नरः पठति चेत् संसारपाथोनिधिं

तीर्त्वा पल्वलवत् प्रयाति सदनं तेजोमयं ब्रह्मणः ॥९॥

॥ इति मणिकर्णिकाष्टकं समाप्तम् ॥२३०॥

231. काशीपञ्चकम्

मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा तीर्थवर्या मणिकर्णिका च ।

ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा ॥१॥

यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं चराऽचरं भाति मनोविलासम् ।

सर्वखैका परमात्मरूपा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा ॥२॥

कोशेषु पञ्चस्वधिराजमाना बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम् ।
 साक्षी शिवः सर्वगतोऽन्तरात्मा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा ॥३॥
 काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका ।
 सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ॥४॥
 काशीक्षेत्रं शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगङ्गा
 भक्तिः श्रद्धा गयेयं निजगुरुचरण-ध्यानयोगः प्रयागः ।
 विश्वेशोऽयं तुरीयः सकलजनमनः साक्षिभूतोऽन्तरात्मा
 देहे सर्व मदीये यदि वसति पुनस्तीर्थमन्यत् किमस्ति ॥५॥

॥ इति काशीपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥२३१॥

॥ इति गङ्गादितीर्थस्तोत्राणि ॥



8. अवतारस्तोत्राणि

232. केशवादिवतुर्विंशत्यवतारस्तोत्रम्

अधरं दक्षिणं हस्तमारभ्यैव प्रदक्षिणम् ।
 मूर्तिभेदान् हरेर्वक्ष्ये भवबन्धविमुक्तये ॥
 श्रीमत्पङ्कज-शङ्ख-चक्र-गदया सम्भूषिते केशवे
 शङ्खाम्भोज-गदा-सुदर्शनधरे नारायणे सर्वदा ।
 भक्तिर्मेऽस्तु गदा-ऽरि-शङ्ख-जलजैर्युक्ता दृढा माधवे
 गोविन्दे वर-चक्र-धारिणि गदाफुल्लाम्बज-शङ्खान्विते ॥१॥
 कौमोदक्यरिविन्द-शङ्खविदधच्चक्रं च विष्णुमुदा
 चक्राङ्गो मधुसूदनो दधदसौ शङ्खा-ऽब्ज-कौमोदकी ।
 नित्यं पद्म-गदारि-शङ्खसहितश्चित्ते मम विक्रमो
 युक्तास्तिष्ठतु शङ्ख-चक्र-गदया पद्मी सदा वामनः ॥२॥
 वन्दे श्रीधरमब्ज चक्र-गदया शङ्खेन चाऽलङ्कृतो
 नित्यं पाहि गदारि-पङ्कजदरान् विभ्रदृषीकेश माम् ।
 शङ्खा-ऽब्जारि-गदाधराद्य कुरु मे श्रीपद्मनाभाभयं
 श्रीदामोदरमब्ज-शङ्ख-गदिनं सारि प्रपन्नोऽस्म्यहम् ॥३॥
 कौमोदक्युरु शङ्ख पद्मसदरिः सङ्कर्षणः शर्मदो
 भूयात् सोऽन्य-गदाधरारिकमलः श्रीवासुदेवोऽस्तु मे ।
 प्रद्युम्नश्च रथाङ्गकं जगदया युक्तोऽब्जपाणिर्मुदे
 चक्री चारुगदी सशङ्खकमलो देवोऽनिरुद्धस्तु मे ॥४॥
 देवेशः पुरुषोत्तमोऽरिकमलः शङ्खो गदी चिद्वपु-
 विभ्रत्-पद्म-गदोरु-शङ्खमरिणा साकं सदाऽधोक्षजः ।
 चक्रा-म्भोज-गदादरादित्त-चतुर्बाहु सुखं नृहरि-
 र्दद्यादद्य ममाऽच्युतः पृथुगदा-पद्मारिशङ्खी परम् ॥५॥

साऽब्जारिः स जनार्दनोऽस्तु सदयः शङ्खो गदी मे सदा
 मूर्ध्नोपेन्द्रमहं नतोऽस्मि सदरं युक्तं गदार्यम्बुजैः ।
 वन्दे शङ्ख-सुदर्शनम्बुज-गदापाणिं हरिं मुक्तये
 कृष्णं शङ्ख-गदा-ऽब्ज-चक्रिणमलं भक्त्या समभ्यर्चये ॥६॥
 वादिराज-यति-प्रोक्त-केशवादि-स्तुतिं नरः ।
 पठेत् सर्वेष्टमाप्नोति सर्वानिष्ट-निवृत्तिमान् ॥७॥

॥ इति केशवादिचतुर्विंशत्यवतारस्तोत्रम् ॥२३२॥

233. मत्स्यस्तोत्रम्

नूनं त्वं भगवान् साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः
 अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥१॥
 नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर ।
 भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥२॥
 सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः ।
 ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥३॥
 न तेऽरविन्दाक्ष-पदोपसर्पणं मृषा भवेत् सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।
 यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥४॥

॥ इति मत्स्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२३३॥

234. कूर्मस्तोत्रम्

देवा ऊचुः

नमामि ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
 यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु-संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥१॥
 धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।
 आत्मलभन्ते भगवंस्तावाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥२॥
 मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडैश्चन्दः सुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
 यस्याघमर्षोद-सरिद्वारायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्नाः ॥३॥
 यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या समृज्यमाने हृदयेऽवधार्य ।

ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा ब्रजेम तत्तेऽघिसरोजपीठम् ॥४॥
 विश्वस्य जन्म-स्थिति-संयमार्थं कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
 ब्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥५॥
 यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहो ममाऽहमित्यूढ-दुराग्रहाणाम् ।
 पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्या भजेम तत्ते भगवान् पदाब्जम् ॥६॥
 तान् वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
 अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यास-विलास-लक्ष्म्या ॥७॥
 पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
 वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाऽञ्जसान्वीयुरकुण्ठधिष्णयम् ॥८॥
 तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
 त्वामेव धीराः पुरुषा विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्नतु सेवया ते ॥९॥
 तत्तेवयं लोकसिसृक्षयाऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ।
 सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥१०॥
 यावद् बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चाऽन्नमदाय यत्र ।
 यथाभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥११॥
 त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।
 त्वं देवशक्त्या गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधऽजः ॥१२॥
 ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।
 त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देवक्रियार्थं यदनुग्रहाणाम् ॥१३॥

॥ इति कूर्मस्तोत्रं समाप्तम् ॥२३४॥

235. वराहस्तोत्रम्

ऋषय ऊचुः

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं त्वां परिधुन्वते नमः ।
 यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥१॥
 रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
 छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वान्यं दृशि त्वंघ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥२॥
 स्नुक् तुण्ड आसीत् स्नुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्ण-रन्ध्रे ।
 प्राशित्रमास्ये ग्रसते ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३॥

दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
 जिह्वां प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकः क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हिते ॥४॥
 सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
 सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥५॥
 नमो नमस्तेऽखिलयज्ञदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
 वैराग्यभक्त्यात्मजयाऽनुभावित-ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥६॥
 दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधरः भूः सभूधरा ।
 यथा वनान्निः सरतो दत्ता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥७॥
 त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डले नाथ दत्ता धृतेन ते ।
 चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥८॥
 संस्थापयैनां जगतां सतंस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
 विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां त्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥९॥
 कः श्रद्धधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
 न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥१०॥
 विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपासत्यनिवासनो जनाः ।
 सटाशिखोद्धतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विसृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥११॥
 स वै वत भ्रष्टमतिस्तवेष ते यः कर्मणा पारमपारकर्मणः ।
 यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥१२॥

॥ इति वराहस्तोत्रम् समाप्तम् ॥२३५॥

236. नृसिंहस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
 विश्वस्य सर्ग-स्थिति-संयमान्गुणैः स्वलीलया सन्दधतेऽव्ययात्मने ॥१॥

श्रीरुद्र उवाच

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ।
 तत्सुतं पाद्मासुतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥२॥

इन्द्र उवाच

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायतां नः स्वभागा
 दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ।
 कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते
 मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥३॥

ऋषय ऊचुः

त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ।
 तद्विप्रलुप्तममुनाऽद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥४॥

पितरः ऊचुः

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्वत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ।
 तस्योदरात्रखविदीर्णविपाद्य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलं धर्मगोप्त्रे ॥५॥

सिद्धा ऊचुः

यो नो गतिंयोगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन ।
 नानादर्पं तं नखौर्नर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥६॥

विद्याधरा ऊचुः

विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।
 स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥७॥

नागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ।
 तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोऽस्तु ते ॥८॥

मनव ऊचुः

मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ।
 भवतां खलः स उपसंहतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ॥९॥

प्रजापतय ऊचुः

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
 स एव त्वया भिन्नवक्षाऽनुशेते जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥१०॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं विभो ते नट नाट्यगायका येनात्मसाद् वीर्यबलोजसा कृताः ।
 स एव नीतो भवता दशामिमां किमत्यथस्थः कशलाय कल्पते ॥११॥

चारणा ऊचुः

हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः ।
यदेष साधु हृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥१२॥

यक्षा ऊचुः

वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञै-
स्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंशः ॥१३॥

किंपुरुषा ऊचुः

वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः ।
अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥१४॥

वैतालिका ऊचुः

सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्या महतीं लभामहे ।
यस्तां व्यनैषीद् भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन् यथाऽऽमयः ॥१५॥

किन्नरा ऊचुः

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥१६॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः

अद्यैतद्भरिनररूपमद्भुतं त दृष्टं नः शरणद सर्वलोकमशर्म ।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥१७॥

॥ इति नृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१३६॥

237. लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम्

श्रीमत्पयोनिधिनिकेतन चक्रपाणे भोगीन्द्रभोगमणिरञ्जितपुण्यमूर्ते ।
योगीश शाश्वतशरण्यभवाब्धिपोतलक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥१॥
ब्रम्हेन्द्र-रुद्र-मरुदर्क-किरीट-कोटि-सङ्घट्टिताङ्घ्रि-कमलामलकान्तिकान्त ।
लक्ष्मीलसत्कुचसरोरुहराजहंस लक्ष्मीनृसिंह मम देहि करावलम्बम् ॥२॥
संसारघोरगहने चरतो मुरारे मारोग्र-भीकर-मृगप्रवरर्दितस्य ।
आर्तस्य मत्सर-निदाघ-निपीडितस्य लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥३॥

संसारकूप-मतिघोरमगाधमूलं सम्प्राप्य दुःखशत-सर्पसमाकुलस्य ।
 दीनस्य देव कृपणापदमागतस्य लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥४॥
 संसार-सागरविशाल-करालकाल-नक्रग्रहग्रसन-निग्रह-विग्रहस्य ।
 व्यग्रस्य रागदसनोर्मिनिपीडितस्य लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥५॥
 संसारवृक्ष-भवबीजमनन्तकर्म-शाखाशतं करणपत्रमनङ्गपुष्पम् ।
 आरुह्य दुःखफलितं पततो दयालो लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥६॥
 संसारसर्पघनवक्त्र-भयोग्रतीव-दंष्ट्राकरालविषदग्ध-विनष्टमूर्ते ।
 नागारिवाहन-सुधाब्धिनिवास-शौरैलक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥७॥
 संसारदावदहनातुर-भीकरोरु-ज्वालावलीभिरतिदग्धतनूरुहस्य ।
 त्वत्पादपद्म-सरसीशरणागतस्य लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥८॥
 संसारजालपतितस्य जगन्निवास सर्वेन्द्रियार्थ-बडिशार्थझषोपमस्य ।
 प्रोत्खण्डित-प्रचुरतालुक-मस्तकस्य लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥९॥
 सारभी-करकरीन्द्रकलाभिघात-निष्पिष्टमर्मवपुषः सकलार्तिनाश ।
 प्राणप्रयाणभवभीतिसमाकुलस्य लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥१०॥
 अन्धस्य मे हृतविवेकमहाधनस्य चौरैः प्रभो बलिभिरिन्द्रियनामधेयै ।
 मोहान्धकूपकुहरे विनिपातितस्य लक्ष्मीनृसिंहममदेहिकरावलम्बम् ॥११॥
 लक्ष्मीपते कमलनाभ सुरेश विष्णो वैकुण्ठ कृष्ण मधूसूदन पुष्कराक्ष ।
 ब्रह्मण्य केशव जनार्दन वासुदेव देवेश देहि कृपणस्य करावलम्बम् ॥१२॥
 यन्माययोजितवपुः प्रचुरप्रवाहमग्नान्धमत्र निबहोरुकरावलम्बम् ।
 लक्ष्मीनृसिंहचरणाब्जमधुव्रतेत स्तोत्रं कृतं सुखकरं भुवि शङ्करेण ॥१३॥

॥ इति लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२३७॥

238. लक्ष्मीनृसिंहाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

नारसिंहो	महासिंहो	दिव्यसिंहो	महाबलः ।
उग्रसिंहो	महादेवः	स्तंभजश्चोग्रलोचनः ॥१॥	
रौद्रः	सर्वाद्भुतः	श्रीमान्	योगानन्दस्त्रिविक्रमः ।
हरिः	कोलाहलश्चक्री	विजयो	जयवर्धनः ॥२॥

पञ्चाननः परंब्रह्मा चाघोरो घोरविक्रमः ।
 ज्वलन्मुखो ज्वालमाली महाज्वालो महाप्रभुः ॥३॥
 निटिलाक्षः सहस्राक्षो दुर्निरीक्ष्यः प्रतापनः ।
 महादंष्ट्रायुधः प्राज्ञश्चण्डकोपी सदाशिवः ॥४॥
 हिरण्यकशिपुध्वंसी दैत्यदानवभञ्जनः ।
 गुणभद्रो महाभद्रो बलभद्रः सुभद्रकः ॥५॥
 करालो विकरालश्च विकर्ता सर्वकर्तृकः ।
 शिंशुमारस्त्रिलोकात्मा ईशः सर्वेश्वरो विभुः ॥६॥
 भैरवाडम्बरो दिव्यश्चाच्युतः कविमाधवः ।
 अधोक्षजोऽक्षरः शर्वो वनमाली वरप्रदः ॥७॥
 विश्वम्भरोऽद्भुतो भव्यः श्रीविष्णुः पुरुषोत्तमः ।
 अनघास्त्रो नखास्त्रश्च सूर्यज्योतिः सुरेश्वरः ॥८॥
 सहस्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
 वज्रदंष्ट्रो वज्रनखो महानन्दः परंतपः ॥९॥
 सर्वयन्त्रैकरूपश्च सर्वयन्त्रविदारणः ।
 सर्वतन्त्रात्मकोऽव्यक्तः सुव्यक्तो भक्तवत्सलः ॥१०॥
 वैशाखशुक्लभूतोत्थशरणागतवत्सलः ।
 उदारकीर्तिः पुण्यात्मा महात्मा चण्डविक्रमः ॥११॥
 वेदत्रयप्रपूज्यश्च भगवान् परमेश्वरः ।
 श्रीवत्साङ्क श्रीनिवासो जगद्व्यापी जगन्मयः ॥१२॥
 जगत्पालो जगन्नाथो महाकायो द्विरूपभृत् ।
 परमात्मा परंज्योतिर्निर्गुणश्च नृकेसरी ॥१३॥
 परतत्त्वं परंधाम सच्चिदानन्दविग्रहः ।
 लक्ष्मीनृसिंहः सर्वात्मा धीरः प्रह्लादपालकः ॥१४॥
 इदं लक्ष्मीनृसिंहस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
 त्रिसन्ध्यं यः पठेत् भक्त्या सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ॥१५॥

इति लक्ष्मीनृसिंहाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥२३८॥

239. प्रह्लादकृत- नृसिंहस्तोत्रम्

प्रह्लाद उवाच

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ।
 नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिगुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजाते ॥१॥
 मन्ये धनाभिजनरूपतपः श्रुतौजस्तेजः प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
 नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजदूथपाय ॥२॥
 विप्राद् द्विषङ्गु ण्युतादरविन्दनाभापादरविन्दविमुखाच्छवपचं वरिष्ठम् ।
 मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणां पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥३॥
 नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ।
 यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने यतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥४॥
 तस्मादहं विगतविकलव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
 नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥५॥
 सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
 क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतोरुचिरावतारैः ॥६॥
 तद्यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
 लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंहविभयाय जनाः स्मरन्ति ॥७॥
 नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्यजिह्वार्कनेत्रभुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
 आन्त्रस्त्रजः क्षतकेसरशङ्कुकर्णात्रिर्हृदभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥८॥
 त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
 बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतो पवर्गशरणं ह्यसे कदा नु ॥९॥
 यस्मात्प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्मशोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।
 दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्वियाहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥१०॥
 सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलकथास्तव नृसिंहविरिञ्चगीताः ।
 अञ्जस्ति तर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयसहंससङ्ग ॥११॥
 बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
 तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥१२॥
 यस्मिन्यतो र्यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ।
 भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः सञ्जोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥१३॥

मायां मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ।
 छन्दोमयं यदजयार्पितषोडशारं संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥१४॥
 सत्त्वं हिनित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालो वशीकृतविसर्गविसर्गशक्तिः ।
 चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥१५॥
 दृष्ट्वा मया दिवि विभो खिलधिष्यपानामायुः श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम् ।
 येऽस्मत्पितुः कुपि तद्हासविजृम्भितभ्रूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निस्तः ॥१६॥
 तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ।
 नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥१७॥
 कुश्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
 निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान् कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥१८॥
 क्वाहं रजः प्रभव ईश तमोऽधिकेस्मिञ्जातः सुरेतरकुलेऽव तवानुकम्पा ।
 न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरप्रसादः ॥१९॥
 नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जन्तो र्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथाऽपि ।
 संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥२०॥
 एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः पतन् प्रसङ्गात् ।
 कृत्वाऽऽत्मसात्सुरर्षिणा भगवन्गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजेतव भृत्यसेवाम् ॥२१॥
 मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ।
 खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुसत्वामीश्वरो मदपरोऽत कं हरामि ॥२२॥
 एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य चत्त्वमाद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
 सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥२३॥
 त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ।
 यद्यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद्वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥२४॥
 न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयाम्बुमध्ये शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
 योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युगक्षे ॥२५॥
 तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।
 अम्भस्यनन्तशयनाद्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत्स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥२६॥
 तत्सम्भवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य ।
 नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ॥२७॥

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।
 त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं भूतेन्द्रियाशयमले विततं ददर्श ॥२८॥
 एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरः करोरुनासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ।
 मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥२९॥
 तस्मै भवान् हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद् वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।
 हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणांस्तुरजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥३०॥
 इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषवतारैर्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ।
 धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥३१॥
 नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ।
 कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन् कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३२॥
 जिह्वैकतोऽयुत विकर्षति मावत्तिमा शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
 घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक्कव च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिलुनन्ति ॥३३॥
 एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्यामन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
 पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमतं हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥३४॥
 को न्व तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः ।
 मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥३५॥
 नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्रचित्तः ।
 शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थमायासुखाय भरमुद्रहतो विमूढान् ॥३६॥
 प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।
 नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्षु एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥३७॥
 यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
 तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥३८॥
 मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्मव्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
 प्रायः परंपुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां वार्ता भवन्त्युत न वात तु दाम्भिकानाम् ॥३९॥
 रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ।
 युक्ताः समक्षमुभयत विचिन्वते त्वां योगेन वह्निमिव दारुष नाऽन्यतः स्यात् ॥४०॥
 त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ।
 सर्वत्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन नाऽन्यत्त्वदस्त्यपि मनोवचसानिरुक्तम् ॥४१॥

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ।

आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हित्वामेवं विमृश्य सुधियो विस्मन्ति शब्दात् ॥४२॥

तत्तेऽर्हन्तम नमः स्तुतिकर्मपूजाः कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।

संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत् ॥४३॥

नारद उवाच

एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ।

प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥४४॥

श्रीभगवानुवाच

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम् ।

वरं वृणीष्वभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥४५॥

मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे ।

दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तमुमर्हति ॥४६॥

प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ।

श्रेयस्कामा महाभागः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥४७॥

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ।

एकान्तित्वाद् भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तमः ॥४८॥

॥ इति प्रह्लादकृत-नृसिंहस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥२३९॥

240. नृसिंहस्तोत्रम्

सुराऽसुरशिरोरत्न - कान्तिविच्छुरिताङ्घ्रये ।

नमस्त्रिभुवनेशाय हरये सिंहरूपिणे ॥१॥

शत्रोः प्राणानिलास्तत्र वयं दश जयोत्र कः ।

इति कोपादिवाताम्राः पान्तु वो नृहरेर्नखा ॥२॥

प्रोज्ज्वलज्वलनज्वाला - विकटोरुसटाछटः ।

श्वासक्षिप्तकुलक्ष्माभृत्पातु वो नरकेशरी ॥३॥

व्याधूतकेसरसटाविकरालवक्त्रं

हस्ताग्रविस्फुरितशङ्खगदासिचक्रम् ।

आविष्कृतं सपदि येन नृसिंहरूपं

नारायणं तमपि विश्वसृजं नमामि ॥४॥

दैत्यास्थिपञ्जरविदारणलब्धरन्ध्र-
रक्ताम्बुनिर्जरसरिद्धनजातपङ्का ।

बालेन्दुकोटिकुटिलाः

रक्षन्तु सिंहवपुषो

दिश्यात्सुखं

यस्याहवे

क्रोधोद्यतं

जानेऽभवन्निजनखेष्वपि

शुकचञ्चुभासो

नखरा हरेर्वः ॥५॥

नरहरिर्भुवनैकवीरो

दितसुतोदुलनोद्यतस्य ।

मुखमवेक्षितमक्षमत्वं

यन्नतास्ते ॥६॥

॥ इति नृसिंहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२४०॥

241. श्रीनृसिंहसरस्वत्यष्टकम्

प्राग्ब्रह्मत्वमजोऽक्रियोऽपि बहुलः स्यामित्यभूद्धास्तया
सृष्ट्वैवाङ्गभुवं ततो जगदिदं सृष्टं सधर्मं गुणैः ।
स्वं भो रमयन्विहंसि सदरीमत्रावतीर्यादिशं
वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ॥१॥

कल्याकृष्टहृदुज्झितक्रतनुरत्रस्ताध्वराशार्मुदे
प्रातः सूर्य इवोदितोऽस्यज - महामोहान्धकारं ग्रसन् ।
सद्धर्माश्रमसेतुम शिथिलप्रायं सुदार्यं नयन्
वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपादब्जद्वयम् ॥२॥

सर्वानन्दनिधारूपममलं सत्त्वं सुखं मूर्तिमत
प्रादुष्कृत्य जन यान्तरमृगक्रीडावनं पावनम् ।
संसासवटमग्नमुद्धरसि भीः स्वीकृत्य तुर्याश्रमं
वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ॥३॥

मूके गां दृशमन्धके सुतनयं वन्ध्यासु चासूनृते
सौभाग्यं विधवासु पल्लवमही दत्तं सुशुष्केन्धने ।
एवम्भूत इयान् तवैष महिमा त्रैलोक्यसंस्थाक्षमो
वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ॥४॥

मुक्तावासममुक्षत्कल्पविटपिन् भोः कामिनां कामधुग्-
दारिद्र्यानलमेघदुष्कृतदवाग्नौ तापिताराम ते ।
श्रुत्यन्विष्टरेजः पदं श्रुतविवादातीतत्वं महद्

वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ॥५॥
 भो योगीश्वरभावितं तव पदं तीर्थाश्रयं सज्जना
 जीवं कामिषु दैवतं च कमलालीलास्थल निर्मलम्।
 विद्वद्वादकरण्डकं सुकृतसंस्थानं महत्पावनं
 वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ॥६॥
 वेदागोचरे ते चरित्रममलं भक्तो त्र कः कृत्स्नशो
 वक्तुं वन्द्य विनेन्दुभूतपवनात्मेतीह मूर्त्यष्टकम्।
 एतद्विश्वमयं न चान्यदिह वा ॐकाररूपेशितु-
 र्वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ॥७॥
 कुण्डीदण्डकरे प्रशान्तममलं संन्यासिरूपं तव
 श्रीभीमामरजायुतिस्थितमजं ध्येयं शरण्यं मयि।
 ज्ञानं तारकमीश ब्रह्मन् स्थिरीकुर्वतो
 वन्दे श्रीनृहरे सरस्वति वरं ते श्रीपदाब्जद्वयम् ॥८॥

॥ इति श्रीनृसिंहसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२४१॥

242. नृसिंहसरस्वतीस्तोत्रम् (1)

कोट्यर्धकं कोटिसुचन्द्रशान्तं विश्वाश्रयं देवगणार्चितांघ्रिम्।
 भक्तप्रियं त्वाऽत्रिसुतं वरेण्यं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ॥१॥
 मायातभोऽहं विगुणं गुणाढ्य श्रीवल्लभं स्वीकृतभिक्षुवेषम्।
 यद्भक्तसेव्यं वरदं वरिष्ठं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ॥२॥
 कामादिषण्मत्तगजांकुशं त्वामानन्दकन्द परतत्त्वरूपम्।
 सद्धर्मगुप्त्यं विधतावतारं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ॥३॥
 सूर्येन्दुगं सज्जनकामधेनुं मृषोद्यपञ्चात्मकविश्वमस्मात्।
 उदेति यस्मिन्नमतेऽस्तमेति वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ॥४॥
 रक्ताब्जपत्रायतकान्तनेत्र सदकुण्डोपरिहापिताघम्।
 श्रितस्मितज्योत्स्नमुखेन्दुशोभं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ॥५॥
 नित्यं त्रयीसृमृग्यपदाब्जधूलिं निदादसद्विन्दुकलास्वरूपम्।
 त्रित्तपत्तप्ताश्रितकल्पवृक्षं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ॥६॥

दैन्याधिभीकष्ट इवाग्निमीड्यं योगाष्टकज्ञानसमर्पणोक्तम् ।
 कृष्णानदीपञ्चसान् द्युतिस्थं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ॥७॥
 अनादिमध्यान्तमनन्तशक्तिमतक्यभावं परमात्मसंज्ञम् ।
 व्यसीतवाग्दहत्पथमद्वितीयं वन्दे नृसिंहेश्वर पाहि मां त्वम् ॥८॥

इति नृसिंहसरस्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२४२॥

243. नृसिंहसरस्वतीस्तोत्रम् (2)

विजयते जयते जयते च यतेरिह तमोहतमो तमो नमः ।
 हृदि कदाय पदाय सदा यदा तदुदयो न दयोनवियोनयः ॥१॥
 तदयते नयते न यतेर्यदा मनसि कामनिकामगतिस्तदा ।
 यदुदयो हृदयौकसितेऽसिते भवति यो वति योगिवरावरान् ॥२॥
 भवति भावभवो विभवो यदा भवति कामनिकामतिस्तदा ।
 भवति मानवगानवदुत्तमे भवतिरोधिरतो विरतोत्तमे ॥३॥
 तव सत्तां वसतां मनसान्स प्रपदयोः पदयोजसाञ्जसा ।
 सुसहितः सहितस्तव तावता यदवतारवताजनतावित ॥४॥
 कृतफलं तु निहाय विहायसा समयजं मजतामजतामसात् ।
 मिलति तारकमत्र कमत्रसत्तरजो भ्रमहरि महारिसत् ॥५॥
 तदजरामरकोशविलक्षणं सहजधीगुणवेत्तृकलक्षणम् ।
 भुवनहेत्वघहत्त्रिपुराधिकं तव न जातु नदं कुपराधिकम् ॥६॥
 त्रिविधभेदपरं समदृश्यते ।
 पदमिदं यदुद्विचरनमुद्विद्या सदनितं प्रजहात्यधनुद्विद्या ॥७॥
 अज नमो जनमोहनमोहनः प्रियनिजोजयते नयते नते ।
 य इह वेदनिवेदनिदयेत्यजपदं जपदं तपदं पदम् ॥८॥

इति नृसिंहसरस्वतीस्तोत्रम् ॥१२४३॥

244. नृसिंहस्तवः

सोमार्थायितनिष्पधानदशनः सन्ध्यायितान्मुखो
 बालकार्थायितलोचनः सुरधनुर्लेखायितभूलयः ।

अन्तर्नादिनिरोधपीवरगलत्वक्कूपनिर्यत्तडि-

त्तारस्फाऽरसरावरुद्धगगनः पायात्रसिंहः स वः ॥१॥
 विद्युच्चक्रकरालकेसरसटाभारस्य दैत्यदुहः
 शोणन्नेत्रहुताशडम्बरभृयः सिंहाकृतेः शार्ङ्गिणः ।
 विस्फूर्जदगलगर्जितककुम्मातङ्गदपौ दलाः
 संरम्भा सुखयन्तु वः खरनखभुण्णाद्विषक्षसः ॥२॥
 दैत्यानामधिपे नखाङ्कुरकुटीकोणप्रविष्टात्मनि
 स्फारीभूतकरालकेसरसटासङ्घातघोराकृतेः ।
 सक्रोधं च सविस्मयं च सगुरुव्रीडं च सान्तःस्मितं
 क्रीडाकेसरिणा हरेर्विजयते तत्कालमालोकितम् ॥३॥
 पायान्मायामृगेन्द्रो जगदखिलमसौ यत्तनूदर्षिरर्चि-
 र्जालाजालावलीढं बत भुवि सकलं व्याकुलं किं न भूयात् ।
 न स्याच्चेदाशु तस्याधिकविकटसगाकोटिभिः पाठ्यमाना-
 दिन्दोरानन्दकन्दात्तदुपरि तुहिनासारसन्दोहवृष्टिः ॥४॥

इति नृसिंहस्तवः समाप्तम् ॥२४४॥

245. वामनस्तोत्रम्

अदितिरुवाच

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
 आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाऽद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥१॥
 विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
 स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥२॥
 आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीद्यौर्भूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
 ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति दुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥३॥

॥ इति वामनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२४५॥

246. दशावतारस्तोत्रम्

नमोऽस्तु नारायण-मन्दिराय नमोऽस्तु हारायणकन्धराय ।
 नमोऽस्तु पारायण-चर्चिताय नमोऽस्तु नारायण तेऽर्चिताय ॥१॥

नमोऽस्तु मत्स्याय लयाब्धिगाय नमोऽस्तु कूर्माय पयोऽब्धिगाय ।
 नमो वराहाय धराधराय नमो नृसिंहाय परात्पराय ॥२॥
 नमोऽस्तु शुक्राश्रयवामनाय नमोऽस्तु विप्रोत्सवभार्गवाय ।
 नमोऽस्तु सीताहितराघवाय नमोऽस्तु पार्थस्तुतयादवाय ॥३॥
 नमोऽस्तु बुद्धाय विमोहकाय नमोऽस्तु ते कल्किपदोदिताय ।
 नमोऽस्तु पूर्णामितसद्गुणाय समस्तनाथाय हयाननाय ॥४॥
 करस्थ-शङ्खोल्लसदक्षमाला प्रबोधमुद्राभयपुस्तकाय ।
 नमोऽस्तु वक्त्रोद्गिरदागमाय निरस्तहेयाय हयानयाय ॥५॥
 रमासमाकारचतुष्टयेन क्रमाच्चतुर्दिक्षु निषेविताय ।
 नमोऽस्तु पार्श्वद्वयद्विरूप-श्रियाभिषिक्ताय हयाननाय ॥६॥
 किरीट-पट्टाङ्गद-हार-काञ्ची-सुरत्न-पीताम्बर-नूपुराद्यैः ।
 विराजिताङ्गाय नमोऽस्तु तुभ्यं सुरैः परीताय हयाननाय ॥७॥
 विदोषि-कोटीन्दुनिभ-प्रभाय विशेषतो मध्वमुनिप्रियाय ।
 विमुक्तवन्द्याय नमोऽस्तु विष्वग् विधूतविघ्नाय हयाननाय ॥८॥
 नमोऽस्तु शिष्टेष्टद-वादिराजकृताष्टकाभिष्टुतचेष्टिताय ।
 दशावतारैस्त्रिदशार्थदाय निशेशबिम्बस्थहयाननाय ॥९॥

॥ इति दशावतारस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२४६॥

247. परशुरामाष्टविंशतिनामस्तोत्रम्

ऋषिरुवाच

यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ।
 त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥१॥
 दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ।
 तस्य नामानि पुण्यानि वच्मि ते पुरुषर्षभ ॥२॥
 भू-भार-हरणार्थाय माया-मानुष-विग्रहः ।
 जनार्दनांशसम्भूतः स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वरः ॥३॥
 भार्गवो जामदग्न्यश्च पित्राज्ञापरिपालकः ।
 मातृप्राणप्रदो धीमान् क्षत्रियान्तकरः प्रभु ॥४॥
 रामः परशुहस्तश्च कार्तवीर्यमदापह ।
 रेणुकादुःखशोकघ्नो विशोकः शोकनाशन ॥५॥

नवीन-नीरद-श्यामो रक्तोत्पलविलोचनः ।
 घोरो दण्डधरो धीरो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रिय ॥६॥
 तपोधनो महेन्द्रादौ न्यस्तदण्डः प्रणान्तधीः ।
 उपगीयमानचरित-सिद्ध-गन्धर्व-चारणैः ॥७॥
 जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि दुःख-शोक-भयातिग ।
 इत्यष्टाविंशतिर्नाम्नामुक्ता स्तोत्रात्मिका शुभा ॥८॥
 अनया प्रीयतां देवो जामदग्न्यो महेश्वरः ।
 नेदं स्तोत्रमशान्ताय नादान्तायातपस्विने ॥९॥
 नावेदविदुषे वाच्यमशिष्याय खलाय च ।
 नासूयकायानृजवे न चाऽर्निर्दिष्टकारिणे ॥१०॥
 इदं प्रियाय पुत्राय शिष्यायानुगताय च ।
 रहस्यधर्मं वक्तव्यं नाऽन्यस्मै तु कदाचन ॥११॥

॥ इति परशुरामाष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२४७॥

248. कार्तवीर्यस्तोत्रम्

कार्तवीर्यः स्वलद्वेषी कृतवीर्यसुतो बली ।
 सहस्रबाहुः शत्रुघ्नो रक्तवासा धनुर्धरः ॥१॥
 रक्तगन्धो रक्तमाल्यो राजा स्मर्तुरभीष्टदः ।
 द्वादशैतानि नामानि कार्तवीर्यस्य यः पठेत् ॥२॥
 सम्पदस्तस्य जायन्ते जनास्तस्य वशंगताः ।
 आनयत्याशु दूरस्थं क्षेमलाभयुतं प्रियम् ॥३॥
 कार्तवीर्याजुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत् ।
 तस्य स्मरणा मात्रेण हतं नष्टं च लभ्यते ॥४॥
 कीर्तवीर्याजुनो महाबाहो सर्वदुष्टनिर्वहण ।
 सर्वं रक्ष सदा तिष्ठ दुष्टान्नाशय पाहि माम् ॥५॥
 सहस्रबाहुं स-शरं स-चापं रक्ताम्बरं रक्तकिरीटकुण्डलम् ।
 चौरादि-दुष्टभयनाशनमिष्टदंतं ध्यायेन्महाबल-विजृम्भित-कार्तवीर्यम् ॥६॥
 यस्य संस्मरणादेव सर्वदुःखक्षयो भवेत् ।
 तं नमामि महावीर्यमर्जुनं कृतवीर्यजम् ॥७॥

हैहयाधिपतेः स्तोत्रं सहस्रावर्तनं कृतम् ।
वाञ्छितार्थप्रदं नृणां शूद्राद्यैर्यदि न श्रुतम् ॥८॥

इति कार्तवीर्यस्तोत्रं समाप्तम् ॥१२४८॥

249. कार्तिकेयस्तोत्रम्

स्कन्द उवाच

योगीश्वरो महासेनः कार्तिकेयो गिननन्दनः ।
स्कन्दः कुमारः सेनानी स्वामी शङ्करसम्भवः ॥१॥
गाङ्गेयस्ताम्रचूडश्च ब्रह्मचारी शिखिध्वजः ।
तारकारिरुमापुत्रः क्रौञ्चारिश्च षडाननः ॥२॥
शब्दब्रह्मसमुद्रश्च सिद्धः सारस्वतो गुहः ।
सनत्कुमारो भगवान् भोगमोक्षफलप्रदः ॥३॥
शरजन्मा गणाधीशपूर्वजो मुक्तिमार्गकृत् ।
सर्वागमप्रणेता च वाञ्छितार्थप्रदर्शनः ॥४॥
अष्टाविंशतिनामानि मदीयानीति यः पठेत् ।
प्रत्यूषं श्रद्धया युक्तो मूको वाचस्पतिर्भवेत् ॥५॥
महामन्त्रमयानीति मम नामानुकीर्तनम् ।
महाप्रज्ञामवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥६॥

इति कार्तिकेयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२४९॥

250. मयूरेश्वरस्तोत्रम्

सर्वे ऊचः

परब्रह्मरूपं चिदानन्दरूपं परेशं गुणाब्धिं गुणेशम् ।
गुणातीतमीशं मयूरेशवन्द्यं गणेशं नताः स्मो नताः स्मो नताः स्मः ॥१॥
जगद्वन्द्यमेकं पराकारमेकं गुणानां परं कारणं निर्विकल्पम् ।
जगत्पालकं हारकं तारकं मयूरेश्वन्द्यं गणेशं नताः स्मो नताः स्मः ॥२॥
महादेवसूनुं महादैत्यनाशं महापूरुषं सर्वदा विघ्ननाशम् ।
सदा भक्तपोषं परं ज्ञानकोषं मयूरेशवन्द्यं गणेशं नताः स्मो नताः स्मः ॥३॥

अनादिं गुणादिं सुरादिं शिवाया महातोषदं सर्वदा सर्ववन्द्यम् ।
 सुरार्यन्तकं भुक्तिमुक्तिप्रदं तं मयूरेशवन्द्यं गणेशं नताः स्मो नताः स्मः ॥४॥
 परं मायिनं मायिनामप्यगम्यं मुनिध्येयमाकाशकल्पं जनेशम् ।
 असंख्यावतारं निजाज्ञाननाशं मयूरेशवन्द्यं गणेशं नताः स्मो नताः स्मः ॥५॥
 अनेकक्रियाकारकं श्रुत्यगम्यं त्रयीबोधितानेककर्मादिबीजम् ।
 क्रिया सिद्धिहेतुं सुरेन्द्रादिसेव्यं मयूरेशवन्द्यं गणेशं नताः स्मो नताः स्मः ॥६॥
 महाकालरूपं निमेषादिरूपं कलाकलपरूपं सदागम्यरूपम् ।
 जनज्ञानहेतुं नृणां सिद्धिदं तं मयूरेशवन्द्यं गणेशं नताः स्मो नताः स्मः ॥७॥
 महेशादिदेवैः सदा ध्येयपादं सदा रक्षकं तत्पदानां हतारिम् ।
 मुदा कामरूपं कृपावारिधिं तं मयूरेशवन्द्यं गणेशं नताः स्मो नताः स्मः ॥८॥

सदा भक्तिं नाथे प्रणयपरमानन्दसुखदो
 यतस्त्वं लोकानां परमकरुणामाशु तनुषे ।
 षडूर्मीनां वेगं सुरवर विनाशं नय विभो
 ततो भक्तिः श्लाघ्या तव भजनतोऽनन्यसुखदा ॥९॥
 किमस्माभिः स्तोत्रं सकलसुरतापलक विभो
 विधेयं विश्वात्मन्नगणितगुणानामधिपते ।
 न संख्याता भूमिस्तव गुणगणानां त्रिभुवने
 न रूपाणां देव प्रकटय कृपां नोऽसुरहते ॥१०॥
 मयूरेशं नमस्कृत्य ततो देवोऽब्रवीच्चतान् ।
 य इदं पठते स्तोत्रं स कामाँल्लभतेऽखिलान् ॥११॥
 सर्वत्र जयमाप्नोति मानमायुः श्रियं परम् ।
 पुत्रवान् धनसम्पन्नो वशयतामखिलं नयेत् ॥१२॥
 सहस्रावर्तनात् कारागृहस्थं मोचयेज्जनम् ।
 नियुतावर्तनान्मर्त्योऽसाध्यं यत्साधयेत् क्षणात् ॥१३॥

इति मयूरेश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२५०॥

251. कार्तिकेयस्तोत्रम्

भावस्वद्वज्रप्रकाशो दशशतनयनेनार्चितो वज्रपाणि-
 भास्वन्मुक्तासुवर्णाङ्गदमुकुटधरो दिव्यगन्धोज्ज्वलाङ्गः ।

पावंजेशो गुमाढ्यो हिमगिरितनयानन्दनो वह्निजातः
 पातु श्रीकार्तिकेयो नजतनवरदो भक्तिगम्यो दयालुः ॥१॥
 सेनानीर्देवसेनापतिरमवरैः सन्ततं पूजिताङ्घ्रिः
 सेव्यो ब्रह्मर्षिमुख्यैर्विगतकलिमलैर्ज्ञानिभिर्मोक्षकामैः ।
 संसाराढ्यौ निमग्नैर्गृहसुखरतिभिः पूजितो भक्तवृन्दैः
 सम्यक् श्रीसम्भूसूनुः कलयतुकुशलं श्रीमयूराधिरूढः ॥२॥
 लोकान् त्रीन् पीडयन्तं दितिदनुजपतिं तारकं देवशत्रुं
 लोकेशात्प्राप्तसिद्धिं शिवकनकशरैर्लीलया नाशयित्वा ।
 ब्रह्मेन्द्राद्यादितेयैर्मणिगणखचिते हेमसिंहासने यो
 ब्रह्मण्यः पातु नित्यं परिमलविलसत्पुष्पवृष्ट्याऽभिषिक्तः ॥३॥
 युद्धे देवासुराणामनिमिषपतिना स्थापितो यूथपत्वे
 युक्तः कोदण्डबाणासिकुलिशपरिधैः सेनया देवतानाम् ।
 हत्वा दैत्यान्प्रमत्तान् जयनिनदयुतैर्मङ्गलैर्वाद्यघोषै-
 र्हींस्तिश्रेष्ठाधिरूढो विबुधयुवतिभिर्वीजितः पातु युक्तः ॥४॥
 श्रीगौरीकान्तपुत्रं सुरपतनयया विष्णुपुत्रया च युक्तं
 श्रीस्कन्दं ताम्रचूडाभयकुलिशधरं शक्तिहस्तं कुमारम् ।
 षड्ग्रीवं मञ्जुवेषं त्रिदिववरसुमस्त्रधरं देवदेवं
 षड्वक्त्रं द्वादशाक्षं गणपतिसहजं तारकारिं नमामि ॥५॥
 कैलासोत्तुङ्गशृङ्गे प्रमथसुरगणैः पूजितं वारिवाहं
 कैलासाद्रीशपुत्रं मुनिजनहृदयानन्ददं वारिजाक्षम् ।
 गन्धाढ्यां पारिजातप्रभृतिशुभकृतां मालिकां धारयन्तं
 गङ्गापत्यं भजेऽहं गुहममरनुतं तप्तजाम्बूनदाभम् ॥६॥
 भक्तेष्टार्थप्रदाने विरतमभयदं ज्ञानशक्तिं सुरेशं
 भक्तया नित्यं सुरर्षिप्रमुखमुनिगणैरर्चितं रक्तवर्णम् ।
 वन्द्यं गन्धर्वमुख्यैर्भवजलधितरिं पीतकौशेयवस्त्रं
 वन्दे श्रीबाहुलेयं मदनरिपुसुतं कोटिचन्द्रप्रकाशम् ॥७॥
 तप्तस्वर्णाभकायं मधुरितपुतनयाकान्तमम्भोजनेत्रं
 तत्त्वज्ञं चन्द्रमौलिप्रियसुतमिभवक्त्रानुजं शक्तिपाणिम् ।
 गाङ्गेयं कार्तिकेयं स्मरसदृशवपुं रत्नहारोज्ज्वलाङ्गं

गानप्रेमं शुभाङ्गं स्मितरुचिरमुखं चारुभूषं नमामि ॥८॥
 ध्यायेद्वालार्ककान्तिं शरवनजनितं पार्वतीप्रीतिपुत्रं
 ध्यानप्रेमं कृपालुं वरदमघहरं पुण्यरूपं पवित्रम् ।
 नित्यानन्दं वरेण्यं रजतगिरिवरोत्तुङ्गशृङ्गाधिवासं
 नित्यं देवर्षिवन्द्यं भवहरममलं वेदवेद्यं पुराणम् ॥९॥
 इति कार्तिकेयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५१॥

252. अश्विनीकुमारस्तोत्रम्

प्रपूर्वगौ पूर्वजौ चित्रभानू गिरा वां शंसामि तपसा ह्यनन्तौ ।
 दिव्यौ सुपर्णौ विरजौ विमानावधिक्षिपन्तौ भुवनानि विश्वा ॥१॥
 हिरण्मयौ शकुनी समपरायौ नासत्यदस्त्रौ सुनसौ वैजयन्ति ।
 शुक्लं वयन्तौ तरसा सुवेमावधिव्यन्तावसितं विवस्वतः ॥२॥
 ग्रस्तां सुपर्णस्य बलेन वर्तिकाममुञ्जतावश्विनौ सौभगाय ।
 तावत्सुवृत्तावनमन्तमाययावसत्तमा गा अरुणा उदावहत् ॥३॥
 षष्टिश्च गावस्त्रिशताश्च धेनव एकं वत्सं सुवते तं दुहन्ति ।
 नानागोष्ठा विहिता एकदोहनास्तवश्विनौ दुहतो धर्ममुख्यम् ॥४॥
 एकां नाभिं सप्तशता अराः श्रिताः प्रधिष्वन्या विंशतिरर्पिता अराः ।
 अनेमिचक्रं प रिवर्ततेऽजरं मायाश्विनौ समनक्ति चर्षणी ॥५॥
 एकं चक्रं वर्तते द्वादशारं षण्णाभिमेकाक्षममृतस्य धारणम् ।
 यस्मिन्देवा अधिविश्वे विषक्तास्तावश्विनौ मुञ्जतो मा विषीतनम् ॥६॥
 अश्विनाविन्दुममृतं वृत्तभूयौ तिरोधत्तामश्विनौ दासपत्नी ।
 हित्वा गिरिमश्विनौ गामुदाचरन्तौ तद्धृष्टिमह्नात्प्रथितौ बलस्य ॥७॥
 युवां दिशौ जनयथो दशाग्रे सवानं मूर्ध्नि रथयानं वियन्ति ।
 तासां यातमृषयोऽनुप्रयान्ति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ॥८॥
 युवा वर्णान्विकुरुथा विश्वरूपांस्तेऽधिक्षिपन्ते भुवनानि विश्वा ।
 ते भानवोऽप्यनुसृताश्चरन्ति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ॥९॥
 तौ नासत्यावश्विनौ वां महेऽहं स्रजं च यां बिभृथः पुष्करस्य ।
 नौ नासत्यावमृतावृतावृधावृते देयास्तत्प्रपदे न सूते ॥१०॥
 सुखेन गर्भं लभतां युवानौ गतासुरेतत्प्रदेन सूते ।
 सद्यो जातामातरमन्ति गर्भस्थावश्विनौ मुञ्जतो जीवसे गाम् ॥११॥

स्तोतुं न शक्नोमि गुणैर्भरन्तौ चक्षुर्विहीनः पथि सम्प्रमोहः ।
दुगेऽहमस्मिन्पतितो स्मि कूपे युवां शरण्यौ शरणं प्रपद्ये ॥१२॥

॥ इति अश्विनीकुमारस्तोत्रम् ॥२५२॥

253. वेङ्कटेश-द्वादशनाम-स्तोत्रम्

श्रीवेङ्कटेशमतिसुन्दरमोहनाङ्गं श्रीभूमिकान्तमरविन्ददलायताक्षम् ।
प्राणप्रियं परमकारुण-कम्बुराशिं ब्रह्मेशवन्द्यममृतं वरदं नमामि ॥१॥
अखिल-विबुध-वन्द्यं विश्वरूपं सुरेशमभय-वरदहस्तं कञ्जजाक्षं रमेशम् ।
जलधरनिभकान्तिं श्रीमहिभ्यां समेतं परमपुरुषमाद्यं वेङ्कटेशं नमामि ॥२॥
वेङ्कटेशो वासुदेवो वारिजासनवन्दितः ।
स्वामि - पुष्करिणीवासः शङ्ख - चक्र - गदा - गदाधरः ॥३॥
पीताम्बरधरो देवो गरुडारूढशोभितः ।
विश्वात्मा विश्वलोकेश - विजयो वेङ्कटेश्वरः ॥४॥
एतानि द्वादशनामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥५॥

इति वेङ्कटेश-द्वादशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५३॥

254. वेङ्कटेश्वरमङ्गलस्तोत्रम्

श्रियः कान्ताय देवाय कल्याणनिधये र्थिनाम् ।
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥१॥
लक्ष्मीसविभ्रमालोकपद्मविभ्रमचक्षुषे ।
चक्षुषे सर्वलोकानां वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥२॥
श्रीवेङ्कटादिशृङ्गाय मङ्गलाभरणाद्यये ।
मङ्गलानां निवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥३॥
सर्वावयवसौन्दर्यसम्पदा सर्वचेतसाम् ।
सदा सम्मोहनायास्तु वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥४॥
नित्याय निरवद्याय सत्यानन्दचिदात्मने ।
सर्वान्तरात्मने श्रीमद्वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥५॥
स्वतः सर्वविदे सर्वशक्तये सर्वशेषिणे ।

सुलभाय सुशीलाय वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥६॥
 परस्मै ब्रह्मणे पूर्णकामाय परमात्मने ।
 प्रपन्नपरतत्त्वाय वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥७॥
 अकाल त्वविश्रान्तावात्मानमनुपश्यताम् ।
 अतृप्तामृतरूपाय वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥८॥
 प्रायः स्वचरणौ पुंसां मरणत्वेन पाणिना ।
 कृपया दृश्यते श्रीमद्वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥९॥
 दयामृततरङ्गिण्यास्तरङ्गैरपि शीतलैः ।
 अपाङ्गैः सिञ्चते विश्वं वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥१०॥
 स्त्रग्भूषांबरहेतीनां सुषमावहमूर्तये ।
 सर्वार्तिशमनायास्तु वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥११॥
 श्रीवैकुण्ठविरक्ताय स्वामिपुष्करिणीतटे ।
 रमया रममाणाय वेङ्कटेशाय मङ्गलम् ॥१२॥
 श्रीमत्सुन्दरजामातृ - मुनिमानसवासिने ।
 सर्वलोकनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥१३॥
 नमः श्रीवेङ्कटेशाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ।
 वासुदेवाय शान्ताय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥१४॥
 मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरागमैः ।
 सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतस्यास्तु मङ्गलम् ॥१५॥

इति श्रीवेङ्कटेश्वरमङ्गलस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५४॥

॥ इति अवतार-स्तोत्रणि ॥



9. रामस्तोत्राणि

255. श्रीराम प्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं मन्दस्मितं मधुरभाषिविशालभालम् ।
कर्णावलम्बि-चलकुण्डलशोभिगण्डं कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥१॥
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं सीताकरणग्रहणमङ्गलमाप सद्यः ॥२॥
प्रातर्भजामि रघुनाथपदारविन्दं पद्माङ्कुशादिशुभरेखि सुखावहं मे ।
योगीन्द्र-मानस-मधुव्रत-सेव्यमानं शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ॥३॥
प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति ।
यत्पार्वती स्वपतिना सहभोक्तुकामा प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ॥४॥
प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं नीलाम्बुदोत्पलसितेतरलनीलाम् ।
आमुक्त-मौक्तिकवि शेष-विभूषणाढ्यां ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनमुक्तिहेतुम् ॥५॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेद्भि नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥६॥

इति श्रीरामप्रातः स्मरणस्तोत्रम् ॥२५५॥

256. रामरक्षास्तोत्रम् (1)

अस्य श्रीरामरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य बुधकौशिक ऋषिः, श्रीसीतारामचन्द्रो देवता, अनुष्टुप्-छन्दः, सीता-शक्तिः, श्रीमद्भुवान्, कीलकम् श्रीसीतारामचन्द्रप्रीत्यर्थं रामरक्षास्तोत्रजपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलदल-स्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामाङ्गारूढसीता-मुखकमलमिललल्-लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तारम् ।
 एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥१॥
 ध्यात्वा नीलोत्पलश्यामं रामं राजीवलोचनम् ।
 जानकीं लक्ष्मणोपेतं जटामुकुटमण्डितम् ॥२॥
 सासितूण-धनुर्बाणपाणिं नक्तञ्चरान्तकम् ।
 स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम् ॥३॥
 राम-रक्षां पठेत् प्राज्ञः पापघ्नीं सर्वकामदाम् ।
 शिरो मे राघवः पातु भालं दशरथात्मजः ॥४॥
 कौसल्येयो दृशौ पातु विश्वामित्रप्रियः श्रुती ।
 घ्राणं पातु मखत्राता मुखं सौमित्रिवत्सलः ॥५॥
 जिह्वां विद्यानिधिः पातु कण्ठं भरतवन्दितः ।
 स्कन्धौ दिव्यायुधः पातु भुजौ भग्नेशकार्मुकः ॥६॥
 करौ सीतापतिः पातु हृदयं जामदग्न्यजित् ।
 मध्यं पातु खरध्वंशी नाभिं जाम्बवदाश्रयः ॥७॥
 सुग्रीवेशः कटीं पातु सक्थिनी हनुमत्प्रभुः ।
 ऊरू रघूत्तमः पातु रक्षःकुलविनाशकृत् ॥८॥
 जानुनी सेतुकृत् पातु जङ्घे दशमुखान्तकः ।
 पादौ विभीषणश्रीदः पातु रामोऽखिलं वपुः ॥९॥
 एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृतीं पठेत् ।
 स चिरायुः सुखी पुत्रो विजयी विनयी भवेत् ॥१०॥
 पाताल-भूतल-व्योमचारिणश्छद्मचारिणः ।
 न द्रुष्टमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः ॥११॥
 रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन् ।
 नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥१२॥
 जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाऽभिरक्षितम् ।
 यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः ॥१३॥
 वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत् ।
 अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम् ॥१४॥
 आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः ।
 तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः ॥१५॥

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम् ।
 अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः ॥१६॥
 तरुणौ रूपसम्पन्नौ सुकुमारे महाबलौ ।
 पुण्डरीक-विशालाक्षौ चीरकृष्णाजिनाम्बरौ ॥१७॥
 फलमूलाशिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ ।
 पुत्रौ दशरथस्यैतौ भ्रातरौ राम-लक्ष्मणौ ॥१८॥
 शरण्यौ सर्वसत्त्वानां श्रेष्ठो सर्वधनुष्मताम् ।
 रक्षः कुलनिहन्तारौ त्रायेतां नो रघूत्तमौ ॥१९॥
 आत्तसज्जधनुषाविषुविस्पृशा-वक्षयाशुगनिषङ्गसङ्गिनौ ।
 रक्षणाय मम रामलक्ष्मणावग्रतः पथि सदैव गच्छताम् ॥२०॥
 सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा ।
 गच्छन् मनोरथोऽस्माकं रामः पातु सलक्ष्मणः ॥२१॥
 रामो दाशरथिः शूरो लक्ष्मणानुचरो बली ।
 काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौसल्येयो रघूत्तमः ॥२२॥
 वेदान्तवेद्यो यज्ञेशः पुराणपुरुषोत्तमः ।
 जानकीवल्लभः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः ॥२३॥
 इत्येतानि जपन्नित्यं मद्भक्तः श्रद्धयाऽन्वितः ।
 अश्वमेधायुतं पुण्यं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥२४॥
 रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम् ।
 स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥२५॥
 रामं लक्ष्मणपूर्वजं रघुवरं सीतापतिं सुन्दरं
 काकुत्स्थं करुणार्णवं गुणनिधिं विप्रप्रियं धार्मिकम् ।
 राजेन्द्रं सत्यसन्धं दशरथतनयं श्यामलं शान्तमूर्तिं
 वन्दे लोकाभिरामं रघुकुलतिलकं राघवं रावणारिम् ॥२६॥
 रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
 रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥२७॥
 श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
 श्री राम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥२८॥
 श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
 श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥२९॥

मातो रामो मत्पिता रामचन्द्रः स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः ।
 सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालुर्नाऽन्यं जाने नैव जाने न जाने ॥३०॥
 दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे तु जनकात्मजा ।
 पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥३१॥
 लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् ।
 कारुण्यरूपं करुणाकरं तं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥३२॥
 मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
 वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥३३॥
 कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
 आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥३४॥
 आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
 लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥३५॥
 भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम् ।
 तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम् ॥३६॥
 रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
 रामेणाऽभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः ।
 रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
 रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम! मामुद्धर ॥३७॥
 राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे ।
 सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ॥३८॥

॥ इति रामरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५६॥

257. रामरक्षास्तोत्रम् (2)

ॐ रामरक्षास्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमहर्षिविश्वामित्र-ऋषिः, श्रीरामचन्द्रो देवता, अनुष्टुप्छन्दः, श्रीविष्णुप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ।

ध्यात्वा वै पुण्डरीकाक्षं श्रीरामं विष्णुमव्ययम् ॥१॥

पातु वो हृदयं रामः श्रीकण्ठः कण्ठमेव च ।

नाभिं पातु मखत्राता कटिं मे विश्वरक्षकः ॥२॥

करौ पातु दाशरथिः पादौ मे विश्वरूपधृक् ।
 चक्षुषी पातु वै देवः सीतापतिरनुत्तमः ॥३॥
 शिखां मे पातु विश्वात्मा कर्णौ मे पातु कामदः ।
 पार्श्वयोस्तु सुरत्राता कालकोटिदुरासदः ॥४॥
 अनन्तः सर्वदा पातु शरीरं विश्वनायकः ।
 जिह्वा मे पातु पापघ्नो लोकशिक्षाप्रवर्त्तकः ॥५॥
 राघवः पातु मे दन्तान् केशान् रक्षतु केशवः ।
 सक्थिनी पातु मे दत्तविजयो नाम विश्वसृक् ॥६॥
 एतां रामबलोपेतां रक्षां यो वै पुमान् पठेत् ।
 स चिरायुः सुखी विद्वान् लभते दिव्यसम्पदम् ॥७॥
 रक्षां करोति भूतेभ्यः सदा रक्षतु वैष्णवी ।
 रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति यः स्मरेत् ॥८॥
 विमुक्तः स नरः पापान् मुक्तिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ।
 वसिष्ठेन इदं प्रोक्तं गुरवे विष्णुरूपिणे ॥९॥
 ततो मे ब्रह्मणः प्राप्तं मयोक्तं नारदं प्रति ।
 नारदेन तु भूर्लोके प्रापितं सुजनेष्विह ॥१०॥
 सुप्त्वा वाऽथ गृहे वाऽपि मार्गे गच्छति एव वा ।
 ये पठन्ति नरश्रेष्ठास्ते ज्ञेयाः पुण्यभागिनः ॥११॥

॥ इति रामरक्षास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५७॥

258. रामस्तोत्रम् (1)

जटायुरुवाच

अगणितगुणमप्रमेयमाद्यं सकलजगत्-स्थिति-संयमादिहेतुम् ।
 उपरमपरमं परात्मभूतं सततमहं प्रणतोऽस्मि रामचन्द्रम् ॥१॥
 निरवधिसुखमिन्दिराकटाक्षं क्षपित-सुरेन्द्र-चतुर्मुखादिदुःखम् ।
 नरवरमनिशं नतोऽस्मि रामं वरदमहं वर-चाप-बाणहस्तम् ॥२॥
 त्रिभुवन-कमनीय-रूपमीड्यं रविशतभासुरमीहित-प्रदानम् ।
 शरणदमनिशं सुरागमूले कृतनिलय रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥३॥
 भवविपिन-दवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम् ।
 दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये ॥४॥

अविरत-भवभावनातिदूरं भवविमुखैर्मुनिभिः सदैव दृश्यम् ।
 भवजलधिसुतारणांघ्रिपोतं शरणमहं रघुनन्दनं प्रपद्ये ॥५॥
 गिरिश-गिरिसुता-मनोनिवासं गिरिवरधारिणमीहिताभिरामम् ।
 सुरवरदनुजेन्द्रसेवितांघ्रिं सुरवरदं रघुनायकं प्रपद्ये ॥६॥
 परधन-परदार-वर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम् ।
 परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये ॥७॥
 स्मितरुचिर-विकासिताननाब्जमतिसुलभं सुरराजनीलनीलम् ।
 सितजलरुहचारुनेत्रशोभं रघुपतिमीशगुरोर्गुरुं प्रपद्ये ॥८॥
 हरिकमलजशम्भुरूप-भेदात्त्वमिह विभासि गुणत्रयानुवृत्तः ।
 रविरिव जलपूरितोदपात्रेष्वमरपति-स्तुतिपात्रमीशमीडे ॥९॥
 रतिपति-शतकोटिसुन्दराङ्गं शतपथगोचरभावनाविदूरम् ।
 यतिपतिहृदये सदा विभातं रघुपतिमार्तिहरं प्रभुं प्रपद्ये ॥१०॥
 इत्येवं स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूद्रघूत्तमः ।
 उवाच गच्छ भद्रं ते मम विष्णोः परं पदम् ॥११॥
 शृणोति य इदं स्तोत्रं लिखेद् वा नियतः पठेत् ।
 स याति मम सारूप्यं मरणे मत्स्मृतिं लभेत् ॥१२॥
 इति राघवभाषितं तदा श्रुतवान् हर्षसमाकुलो द्विजः ।
 रघुनन्दनसाम्यमास्थितः प्रययौ ब्रह्मसुपूजितं पदम् ॥१३॥
 ॥ इति रामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१५८॥

259. रामस्तोत्रम् (2)

श्रीमहादेव उवाच

नमोऽस्तु रामाय शक्तिकाय नीलोत्पल-श्यामल-कोमलाय ।
 किरीटहाराङ्गदभूषणाय सिंहासनस्थाय महाप्रभाय ॥१॥
 त्वमादि-मध्यान्तविहीन एकः सृजस्यवस्यत्सि च लोकजातम् ।
 स्वमायया तेन न लिप्यसे त्वं यत्स्वे सुखेऽजस्ररतोऽनवद्यः ॥२॥
 लीलां विधत्से गुणसंवृतस्त्वं प्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः ।
 नानावतारैः सुरमानुषाद्यैः प्रतीयसे ज्ञानिभिरेव निततम् ॥३॥
 स्वांशेन लोकं सकलं विधाय तं विभर्षि च त्वं त्वदधः फणीश्वर ।
 उपर्यधो भान्वनिलोडुपौषधि-प्रवर्षरूपोऽवसि नैकधा जगत् ॥४॥

त्वमिह देहभूतां शिखिरूपः पचमि भुक्तमशेषमजस्रम् ।
 पवनपञ्चकरूपसहायो *जगदखण्डमनेन बिभर्षि ॥५॥
 चन्द्रसूर्यशिखिमध्यगतं यत्तेज ईश चिदशेषतनूनाम् ।
 प्राभवत्तनुभूतामिह धैर्यं शौर्यमायुरखिलं तव सत्त्वम् ॥६॥
 त्वं विरिञ्चि-शिव-विष्णुविभेदात्कालक्रमशः-सूर्यविभागात् ।
 वादिनां पृथगिवेश विभासि ब्रह्म निश्चितमनन्यदिहैकम् ॥७॥
 मत्स्यादिरूपेण यथा त्वमेकः श्रुतौ पुराणेषु च लोकसिद्धः ।
 तथैव सर्वं सदसद्विभागस्त्वमेव नाऽन्यद् भवतो विभाति ॥८॥
 यद्यत्समुत्पन्नमनन्तसृष्टावुत्पत्स्यते यद्यभवच्च यच्च ।
 न दृश्यते स्थावरजङ्गमादौ त्वया विनाऽतः परतः मरस्त्वम् ॥९॥
 तत्त्वं न जानन्ति परमात्मनस्ते जनाः समस्तास्तव माययातः ।
 त्वद्भक्तसेवामलमानसानां विभाति तत्त्वं परमेकमेशम् ॥१०॥
 ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं चिदात्मतत्त्वं बहिरर्थभावः ।
 ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपं भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्यदुःख ॥११॥
 अहं भवन्नामगुणान् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
 मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥१२॥
 इमं स्तवं नित्यमनन्यभक्त्या शृण्वन्ति गायन्ति लिखन्ति ये वै ।
 ते सर्वसौख्यं परमं च लब्ध्वा भवत्पदं यान्तु भवत्प्रसादात् ॥१३॥

॥ इति रामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२५९॥

260. रामस्तोत्रम् (3)

इन्द्र उवाच

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं भवारण्यदावानलाभाभिधानम् ।
 भवानीहृदा भावितानन्दरूपं भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम् ॥१॥
 सुरानीक-दुःखौघ-नाशैकहेतुं नराकारदेहं निराकारमीड्यम् ।
 परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं हरिं राममीशं भजे भारनाशम् ॥२॥
 प्रपन्नाऽखिलानन्ददोह प्रपन्नं प्रपन्नार्ति-निःशेष-नाशाभिधानम् ।
 तपोयोग-योगीश-भावानुभाव्यं कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम् ॥३॥
 सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं सदा योगभाजामदूरे विभान्तम् ।
 चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये ॥४॥

महायोगमाया-विशेषानुयुक्तो विभासीश लीलानराकारवृत्तिः ।
 त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके ॥५॥
 अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः ।
 इदानीं भवत्पाद-पद्मप्रसादात्त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः ॥६॥
 स्फुरद्रत्न-केयूर-हाराभिराम धराभारभूतासुरानीकदावम् ।
 शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं दुरावारपारं भजे राघवेशम् ॥७॥
 सुराधीश-नीलाभ्र-नीलाङ्गकान्तिं विराधादि-रक्षोवधाल्लोकशान्तिम् ।
 किरीटादिशोभं पुरारातिलोभं भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम् ॥८॥
 लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे समासीनमङ्गे समाधाय सीताम् ।
 स्फुरद्भेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम् ॥९॥

॥ इति रामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२६०॥

261. रामस्तुतिः

ब्रह्मोवाच

वन्दे देवं विष्णुमशेषस्थितिहेतुं त्वामध्यात्मज्ञानिभिरन्तर्हृदि भाव्यम् ।
 हेयाऽहेय-द्वन्द्वविहीनं परमेकं सत्तामात्रं सर्वहृदिस्थं दृशि रूपम् ॥१॥
 प्राणापानौ निश्चयबुद्ध्या हृदि रुद्ध्वा
 छित्त्वा सर्वं संशयबन्धं विषयौघान् ।
 पश्यन्तीशं यं गतमोहा यतयस्तं
 वन्दे रामं रत्नकिरीटं रविभासम् ॥२॥
 मायातीतं माधवमाद्यं जगदादिं मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्द्यम् ।
 योगिव्येयं योगविधानं परिपूर्णं वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥३॥
 भावाभाव-प्रत्ययहीनं भवमुख्यैर्योगासक्तैरर्चितपादाम्बुजयुग्मम् ।
 नित्यं शुद्धं बुद्धमनन्तं प्रणवाख्यं वन्दे रामं वीरमशेषासुरदावम् ॥४॥
 त्वं मे नाथो नाथितकार्याखिलकारी मानातीतो माधवरूपोऽखिलधारी ।
 भक्त्या गम्यो भावितरूपो भवहारी योगाभ्यासैर्भाविचेतः सहचारी ॥५॥
 त्वामाद्यन्तं लोकततीनां परमीशं लोकानां नो लौकिकमानैरधिगम्यम् ।
 भक्तिश्रद्धाभावसमेतैर्भजनीयं वन्दे रामं सुन्दरमिन्दीवरनीलम् ॥६॥
 को वा ज्ञातुं त्वामतिमानं गतमानं मायासक्तो माधवशक्तो मुनिमान्यम् ।
 वृन्दारण्ये वन्दितवृन्दारकवृन्दं वन्दे रामं भवमुखवन्द्यं सुखकन्दम् ॥७॥

नानाशास्त्रैर्वेदकदम्बैः प्रतिपाद्यं नित्यानन्दं निर्विषयज्ञानमनादिम् ।
 मत्सेवार्थं मानुषभावं प्रतिपन्नं वन्दे रामं मरकतवर्णं मथुरेशम् ॥८॥
 श्रद्धायुक्तो यः पठतीमं स्तवमाद्यं ब्राह्मं ब्रह्मज्ञानविधानं भुवि मर्त्यः ।
 रामं श्यामं कामितकामप्रदमीशं ध्यात्वा ध्याता पातकजालैर्विगतः स्यात् ॥९॥

॥ इति रामस्तुतिः समाप्ता ॥२६१॥

262. रामहृदयम्

श्रीमहादेव उवाच

ततो रामः स्वयं प्राह हनुमन्तमुपस्थितम् ।
 शृणु तत्त्वं प्रवक्ष्यामि ह्यात्मानात्म-परात्मनाम् ॥१॥
 आकाशस्य यथा भेदस्त्रिविधो दृश्यते महान् ।
 जलाशये महाकाशस्तदवच्छिन्न एव हि ।
 प्रतिबिम्बाख्यमपरं दृश्यते त्रिविधं नभः ॥२॥
 बुद्ध्यवच्छिन्नचैतन्यमेकं पूर्णमथापरम् ।
 आभासस्त्वपरं बिम्बभूतमेवं त्रिधा चितिः ॥३॥
 साभासबुद्धः कर्तृत्वमविच्छिन्नेऽविकारिणि ।
 साक्षिण्यारोप्यते भ्रान्त्या जीवत्वं च तथाऽबुधैः ॥४॥
 आभासस्तु मृषाबुद्धिरविद्याकार्यमुच्यते ।
 अविच्छिन्नं तु तद् ब्रह्म विच्छेदस्तु विकल्पितः ॥५॥
 अविच्छिन्नस्य पूर्णेन एकत्वं प्रतिपाद्यते ।
 तत्त्वमस्यादिवाक्यैश्च साभासस्याहमस्तथा ॥६॥
 ऐक्यज्ञानं यदोत्पन्नं महावाक्येन चात्मनोः ।
 तदाऽविद्या स्वकार्यैश्च नश्यत्येव न संशयः ॥७॥
 एतद् विज्ञाय मद्भक्तो मद्भावायोपपद्यते ।
 मद्भक्तिविमुखानां हि शास्त्रगतेषु मुह्यताम् ।
 न ज्ञानं न च मोक्षः स्यात्तेषां जन्मशतैरपि ॥८॥
 इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो मयैव साक्षात् कथितं तवानघ ।
 मद्भक्तिहीनाय शठाय न त्वया दातव्यमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकम् ॥९॥

॥ इति रामहृदयं सम्पूर्णम् ॥२६२॥

263. श्रीरामस्तवराजः

सीताराम - गुणग्राम - पुण्यारण्य - विहारिणौ ।
 वन्दे विशुद्ध - विज्ञानौ कवीश्वर - कपीश्वरौ ॥१॥
 यन्मायावशवर्ति - विश्वमखिलं ब्रह्मादि - देवासुराः
 यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः ।
 यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
 वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम ॥२॥
 प्रसन्नता या न गताऽभिषेकस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
 मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ॥३॥
 नीलम्बुज - श्यामल - कोमलाङ्गं सीता-समारोपित-वामभागम्
 पाणौ महाशायक - चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥४॥
 मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुनन्ददं
 वैराग्याम्बुज - भास्करं त्वघहरं ध्वान्तपहं तापहम् ।
 मोहाम्भोधर - पुञ्ज - पाटनविधौ स्वः सम्भवं शङ्कर
 वन्दे ब्रह्मकुल कलङ्कशमलं श्रीरामभूप्रियम् ॥५॥
 सान्दानन्द - पयोद - सौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
 पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
 राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन सं शोभितं
 सीता - लक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामंभजे ॥६॥
 रामं कामारिसेव्यं भव - भयहरणं कालमत्तेभसिंहं
 योगीन्द्र ज्ञानम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
 मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
 वन्दे कुन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम् ॥७॥
 केकी-कण्ठाभनीलं सुरवरविलसद् - विप्रपादब्ज - चिह्नं
 शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।
 पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
 नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारुढरामम् ॥८॥
 कोशलेन्द्र - पद - कञ्जमुञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ ।
 जानकीकर - सरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्ग- सङ्गिनौ ॥९॥

इति श्रीरामस्तवराजः सम्पूर्णः ॥२६३॥

264. रामाष्टकम् (1)

भजे विशेषसुन्दरं समस्तपापखण्डनम् ।
 स्वभक्तचित्तरञ्जनं सदैव राममद्वयम् ॥१॥
 जटाकलापशोभितं समस्तपापनाशकम् ।
 स्वभक्तभीतिभञ्जनं भजे ह राममद्वयम् ॥२॥
 निजस्वरूपबोधकं कृपाकरं भवापहम् ।
 समं शिवं निरञ्जनं भजे ह राममद्वयम् ॥३॥
 सप्रपञ्चकल्पितं ह्यनामरूपवास्तवम् ।
 निराकृतिं निरामयं भजे ह राममद्वयम् ॥४॥
 निष्प्रपञ्च-निर्विकल्प-निर्मलं निरामयम् ।
 चिदेकरूपसन्ततं भजे ह राममद्वयम् ॥५॥
 भवाब्धिपोतरूपकं ह्यशेषदेहकल्पितम् ।
 गुणाकरं कृपाकरं भजे ह राममद्वयम् ॥६॥
 महासुवाक्य-बौधकैर्विराजमान-वाक्यदैः ।
 परब्रह्म व्यापकं भजे ह राममद्वयम् ॥७॥
 शिवप्रदं सुखप्रदं भवच्छिदं भ्रमापहम् ।
 विराजमानदैशिकं भजे ह राममद्वयम् ॥८॥
 रामाष्टकं पठति यः सुकरं सुपुण्यं
 व्यासेन भाषितमिदं शृणुते मनुष्यः ।
 विद्यां श्रियं विपुलसौख्यमनन्तकीर्तिं
 सम्प्राप्य देहविलये लभते च मोक्षम् ॥९॥

॥ इति रामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२६४॥

265. रामाष्टकम् (2)

कृतांतदेववदनं दिनेशवंशनन्दनम् ।
 सुशोभिभालचन्दनं नमामि राममीश्वरम् ॥१॥
 मुनीन्द्र-यज्ञकारकं शिलाविपत्तिहारकम् ।
 महाधनुर्विदारकं नमामि राममीश्वरम् ॥२॥
 स्वतातवाक्यकारिणं तपोवने विहारिणम् ।

करेषु	चापधारिणं	नमामि	राममीश्वरम् ॥३॥
कुरङ्गमुक्तसायकं			जटायुमोक्षदायकम् ।
प्रविद्धकीशनायकं	नमामि		राममीश्वरम् ॥४॥
प्लवङ्गसङ्घसम्पत्तिं			निबद्धनिम्नगापतिम् ।
दशास्यवंशसंक्षतिं	नमामि		राममीश्वरम् ॥५॥
विदीनदेवहर्षणं			कपीप्सितार्थवर्षणम् ।
स्वबन्धुशोककर्षणं	नमामि		राममीश्वरम् ॥६॥
गतारिराज्यरक्षणं			प्रजाजनार्तिभक्षणम् ।
कृतास्तमोहलक्ष्मणं	नमामि		राममीश्वरम् ॥७॥
हृदाखिलाचलाभरं			स्वधामनीतनागरम् ।
जगत्तमीदिवाकरं	नमामि		राममीश्वरम् ॥८॥
इदं समाहितात्मना	नरो		रघूत्तमाष्टकम् ।
पठेन्निरन्तरं भयं	भवोद्धवं	न	विन्दते ॥९॥

॥ इति रामाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२६५॥

266. रामचन्द्राष्टकम्

चिदाकारो धाता परमसुखदः पावनतनु-
 मुनीन्द्रैर्योगीन्द्रैर्यतिपतिसुरेन्द्रैर्हनुमता ।
 सदा सेव्यः पूर्णो जनकतनयाङ्गः सुरगुरु
 रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥१॥
 मुकुन्दो गोविन्दो जनकतनयालालितपदः
 पदं प्राप्ता यस्याधमकुलभव्य चाऽपि शबरी ।
 गिरातीतो गम्यो विमलधिषणैर्वेदवचसा
 रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥२॥
 धराधीशोऽधीशः सुरनरवराणां रघुपतिः
 किरीटी केयूरी कनककपिशः शोभितवपुः ।
 समासीनः पीठे रविशतनिभे शान्तमनसो
 रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥३॥
 वरेण्यः शारण्यः कपिपतिसखा चान्तविधुरो
 ललाटे काश्मीरी रुचिरगतिभङ्गः शशिमुखः ।

नराकारो रामो यतिपतिनुतः संसृतिहरो
 रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥४॥
 विरूपाक्षः काश्यामुपदिशति यन्नाम शिवदं
 सहस्रं यन्नाम्नां पठति गिरिजा प्रत्युषसि वै ।
 कलौ के गायन्तीश्वरविधिमुखा यस्य चरितं
 रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥५॥
 परो धीरोऽधीरोऽसुरकुल-भवश्चाऽसुरहरः
 परात्मा सर्वज्ञो नरसुरगणैर्गीतसुयशाः ।
 अहल्याशापघ्नः शरकर अजः कौशिकसखा
 रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥६॥
 हृषीकेशः शौरिर्धरणिधरशायी मधुरिपु-
 रुपेन्द्रो वैकुण्ठी गजरिपुहरस्तुष्टमनसः ।
 बलिध्वंसी वीरो दशरथसुतो नीतिनिपुणो
 रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥७॥
 कविः सौमित्रीड्यः कपटमृगघाती वनचरी
 रणश्लाघी दान्तो धरणिभरहर्ता सुरनुतः ।
 अमानी मानज्ञो निखिलजनपूज्यो हृदिशयो
 रमानाथो रामो रमतु मम चित्ते तु सततम् ॥८॥
 इदं रामस्तोत्रं परममरदासेन रचित-
 मुःषकाले भक्त्या हृदि पठति यो भावसहितम् ।
 मनुष्यः सः क्षिप्रं जनिमृतिभयं तापजनकं
 परित्यज्य श्रेष्ठं रघुपतिपदं याति शिवदम् ॥९॥

॥ इति श्रीमद्रामचन्द्राष्टकं सम्पूर्णम् ॥२६६॥

267. रामचन्द्रस्तुतिः

नमामि भक्तवत्सलं कृपालुशीलकोमलं
 भजामि ते पदाम्बुजमकामिनां स्वधामदम् ।
 निकाम-श्याम-सुन्दरं भवाम्बुनाथमन्दरं
 प्रफुल्लकञ्जलोचनं मदादिदोषमोचनम् ॥१॥

प्रलम्बबाहुविक्रमं
 निषङ्गचापसायकं धरं त्रिलोकनायकम् ।
 दिनेशवंशमण्डनं महेशचापखण्डनं
 मुनीन्द्रसन्तरञ्जनं सुरारिवृन्दभञ्जनम् ॥२॥
 मनोजवैरिवन्दित-मजादि-देवसेवितं
 विशुद्धबोधविग्रहं समस्तदूषणापहम् ।
 नमामि इन्दिरापतिं सुखाकरं सतां गतिं
 भजे सशक्तिसानुजं शचीपतिप्रियानुजम् ॥३॥
 त्वदङ्घ्रिमूल ये नरा भजन्ति हीनमत्सराः
 पतन्ति नो भवार्णवे वितर्कवीचिसङ्कुले ।
 विविक्तवासिनः सदा भजन्ति मुक्तये मुदा
 निरस्य इन्द्रियादिकं प्रयान्ति ते गतिं स्वकाम् ॥४॥
 त्वमेकमदभुतं प्रभुं निरीहमीश्वरं विभुं
 जगद्गुरुं च शाश्वतं तुरीयमेव केवलम् ।
 भजामि भाववल्लभं कुयोगिनां सुदुर्लभं
 स्वभक्तकल्पपादपं समस्तसेव्यमन्वहम् ॥५॥
 अनूपरूपभूपतिं नतोऽहमुर्विजापतिं
 प्रसीद मे नमामि ते पदाब्जभक्ति देहि मे ।
 पठन्ति ये स्तवमिदं नरादरेण ते पदं
 व्रजन्ति नाऽत्र संशयस्त्वदीयभावसंयुतम् ॥६॥

॥ इति रामचन्द्रस्तुतिः सम्पूर्णाः ॥२६७॥

268. सीतारामाष्टकम्

ब्रह्म-महेन्द्र-सुरेन्द्र-मरुद्गण-रुद्र-मुनीन्द्रगणैरतिरम्यं
 क्षीरसरित्पतितीरमुपेत्य नुतं हि सतामवितारमुदारम् ।
 भूमिभरप्रशमार्थमथ प्रथित-प्रकटीकृत-चिद्घनमूर्ति
 त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥१॥
 पद्मदलायतलोचन हे रघुवंशविभूषण देव दयालो
 निर्मल-नीरद-नीलतनोऽखिल-लोकहृदम्बुज-भासकभानो ।

कोमलगात्र-पवित्रपदाब्ज-रजःकणपावित-गीतमकान्तं
 त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥२॥
 पूर्ण परात्पर पालय मामतिदीनमनाथ-मनन्तसुखाब्धे
 प्रावृडदध्र-तडित्सुमनोहर-पीतवराम्बर राम नमस्ते ।
 कामविभञ्जन कान्ततरानन काञ्चनभूषण रत्नकिरीटं
 त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥३॥
 दिव्यशरच्छशिकान्ति-हरोज्ज्वल-मौक्तिकमाल विशालसुमौले
 कोटिरविप्रभ चारुचरित्रपवित्र-विचित्रधनुःशरपाणे ।
 चण्डमहाभुज-दण्डविखणिण्डत-राक्षसराज-महागजदण्डं
 त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥४॥
 दोषविहिंस्र-भुजङ्गसहस्र-सुरोषमहानल-कालकलापे
 जन्म-जरा-मरणोर्मि-मनोमद-मन्मथ-नक्रविचक्र-भवाब्धौ ।
 दुःखनिधौ च चिरं पतितं कृपयाऽद्य समुद्धर राम ततो मां
 त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥५॥
 संसृतिघोर-मदोत्कटकुञ्जर-तृट्-क्षुद्रनीरद पिण्डिततुण्डं
 दण्डकरोन्मथितं च रजस्तम उन्मदमोह-मदोज्झि-मार्तम् ।
 दीनमनन्यगतिं कृपणं शरणागतमाशु विमोचय मूढं
 त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥६॥
 जन्मशतार्जित-पापसमन्वित-हृत्कमले पतिते पशुकल्पे
 हे रघुवीर महारणधीर दयां कुरु मय्यतिमन्दमनीषे ।
 जननी भगिनी च पिता मम तावदसि त्वविताऽपि कृपालो
 त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥७॥
 त्वां तु दयालुमकिञ्चन-वत्सल-मुत्पलहारमपारमुदारं
 राम विहाय कमन्यमनामयमीश जनं शरणं ननु यायाम् ।
 त्वत्पदपद्मतः श्रितमेव मुदा खलु देव सदाऽव स-सीतं
 त्वां भजतो रघुनन्दन देहि दयाघन मे स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥८॥
 यः करुणामृत-सिन्धुरनाथ-जनोत्तमबन्धुरजोत्तमकारि-
 भक्तभयोर्मिभवाब्धितरी-सरयूतटिनीतट-चारुविहारी ।
 तस्य रघुप्रवरस्य निरन्तरमष्टकमेतदनिष्टहरं वै
 यस्तु पठेदमरः स नरो लभतेऽच्युतरामपदाम्बुजदास्यम् ॥९॥

269. रघुनाथाष्टकम्

शुनासीराधीशैरवनितल-ज्ञसीडित-गुणं

प्रकृत्याऽजं जातं तपनकुल-चण्डांशुमपरम् ।

सिते वृद्धिं ताराधिपतिमिव यन्तं निजगृहे

ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥१॥

निहन्तारं शैवं धनुरिव इवेक्षुं नृपगणे

पथि ज्याकृष्टेन प्रबलभृगुवर्यस्य शमनम् ।

विहारं गार्हस्थ्यं तदनु भजमानं सुविमलं

ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥२॥

गुरोराज्ञां नीत्वा वनमनुगतं दारसहितं

ससौमित्रिं त्यक्त्वेप्सितमपि सुराणां नृपसुखम् ।

विरूपाद्राक्षस्याः प्रियविरहसन्तप्तमनसं

ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥३॥

विराधं स्वनीत्वा तदनु च कबन्धं सुररिपुं

गतं पम्पातीरे पवनसम्मेलनसुखम् ।

गतं किष्किन्धायां विदितगुण-सुग्रीवसचिवं

ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥४॥

प्रियाप्रेक्षोत्कण्ठं जलनिधिगतं वानरयुतं

जले सेतुं बद्ध्वाऽसुरकुल-निहन्तारमनघम् ।

विशुद्धामर्धाङ्गीं हुतभुजि समीक्षन्तमचलं

ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥५॥

विमानं चारुह्यानुज-जनकजा-सेवितपद-

मयोध्यायां गत्वा नृपपदमवाप्सारमजरम् ।

सुयज्ञैस्तृप्तारं निजमुखसुरान् शान्तमनसं

ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥६॥

प्रजां संस्थातारं विहितनिजधर्मे श्रुतिपथं

सदाचारं वेदोदितमपि च कर्तारमखिलम् ।

नृषु प्रेमोद्रेकं निखिलमनुजानां हितकरं

ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥७॥

तमः कीर्त्याशेषः श्रवणगदनाभ्यां द्विजमुखा-

स्तरिष्यन्ति ज्ञात्वा जगति खलु गन्तारमजनम् ।

अतस्त्वां संस्थाप्य स्वपुरमनुनेतारमखिलं
 ससीतं सानन्दं प्रणत रघुनाथं सुरनुतम् ॥८॥
 रघुनाथाष्टकं हृद्यं रघुनाथेन निर्मितम् ।
 पठता पापराशिघ्नं भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकम् ॥९॥

॥ इति रघुनाथाष्टकं समाप्तम् ॥२६९॥

270. रामप्रेमाष्टकम्

श्यामाम्बुदाभमरविन्द-विशालनेत्रं बन्धूकपुष्पसदृशाधर-पाणिपादम् ।
 सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम् ॥१॥
 पटुजलधरधीर-ध्वानमादाय चापं पवनदमनमेकं बाणमाकृष्य तूणात् ।
 अभयवचनदायी सानुजः सर्वतो मे रणहतदनुजेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥२॥
 दशरथकुलदीपोऽमेयबाहुप्रतापो दशवदनसकोपः क्षालिताशेषपापः ।
 कृतसुररिपुतापो नन्दितानेकभूपो विगततिमिरपङ्को रामचन्द्रः सहायः ॥३॥
 कुवलयदलनीलः कामितार्थप्रदो मे कृतमुनिजनरक्षो रक्षसामेकहन्ता ।
 अपहतदुरितोऽसौ नाममात्रेण पुंसामखिलसुरनृपेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥४॥
 असुरकुलकृशानुर्मानसाम्भोजभानुः सुरनरनिकराणामग्रणीर्मे रघूणाम् ।
 अगणितगुणसीमा नीलमेघौघधामा शमदमितमुनीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥५॥
 कुशिकतनययागं रक्षिता लक्ष्मणाढ्यः पवनशरनिकाय-क्षिप्तमारीचमायः ।
 विदलितहरचापो मेदिनीनन्दनाया नयनकुमुदचन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥६॥
 पवनतनयहस्त-न्यस्तपादाम्बुजात्मा कलशभववचोभिः प्राप्तमाहेन्द्रधन्वा ।
 अपरिमितशरौघैः पूर्णतूणीरधीरो लघुनिहतकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥७॥
 कनकविमलकान्त्या सीतयाऽऽलिङ्गिताङ्गो मुनिमनुजवरेण्यः सर्ववागीशवन्द्यः ।
 स्वजननिकरबन्धुलीलया बद्धसेतुः सुरमनुजकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥८॥
 यामुनाचार्यकृतं दिव्यं रामाष्टकमिदं शुभम् ।
 यः पठेत् प्रयतो भूत्वा स श्रीरामान्तिकं व्रजेत् ॥९॥

॥ इति श्रीरामप्रेमाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२७०॥

271. राममङ्गलशासनम्

मङ्गलं	कौशलेन्द्राय	महीनयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय	सार्वभौमाय	मङ्गलम् ॥१॥
वेदवेदान्तवेद्याय		मेघश्यामलमूर्तये ।
पुंसां मोहनरूपाय	पुण्यश्लोकाय	मङ्गलम् ॥२॥
विश्वामित्रान्तरङ्गाय		मिथिलानगरीपतेः ।
भाग्यानां परिपाकाय	भव्यरूपाय	मङ्गलम् ॥३॥
पितृभक्ताय सततं	भ्रातृभिः सह	सीतया ।
नन्दिताखिललोकाय	रामभद्राय	मङ्गलम् ॥४॥
त्यक्तसाकेतवासाय		चित्रकूटविहारिणे ।
सेव्याय सर्वयमिनां	धीरोदाय	मङ्गलम् ॥५॥
सौमित्रिणा च जानक्या	चापबाणासिधारिणे ।	
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने	मम	मङ्गलम् ॥६॥
दण्डकारण्यवासाय		खरदूषणशत्रवे ।
गृध्रराजाय भक्ताय	मुक्तिदायास्तु	मङ्गलम् ॥७॥
सादरं	शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे ।	
सौलभ्यपरिपूर्णाय	सत्त्वोदित्ताय	मङ्गलम् ॥८॥
हनुमत्समवेताय		हरीशाभीष्टदायिने ।
बालिप्रमथनायास्तु	महाधीराय	मङ्गलम् ॥९॥
श्रीमते रघुवीराय	सेतूल्लङ्घितसिन्धवे ।	
जितराक्षसराजाय	रणधीराय	मङ्गलम् ॥१०॥
विभीषकृते प्रीत्या	लङ्काभीष्टप्रदायिने ।	
सर्वलोकशरण्याय	श्रीराघवाय	मङ्गलम् ॥११॥
आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय		सीतया ।
राजाधिराजराजाय	रामभद्राय	मङ्गलम् ॥१२॥
ब्रह्मादिदेवसेव्याय	ब्रह्मण्याय	महात्मने ।
जानकीप्राणनाथाय	रघुनाथाय	मङ्गलम् ॥१३॥
श्रीसौम्यजामृतमुनेः		कृपयास्मानुपेयुषे ।
महते मम नाथाय	रघुनाथाय	मङ्गलम् ॥१४॥

मङ्गलाशासनपरै - मंदाचार्यपुरोगमैः ।
 सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृता यास्तुमङ्गलम् ॥१५॥
 रम्यजामातृमुनिना मङ्गलाशासनं कृतम् ।
 त्रैलोक्याधिपतिः श्रीमान् करोतु मङ्गलं सदा ॥१६॥
 इति राममङ्गलशासनं सम्पूर्णम् ॥१७॥

272. राम-गीता

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम् ।
 चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो राजर्विषयैरभिसेवितं यथा ॥१॥
 सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ।
 राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो द्विजस्य तिर्यक्तवमथाह राघवः ॥२॥
 कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं रामं रमालालितपादपङ्कजम् ।
 सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः प्रणम्य भक्त्या विनयान्विो ब्रवीत् ॥३॥

सौमित्रिरुवाच

त्वं शुद्धबोधोऽसि सर्वदेहिनात्माऽस्य धीशोऽसि निराकृतिः स्वयम् ।
 प्रतीयसे ज्ञानदृशां महामते पादाब्जभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम् ॥४॥
 अहं प्रपन्नो स्मिपदाम्बुजं प्रभो भवापवर्गं तव योगभावितम् ।
 यथाऽञ्जसा ज्ञानमपारवारिधं सुखं तारिष्यामि तथाऽनुशाधि माम् ॥५॥
 श्रुत्वाऽथ सौमित्रिवचोऽखिलं तदा प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ।
 विज्ञानमज्ञानतमोपशान्तये श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥६॥

श्रीराम उवाच

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ।
 समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥७॥
 क्रिया शरीरोद्धभरहेतुरादृता प्रिया प्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
 धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥८॥
 अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं तद्भानमेवात्र विधौ विधीयते ।
 विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ॥९॥

नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्धभेत् ।
 ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान् भवेत् ॥१०॥
 ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता यथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम् ।
 कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता विद्या सहायत्वमुपैति सा पुनः ॥११॥
 कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा ।
 ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी विद्या न किञ्चिन्मनसा प्यपेक्षते ॥१२॥
 न सत्यकार्येऽपि यद्वदध्वरः प्रकांक्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ।
 तथैव विद्या विधितः प्रकाशितैर्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥१३॥
 केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिनस्तदप्यसंदृष्टिविरोधकारणात् ।
 देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया विद्या गताहंकृतितः प्रसिद्ध्यति ॥१४॥
 विशुद्धविज्ञानविरोचनाञ्जिता विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ।
 वदेति कर्माखिलकारकादिभिर्निहन्ति विद्याऽखिलकारकादिकम् ॥१५॥
 तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधीर्विद्याविरोधात् समुच्चयो भवेत् ।
 आत्मानुसन्धानपरायणः सदा निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥१६॥
 यावच्छरीरादिषु माययाऽऽत्मधीस्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम् ।
 नेतीति वाक्यै रखिलं निषिध्यतज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत् क्रियाः ॥१७॥
 यदा परात्मात्मविभेदभेदकं विज्ञान आत्मन्यवभाति भास्वरम् ।
 तदैव माया प्रविलीयते असाऽसकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥१८॥
 श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी ।
 विज्ञानमात्रादमलाद् द्वितीयस्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥१९॥
 यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते कर्ताऽहमस्येति मतिः कथं भवेत् ।
 तस्मात्स्वतन्त्रो न मिक्प्यपेक्षते विद्या विमोक्षाय विभातिकेवला ॥२०॥
 सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरं न्यासं प्रशस्ताखिलकर्मणां स्फुटम् ।
 एतावदित्याह च याजिनां श्रुतिज्ञानं विमोक्षाय न कर्मसाधनम् ॥२१॥
 विद्यासमत्वेन तु दर्शितस्त्वया ऋतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः ।
 फलैः पृथक्ताद्बहुकारकैः ऋतुः संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्यम् ॥२२॥
 स प्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधीरप्रसिद्धा न तु तत्त्वदर्शिनः ।
 तस्माद्बुधैस्त्याज्यमपि क्रिया त्मभिर्विधानतः कर्मविधिप्रकाशितम् ॥२३॥

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो गुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः ।
 विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः सुखी भवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः ॥२४॥
 आदौ पदार्थवगतिर्हि कारणं वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः ।
 तत्त्वंपदार्थौ परमात्मजीवकावसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥२५॥
 प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनोर्विहाय संगृह्य तयोश्चिदात्मताम् ।
 संशोधितां लक्षणया च लक्षितां ज्ञात्वा स्वमात्मनमथाद्वयो भवेत् ॥२६॥
 एकात्मकत्वाज्जहती न सम्भवेत्तथाऽजहल्लक्षणता विरोधतः ।
 सोऽयं पदार्थविव भागलक्षणा युज्येत तत्त्वं पदयोरदोषतः ॥२७॥
 रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवं भोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम् ।
 शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजं मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥२८॥
 सूक्ष्मं मनोबुद्धिदशेन्द्रियैर्युतं प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ।
 भोक्तुः सुखादेरनुसाधनं भवेच्छरीमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ॥२९॥
 अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारणं मायाप्रधानं तु परं शरीरकम् ।
 उपाधिभेदात्तुयतः पृथक् स्थितं स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ॥३०॥
 कोशेषु पञ्चस्वपि तत्तदाकृतिर्विभाति सङ्गात्स्फटिकोपलो यथा ।
 असङ्गरूपोऽयमजो यतोऽद्वयो विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ॥३१॥
 बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते स्वप्रादिभेदेन गुणत्रयात्मनः ।
 अन्योन्योऽस्मिन् व्याभिचारितो मृषा नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥३२॥
 देहन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनां सङ्गादजस्रं परिवर्तते धियः ।
 वृत्तिस्तमोमूलतयाऽज्ञलक्षणा यावद्भवेत्तावदसौ भवेद्भवः ॥३३॥
 नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो हृदा समास्वादितचिदधनामृतः ।
 त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसं पीत्वा यथाऽम्भः प्रजहाति तत्फलम् ॥३४॥
 कदाचिदात्मा न मृतो न जायते न क्षीयते नापि विवर्धते नवः ।
 निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मक स्वयम्प्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ॥३५॥
 एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते ।
 आज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते ज्ञानं विलीयेत विरोधतः क्षणात् ॥३६॥
 यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमादध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ।
 असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥३७॥

विकल्पमायारहिते चिदात्मकेऽहङ्कार एष प्रथमः प्रकल्पितः ।
 अध्यास एवात्मिन सर्वकारणे निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥३८॥
 इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः सदा धियः संसृहेतवः परे ।
 यस्मात्प्रसुप्तौ तदभावतः परः सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥३९॥
 अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बतो जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः ।
 आत्मा धियः साक्षितया पृथक् स्थितो बुद्ध्या परिच्छिन्नपरः स एव हि ॥४०॥
 चिद्विम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसन्नस्त्वकेत्र वासादनलाक्तलोहवत् ।
 अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥४१॥
 गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः सञ्जातविद्यानुभवो निरीक्ष्य तम् ।
 स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥४२॥
 प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयोऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलो ।
 विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥४३॥
 सदैव मुक्तोऽहमचित्यशक्तिमा नतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।
 अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधैर्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥४४॥
 एवं सदाऽऽत्मानखण्डितात्मना विचार्यमाणस्य विशुद्धभावना ।
 हन्यादविद्यामचिरेण कारकै रसायनं यद्वदुपासितं रुजः ॥४५॥
 विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ।
 विभावयेदेकमनन्यसाधनो विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ॥४६॥
 विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं विलापयेदात्मनि सर्वकारणे ।
 पूर्णश्चिदानन्दमयो वतिष्ठते न वेदबाह्यं न च किञ्चिदन्तरम् ॥४७॥
 पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तयेदोङ्कारमात्रं स चराचरं जगत् ।
 तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको विभाव्यते ज्ञानवशान्न बोधतः ॥४८॥
 अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वतो ह्यकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात् ।
 प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥४९॥
 विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापयेदुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम् ।
 ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमम् ॥५०॥

मकारमप्यात्मनि चिदघने परे विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम् ।
 सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिमद्विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमलः ॥५१॥
 एवं सदा जातपरात्मभावः स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः ।
 आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकश्च साक्षाद्विमुक्तो चलवारिसिन्धुवत् ॥५२॥
 एवं सदाऽभ्यस्तसमाधियोगिनो निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि ।
 विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा दृश्यो भवेयं जितषड्गुणानत्मनः ॥५३॥
 ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनिस्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबन्धनः ।
 प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ॥५४॥
 आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो भवं विदित्वा भयशोककारणम् ।
 हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ॥५५॥
 आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं भवत्यभेदेन मयाऽऽत्मना तदा ।
 यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः क्षीरे वियद्व्योम्यनिले यथाऽनिलः ॥५६॥
 इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः ।
 निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः ॥५७॥
 यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं तावन्मदारधनतत्परो भवेत् ।
 श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निशं हृदि ॥५८॥
 रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहं मया विनिश्चित्य तवोदितं प्रिय ।
 यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान् स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात् ॥५९॥
 भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जगन्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा ।
 मद्भावनाभावितशुद्धमानसः सुखी भवानन्दमयो निरामयः ॥६०॥
 सेवते मामगुणं गुणात्परं हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् ।
 सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन्मुनामि लोकत्रितयं यथा रविः ॥६१॥
 विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतम् ।
 यः श्रद्धया परिपठेद्गुरुभक्तियुक्तो मद्रूपमेति यदि मद्बचनेषु भक्तिः ॥६२॥

इति रामगीता सम्पूर्णा ॥२७२॥

॥ इति रामस्तोत्राणि सम्पूर्णानि ॥



10. कृष्णस्तोत्राणि

273. गर्भस्तुतिः

देवा ऊचुः

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एव च ।
 ज्योतिः स्वरूपो ह्यनिशः सगुणो निर्गुणो महान् ॥१॥
 भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरङ्कुशः ।
 निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रवः ॥२॥
 निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः ।
 स्वात्मारामः पूर्णकामोऽनिमिषो नित्य एव च ॥३॥
 स्वेच्छामयः सर्वहेतुः सर्वः सर्वगुणाश्रयः ।
 सर्वदो दुःखदो दुर्गो दुर्गनान्तक एव च ॥४॥
 सुभगो दुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः ।
 वेदहेतुश्च वेदश्च वेदाङ्गो वेदविद्विभुः ॥५॥
 इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणमुस्तं मुहुर्मुहुः ।
 हर्षाश्रुलोचनाः सर्वे ववृषुः कुसुमानि च ॥६॥
 द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
 दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वाञ्छितं फलम् ॥७॥
 इत्येव स्तवनं कृत्वा देवास्ते स्वालयं ययुः ।
 बभूव जलवृष्टिश्च निश्चिष्टा मधुरापुरी ॥८॥

॥ इति गर्भस्तुतिः सम्पूर्णा ॥२७३॥

274. कृष्णस्तोत्रम् (1)

बाला ऊचुः

यथा संरक्षित ब्रह्मन् सर्वापत्त्वेव नः कुलम् ।
 तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेर्मधुसूदन ॥१॥

त्वमिष्टदेवताऽस्माकं त्वमेव कुलदेवता ।
 स्रष्टा पाता च संहर्ता जगतां च जगत्पते ॥२॥
 वह्निर्वा वरुणो वाऽपि चन्द्रो वा सूर्य एव च ।
 नमः कुबेरः पवन ईशानाद्याश्च देवता ॥३॥
 ब्रह्मेश-शेष-धर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः ।
 मानवाश्च तथा दैत्या यक्ष-राक्षस-किन्नराः ॥४॥
 ये ये चराऽचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः ।
 आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषां च तवेच्छया ॥५॥
 अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु ।
 वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान् ॥६॥
 इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वा पदाम्बुजम् ।
 दूरीभूतस्तु दावाग्निः श्रीकृष्णामृतदृष्टितः ॥७॥
 दूरीभूते च दावाग्नौ ननृतुस्ते मुदान्विताः ।
 सर्वापदः प्रणश्यन्ति हरिस्मरणमात्रतः ॥८॥
 इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
 वह्नितो न भवेत्तस्य भयं जन्मनि जन्मनि ॥९॥
 शत्रुग्रस्ते च दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसङ्कटे ।
 स्तोत्रमेतत् पठित्वा तु मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥१०॥

इति कृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२७४॥

275. कृष्णस्तोत्रम् (2)

ब्रह्मोवाच

रक्ष रक्ष हरे मां च निमग्नं कामसागरे ।
 दुष्कीर्तिजलपूर्णं च दुष्पारे बहुसङ्कटे ॥१॥
 भक्तिविस्मृतिबीजे च विपत्सोपानदुस्तरे ।
 अतीव निर्मलज्ञानचक्षुः-प्रच्छन्नकारणे ॥२॥
 जन्मोर्मि-सङ्गसहिते योषित्रक्राघसङ्कुले ।
 रतिस्रोतः समायुक्ते गम्भीरे घोर एव च ॥३॥

प्रथमासृतरूपे च परिणामविषालये ।
 यमालयप्रवेशाय मुक्तिद्वारातिविस्तौ ॥४॥
 बुद्ध्या तरण्या विज्ञानैरुद्धरास्मानतः स्वयम् ।
 स्वयं च त्वं कर्णधारः प्रसीद मधुसूदन ॥५॥
 मद्बिधाः कतिचिन्नाथ नियोज्या भवकर्मणि ।
 सन्ति विश्वेश विधयो हे विश्वेश्वर माधव ॥६॥
 न कर्मक्षेत्रमेवेदं ब्रह्मलोकोऽयमीप्सितः ।
 तथाऽपि न स्पृहा कामे त्वद्भक्तिव्यवधायके ॥७॥
 हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो कृपां कुरु ।
 त्वं महेश महाज्ञाता दुःस्वप्नं मां न दर्शय ॥८॥
 इत्युक्त्वा जगतां धाता विरराम सनातनः ।
 ध्यायं ध्यायं मत्पदाब्जं शश्वत् सस्मार मामिति ॥९॥
 ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ।
 स चैवाकर्मविषये न निमग्नो भवेद् ध्रुवम् ॥१०॥
 मम मायां विनिर्जित्य स ज्ञानं लभते ध्रुवम् ।
 इह लोके भक्तियुक्तो मद्भक्तप्रवरो भवेत् ॥११॥

॥ इति कृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२७५॥

276. कृष्णस्तोत्रम् (3)

इन्द्र उवाच

अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् ।
 गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तजम् ॥१॥
 भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम् ।
 शुक्ल-रक्त-पीत-श्यामं युगानुक्रमणेन च ॥२॥
 शुक्लतेजः स्वरूपं च सत्ये सत्यस्वरूपिणाम् ।
 त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा ॥३॥
 द्वापरे पीतवर्णं च शोभितं पीतवाससा ।
 कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम् ॥४॥
 नवधाराधरोत्कृष्ट-श्यामसुन्दर-विग्रहम् ।
 नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम् ॥५॥

गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम् ।
 विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च ॥६॥
 रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम् ।
 कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं विश्रुतं शान्तमीश्वरम् ॥७॥
 क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित् ।
 कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥८॥
 जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित् ।
 राधिकांकवरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद् वने ॥९॥
 कुत्रचिद् राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम् ।
 राधाचर्बितताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥१०॥
 पश्यन्तं कुत्रचिद् राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा ।
 दत्तवन्तं च राधायै कृत्वा मालां च कुत्रचित् ॥११॥
 कुत्रचिद्राधया सार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम् ।
 राधादत्तां गले मालां धृतवन्तं च कुत्रचित् ॥१२॥
 सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तं च कुत्रचित् ।
 राधां गृहीत्वा गच्छन्तं तां विहाय च कुत्रचित् ॥१३॥
 विप्रपत्नीदत्तमन्त्रं भुक्तवन्तं च कुत्रचित् ।
 भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित् ॥१४॥
 वस्त्रं गोपालिकानां च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा ।
 गवां गणं व्याहरन्तं कुत्रचित् बालकैः सह ॥१५॥
 कालीयमूर्ध्नि पादाब्जं दत्तवन्तं च कुत्रचित् ।
 विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा ॥१६॥
 गायन्तं रम्यसङ्गीतं कुत्रचिद् बालकैः सह ।
 स्तुत्वा शक्रः स्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया ॥१७॥
 पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च ।
 कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते ॥१८॥
 एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम् ।
 दत्तमेतत् कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा ॥१९॥
 तेन चाऽङ्गिरसे दत्तं गुरवेऽङ्गिरसां मुने ।
 इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् ॥२०॥

इह प्राप्य दृढां भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-शोकेभ्यो मुच्यते नरः ॥२१॥
न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम् ॥२२॥

॥ इति कृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥२७६॥

277. कृष्णस्तोत्रम् (4)

मोहिन्युवाच

सर्वेन्द्रियाणां प्रवरं विष्णोरंशं च मानसम्।
तदेव कर्मणां बीजं तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥१॥
स्वयमात्मा हि भगवान् ज्ञानरूपो महेश्वरः।
नमो ब्रह्मन्! जगत्सृष्टस्तदुद्भव नमोऽस्तु ते ॥२॥
सर्वाजित जगज्जतर्जीवजीव मनोहर।
रतिबीज रतिस्वामिन् रतिप्रिय नमोऽस्तु ते ॥३॥
शश्वद्योषिदधिष्ठाने योषित्प्राणाधिकप्रिय।
योषिद्वाहन योषास्त्र योषिद्वन्द्व नमोऽस्तु ते ॥४॥
पतिसाध्यकराशेषरूपाधार गुणाश्रय।
सुगन्धिवातसचिव मधुमित्र नमोऽस्तु ते ॥५॥
शश्वद्योनिनृताधार स्त्रीसन्दर्शनवर्धन।
विदग्धानां विरहिणां प्राणान्तक नमोऽस्तु ते ॥६॥
अकृपा येषु तेऽनर्थं तेषां ज्ञानविनाशनम्।
अनूहरूपभक्तेषु कृपासिन्धो नमोऽस्तु ते ॥७॥
तपस्विनां च तपसां विघ्ननीजाय लीलया।
मनः सकामं मुक्तानां कर्तुं शक्तं नमोऽस्तु ते ॥८॥
तपः साध्यस्तथाऽऽराध्यः सदैवं पाञ्चभौतिकः।
पञ्चेन्द्रियकृताधार पञ्चबाण नमोऽस्तु ते ॥९॥
मोहिनीत्येवमुक्त्वा तु मनसा सा विधेः पुरः।
विरराम नम्रवक्त्रा बभूव ध्यानतत्परा ॥१०॥
उक्तं माध्यन्दिने कान्ते स्तोत्रमेतन्मनोहरम्।
पुरा दुर्वाससा दत्तं मोहिन्यै गन्धमादने ॥११॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं कामी भक्त्या यदा पठेत्।
अभीष्टं लभते नूनं निष्कलङ्को भवेद् ध्रुवम् ॥१२॥

चेष्टां न कुरुते कामः कदाचिदपि तं प्रियम्।
 भवेदरोगी श्रीयुक्तः कामदेवसमप्रभः।
 वनितां लभते साध्वीं पत्नीं त्रैलोक्यमोहिनीम् ॥१३॥

॥ इति कृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥२७७॥

278. कृष्णस्तोत्रम् (5)

वन्दे नवघनश्यामं पीतकौशयवाससम्
 सानन्दं सुन्दरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥१॥
 राधेशं राधिकाप्राणवल्लभं बल्लवीसुतम्।
 राधासेवितपादाब्जं राधावक्षःस्थलस्थितम् ॥२॥
 राधानुगं राधिकेष्टं राधापहतमानसम्।
 राधाधारं भवाधारं सर्वाधारं नमामि तम् ॥३॥
 राधाहृत्पद्ममध्ये च वसन्तं सन्तर्तं शुभम्।
 राधासहचरं शश्वद्राधाज्ञापरिपालकम् ॥४॥
 ध्यायन्ते योगिनो योगान् सिद्धाः सिद्धेश्वराश्च यम्।
 तं ध्यायेत् सततं शुद्धं भगवन्तं सनातनम् ॥५॥
 सेवन्ते सततं सन्तो ब्रह्मेशशेषसज्ञकाः।
 सेवन्ते निर्गुणं ब्रह्म भगवन्तं सनातनम् ॥६॥
 निर्लिप्तं च निरीहं च परमात्मानमीश्वरम्।
 नित्यं सत्यं च परमं भगवन्तं सनातनम् ॥७॥
 यं सृष्टेरादिभूतं च सबबीजं परात्परम्।
 योगिनस्तं प्रपद्यन्ते भगवन्तं सनातनम् ॥८॥
 बीजं नानावताराणां सर्वकारणकारणम्।
 वेदावेद्यं वेदबीजं वेदकारणकारणम् ॥९॥
 योगिनस्तं प्रपद्यन्ते भगवन्तं सनातनम्।
 इत्येवमुक्त्वा गन्धर्वः पपात धरणीतले ॥१०॥
 ननाम दण्डवद् भूमौ देवदेवं परात्परम्।
 इति तेन कृतं स्तोत्रं यः पठेत् प्रयतः शुचिः ॥११॥

इहैव जीवन्मुक्तश्च परं याति परां गतिम् ।
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं गोलोके च निरामयः ॥१२॥
पार्षदप्रवरत्वं च लभते नाऽत्र संशयः ॥१३॥

॥ इति कृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२७८॥

279. कृष्णस्तोत्रम् (6)

विप्रपत्न्य ऊचुः

त्वं ब्रह्म परमं धाम निरीहो निरहंकृतिः ।
निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयम् ॥१॥
साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः ।
प्रकृतिः पुरुषस्त्वं च कारणं च तयोः परम् ॥२॥
सृष्टिस्थित्यन्तविषये ये च देवास्त्रयः स्मृताः ।
ते त्वदंशाः सर्वबीजा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ॥३॥
यस्य लोम्नां च विवरे चाऽखिलं विश्वमीश्वरः ।
महाविराण्महाविष्णुस्तं तस्य जनको विभो ॥४॥
तेजस्त्वं चाऽपि तेजस्वी ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः ।
वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥५॥
महदादिसृष्टिसूत्रं पञ्चतन्मात्रमेव च ।
बीजं त्वं सर्वशक्तीनां सर्वशक्तिस्वरूपकः ॥६॥
सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्त्याश्रयः सदा ।
त्वमनीहः स्वयंज्योतिः सर्वानन्दः सनातनः ॥७॥
अहो आकारहीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि ।
सर्वेन्द्रियाणां विषयं जानासि नेन्द्रियो भवान् ॥८॥
सरस्वती जडीभूता यत् स्तोत्रे यन्निरूपणे ।
जडीभूतो महेशश्च शेषो धर्मो विधिः स्वयम् ॥९॥
पार्वती कमला राधा सावित्री देवसूरपि ।
वेदश्च जडतां याति के वा शक्ति विपश्चितः ॥१०॥
वयं किं स्तवनं कूर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वर ।
प्रसन्नो भव नो देव दीनबन्धो कृपां कुरु ॥११॥

इति पेतुश्च ता विप्रपत्न्यस्तच्चरणाम्बुजे ।
 अभयं प्रददौ ताभ्यः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥१२॥
 विप्रपत्नीकृतं स्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत् ।
 स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नाऽत्र संशयः ॥१३॥

॥ इति कृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥२७९॥

280. कृष्णस्तोत्रम् (7)

ज्वर उवाच

नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।
 विश्वोत्पत्ति-स्थान-संरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥१॥
 कालो दैवं कर्म जीव स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।
 तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥२॥
 नानाभावैलीलयैवोपननैर्देवान् साधून् लोकसेतून् बिभर्षि ।
 हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥३॥
 ततोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ।
 तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ।
 यो नो स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद् भयम् ॥५॥
 इत्युक्तोऽच्युतमानस्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ।
 बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यन् जनार्दनम् ॥६॥

॥ इति कृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२८०॥

281. कृष्णाष्टकम् (1)

भजे वज्रैकमण्डनं समस्तपापखण्डनं
 स्वभक्त-चित्तरञ्जनं सदैव नन्दनन्दनम् ।
 सुपिच्छ-गुच्छ-मस्तकं सुनाद-वेणुहस्तकं
 ह्यनङ्ग-रङ्गसागरं नमामि कृष्णनागरम् ॥१॥
 मनोजगर्वमोचनं विशाल-लोल-लोचनं
 विधूतगोपशोचनं नमामि पद्मलोचनम् ।

करारविन्दभूधरं स्मितावलोकसुन्दरं
 महेन्द्रमानदारणं नमामि कृष्णवारणम् ॥२॥
 कदम्बसूनुकुण्डलं सुचारु-गण्ड-मण्डलं
 ब्रजाङ्गनैकवल्लभं नमामि कृष्णदुर्लभम् ।
 यशोदया समोदया सगोपया सनन्दया
 युतं सुखैकदायकं नमामि गोपनायकम् ॥३॥
 सदैव पादपङ्कजं मदीयमानसे निजं
 दधानमुत्तमालकं नमामि नन्दबालकम् ।
 समस्त-दोष-शोषणं समस्तलोकपोषणं
 समस्तगोपमानसं नमामि कृष्णलालसम् ॥४॥
 भुवो भरावतारकं भवाब्धिकर्णधारकं
 यशौमतीकिशोरकं नमामि दुग्धचोरकम् ।
 दृगन्तकान्तभङ्गिनं सदासदालसङ्गिनं
 दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम् ॥५॥
 गुणाकरं सुखाकरं कृपाकरं कृपावरं
 सुरद्विषन्निन्दनं नमामि गोपनन्दनम् ।
 नवीनगोपनागरं नवीनकेलिलम्पटं
 नमामि मेघसुन्दरं तडित्प्रभालसत्पटम् ॥६॥
 समस्तगोपनन्दनं हृदम्बुजैकमोहनं
 नमामि कुञ्जमध्यगं प्रसन्नभानुशोभनम् ।
 निकामकामदायकं दृगन्तचारुसायकं
 रसालवेणुगायकं नमामि कुञ्जनायकम् ॥७॥
 विदग्ध-गोपिकामनो-मनोज्ञ-तल्पशायिनं
 नमामि कुञ्जकानने प्रवृद्ध-वह्नि-पायिनम् ।
 यदा तदा यथा तथा तथैव कृष्णसत्कथा
 मया सदैव गीयतां तथा कृपा विधीयताम् ।
 प्रमाणिकाष्टकद्वयं जपत्यधीत्य यः पुमान्
 भवेत् स नन्द-नन्दने भवे भवे सुभक्तिमान् ॥८॥

॥ इति कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२८१॥

282. कृष्णाष्टकम् (2)

चतुर्मुखादि-संस्तुतं समस्तसात्वतानुतम् ।
 हलायुधादि-संयुतं नमामि राधिकाधिपम् ॥१॥
 बकादि-दैत्यकालकं स-गोप-गोपिपालकम् ।
 मनोहरासितालकं नमामि राधिकाधिपम् ॥२॥
 सुरेन्द्रगर्वभञ्जनं विरञ्चि-मोह-भञ्जनम् ।
 ब्रजाङ्गनानुरञ्जनं नमामि राधिकाधिपम् ॥३॥
 मयूरपिच्छमण्डनं गजेन्द्र-दन्त-खण्डनम् ।
 नृशंसकंशदण्डनं नमामि राधिकाधिपम् ॥४॥
 प्रसन्नविप्रदारकं सुदामधामकारकम् ।
 सुरद्रुमापहारकं नमामि राधिकाधिपम् ॥५॥
 धनञ्जयाजयावहं महाचमूक्षयावहम् ।
 पितामहव्यथापहं नमामि राधिकाधिपम् ॥६॥
 मुनीन्द्रशापकारणं यदुप्रजापहारणम् ।
 धराभरावतारणं नमामि राधिकाधिपम् ॥७॥
 सुवृक्षमूलशायिनं मृगारिमोक्षदायिनम् ।
 स्वकीयधाममायिनं नमामि राधिकाधिपम् ॥८॥
 इदं समाहितो हितं वराष्टकं सदा मुदा ।
 जपञ्जनो जनुर्जरादितो द्रुतं प्रमुच्यते ॥९॥

॥ इति कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२८२॥

283. कृष्णाष्टकम् (3)

श्रियाशिलष्टो विष्णुः स्थिर-चर-पुरुर्वेद-विषयो
 धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताऽब्जनयनः ।
 गदी शङ्खी चक्री विमल-वनमाली स्थिररुचिः
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥१॥
 यतः सर्वं जातं वियदनिलमुख्यं जगदिदं
 स्थितो निःशेष योऽवति निजसुखांशेन मधुहा ।

लये सर्वं स्वस्मिन् हरति कलया यस्तु स विभुः
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥२॥
 असूनायम्यादौ यम-नियम-मुख्यैः सुकरणै-
 निरुध्येदं चित्तं हृदि विलयमानीय सकलम् ।
 यमीड्य पश्यन्ति प्रवरमतयो मायिनमसौ
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥३॥
 पृथिव्यां तिष्ठन् यो यमयति महीं वेद न धरा
 यमित्यादौ वेदो वदति जगतामीशममलम् ।
 नियन्तारं ध्येयं मुनिसुरनृणां मोक्षदमसौ
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥४॥
 महेन्द्रादिर्देवो जयति दितिजान्यस्य बलतो
 न कस्य स्वातन्त्र्यं क्वचिदपि कृतौ यत्कृतिमृते ।
 कवित्वादेर्गर्वं परिहरति योऽसौ विजयिनः
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥५॥
 विना यस्य ध्यानं व्रजति पशुता सूकरमुखां
 विना यस्य ज्ञानं जनिमृतिभयं याति जनता ।
 विना यस्य स्मृत्या कृमिशतजर्नि याति स विभुः
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥६॥
 निरातङ्कोत्तङ्कः शरणशरणो भ्रान्तिहरणो
 घनश्यामो वामो व्रजशिशुवयस्योऽर्जुनसखः ।
 स्वयम्भूर्भूतानां जनक उचिताचारसुखदः
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥७॥
 यदा धर्मग्लानिर्भवति जगतां क्षोभकरणी
 तदा लोकस्वामी प्रकटितवपुः सेतुधृगजः ।
 सतां धाता स्वच्छो निगमगुणगीतो व्रजपतिः
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः ॥८॥
 इति हरिरखिलात्मा-ऽऽराधितः शङ्करेण
 श्रुतिविशदगुणोऽसौ मातृमोक्षार्थमाद्यः ।
 यतिवरनिकटे श्रीयुक्त आविर्बभूव
 स्वगुणवृत उदारः शङ्ख-चक्राब्ज-हस्तः ॥९॥
 ॥ इति कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२८३॥

284. कृष्णद्वादशनामस्तोत्रम्

श्रीकृष्ण उवाच

किं ते नामसहस्रेण विज्ञातेन तवार्जुन ।
 तानि नामानि विज्ञाय नरः पापैः प्रमुच्यते ॥१॥
 प्रथमं तु हरिं विन्ध्याद् द्वितीयं केशवं तथा ।
 तृतीयं पद्मनाभं च चतुर्थं वामनं स्मरेत् ॥२॥
 पञ्चमं वेदगर्भं तु षष्ठं च मधुसूदनम् ।
 सप्तमं वासुदेवं च वराहं चाऽष्टमं तथा ॥३॥
 नवमं पुण्डरीकाक्षं दशमं तु जनार्दनम् ।
 कृष्णमेकादशं विन्ध्याद् द्वादशं श्रीधरं तथा ॥४॥
 एतानि द्वादश नामानि विष्णुप्रोक्ते विधीयते ।
 सायं-प्रातः पठेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥५॥
 चान्द्रायण-सहस्राणि कन्यादानशतानि च ।
 अश्वमेधसहस्राणि फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥६॥
 अमायां पौर्णमास्यां च द्वादश्यां तु विशेषतः ।
 प्रातःकाले पठेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७॥

॥ इति कृष्णद्वादशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२८४॥

285. कृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रमन्त्रस्य, श्रीशेष-ऋषिः,
 अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीकृष्णो देवता, श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं
 श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामजपे विनियोगः ।

शेष उवाच

श्रीकृष्णः कमलानाथो वासुदेवः सनातनः ।
 वासुदेवात्मजः पुण्यो लीलामानुषविग्रहः ॥१॥
 श्रीवत्स-कौस्तुभधरो यशोदा-वत्सलो हरिः ।
 चतुर्भुजात्त-चक्रासि-गदा-शङ्खाम्बुजायुधः ॥२॥
 देवकीनन्दनः श्रीशो नन्दगोपप्रियात्मजः ।
 यमुनावेगसंहारो बलभद्रप्रियानुजः ॥३॥

पूतनाजीवितहरः	शकटासुरभञ्जनः ।
नन्दब्रजजनानन्दी	सच्चिदानन्दविग्रहः ॥४॥
नवनीतनवाहारी	मुचुकुन्दप्रसादकः ।
षोडशस्त्री-सहस्रांशुस्त्रिभङ्गी	मधुराकृतिः ॥५॥
शुकवागमृताब्धीन्दुर्गोविन्दो	गोविन्दां पतिः ।
वत्सपालनसञ्चारी	धेनुकासुरभञ्जनः ॥६॥
तृणीकृत-तृणावर्तो	यमलार्जुनभञ्जनः ।
उत्तालतालभेत्ता	च तमाल-श्यामलाकृतिः ॥७॥
गोपीगोपीश्वरो	योगी सूर्यकोटिसमप्रभः ।
इलापतिः	परं ज्योतिर्यादवेन्द्रो यदूद्धहः ॥८॥
वनमाली	पीतवासाः पारिजातापहारकः ।
गोवर्धनाचलोद्धर्ता	गोपालः सर्वपालकः ॥९॥
अजो	निरञ्जनः कामजनकः कञ्जलोचनः ।
मधुहा	मथुरानाथो द्वारकानायको बली ॥१०॥
वृन्दावान्तसञ्चारी	तुलसीदासभूषणः ।
स्यमन्तकमणोर्हर्ता	नरनारायणात्मकः ॥११॥
कुब्जाकृष्णाम्बरधरो	मायी परमपूरुषः ।
मुष्टिकासुर-चाणूर-महायुद्ध-विशारदः	॥१२॥
संसारवैरी	कंसारिर्मुरारिर्नरकान्तकः ।
अनादिर्ब्रह्मचारी	च कृष्णाव्यसनकर्षकः ॥१३॥
शिशुपाल-शिरच्छेत्ता	दुर्योधनकुलान्तकृत् ।
विदुराक्रूरवरदो	विश्वरूपप्रदर्शकः ॥१४॥
सत्यवाक्	सत्यसङ्कल्पः सत्यभामारतो जयी ।
सुभद्रापूर्वजो	विष्णुर्भीष्ममुक्तिप्रदायकः ॥१५॥
जगद्गुरुर्जगन्नाथो	वेणुवाद्य-विशारदः ।
वृषभासुर-विध्वंसी	बाणासुर-बलान्तकृत् ॥१६॥
युधिष्ठिर-प्रतिष्ठाता	बर्हिर्बर्हावतंसकः ।
पार्थसारथिरव्यक्तो	गीतामृतमहोदधिः ॥१७॥

कालीयफणिमाणिक्य-रञ्जित-श्रीपदाम्बुजः ।
 दामोदरो यज्ञभोक्ता दानवेन्द्र-विनाशनः ॥१८॥
 नारायणः परं ब्रह्म पन्नगाशनवाहनः ।
 जलक्रीडासमासक्त-गोपीवस्त्रापहारकः ॥१९॥
 पुण्यश्लोकस्तीर्थकरो देववेद्यो दयानिधिः ।
 सर्वतीर्थात्मकः सर्वग्रहरूपो परात्परः ॥२०॥
 इत्येवं कृष्णदेवस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
 कृष्णेन कृष्णभक्तेन श्रुत्वा गीतामृतं पुरा ॥२१॥
 स्तोत्रं कृष्णप्रियकरं कृतं तस्मान्मया पुरा ।
 कृष्णनामामृतं नाम परमानन्ददायकम् ॥२२॥
 अनुपद्रव-दुःखघ्नं परमायुष्यवर्धनम् ।
 दानं श्रुतं तपस्तीर्थं यत्कृतं त्विह जन्मनि ॥२३॥
 पठतां शृण्वतां चैव कोटि-कोटिगुणं भवेत् ।
 पुत्रप्रदमपुत्राणामगतीनां गतिप्रदम् ॥२४॥
 धनावहं दरिद्राणां जयेच्छूनां जयावहम् ।
 शिशूनां गोकुलानां च पुष्टिदं पुष्टिवर्धनम् ॥२५॥
 वातग्रह-ज्वरादीनां शमनं शान्तिमुक्तिदम् ।
 समस्त-कामदं सद्यः कोटिजन्माघनाशनम् ॥२६॥
 अन्ते कृष्णस्मरणदं भवतापभयापहम् ।
 कृष्णाय यादवेन्द्राय ज्ञानमुद्राय योगिने ।
 नाथाय रुक्मिणीशाय नमो वेदान्तवेदिने ॥२७॥
 इमं मन्त्रं महादेवि जपन्नेव दिवानिशम् ।
 सर्वग्रहानुग्रहभाक् सर्वप्रियतमो भवेत् ॥२८॥
 पुत्र-पौत्रैः परिवृतः सर्वसिद्धि-समृद्धिमान् ।
 निर्विश्य भोगानन्तेऽपि कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ॥२९॥

॥ इति कृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् ॥२८५॥

286. कृष्णस्तवराजः

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं परमदुर्लभम् ।
 यज्ञात्वा न पुनर्गच्छेत्रो निरययातनाम् ॥१॥

नारदाय च यत्प्रोक्त ब्रह्मपुत्रेण धीमता ।
 सनत्कुमारेण पुरा योगीन्द्रगुरुवर्त्मना ॥२॥
 श्रीनारद उवाच
 प्रसीद भगवन्मह्यमज्ञानात् कुण्ठितात्मने ।
 तवाङ्घ्रिपङ्कजरजोरागिणी भक्तिमुत्तमाम् ॥३॥
 अज प्रसीद भगवन्नमितद्युतिपञ्जर ।
 अप्रमेयं प्रसीदास्मद्दुःखहन् पुरुषोत्तम ॥४॥
 स्वसंवेद्य प्रसीदास्मदानन्दात्मन्ननामय ।
 अचिन्त्यसार विश्वात्मन् प्रसीद परमेश्वर ॥५॥
 प्रसीद तुङ्गतुङ्गानां प्रसीद शिवशोभन ।
 प्रसीद गुणगम्भीर गम्भीराणां महाद्युते ॥६॥
 प्रसीद व्यक्तं विस्तीर्णं विस्तीर्णानामगोचर ।
 प्रसीदार्द्रार्द्रजातीनां प्रसीदान्तान्तदायिनाम् ॥७॥
 गुरोर्गरीयः सर्वेश प्रसीदानन्त देहिनाम् ।
 जय माधव मायात्मन् जय शाश्वत शङ्खभृत् ॥८॥
 जय शङ्खधर श्रीमन् जय नन्दननन्दन ।
 जय चक्रगदापाणे जय देव जनार्दन ॥९॥
 जय रत्नवराबद्ध किरीटाकान्त-मस्तक ।
 जय पक्षिपतिच्छाया-निरुद्धार्ककरारुण ॥१०॥
 नमस्ते नरकाराते नमस्ते मधुसूदन ।
 नमस्ते ललितापाङ्ग नमस्ते नरकान्तक ॥११॥
 नमः पापहरेशान नमः सर्पभवापह ।
 नमः सम्भूत-सर्वात्मन्नमः सम्भूतकौस्तुभ ॥१२॥
 नमस्ते नयनातीत नमस्ते भयहारक ।
 नमो विभिन्नवेषाय नमः श्रुतिपथातिग ॥१३॥
 नमश्चिन्मूर्तिभेदेन सर्ग-स्थित्यन्त-हेतवे ।
 विष्णवे त्रिदशारीति-जिष्णवे परमात्मने ॥१४॥
 चक्रभिन्नारिचक्राय चक्रिणे चक्रवल्लभ ।
 विश्वाय विश्ववन्द्याय विश्वभूतानुवर्तिने ॥१५॥

नमोऽस्तु योगिमध्येत्यात्मन्नमोऽस्त्वध्यात्मिरूपिणे ।
 भक्तिप्रदाय भक्तानां नमस्ते मुक्तिदायिने ॥१६॥
 पूजनं हवनं चेज्या ध्यानं पश्चान्नमस्क्रिया ।
 देवेश कर्म सर्व मे भवेदाराधनं तव ॥१७॥
 इति हवन-जपार्चाभेदतो विष्णुपूजा
 नियतहृदयकर्मा यस्तु मन्त्री चिराय ।
 स खलु सकलकामान् प्राप्य कृष्णान्तरात्मा
 जननमृतिविमुक्तोऽत्युत्तमां भक्तिमेति ॥१८॥
 गोगोपगोपिकावीतं गोपालं गोषु गोप्रदम् ।
 गोपैरीड्यं गोसहस्रैर्नोमि गोकुलनायकम् ॥१९॥
 प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम् ।
 धर्मार्थ-काम-मोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ॥२०॥

॥ इति कृष्णस्तवराजः सम्पूर्णः ॥२८६॥

287. गोविन्दाष्टकम्

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशं
 गोष्ठप्राङ्गण-रिङ्गल-लोलमनायासं परमायासम् ।
 मायाकल्पित-नानाकारमनाकारं भुवनाकारं
 क्षमाया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥१॥
 मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडन-शैशव-सन्त्रासं
 व्यादित-वक्त्रालोकित-लोकालोक-चतुर्दशलोकालिम् ।
 लोकत्रयपुरमूलस्तम्भं लोकालोकमनालोकं
 लोकेशं परमेशं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥२॥
 त्रैविष्टप-रिपुवीरघ्नं क्षितिभारघ्नं भवरोगघ्नं
 कैवल्यं नवनीताहारमनाहारं भुवनाहारम् ।
 वैमल्य-स्फुटचेतोवृत्ति-विशेषाभासमनाभासं
 केवलशान्तं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥३॥

गोपालं भूलीलाविग्रहगोपालं कुलगोपालम्
 गोपीखेलन-गोवर्धन-धृतिलीलालालित-गोपालम् ।
 गोभिर्निगदित-गोविन्द-स्फुटनामानं बहुनामानं
 गोपीगोचरदूरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥४॥
 गोपीमण्डलगोष्ठीभेदं भेदावस्थामभेदाभं
 शश्वद्गोखुर-निर्धूतोत्कृत-धूलीधूसर-सौभाग्यम् ।
 श्रद्धाभक्ति-गृहीतानन्दमचिन्त्यं चिन्तितसद्भावं
 चिन्तामणिमहिमानं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥५॥
 स्नानव्याकुल-योषिद्वस्त्रमुपादायागमुपारूढं
 व्यादित्सन्तीरथ दिग्वस्त्राद्युपदातुमुपाकर्षन्तम् ।
 निर्धूतद्वय-शोक-विमोहं बुद्धं बुद्धेरप्यन्तस्थं
 सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥६॥
 कान्तं कारणकारणमादिमनादिं कालमनाभासं
 कालिन्दीगत-कालियशिरसि मुहुर्नृत्यन्तं सुनृत्यन्तम् ।
 कालं कालकलातीतं कलिताशेषं कलिदोषघ्नं
 कालत्रयगतिहेतुं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥७॥
 वृन्दावनभुवि वृन्दारकगणवृन्दाराधित वन्देऽहं
 कुन्दाभामल-मन्दस्मेर-सुधानन्दं सुहृदानन्दम् ।
 वन्द्याशेष-महामुनिमानस-वन्द्यं नन्दपदद्वन्द्वं
 वन्द्याशेषगुणाब्धिं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम् ॥८॥
 गोविन्दाष्टकमेतदधीते गोविन्दार्पितचेता यो
 गोविन्दाच्युत माधव विष्णो गोकुलनायक कृष्णोति ।
 गोविन्दाङ्घ्रिसरोज-ध्यानसुधाजल-धौतसमस्ताघो
 गोविन्दं परमानन्दामृतमन्तःस्थं स समभ्येति ॥९॥

॥ इति गोविन्दाष्टकं समाप्तम् ॥२८७॥

288. गोपालस्तोत्रम्

नारद उवाच

नवीन-नीरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
 बल्लवीनन्दनं वन्दे कृष्णं गोपालरूपिणम् ॥१॥
 स्फुरद्वर्हि-दलोदबद्ध-नील-कुञ्चित-मूर्धजम् ।
 कदम्ब-कुसुमोदबद्ध-वनमाला-विभूषितम् ॥२॥
 गण्डमण्डलसंसर्गि-चलत्कुञ्चितकुन्तलम् ।
 स्थूलं मुक्ताफलोदार-हारोद्योतितवक्षसम् ॥३॥
 हेमाङ्ग-तुलाकोटि-किरीटोज्ज्वल-विग्रहम् ।
 मन्दमारुत-संक्षोभ-चलिताम्बर-सञ्चयम् ॥४॥
 रुचिरौष्ठ-पुटन्यस्त-वंशीमधुरनिःस्वनैः
 लसद्गोपालिकाचेतो मोहयन्तं पुनः पुनः ॥५॥
 बल्लवीवदनाम्भोज-मधुपानमधुव्रतम् ।
 क्षोभयन्तं मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षणैः ॥६॥
 यौवनोद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः परस्परम् ।
 विचित्राम्बर-भूषाभिर्गोपनारीभिरावृतम् ॥७॥
 प्रभिन्नाञ्जन-कालिन्दी-जलकेलि-कलोत्सुकम् ।
 योधयन्तं क्वचिद् गोपान् व्याहरन्तं गवां गणम् ॥८॥
 कालिन्दीजल-संसर्गि-शीतलानिलसेविते ।
 कदम्बपादपच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥९॥
 रत्नभूधर-संलग्न-रत्नासन-परिग्रहम् ।
 कल्पपादप-मध्यस्थ-हेममण्डपिकागतम् ॥१०॥
 वसन्तकुसुमामोद-सुरभीकृत-दिङ्मुखे ।
 गोवर्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥११॥
 सव्यहस्त-तलन्यस्त-गिरिवर्यातपत्रकम् ।
 खण्डिताखण्डलोन्मुक्त-मुक्तासार-धनाधनम् ॥१२॥
 वेणुवाद्य-महोल्लास-कृतहुङ्कार-निस्वनैः ।
 सवत्सैरुन्मुखैः शश्वद्गोकुलैरभिवीक्षितम् ॥१३॥
 कृष्णमेवानुगायद्भिस्तच्चोष्टावशवर्तिभिः ।
 दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरुपशोभितम् ॥१४॥

नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैर्वेद-वेदाङ्गपारगैः ।

प्रीतिसुस्निधया वाचा स्तूयमानं परात्परम् ॥१५॥

य एवं चिन्तयेद् देवं भक्त्या संस्तौति मानवः ।

त्रिसन्ध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥१६॥

राजवल्लभतामेति भवेत् सर्वजनप्रियः ।

अचलां श्रियमाप्नोति स वाग्मी जायते ध्रुवम् ॥१७॥

॥ इति गोपालस्तोत्रं समाप्तम् ॥२८८॥

289. गोपालविंशतिस्तोत्रम्

श्रीमान् वेङ्कटनाथार्यः कवि-तार्किक-केसरी ।

वेदान्ताचार्यवर्यो मे सन्निधत्तां सदा हृदि ॥१॥

वन्दे वृन्दावनचरं बलवीजनवल्लभम् ।

जयन्तीसम्भवं धाम वैजयन्तीं विभूषणम् ॥२॥

वाचं निजाङ्गरसिकां प्रसमीक्षमाणे वक्त्रारविन्दविनिवेशितपाञ्चजन्यः ।

वर्णः त्रिकोणरुचिरे वरपुण्डरीके बद्धासनो जयति बल्लवचक्रवर्ती ॥३॥

आम्नायगन्धरुचिर-स्फुरिताधरोष्ठ-मस्त्राविलेक्षणमनुक्षणमन्दहासम् ।

गोपालडिम्भवपुषं कुहुना जनन्याः प्राणस्तनन्धयमवैमि परं पुमांसम् ॥४॥

आविर्भवत्यनिभृताभरणं पुरस्तादाकुञ्चितैकचरणं निहितान्यपादम् ।

राधानिबद्धमुकुरेण निबद्धतालं नाथस्य नन्दभवने नवनीतनाट्यम् ॥५॥

कुन्दप्रसून-विशदैर्दशनैश्चतुर्भिः संदश्य मातुरनिशं कुचचूचुकाग्रम् ।

नन्दस्य वक्त्रमवलोकयतो मुरारेर्मन्दस्थितं मम मनीषितमातनोतु ॥६॥

हर्तुं कुम्भे विनिहितकरः स्वादु हैयङ्गवीनं

दृष्ट्वा दामग्रहणचटुलां मातरं जातरोषाम् ।

पायादीषत्-प्रचलितपदौ नापगच्छन्न तिष्ठन्

मिथ्यागोपः सपदि नयनेऽमीलयद् विश्वगोप्ता ॥७॥

वज्रयोषिदपाङ्गवेदनीयं मथुराभाग्यमनन्यभोग्यमीडे ।

वसुदेववधूस्तनन्धयं तत्किमपि ब्रह्म किशोरभावदृश्यम् ॥८॥

परिवर्तितकन्धरं भयेन स्मितफुल्लाधरपल्लवं स्मरामि ।
 विटपित्वनिरासकं कयोश्चिद् विपुलोलूखलकर्षकं कुमारम् ॥९॥
 निकटेषु निशामयामि नित्य निगमान्तैरधुनाऽपि मृग्यमाणम् ।
 यमलार्जुनदृष्टबालकेलिं यमुनासाक्षिकयौवतं युवानम् ॥१०॥
 पदवीमदवीयसीं विमुक्तेरटवीं सम्पदमम्बु वाहयन्तीम् ।
 अरुणाधरसाभिलाषवशां करुणां कारणमानुषं भजामि ॥११॥
 अनिमेष-निषेवणीयमक्षणोरजहद्यौवनमाविरस्तु चित्ते ।
 कलहायितकुन्तलं कलापैः करुणोन्मादक-विग्रहं मनो मे ॥१२॥
 अनुयायिमनोज्ञवंशनालैरवतु स्पर्शितबल्लवीविमोघैः ।
 अनघस्मित-शीतलैरसौ मामनुकम्पासरिदम्बुजैरपाङ्गैः ॥१३॥
 अधराहित-चारुवंशनाला मुकुटालम्बि-मयूरपिच्छमालाः ।
 हरिनीलशिलाविहङ्ग-लीलाः प्रतिभास्वन्तु ममान्तिमप्रयाणे ॥१४॥
 अखिलानवलोकयामि कालान्महिलादीनभुजान्तरस्य यूनः ।
 अभिलाषपदं व्रजाङ्गनानामभिलाषक्रमदूरमाभिरूप्यम् ॥१५॥
 महसे महिताय मौलिना विनतेनाञ्जलिमञ्जनत्विषे ।
 कलयामि विदग्धबल्लवी-बलयाभाषितमञ्जुवेषवे ॥१६॥
 जयतु ललितकृत्य शिक्षको बल्लवीनां
 शिथिल-वलयसिञ्जा-शीतलैर्हस्ततालैः ।
 अखिलभुवनरक्षा-गोपवेषस्य विष्णो-
 रधरमणिसुधाया वंशवान् वंशनालः ॥१७॥
 चित्राकल्पश्रवसि कलयल्लाङ्गलीकर्णपूरं
 वर्होत्तंस-स्फुरितचिकुरो बन्धुजीवं दधानः ।
 गुञ्जाबद्धामुरसि ललितां धारयन् हारयष्टिं
 गोपस्त्रीणां जयति कितवाः कोऽपि कौमारहारी ॥१८॥
 लीलायष्टिं करकिसलये दक्षिणे न्यस्य धन्या-
 मंसे देव्याः पुलकनिबिडे सन्निविष्टान्यबाहुः ।
 मेघश्यामो जयति ललितं मेखलादत्तवेणु-
 गुञ्जावीड-स्फुरितचिकुरो गोपकन्याभुजङ्गः ॥१९॥

प्रत्यालीढ-स्मृतिमधिगतां प्राप्तागाढाङ्गपालीं
 पश्चादीषन्मिलितनयनां प्रेयसीं प्रेक्षमाणः ।
 भस्त्रायन्त्रप्रणिहितकरो भक्तजीवातुरव्याद्
 वारिक्रीडा-निबिडवसनो बल्लवीवल्लभो नः ॥२०॥
 वासो हत्वा दिनकरसुतासन्निधौ बल्लवीनां
 लीलास्मेरो जयति ललितामास्थितः कुन्दशाखाम् ।
 सब्रीडाभिस्तदनु वसनं ताभिरभ्यर्च्यमानः
 कामी कश्चित्करकमलयोरञ्जलिं याचमानः ॥२१॥
 इत्यनन्यमनसा विनिर्मितां वेंकटेशकविना स्तुतिं पठन् ।
 दिव्यवेणुरसिकैः समीक्ष्यते दैवतं किमपि यौवतप्रियम् ॥२२॥

॥ इति गोपालविंशतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२८९॥

290. गोपालहृदयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीगोपालहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य, श्रीभगवान् सङ्कर्षण ऋषिः,
 गायत्री छन्दः, ॐ बीजम्, लक्ष्मी शक्तिः, गोपालः परमात्मा देवता,
 प्रद्युम्नः कीलकम्, मनो-वाक् - कायार्जित-सर्वपापक्षयार्थं
 श्रीगोपालप्रीत्यर्थं गोपालहृदयस्तोत्रजपे विनियोगः ।

श्रीसङ्कर्षण उवाच

ॐ ममाऽग्रतः सदा विष्णुः पृष्ठतश्चापि केशवः ।
 गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे च मधुसूदनः ॥१॥
 उपरिष्ठात्तु वैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले ।
 अवान्तरदिशः पातु तासु सर्वासु माधवः ॥२॥
 गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।
 नरसिंहकृताद् गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्ययम् ॥३॥
 अव्यक्तं चैवास्य योनिं वदन्ति व्यक्तं देहं दीर्घमायुर्गतिश्च ।
 वह्निर्वक्त्रं चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमायुश्च वायुम् ॥४॥
 वाचं वेदा हृदयं वै नभश्च पृथ्वी पादौ तारका रोमकूपाः ।
 अङ्गान्युपाङ्गान्यधिदेवता च विद्यादुपस्थं हि तथा समुद्रम् ॥५॥
 तं देवदेवं शरणं प्रजानां यज्ञात्मकं सर्वलोकप्रतिष्ठम् ।
 अजं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं ब्रह्माणमीशं पुरुषं नमस्ते ॥६॥

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरस्कृतम् ।
 ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताऽव्यक्तं सनातनम् ॥७॥
 महाभारतमाख्यानं कुरुक्षेत्रं सरस्वतीम् ।
 केशवं गां च गङ्गां च कीर्तयन् मां प्रसीदति ॥८॥

ॐ भूः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ भुवः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ स्वः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ महः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ जनः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ तपः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ सत्यं पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ वासुदेवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ सङ्कर्षणाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ प्रद्युम्नाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ अनिरुद्धाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ हयग्रीवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ भवोद्भवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ केशवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ नारायणाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ माधवाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ गोविन्दाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ विष्णवे पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ मधुसूदनाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ वैकुण्ठाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ अच्युताय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ त्रिविक्रमाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ वामनाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ श्रीधराय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ हृषीकेशाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ पद्मनाभाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ मुकुन्दाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ दामोदराय पुरुषाय पुरुषरूपाय

वासुदेवाय नमो नमः । ॐ सत्याय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ ईशानाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ तत्पुरुषाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ पुरुषोत्तमाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ श्रीरामचन्द्राय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ श्रीनृसिंहाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ अनन्ताय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ विश्वरूपाय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः । ॐ प्रणवेन्दु-वह्नि-रवि-सहस्रनेत्राय पुरुषाय पुरुषरूपाय वासुदेवाय नमो नमः ।

य इदं गोपालहृदयमधीते स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति । सुरापानात् स्वर्णस्तेयात् वृषलीगमनात् पतिसम्भाषणात् असत्यात् अगम्यागमनात् अपेयपानात् अभक्ष्यभक्षणाच्च पूतो भवति । अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति । भगवान् महाविष्णुरित्याह ।

॥ इति गोपालहृदयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२९०॥

291. गोपालस्तुतिः

नमो	विश्वरूपाय	विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विश्वेश्वराय	विश्वाय	गोविन्दाय नमो नमः ॥१॥
नमो	विज्ञानरूपाय	परमानन्दरूपिणे ।
कृष्णाय	गोपीनाथाय	गोविन्दाय नमो नमः ॥२॥
नमः	कमलनेत्राय	नमः कमलमालिने ।
नमः	कमलनाभाय	कमलापतये नमः ॥३॥
बर्हापीडाभिरामाय		रामायाकुण्ठमेधसे ।
रमामानसहंसाय	गोविन्दाय	नमो नमः ॥४॥
कंसवंशविनाशाय		केशिचाणूरघातिने ।
कालिन्दीकूललीलाय		लोलकुण्डलधारिणे ॥५॥
वृषभध्वज-वन्द्याय	पार्थसारथये	नमः ।
वेणुवादनशीलाय		गोपालायाहिमर्दिने ॥६॥
बल्लवीवदनाम्भोजमालिने		नृत्यशालिने ।
नमः	प्रणतपालाय	श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥७॥

नमः पापप्रणाशाय गोवर्धनधराय च ।
 पूतनाजीवितान्ताय तृणावर्तासुहारिणे ॥८॥
 निष्कलाय विमोहाय शुद्धायाशुद्धवैरिणे ।
 अद्वितीयाय महते श्रीकृष्णाय नमो नमः ॥९॥
 प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ।
 आधि-व्याधि-भुजङ्गेन दष्ट मामुद्धर प्रभो ॥१०॥
 श्रीकृष्ण रुक्मिणीकान्त गोपीजनमनोहर ।
 संसारसागरे मग्नं मामुद्धर जगद्गुरो ॥११॥
 केशव क्लेशहरण नारायण जनार्दन ।
 गोविन्द परमानन्द मां समुद्धर माधव ॥१२॥

॥ इत्याथर्वणे गोपालस्तुतिः समाप्ता ॥२९१॥

292. गोपालाक्षयकवचम्

श्रीनारद उवाच

इन्द्राद्यमरवर्गेषु ब्रह्मन् यत्परमाऽद्भुतम् ।
 अक्षयं कवचं नाम कथयस्व मम प्रभो ॥१॥
 यद्धृत्वाऽऽकर्ण्य वीरस्तु त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र! मुनिश्रेष्ठ! कवचं परमाद्भुतम् ॥२॥
 इन्द्रादि-देववृन्दैश्च नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।
 त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥३॥
 ऋषिश्छन्दो देवता च सदा नारायणः प्रभुः ।

अस्य श्रीत्रैलोक्यविजयाक्षयकवचस्य प्रजापतिर्ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीनारायणः परमात्मा देवता, धर्मा-ऽर्थ-काम-मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

पादौ रक्षतु गोविन्दो जङ्घे पातु जगत्प्रभुः ॥४॥
 ऊरू द्वौ केशवः पातु कटीं दामोदरस्ततः ।
 वदनं श्रीहरिः पातु नाडी देशं च मेऽच्युतः ॥५॥
 वामपार्श्वं तथा विष्णुर्दक्षिणं च सुदर्शनः ।
 बाहुमूले वासुदेवो हृदयं च जनार्दनः ॥६॥

कण्ठं पातु वराहश्च कृष्णश्च मुखमण्डलम् ।
 कर्णौ मे माधवः पातु हृषीकेशश्च नासिके ॥७॥
 नेत्रे नारायणः पातु ललाटं गरुडध्वजः ।
 कपोलं केशवः पातु चक्रपाणिः शिरस्तथा ॥८॥
 प्रभाते माधवः पातु मध्याह्ने मधुसूदनः ।
 दिनान्ते दैत्यनाशश्च रात्रौ रक्षतु चन्द्रमाः ॥९॥
 पूर्वस्यां पुण्डरीकाक्षो वायव्यां च जनार्दनः ।
 इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥१०॥
 तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं न वक्तव्यं तु कस्यचित् ।
 कवचं धारयेद् यस्तु साधको दक्षिणे भुजे ॥११॥
 देवा मनुष्या गन्धर्वा यज्ञास्तस्य न संशयः ।
 योषिद्वामभुजे चैव पुरुषो दक्षिणे भुजे ॥१२॥
 बिभृयात् कवचं पुण्यं सर्वसिद्धियुतो भवेत् ।
 कण्ठे यो धारयेदेतत् कवचं मत्स्वरूपिणम् ॥१३॥
 युद्धे जयमवाप्नोति द्यूते वादे च साधकः ।
 सर्वथा जयमाप्नोति निश्चितं जन्मजन्मनि ॥१४॥
 अपुत्रो लभते पुत्रं रोगनाशस्तथा भवेत् ।
 सर्वतापप्रमुक्तश्च विष्णुलोकं स गच्छति ॥१५॥

॥ इति गोपालकवचं सम्पूर्णम् ॥२१२॥

293. बिन्दुमाधवाष्टकम्

कलिन्दजा-तटाटवी-लतानिकेतनान्तर-
 प्रगल्भवलि-विस्फुरद्रतिप्रसङ्ग-सङ्गतम् ।
 सुधारसार्द्रवेणुनाद-मोदमाधुरीमद-
 प्रमत्त-गोपगोव्रजं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥१॥
 गदारिशङ्ख-चक्र-शार्ङ्गभृच्चतुष्करं कृपा-
 कटाक्ष-वीक्षणामृतोक्षितामरेन्द्रनन्दनम् ।
 सनन्दनादिमौनिमान-सारविन्द-मन्दिरं
 जगत्पवित्रकीर्तिदं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥२॥

दिगीशमौलिनूलरत्न-निःसरत्-प्रभावली-
 विराजिताङ्घ्रिपङ्कजं नवेन्दुशेखराब्जजम् ।
 दयामरन्द-तुन्दिलारविन्दपत्र-लोचनं
 विरोधियूथभेदनं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥३॥
 पयःपधोधिवीचिकावली-पयःपृष्ण्मिलद्-
 भुजङ्गपुङ्गवाङ्गकल्प-पुष्पतल्पशायिनम् ।
 कटीतटि-स्फुटीभवत्-प्रहाटका-वरं निशा-
 टकोटिपाटनं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥४॥
 अनुश्रवापहारका-वलेपलोधनैपुणी-
 पयश्चरावतार-तोषितार-विन्दसम्भवम् ।
 महाभवाब्धिमध्यमग्न-दीनलोकतारकं
 विहङ्गराट्पुरङ्गमं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥५॥
 समुद्रतोयमध्यदेव-दानवोत्क्षिपद्भरा-
 धरेन्द्रमूलधारण-क्षमादिकूर्मविग्रहम् ।
 दुराग्रहावलिमहाट-काक्षनाशसूकरं
 हिरण्यदानवान्तकं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥६॥
 विरोचनात्म-सम्भवोत्तमाङ्गकृत्पदक्रमं
 परश्वधोपसंहताखिलावनीशमण्डलम् ।
 कठोरनीलकण्ठ-कार्मुक-प्रदर्शितादिदो-
 र्बलान्वितक्षितोसुतं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥७॥
 यमानुजोदकप्रवाह-सत्त्वराभिजित्वरं
 पुरासुरङ्गनाभिमाननूपयूथनायकम् ।
 स्वमण्डलाग्र-खण्डनीय यावनारिमण्डलं
 बलानुजं गदाग्रजं भजामि बिन्दुमाधवम् ॥८॥
 प्रशस्तपञ्चचामराख्यवृत्तभेदभासितं
 दशावतारवर्णनं नृसिंहभक्त-वर्णितम् ।
 प्रसिद्धबिन्दुमाधवाष्टकं पठन्ति ये भृशं
 नराः सुदुर्लभं भजन्ति ते मनोरथं निरन्तरम् ॥९॥

॥ इति बिन्दुमाधवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥२९३॥

294. गोपाल-कवचम्

अथ वक्ष्यामि कवचं गोपालस्य जगद्गुरोः ।
 यस्य स्मरणमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥१॥
 शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सावधाना वधारय ।
 नारदो स्य ऋषिर्देवि छन्दोऽनुष्टुबुदाहतम् ॥२॥
 देवता बालकृष्णश्च चतुर्वर्गप्रदायकः ।

विनियोगः-ॐ अस्य श्री गोपालकवचस्य नारदऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः,
 श्रीबालकृष्णो देवता, धर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

शिरो मे बालकृष्णश्च पातु नित्यं मम श्रुती ॥३॥

नारायणः पातु कण्ठं गोपीवन्द्यः कपोलकम् ।

नासिके मधुहा पातु चक्षुषी नन्दनन्दनः ॥४॥

जनार्दनः पातु दन्तान्धरं माधवस्तथा ।

ऊर्ध्वोष्ठं पातु वाराहश्चिबुकं केशिसूदनः ॥५॥

हृदयं गोपिकानाथो नाभिं सेतुप्रदः सदा ।

हस्तौ गोवर्द्धनधरः पादौ पीताम्बरोऽवतु ॥६॥

कराङ्गुलीः श्रीधरो मे पादाङ्गुल्यः कृपामयः ।

लिङ्गं पातु पदापाणिर्बालक्रीडामनोरमः ॥७॥

जगन्नाथ पातु पूर्वं श्रीरामोऽवतु पश्चिमम् ।

उत्तरं कैटभारिश्च दक्षिणं हनुमत्प्रभुः ॥८॥

आग्नेय्यां पातु गोविन्दो नैऋत्यां पातु केशवः ।

वायव्यां पातु दैत्यारिरैशान्यां गोपनन्दनः ॥९॥

ऊर्ध्वं पातु प्रलम्बारिरधः कैटभमर्दनः ।

शयानं पातु पूतात्मा गतौ पातु श्रियः पतिः ॥१०॥

शेषः पातु निरालम्बे जाग्रद्धावे ह्यपाम्पतिः ।

भोजने केशिहा पातु कृष्णः सर्वाङ्गसन्धिषु ॥११॥

गणनासु निशानाथो दिवानाथो दिनक्षये ।

इति ते कथितं दिव्यं कवचं परमाद्भुतम् ॥१२॥

यः पठेन्नित्यमेवेदं कवचं प्रयतो नरः ।
 तस्याशु विपदो देवि नश्यन्ति रिपुसङ्गतः ॥१३॥
 अन्ते गोपालचरणं प्राप्नोति परमेश्वरि ।
 त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यं वा यः पठेच्छृणुयादपि ॥१४॥
 तत्सर्वतो रमानाथः परिपाति चतुर्भुजः ।
 अज्ञात्वा कवचं देवि गोपालं पूजयेद्यदि ॥१५॥
 सर्वं तस्य वृथा देवि जपहोमार्चनादिकम् ।
 स शस्त्रघातं सम्प्राप्य मृत्युमेति न संशयः ॥१६॥

इति श्रीगोपाल-कवचम् सम्पूर्णम् ॥१२९४॥

295 .हस्तामलकस्तोत्रम्

कस्त्वं शिशो कस्य कुतोऽसि गन्ता किं नाम ते त्वं कुत आगतोऽसि ।
 एतन्मयोक्तं व द चार्भक त्वं मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनोऽसि ॥१॥

हस्तामलक उवाच

नाऽहं मनुष्यो न च देव्यक्षौ न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः ।
 न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः ॥२॥
 निमित्तं मनुश्चक्षुरादिप्रवृत्तौ निरस्ताखिलोपाधिराकाशकल्पः ।
 रविलोकचेष्टानिमित्तं तथा यः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥३॥
 यमग्न्युष्णवन्नित्यबोधस्वरूपं मनश्चक्षुरादीन्यबोधात्मकानि ।
 प्रवर्तन्तऽआश्रित्य निष्कम्पमेकं स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥४॥
 मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो मुखत्वात्पृथक्त्वेन नैवास्ति वस्तु ।
 चिदाभासको धीषु जीवोऽपि त द्वत्स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥५॥
 यथा दर्पणाभाव आभासहानौ मुखं विद्यते कल्पनाहीनमेकम् ।
 तथा धीवियोगं निराभासको यः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥६॥
 मनश्चक्षुरादेर्वियुक्तः स्वयं यो मनश्चक्षुरादेर्मनश्चक्षुरादिः ।
 मनश्चक्षुरादेरगम्यस्वरूपः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥७॥
 य एको विभाति स्वतः शुद्धचेताः प्रकाशस्वरूपोऽपि नानेवधीषु ।
 शरावोद प्रकस्थो यथा भानुरेकः स नित्योपलब्धिस्वरूपो हमात्मा ॥८॥

यथाऽनेकचक्षुः प्रकाशो रविर्न क्रमेण प्रकाशीकरोतिऽप्रकाशम् ।
 अनेका धियो यस्तथैकः प्रबोधः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥१॥
 विवस्वत्प्रभातं यथा रूपमक्षं प्रगृहणाति नाभातमेवं विवस्वान् ।
 यदाभात आभासयत्यक्षमेकः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥१०॥
 यथा सूर्य एकोऽप्सवनेकश्चलासु स्थिरास्वप्यन्यद्विभाव्यस्वरूपः ।
 चलासु प्रभिन्न सुधीष्वेक एर स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥११॥
 घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं तथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढः ।
 तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥१२॥
 समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूतेकं स मस्तानि वस्तूनि यन्न स्पृशन्ति ।
 वियद्वत्सदा शुद्धमच्छस्वरूपं स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥१३॥
 उपाधौ यथा भेदता सन्मणीनां तथा भेदता बुद्धिभेदेषु तेऽपि ।
 यथा चन्द्रिकाणां जले चञ्चलत्वं तथा चञ्चलत्वं तवापीह विष्णो ॥१४॥

इति हस्तामलकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥१२९५॥

296. श्रीकृष्णःशरणं मम

श्रीकृष्ण एव शरणं मम श्रीकृष्ण एव शरणम् ।
 गुणमय्येषा न यत्र माया न च जनुरपि मरणम् ।
 यद्यतयः पश्यन्ति समाधौ परममुदाभरणम् ॥१॥
 यद्धेतोर्निवहन्ति बुधा ये जगति सदाचरणम् ।
 सर्वापद्भ्यो विहितं महतां येन समुद्धरणम् ॥२॥
 भगवति यत्सन्मतिमुद्धतां हृदयतमोहरणम् ।
 हपिरमा यद्भजन्ति सततं निषेव्य गुरुचरणम् ॥३॥
 असुरकुलक्षतये कृतममरैर्यस्य सदादरणम् ।
 भुवनतरुं धत्ते यन्निखिलं विविधविषयपर्णम् ॥४॥
 अवाप्य यद् भूयोऽच्युतभक्ता न यान्ति संसरणम् ।
 कृष्णलालजीद्विजस्य भूयात्तदघहरस्मरणम् ॥५॥

इति श्रीकृष्णाः शरणं मम सम्पूर्णम् ॥१२९६॥

297. श्रीकृष्ण-स्तवनम्

फुल्लेन्दीवन - कान्तिमिन्दु - वदनं बर्हावतंसप्रियं
 श्रीवत्साङ्गमुदार - कौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
 गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गो - गोपासङ्गावृतं
 गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥१॥
 वन्दे नवघनश्यामं पीत - कौशेयवासम् ।
 सानन्दं सुन्दरं शुद्धं श्रीकृष्णं प्रकृतेः परम् ॥२॥
 हे कृष्ण करुणासिन्धो दीनबन्धो जगत्पते ।
 गोपेश गोपिकाकान्त राधाकान्त नमोऽस्तु ते ॥३॥
 वसुदेवसुतं देवं कंस - चाणूर -मर्दनम् ।
 देवकी - परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद् - गुरुम् ॥४॥
 मूकं करोति वाचालं पङ्कजं हृदयते गिरिम् ।
 यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥५॥
 नमो ब्रह्मण्य - देवाय गो- ब्राह्मण - हिताय च ।
 जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥६॥
 इति श्रीकृष्ण-स्तवनं समाप्तम् ॥२९७॥

298. गोपिकाविरहगीम्

एहि मुरारे कुञ्जविहारे एहि प्रणतजनबन्धो
 हे माधवमधुमथन वरेण्य केशव करुणासिन्धो (ध्रुवपदम्)
 रासनिकुञ्जे गुञ्जति नियतं भ्रमरशतं किल कान्त एहिनिभृतपथपान्थ ।
 त्वामिह याचे दर्शनदानं हे मधुसूदन शान्त ॥१॥
 शून्यं कुसुमासनमिह कुञ्जे शून्यः केलिकदम्बः ।
 मृदुकलनादं किल सविषादं रोदिति यमुनास्वम्भः ॥२॥
 नवनीरजधरश्यामलसुन्दर चन्द्रकुसुमरुचिवेश गोपीगणहृदयेश ।
 गोवर्द्धनधर वृन्दावनचर वंशीधर परमेश ॥३॥
 राधारञ्जन कंसनिषूदन प्रणतिस्तावक चरणे निखिलनिराश्रयशरणे ।
 एहि जनार्दन पीताम्बरधर कुञ्जे मन्थरपवे ॥४॥

इति श्रीगोपिकाविरहगीतं सम्पूर्णम् ॥ २९८ ॥

299 .नन्दकुमाराष्टकम्

सुन्दरगोपालम् उरवनमालं नयनविशालं दुःखहरम्
 वृन्दावनचन्द्रमानन्दकन्दं परमानन्दं धरणिधरम् ।
 वल्लभघनश्यामं पूर्णकामम् अत्यभिरामं प्रीतिकरम्
 भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥१॥
 सुन्दरवारिजवदनं निर्जितमदम् आनन्दसदनं मुकुटधरम्
 गुञ्जाकृतिहारं विपिनविहारं परमोदारं चीरहरम् ।
 वल्लभपटपीतं कृतउपवीतं करनवनीतं विबुधवरम्
 भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥२॥
 शोभितमुखधूलं यमुनाकूलं निपट-अतूलं सुखदतरम् ।
 मुखमण्डितरेणुं चारितधेनुं वादितवेणुं मधुरसुरम् ।
 वल्लभमतिविमलं शुभपदकमलं नखरुचि अमलं तिमिरहरम्
 भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥३॥
 शिरमुकुटसुदेशं कुञ्जितकेशं नटवरवेशं कामवरम्
 मायाकृतमनुजं हलधरअनुजं प्रतिहतदनुजं भारहरम् ।
 वल्लभव्रजपालं सुभगसुचालं हितमनुकालं भाववरम्
 भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥४॥
 इन्दीवरभासं प्रकटसुरासं कुसुमविकासं वंशिधरम्
 हतमन्मथमानं रूपनिधानं कृतकलगा नं चित्तहरम् ।
 वल्लभमृदुहासं कुञ्जनिवासं विविधविलासं केलिकरम्
 भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥५॥
 अतिमपरमप्रवीणं पालितदीनं भक्ताधीनं कर्मकरम्
 मोहनमतिधीरं फणिबलवीरं हतपरवीरं तरलतरम् ।
 वल्लभव्रजरमणं वारिजवदनं हलधरशमनं शैलधरम्
 भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥६॥
 जलधरद्युतिअङ्गं ललितत्रिभङ्गं बहुकृतरङ्गं रसिकवरम्
 गोकुलपरिवारं मदनाकारं कुञ्जविहारं गूढतरम् ।
 वल्लभव्रचन्द्रं सुभगसुछन्दं कृतआनन्दं भ्रान्तिहरम्
 भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥७॥

वन्दितयुगचरणं पावनकरणं जगदुद्धरणं विमलधरम्
 कालियशिरगमनं कृतफणिनमनं धातितयमनं मृदुलतरम्।
 वल्लभदुःखहरणं निर्मलचरणं अशरणशरणं मुक्तिकरम्
 भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम् ॥८॥

इति श्रीनन्दकुमाराष्टकं सम्पूर्णम् ॥२९९॥

300. चतुःश्लोकी

सदा सर्वात्मभावेन भजनीयो ब्रजेश्वरः।
 करिष्यति स एवास्मदैहिकं पारलौकिकम् ॥१॥
 अन्याश्रयो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः।
 स्वकीये स्वात्मभावश्च कर्तव्यः सर्वथा सदा ॥२॥
 सदा सर्वात्मना कृष्णः सेव्यः कालादिदोषनुत्।
 तद्भक्तेषु च निर्दोषभावेन स्थेयमादरात् ॥३॥
 भगवत्येव सततं स्थापनीयं मनः स्वयम्।
 कालोऽयं कठिनोऽपि श्रीकृष्णभक्तान्न बाधते ॥४॥

इति चतुःश्लोकी सम्पातः ॥३००॥

301. कृष्णस्तुतिः

श्रियाश्लिष्टो विष्णुः स्थिर - चर - गुरुर्वेदविषयो
 धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताब्जनयनः।
 गदी सङ्घी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षि विषयः ॥

इति कृष्णस्तुतिः समाप्तः ॥३०१॥

302. श्रीप्रपन्नगीतम्

(पञ्चमस्वरमेकतालं भजनम्, विहागरागेण गीयते)

परमसखे श्रीकृष्ण भयङ्करभवाणवेऽव्यय निमिग्रम्।
 मामुद्धर ते श्रीकरलातिचरणकमलपरिधौ लग्नम् ॥ (ध्रुवपदम्)
 गुणमृगतृष्णाचलितधियं विषयार्थसमुत्सुकदशकरणम्।
 परिभूतं दुर्मतिनरनिकरैर्मति भ्रमार्जितगुणशरणम् ॥
 सततं सयमनो - निवहन्तं षड्रिपुर्भिर्निखिलेड्यगुरम्।
 कालिन्दीहृदयप्रियविष्णोश्चरणकमलरजसो निधुरम् ॥

मनःशोकमतिमोहक्षतये भिकाइक्षन्तमजमुखपद्मम् ।
 मामुद्धर ते श्रीकरलातिचरणकमलपरिधौ लग्नम् ॥१॥
 कालिन्दीरुक्मिणीराधिकासत्याजम्बवतीसुहृदम्
 निजशरणागतभक्तजनेभ्यः कृपया गतभवभयवरदम् ॥
 गोपीजनवल्लभरासरेश्वरगोवर्धनरमधुमथनम् ।
 वन्देहं निखिलाधिपति त्वामतिशयसुन्दरगुणभवनम् ॥
 कृष्णलालजीद्विजाधिपं हे मनो निशं त्वं भज यज्ञम् ।
 मामुद्धर ते श्रीकरलालितचरणकमलपरिधौ लग्नम् ॥२॥

इति श्रीप्रन्नागीतं सम्पूर्णम् ॥३०२॥

303. मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
 हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥
 वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
 चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥
 वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
 नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥
 गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
 रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥
 करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
 वमितं मधुरं शामितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥
 गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
 सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥
 गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
 दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥
 गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
 दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

इति मधुराष्टकं सम्पूर्णम् ॥३०३॥

॥ इति श्रीकृष्णस्तोत्राणि ॥

11. पाण्डुरंगस्तोत्राणि

304. पाण्डुरङ्गाष्टकम्

महायोगपीठे तटे भीमरथ्या वरं पुण्डरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः
समागत्य तिष्ठन्तमानन्दकन्दं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥१॥
तडिद्वाससं नीलमेघावभासं रमामन्दिरं सुन्दरं चित्रकाशम्।
वरं त्विष्टिकायां समन्यस्तपादं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥२॥
प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानां नितम्बः कराभ्यां धृतो येन तस्मात्।
विधातुर्वसत्यै धृतो नाभिकोशः परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥३॥
स्फुरत्कौस्तुभालंकृतं कण्ठदेशे श्रिया जुष्टकेयूरकं श्रीनिवासम्।
शिवं शान्तमीड्यं वरं लोकपालं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥४॥
शरच्चन्द्र-बिम्बाननं चारुहासं लसत्कुण्डलाक्रान्त-गण्डस्थलाङ्गम्।
जपारागबिम्बाधरं कञ्जनेत्रं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥५॥
किरीटोज्ज्वलत्-सर्वदिक्प्रान्तभागं सुरैरर्चितं दिव्यरत्नैरनर्घ्यैः।
त्रिभङ्गाकृतिं बर्हमाल्यावतंसं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥६॥
विभुं वेणुनादं चरन्तं दुरन्तं स्वयं लीलया गोपवेषं दधानम्।
गवां वृन्दकानन्दन चारुहासं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥७॥
अजं रुक्मिणीप्राणसञ्जीवनं तं परं धाम कैवल्यमेकं तुरीयम्।
प्रपन्नं प्रपन्नार्तिहं देवदेवं परब्रह्मलिङ्गं भजे पाण्डुरङ्गम् ॥८॥
स्तवं पाण्डुरङ्गस्य वै पुण्यदं ये पठन्त्येकचित्तेन भक्त्या च नित्यम्।
भवाम्भोनिधिं तेऽपि तीर्त्वाऽन्तकाले हरेरालयं शाश्वतं प्राप्नुवन्ति ॥९॥

॥ इति पाण्डुरङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥३०४॥

305. पाण्डुरङ्ग-स्तुतिः

समचरणसरोजं सान्द्रनीलाम्बुदाभं जघन - निहित - पाणिं मण्डनं मण्डनानाम्।
तरुण - तुलसिमाला - कन्धरं कञ्जने सदय - ध्वलहासं विट्पुलं चिन्तयामि ॥

॥ इति पाण्डुरङ्ग-स्तुतिः समाप्तम् ॥३०५॥

॥ इति पाण्डुरङ्गस्तोत्राणि ॥

12. कल्क्यवतारस्तोत्राणि

306. कल्किस्तोत्रम्

सुशान्तोवाच

जय हरेऽमराधीश-सेवितं तव पदाम्बुजं भूरिभूषणम् ।
कुरु ममाग्रतः साधुसत्कृतं त्वज महामते मोहमात्मनः ॥१॥
तव वपुर्जगद्रूपसम्पदा विरचितं सतां मानसे स्थितम् ।
रतिपतेर्मनोमोहदायकं कुरु विचेष्टितं कामलम्पटम् ॥२॥
तव यशो जगच्छोकनाशनं मृदुकथामृतं प्रीतिदायकम् ।
स्मितसुधोक्षितं चन्द्रवन्मुखं तव करोत्यलं लोकमङ्गलम् ॥३॥
मम पतिस्त्वयं सर्वदुर्जयो यदि तवाप्रियं कर्मणाऽऽचरेत् ।
जहि तदात्मनः शत्रुमुद्यतं कुरु कृपा न चेदीदृगीश्वर ॥४॥
महदहयुतं पञ्चमात्रया प्रकृतिजायया निर्मितं वपुः ।
तव निरीक्षणाल्लीलया जगत्-स्थिति-लयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥५॥
भुवि यन्मरुद्धारितेजसां राशिभिः शरीरेन्द्रियाश्रितैः ।
त्रिगुणया स्वया मायया विभो कुरु कृपां भवत्सेवनार्थिनाम् ॥६॥
तव गुणालयं नाम पावनं कलिमलापहं कीर्तयन्ति ये ।
भवभयक्षयं तापतापिता मुहुरहो जनाः संसरन्ति नो ॥७॥
तव जनुः सतां मानवर्धनं जिनकुलक्षयं देवपालकम् ।
कृतयुगार्पकं धर्मपूरकं कलिकुलान्तकं शं तनोतु मे ॥८॥
मम गृहं पति-पुत्र-नप्तृकं गजरथैर्ध्वजैश्चामरैर्धनैः ।
मणिवरासनं सत्कृतिं विना तव पदाब्जयोः शोभयन्ति किम् ॥९॥
तव जगद्वपुः सुन्दरस्मितं मुखमनिन्दितं सुन्दरारवम् ।
यदि न मे प्रियं वल्गु चेष्टितं परिकरोत्यहो मृत्युरस्त्वह ॥१०॥
हयचर-भयहरकर-हरशरण-खरतरवरशर-दशबलदलन ।
जय हतपरभर भवभरनाशन शशधर-शतसमर-सभरदमन ॥११॥

॥ इति कल्किस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३०६॥

॥ इति कल्क्यवतारस्तोत्रम् ॥

12. दत्तत्रेयस्तोत्राणि

307. दत्तात्रेयस्तोत्रम्

जटाधरं पाण्डुरङ्गं शूलहस्तं कृपानिधिम् ।
सर्वरोगहरं देवं दत्तात्रेयमहं भजे ॥

विनियोगः—अस्य श्रीदत्तात्रेयस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान्नारद-ऋषिः,
अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीदत्तः परमात्मा देवता, श्रीदत्तप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

जगदुत्पत्तिकर्त्रे च स्थिति-संहारहेतवे ।

भवपाशविमुक्ताय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥१॥

जरा-जन्म-विनाशाय देहशुद्धिकराय च ।

दिगम्बर दयामूर्ते दत्तात्रेयमहं भजे ॥२॥

कर्पूरकान्तिदेहाय ब्रह्ममूर्तिधराय च ।

वेदशास्त्रपरिज्ञाय दत्तात्रेयमहं भजे ॥३॥

ह्रस्व-दीर्घ-कृश-स्थूल-नामगोत्र-विवर्जित ।

पञ्चभूतप्रदीप्ताय दत्तात्रेयमहं भजे ॥४॥

यज्ञभोक्त्रे च यत्राय यज्ञरूपधराय च ।

यज्ञप्रियाय सिद्धाय दत्तात्रेयमहं भजे ॥५॥

आदौ ब्रह्मा मध्ये विष्णुरन्ते देवः सदाशिवः ।

मूर्तित्रयस्वरूपाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥६॥

भोगालयाय भोगाय योग्ययोग्याय धारिणे ।

जितेन्द्रिय-जितज्ञाय दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥७॥

दिगम्बराय दिव्याय दिव्यरूपधराय च ।

सदोदितपरब्रह्म दत्तात्रेय नमोऽस्तु ते ॥८॥

जम्बूद्वीपे	महाक्षेत्रे	मातापुरनिवासिने ।
जयमानं सतां	देव दत्तात्रेय	नमोऽस्तु ते ॥१॥
भिक्षाटनं गृहे	ग्रामे पात्रं	हेममयं करे ।
नानास्वादमयी	भिक्षा दत्तात्रेय	नमोऽस्तु ते ॥१०॥
ब्रह्मज्ञानमयी	मुद्रा वस्त्रे	आकाशभूतले ।
प्रज्ञानधनबोधाय	दत्तात्रेय	नमोऽस्तु ते ॥११॥
अवधूत	सदानन्द	परब्रह्मस्वरूपिणे ।
विदेहदेहरूपाय	दत्तात्रेय	नमोऽस्तु ते ॥१२॥
सत्यरूप	सदाचार	सत्यधर्मपरायण ।
सत्याश्रय	परोक्षाय	दत्तात्रेयमहं भजे ॥१३॥
शूलहस्त	गदापाणे	वनमालासुकन्धर ।
यज्ञसूत्रधर	ब्रह्मन्	दत्तात्रेयमहं भजे ॥१४॥
क्षराऽक्षरस्वरूपाय	परात्परतराय	च ।
दत्तमुक्तिपरस्तोत्रं	दत्तात्रेयमहं	भजे ॥१५॥
दत्तविद्याढ्य	लक्ष्मीश	दत्तास्वात्मस्वरूपिणे ।
गुणनिर्गुणरूपाय	दत्तात्रेयमहं	भजे ॥१६॥
शत्रुनाशकरं	स्तोत्रं	ज्ञान-विज्ञान-दायकम् ।
सर्वपापं शमं	याति दत्तात्रेय	नमो नमः ॥१७॥
इदं स्तोत्रं	महद्दिव्यं	दत्तप्रत्यक्षकारकम् ।
दत्तात्रेयप्रसादाय	नारदेन	प्रकीर्तितम् ॥१८॥

॥ इति दत्तात्रेयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३०७॥

308. दत्तात्रेयवज्रकवचम्

ऋषय ऊचुः

कथं सङ्कल्पसिद्धिः स्याद् वेदव्यास कलौ युगे ।
धर्मार्थ - काम - मोक्षाणां साधनं किमुदाहृतम् ॥१॥

व्यास उवाच

शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे शीघ्रं सङ्कल्प - साधनम् ।
सकृदुच्चारमात्रेण भोग - मोक्ष - प्रदायकम् ॥२॥
गौरीश्रृङ्गे हिमवतः कल्पवृक्षोपशोभितम् ।
दीप्ते दिव्यमहारत्न - हेममण्डप - मध्यगम् ॥३॥

रत्नसिंहासनासीनं प्रसन्नं परमेश्वरम् ।
 मन्दस्मित - मुखाम्भोजं शङ्करं प्राह पार्वती ॥४॥
 श्रीदेव्युवाच
 देवदेव महादेव लोकशङ्कर शङ्कर ।
 मन्त्रजालानि सर्वाणियन्त्रजालानि कृत्स्नशः ॥५॥
 तन्त्रजालान्यनेकानि मया त्वतः श्रुतानि वै ।
 इदानीं द्रष्टुमिच्छामि विशेषेण महीतलम् ॥६॥
 इत्युदीरितमाकर्ण्य पार्वत्या परमेश्वरः ।
 करेणामृज्य सन्तोषात् पार्वती प्रत्यभाषत ॥७॥
 मयेदानीं त्वया सार्धं वृषमारुह्य गम्यते ।
 इत्युक्त्वा वृषमारुह्य पार्वत्या सह शङ्करः ॥८॥
 ययौ भूमण्डलं द्रष्टुं गौर्याश्चित्राणि दर्शयन् ।
 क्वचिद् विन्ध्याचलप्रान्ते महारण्ये सुदुर्गमे ॥९॥
 तत्र व्याहर्तुमायान्तं भिल्लं परशुधारिणम् ।
 वध्यमानं महाव्याघ्रं नखदंष्ट्राभिरावृतम् ॥१०॥
 अतीव चित्रचारित्र्यं वज्रकायसमायुतम् ।
 अप्रयत्नमनायासमखिरं सुखमास्थितम् ॥११॥
 पलायन्तं मृगं पश्चाद् व्याघ्रो भीत्या पलायितः ।
 एतदाश्चर्यमालोक्य पार्वती प्राह शङ्करम् ॥१२॥

श्रीपार्वत्युवाच

किमाश्चर्यं किमाश्चर्यमग्रे शम्भो निरीक्ष्यताम् ।
 इत्युक्तः स ततः शम्भुर्दृष्ट्वा प्राह पुराणवित् ॥१३॥

श्रीशङ्कर उवाच

गौरि वक्ष्यामि ते चित्रमवाङ् - मानस - गोचरम् ।
 अदृष्टपूर्वमस्माभिर्नास्ति किञ्चिन्न कुत्रचित् ॥१४॥
 मया सम्यक् समासेन वक्ष्यते शृणु पार्वति ।
 अयं दूरश्रवा नाम भिल्लः परमधार्मिकः ॥१५॥
 समित्कुश - प्रसूनानि कन्द - मूल - फलादिकम् ।
 प्रत्यहं विपिनं गत्वा समादाय प्रयासतः ॥१६॥

प्रिये पूर्वं मुनीन्द्रेभ्यः प्रयच्छति न वाञ्छति ।
 तेऽपि तस्मिन्नपि दयां कुर्व ते सर्वमौनिनः ॥१७॥
 दलादनो महायोगी वसन्नेव निजाश्रमे ।
 कदाचिदस्मरत् सिद्धं दत्तात्रेयं दिगम्बरम् ॥१८॥
 दत्तात्रेयः स्मर्तृगामी चेतिहासं परीक्षितुम् ।
 तत्क्षणात् सोऽपि योगीन्द्रो दत्तात्रेयः समुत्थितः ॥१९॥
 तं दृष्ट्वाऽऽश्चर्य - तोषाभ्यां दलादन - महामुनिः ।
 सम्पूज्याग्रे निषीदन्तं दत्तात्रेयमुवाच तम् ॥२०॥
 मयोपहृतः सम्प्राप्तो दत्तात्रेय महामुने ।
 स्मर्तृगामी त्वमित्येतत् किंवदन्ती परीक्षितुम् ॥२१॥
 मयाऽद्य संस्मृतोऽसि त्वमपराधं क्षमस्व मे ।
 दत्तात्रेयो मुनिं प्राह मम प्रकृतिरीदृशी ॥२२॥
 अभक्त्या वा सुभक्त्या वा यः स्मरेन्मामन्यधीः ।
 तदानीं तमुपागत्य ददामि तदभीप्सितम् ॥२३॥
 दत्तात्रेयो मुनिं प्राह दलादलमुनीश्वरम् ।
 यदिष्टं तद् वृणीष्व त्वं यत् प्राप्तोऽहं त्वया स्मृतः ॥२४॥
 दत्तात्रेयं मुनिः प्राह मया किमपि नोच्यते ।
 त्वच्चित्ते यत् स्थितस्तन्मे प्रयच्छ मुनिपुङ्गव ॥२५॥

श्रीदत्तात्रेय उवाच

ममाऽस्ति वज्रकवचं गृहाणेत्यवदन् मुनिम् ।
 तथेत्यङ्गीकृतवते दलादमुनये मुनिः ॥२६॥
 स्ववज्रकवचं प्राह ऋषिच्छन्दः पुरःसरम् ।
 न्यासं ध्यानं फलं तत्र प्रयोजनमशेषतः ॥२७॥

विनियोगः-अस्य श्रीदत्तात्रेयवज्रकवच स्तोत्रमन्त्रस्य किरातरूपी महारुद्रऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः,
 श्रीदत्तात्रेयो देवता, द्रां बीजम्, आं शक्तिः, क्रौं कीलकम्, ॐ आत्मने नमः, ॐ द्रौ मनसे नमः, ॐ
 आं द्रौ श्री सौः ॐ कलां क्लीं क्लूं क्लैं क्लौं क्लः, श्री दत्तात्रेय-प्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ध्यानम्

जगदङ्कुरकन्दाय सच्चिदानन्दमूर्तये ।
 दत्तात्रेय योगीन्द्रचन्दाय परमात्मने ॥१॥
 कदा योगी कदा भोगी कदा नग्नः पिशाचवत् ।
 दत्तात्रेयो हरिः साक्षाद् भुक्ति - मुक्तिप्रदायकः ॥२॥

वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादरः ।
 माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बरः ॥३॥
 इन्द्रनील - समाकारश्चन्द्रकान्त - समद्युतिः ।
 वैडूर्यसदृशस्फूर्ति - श्चलत्किञ्चिज्जटाधरः ॥४॥
 स्निग्ध - धावलययुक्ताक्षो - उत्पन्तनील - कनीनिकः ।
 भ्रूवक्षः श्मश्रुनीलाङ्कः शशाङ्कसदृशाननः ॥५॥
 हासनिर्जितनीहारः कण्ठनिर्जित - कम्बुकः ।
 मांसलांसो दीर्घबाहुः पाणिनिर्जित - पल्लवः ॥६॥
 विशालपीनवक्षाश्च ताम्रपामिर्दलोदरः ।
 पृथुलश्रोणि - ललितो विशाल - जघनस्थलः ॥७॥
 रम्भास्तम्भोपमानोरु - ज्ञानुपूर्वैक - जङ्घकः ।
 गूढगुल्फः कूर्मपृष्ठो लसत्पादो परिस्थलः ॥८॥
 रक्तारविन्दसदृश - रमणीय - पदाधरः ।
 चर्माम्बरधरो योगी स्मर्तृगामी क्षणे क्षणे ॥९॥
 ज्ञानोपदेशनिरतो विपद्भरणदीक्षितः ।
 सिद्धासन - समासीन ऋजुकायो हसन्मुखः ॥१०॥
 वामहस्तेन वरदो दक्षिणे नाभयङ्करः ।
 बालोन्मत्तपिशाचीभिः क्वचिद्युक्तः परीक्षितः ॥११॥
 त्यागी भोगी महायोगी नित्यानन्दो निरञ्जनः ।
 सर्वरूपी सर्वदाता सर्वगः सर्वकामदः ॥१२॥
 भस्मोद्धूलित - सर्वाङ्गो महापातकनाशनः ।
 भुक्तिप्रदो मुक्तिदाता जीवन्मुक्तो न संशयः ॥१३॥
 एवं ध्यात्वाऽनन्यचित्तो मद् - वज्रकवचं पठेत् ।
 मामेव पश्यन् सर्वत्र स मया सह सञ्चरेत् ॥१४॥
 दिगम्बरं भस्मसुगन्धलेपनं चक्रं त्रिशूलं डमरुं गदायुधम् ।
 पद्मासनं योगिमुनीन्द्रवन्दितं दत्तेति नामस्मरणेन नित्यम् ॥१५॥

वज्रकवचम्

ॐ दत्तात्रेयः शिरः पातु सहस्राब्जेषु संस्थितः ।

भालं पात्वानसूयेयश्चन्द्रमण्डलमध्यगः ॥१॥

कूर्चं मनोमयः पातु हं क्षं द्विदलपद्मभूः ।
 ज्योतीरूपोऽक्षिणी पातु पातु शब्दात्मकः श्रुती ॥२॥
 नासिकां पातु गन्धात्मा मुखं पातु रसात्मकः ।
 जिह्वां वेदात्मकः पातु दन्तोष्ठौ पातु धार्मिकः ॥३॥
 कपोलावत्रिभूः पातु पात्वशेषं ममात्मवित् ।
 स्वरात्मा षोडशाराब्जस्थितः स्वात्माऽवतादगलम् ॥४॥
 स्कन्धौ चन्द्रानुजः पातु भुजौ पातु कृतादिभूः ।
 जत्रुणी शत्रुजित् पातु पातु वक्षःस्थलं हरिः ॥५॥
 कादि - ठान्त - द्वादशार - पद्मगो मरुदात्मकः ।
 योगीश्वरेश्वरः पातु हृदयं हृदयस्थितः ॥६॥
 पार्श्वे हरिः पार्श्ववर्ती पातु पार्श्वस्थितः स्मृतः ।
 हठयोगादि - योगज्ञः कुक्षी पातु कृपानिधिः ॥७॥
 डकारादि - फकारान्त - दशार - सरसीरुहे ।
 नाभिस्थले वर्तमानो नाभिं वह्नयात्मकोऽवतु ॥८॥
 वह्नितत्त्वमयो योगी रक्षतान्मणिपूरकम् ।
 कटिं कटिस्थ - ब्रह्माण्ड - वासुदेवात्मकोऽवतु ॥९॥
 बकरादि - लकारान्त - षट्पत्राम्बुज - बोधकः ।
 जलतत्त्वमयो योगी स्वाधिष्ठानं ममाऽवतु ॥१०॥
 सिद्धासनसमासीन उरू सिद्धेश्वरोऽवतु ।
 वादि - सान्त - चतुष्पत्र - सरोरुह - निबोधकः ॥११॥
 मूलाधारं महीरूपो रक्षताद्वीर्यनिग्रही ।
 पृष्ठं च सर्वतः पातु जानुन्यस्तकराम्बुजः ॥१२॥
 जङ्घे पात्वधूतेन्द्रः पात्वङ्घ्री तीर्थपावनः ।
 सर्वाङ्गे पातु सर्वात्मा रोमाण्यवतु केशवः ॥१३॥
 चर्म चर्माम्बरः पातु रक्तं भक्तिप्रियोऽवतु ।
 मांसं मांसकरः पातु मज्जां मज्जात्मकोऽवतु ॥१४॥
 अस्थीनि स्थिरधीः पायान्मेधां वेधाः प्रपालयेत् ।
 शुक्रं सुखकरः पातु चित्तं पातु दृढाकृतिः ॥१५॥

मनोबुद्धिमहङ्गारं

हृषीकेशात्मकोऽवतु ।

कर्मेन्द्रियाणि पात्वीशः पातु ज्ञानेन्द्रियाण्यजः ॥१६॥

बन्धून् बन्धूत्तमः पायाच्छत्रुभ्यः पातु शत्रुजित् ।

गृहाराम - धन - क्षेत्र - पुत्रादीच्छङ्करोऽवतु ॥१७॥

भार्या प्रकृतिवित् पातु पश्वादीन् पातु शार्ङ्गभृत् ।

प्राणान् पातु प्रधानज्ञो भक्ष्यादीन् पातु भास्करः ॥१८॥

सुखं चन्द्रात्मकः पातु दुःखात् पातु पुरान्तकः ।

पशून्यपशुपतिः पातु भूतिं भूतेश्वरो मम ॥१९॥

प्राच्यां विषहरः पातु पात्वाग्नेय्यां मखात्मकः ।

याम्यां धर्मात्मकः पातु नैऋत्यां सर्ववैरिहृत् ॥२०॥

वराहः पातु वारुण्यां वायव्यां प्राणदोऽवतु ।

कौबेर्यां धनदः पातु पात्वैशान्यां महागुरुः ॥२१॥

ऊर्ध्वं पातु महासिद्धः पात्वधस्ताज्जटाधरः ।

रक्षाहीनं तु यत्स्थानं रक्षत्वादिमुनीश्वरः ॥२२॥

विनियोगः-अस्य श्रीदत्तात्रेय-मालामन्त्रस्य, श्रीसदाशिवऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीदत्तात्रेयषड्भुजदेवता, श्रीदत्तात्रेयप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

मालामन्त्रः - ॐ नमो भगवते दत्तात्रेयाय स्मरणमात्रसन्तुष्टाय महाभय-
निवारणाय महाज्ञानप्रदाय चिदानन्दात्मने बालोन्मत्त-पिशाचवेषाय महायोगिने
अवधूताय अनुसूयानन्दवर्धनाय अत्रिपुत्राय ॐ भवबन्ध-विमोचनाय ह्रीसर्वभूतिदाय
क्रौञ्च साध्यकर्षणाय ऐवाक्प्रदाय क्लीं जगत्त्रयवशीकरणाय सौः सर्वमनः
क्षोभणाय श्रीमहासम्पत्प्रदाय ग्लौं भूमण्डलाधिपत्यप्रदाय द्रां चिरजीविने
वषट् वशी कुरु कुरु वौषट् आकर्षय आकर्षय हुं विद्वेषय विद्वेषय फट्
उच्चाटय उच्चाटय ठः ठः स्तम्भय स्तम्भय खँ खँ मारय मारय नमः सम्पन्नय
सम्पन्नय स्वाहा पोषय पोषय परयन्त्र-परतन्त्राणि छिन्धि छिन्धि ग्रहान्निवारय
निवारय व्याधिं विनाशय विनाशय दुःखं हर हर दारिद्र्यं विद्रावय विद्रावय
देहं पोषय पोषय चित्तं तोषय तोषय सर्वमन्त्रस्वरूपाय सर्वपल्लवस्वरूपाय
ॐ नमो महासिद्धाय स्वाहा ।

एतन्मे वज्रकवचं

यः पठेच्छृणुयादपि ।

वज्रकायश्चिरञ्जीवी

दत्तात्रेयो

हमब्रुवम् ॥२३॥

त्यागी भोगी महायोगी सुखदुःखविवर्जितः ।
 सर्वत्र सिद्धसङ्कल्पो जीवन्मुक्तोऽथ वर्तते ॥२४॥
 इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे योगी दत्तात्रेयो दिगम्बरः ।
 दलादनोऽपि तज्जपत्वा जीवन्मुक्तः स वर्तते ॥२५॥
 भिल्लो दूरश्रवा नाम तदानीं श्रुतवानिदम् ।
 सकृच्छ्रवणमात्रेण वज्राङ्गोऽभवदप्यसौ ॥२६॥
 इत्येतद्वज्रकवचं दत्तात्रेयस्य योगिनः ।
 श्रुत्वाशेषं शम्भुमुखात् पुनरप्याह पार्वती ॥२७॥

पार्वत्युवाच

एतत्कवचमाहात्म्यं वद विस्तरतो मम ।
 कुत्र केन कदा जाप्यं किं य जाप्यं कथं कथम् ॥२८॥
 उवाच शम्भुस्तत्सर्वं पार्वत्या विनयोदितम् ।

श्री शिव उवाच

शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि समाहितमनाविलम् ॥२९॥
 धर्मा - ऽर्थ - काम - मोक्षाणामिदमेव परायणम् ।
 हस्त्यश्वरथपादाति - सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ॥३०॥
 पुत्र - मित्र - कलत्रादि - सर्वसन्तोषसाधनम् ।
 वेदशास्त्रादिविद्यानां निधानं परमं हि तत् ॥३१॥
 सङ्गीतशास्त्र - साहित्य - सत्कवित्व - विधायकम् ।
 बुद्धि - विद्या - स्मृति - प्रज्ञा - मतिप्रौढिप्रदायकाम् ॥३२॥
 सर्वसन्तोषकरणं सर्वदुःखनिवारणम् ।
 शत्रुसंहारकं शीघ्रं यशः कीर्तिविवर्धनम् ॥३३॥
 अष्टसंख्या महारोगाः सन्निपातास्त्रयोदश ।
 षण्णवत्यक्षिरोगाश्च विंशतिर्मेहरोगकाः ॥३४॥
 अष्टादश तु कुष्ठानि गुल्मान्यष्टविधान्यपि ।
 अशीतिर्वारतरोगाश्च चत्वारिंशत्तु पैत्तिकाः ॥३५॥
 विंशति श्लेष्मरोगाश्च क्षयचातुर्थिकादयः ।
 मन्त्र - यन्त्र - कुयोगाद्याः कल्पतन्त्रादिनिर्मिताः ॥३६॥

ब्रह्मराक्षस - वेताल - कूष्माण्डादि - ग्रहोद्भवाः ।
 सङ्गजा देशकालस्था - स्तापत्रय - समुत्थिताः ॥३७॥
 नवग्रहसमुद्भूता महापातकसम्भवाः ।
 सर्वे रोगाः प्रणश्यन्ति सहस्रावर्तनात् ध्रुवम् ॥३८॥
 अयुतावृत्तिमात्रेण वन्ध्या पुत्रवती भवेत् ।
 अयुतद्वितयावृत्त्या ह्यपमृत्युजयो भवेत् ॥३९॥
 अयुतत्रितायाश्चैव खेचरत्वं प्रजायते ।
 सहस्रादयुतादर्वाक् सर्वकार्याणि साधयेत् ॥४०॥
 लक्ष्यावृत्त्या कार्यसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥४१॥
 विषवृक्षस्य मूलेषु तिष्ठन् वै दक्षिणामुखः ।
 कुरुते मासमात्रेण वैरिणं विकलेन्द्रियम् ॥४२॥
 औदुम्बरतरोर्मूले बुद्धिकामेन जाप्यते ।
 श्रीवृक्षमूले श्रीकामी तित्तिणी शान्तिकर्मणि ॥४३॥
 ओजस्कामोऽश्वत्थमूले स्त्रीकामैः सहकारके ।
 ज्ञानार्थी तुलसीमूले गर्भगेहे सुतार्थिभिः ॥४४॥
 धनार्थीभिस्तु सुक्षेत्रे पशुकामैस्तु गोष्ठके ।
 देवालये सर्वकामैस्तत्काले सर्वदर्शितम् ॥४५॥
 नाभिमात्रजले स्थित्वा भानुमालोक्य यो जपेत् ।
 युद्धे वा शास्त्रवादे वा सहस्रेण जयो भवेत् ॥४६॥
 कण्ठमात्रे जले स्थित्वा यो रात्रौ कवचं पठेत् ।
 ज्वरा - ऽपस्मार - कुष्ठादि - तापज्वरनिवारणम् ॥४७॥
 यत्र यत्स्यात् स्थिरं यद्यत् प्रसक्तं तन्निवर्तते ।
 तेन तत्र हि जप्तव्यं ततः सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥४८॥
 इत्युक्तवान् च शिवो गौर्यै रहस्यं परमं शुभम् ।
 यः पठेत् वज्रकवचं दत्तात्रेयसमो भवेत् ॥४९॥
 एवं शिवेन कथितं हिमवत्सुतायै प्रोक्तं दलादमुनयेऽत्रिसुतेन पूर्वम् ।
 यः कोऽपि वज्रकवचं पठतीह लोके दत्तोपमश्चरति योगिवरश्चिरायुः ॥५०॥

इति श्रीदत्तात्रेयवज्रकवचस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३०८॥

309. दत्तापराधक्षमापनस्तोत्रम्

दत्तात्रेयं त्वां नमामि प्रसीद त्वं सर्वात्मा सर्वकर्ता न वेद ।
 कोऽप्यन्तं ते सर्वदेवाधिदेव ज्ञाताऽज्ञातान्मेऽपराधान् क्षमस्व ॥१॥
 त्वदुद्धवत्वात्त्वदधीनधीत्वात्त्वमेव मे वन्द्य उपास्य आत्मन् ।
 अथापि मौढ्यात् स्मरणं न ते मे कृतं क्षमस्व प्रियकृन्महात्मन् ॥२॥
 भोगापवर्गप्रदमार्तबन्धुं कारुण्यसिन्धुं परिहाय बन्धुम् ।
 हिताय चाऽन्यं परिमार्गयन्ति हा मादृशो नष्टदृशो विमूढाः ॥३॥
 न मत्समो यद्यपि पापकर्ता न त्वत्समोऽथापि हि पापहर्ता ।
 न मत्समोऽन्यो दयनीय आर्य न त्वत्समः क्वापि दयालुवर्यः ॥४॥
 अनाथनाथोऽसि सुदीनबन्धो श्रीशाऽनुकम्पामृतपूर्णसिन्धो ।
 त्वत्पादभक्तिं तव दासदास्यं त्वदीयमन्त्रार्थदृढैकनिष्ठाम् ॥५॥
 गुरुस्मृति निर्मलबुद्धिमाधिव्याधिक्षयं मे विजयं च देहि ।
 इष्टार्थसिद्धिं वरलोकवश्यं धनान्नवृद्धिं वरगोसमृद्धिम् ॥६॥
 पुत्रादिलब्धिं म उदारतां च देहीश मे चास्त्वभयं हि सर्वतः ।
 ब्रह्मा-ऽग्नि-भूम्यो नम ओषधीभ्यो वाचे नमो वाक्पतये च विष्णवे ॥७॥
 शान्ताऽस्तु भूर्नः शिवमन्तरिक्ष द्यौश्चाऽभयं नोऽस्तु दिश शिवाश्च ।
 आपश्च विद्युत्परिपान्तु देवाः शं सर्वतो मेऽभयमस्तु शान्तिः ॥८॥

॥ इति दत्तापराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३०९॥

310. गुरुवरप्रार्थनापञ्चरत्नस्तोत्रम्

यं विज्ञातुं भृगुः स्वं पितरमुपगतः पञ्चवारं यथाव-
 ज्ञानादेवामृताप्तेः सततमनुपमं चिद्विवेकादि लब्ध्वा ।
 तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
 ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥१॥
 यस्मान्नश्यस्य जन्म-स्थिति-विलयमिमे तैत्तिरीयाः पठन्ति
 स्वाविद्यामात्रयोगाद् सुखशयनतले मुख्यतः स्वप्नवच्च ।
 तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
 ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥२॥

या वेदान्तैकलभ्यश्रुतिषु नियमिनस्तैत्तिरीयैश्च काण्वै-
 रन्यैरप्यानिषेकादुदयपरिमितं चारुसंस्कारभाजाम् ।
 तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
 ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥३॥
 यस्मिन्नेवावसन्नाः सकलनिगमवाङ्मौलयः सुप्तपुंसि
 प्रोक्तं तन्नाम यद्वै निजमहिमगत-ध्वान्त-तत्कार्यरूपे ।
 तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
 ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥४॥
 चित्त्वात्सङ्कल्पपूर्वं सृजति जगदिदं योगिवन्मायया यः
 स्वात्मन्येवाद्वितीये परमसुखदृशि स्वप्नवद् भूमि नित्ये ।
 तस्मै तुभ्यं नमः श्रीहरिहरगुरवे सच्चिदानन्दमुक्ता-
 ऽनन्ताद्वैतप्रतीतं न कुरु कितवतां पाहि मां दीनबन्धो ॥५॥
 ॥ इति गुरुवरप्रार्थनापञ्चरत्नस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३१०॥

311. गुर्वष्टकम्

शरीरं सुरुपं तथा वा कलत्रं यशश्चारु चित्रं धनं मेरुतुल्यम् ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥१॥
 कलत्रं धनं पुत्र-पौत्रादि-सर्वं गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम् ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥२॥
 षडङ्गादिवेदो मखे शास्त्रविद्या कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥३॥
 विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः सदाचारवृत्तेषु भक्तो न चाऽन्यः ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥४॥
 क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दैः सदा सेवितं यस्य पादारविन्दम् ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥५॥
 यशो मे गतं दिक्षु दानप्रतापाज्जगद्वस्तु सर्वं करे मत्प्रसादात् ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥६॥

न भोगे न योगे न वा वाजिराजौ न कान्तामुखे नैव वित्तेषु चित्तम् ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥७॥
 अरण्ये न वा स्वस्य गेहे न कार्ये न देहे मनो वर्तते मे त्वनर्घ्ये ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥८॥
 अनर्घ्याणि रत्नानि भुक्तानि सम्यक् समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु ।
 गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥९॥
 गुरोरष्टकं यः पठेत् पुण्यदेही यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही ।
 लभेद् वाञ्छितार्थं पदं ब्रह्मसंज्ञं गुरोरुक्तवाक्ये मनो यस्य लग्नम् ॥१०॥

॥ इति गुरुवरप्रार्थनापञ्चरत्नस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥३११॥

312. गुरुराजस्तवः

सद्गुरुं भज सद्गुरुं भज सद्गुरुं भज बुद्धिमन्
 येन संसृतिपारमेष्ठ्यसि मुक्त इत्यपि गास्यसे ।
 आसुरीं त्यज सम्पदं विपदां पदं मुनिगर्हितां
 तर्हि तां भज सम्पदं मुनिसंस्तुता भगवत्प्रियाम् ॥१॥
 गर्व-पर्वत-मस्तके तव संस्थितिर्न हि शोभते
 पातमेष्ठ्यसि घातकर्मणि युज्यसे न तु पूज्यसे ।
 सात्त्विकं फलमश्नुषे यदि सत्यवृत्तपरायणो
 दनुजसूनुरिवामारद्रुममर्हणं भगवत्पदम् ॥२॥
 दम्भमार्गपरायणं यदि सत्फलाय भवत्यहो
 इल्वलादिकृताऽपि विप्रवरार्चना विषमा कथम् ।
 कष्टमेष्ठ्यसि दुष्टबुद्धिपरायणो यदि चाऽन्तरे
 मुष्ट मुष्ट परं पदं तव दूरतः स्तवकर्मणाम् ॥३॥
 मुक्तताऽपि मुमुक्षुता कपटौघमूलनिकृन्तनी
 नीतिरर्भकता तथा यदि नास्ति जन्म निरर्थकम् ।
 केषु ते गणना भवेद् वद विद्यवेद्यसमान्तरे
 भासुरं जनजन्म कर्म निरर्थकं वरुषे कुतः ॥४॥

साधुचित्तविखण्डनाद् भगवत्प्रियावपि दानवौ
 तत्र साधुविघर्षणादपि राक्षसौ मुनिभक्षकौ ।
 तेन हीनबलावथो नृपनामदूषकराक्षसौ
 कृष्णहिंसन-तत्पराविति कर्मणो गहना गतिः ॥५॥
 ब्रह्मनिष्ठ-विमाननान्निज-सूनुगीतहरेः पदे
 द्वेष आविरभूद्भवग्रहमान्त्रिके निजसेविते ।
 दानवस्य च दानधर्मपरायणस्य च रक्षसः
 शैवधर्मरतस्य मूलविनाशनोऽप्यघनाशने ॥६॥
 जीवतामपहापयच्छिवतां दिशत्यतिकौशलात्
 पूर्ववत् स्थितविश्वमेष तिरष्करोत्यतिलीलया ।
 तं गुरुं भज नम्रमोचनकारकं भवतारकं
 तत्र शात्रवमत्र यच्छात वृक्षतां पितृकानने ॥७॥
 श्रीगुरोः पदपङ्कजं भजता सतां सततं हरिः
 सन्निधाविति सर्वशासनसारमेतदुदीरितम् ।
 तन्महत्त्वमहाम्बुधेरपरं तटं न हि केचन
 प्राप्नुवन्ति परावरज्ञा पण्डिताः सनकादयः ॥८॥
 शब्दमूलमहो गुरुः शिवजीवविश्वभिदास्पदं
 विश्वजीवशिवादिनामत एष एव हि बुध्यते ।
 वाच्यकोटिनिविष्टमेव हि तत्त्रयं कृतपत्रयं
 लक्ष्यभूतवपुगुरुस्तमु जानते न हि केचन ॥९॥
 वृत्त्यनाश्रितचित्स्वरूपक एष एव समः प्रभो
 वृत्तिरूढचिदम्बरं खलु जीव ईश इदं जगत् ।
 जन्म-मृत्यु-नियामकः परमेश्वरः स तु भोगभुग्
 जन्ममृत्यु-निवारकः परमेश्वरादतिरिच्यते ॥१०॥
 ब्रह्मरन्ध्रपदं गुरोर्हृदयं शिवस्य निजास्पदं
 स्थानमेव हि तत्स्वरूप-विनिर्णयाय भवत्फलम् ।
 हृद्यतो विषयान् भजत्यथ नैव किञ्चन रन्ध्रगो
 यच्छति क्रमतः फलं वद मुक्तिदोऽस्त्यनयोऽस्तुकः ॥११॥

तत्त्वस्वरूपविमर्शनं गुरुपादुकामनुसंशितं
 तन्मनुस्तु तदीयपूर्णकृपाभरेण हि लभ्यते ।
 लाभतो गुरुणा सहैक्यविमर्शनं परमं पदं
 तत्र मुक्तिवराङ्गना वृणुते स्वयं निजसम्पदा ॥१२॥
 तत्र यो विमुखो नरो निजघातकीर्तिं निगद्यते
 तस्य सम्मुखतां भजन् परमद्वयं भवति क्षणात् ।
 ऋक्श्रुतिः शतधारमित्यपि नौति तां गुरुपादकां
 कृष्णभिक्षुरिमं स्तवं पदपङ्कजेऽर्पयते गुरोः ॥१३॥
 द्रोणपर्वतवासिने नतशासिने मतिकाशिने
 हारिणे विपदां मुहुर्मम दायिनेऽखिलसम्पदाम् ।
 सच्चिदादिसुखाभिधाय यतीश्वराय सहस्रशः
 सन्त मे नतयो दयोदकसागराय दिने दिने ॥१४॥
 स्तोत्रमेतदभीष्टसिद्धिद-मासुरव्रत-हारकं
 तारकं निजदेशि-केन्द्रपदाब्जयोर्दृढसन्मतेः ।
 यः पठेत् प्रयतः शुचिः सुविचार्य भूरि दिने दिने
 मुच्यते भवपाशपाशित एवमेव मतिर्मम ॥१५॥

॥ इति गुरुराजस्तवः सम्पूर्ण ॥३१२॥

313. दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
 पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं तथा निद्रया ।
 यः साक्षी कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥१॥
 बीजस्यान्तरिवाङ्कुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं पुन-
 र्मायाकल्पित-देशकाल-कलनावैचित्र्य-चित्रीकृतम् ।
 मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥२॥

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकसत्कल्पार्थकं भासते
 साक्षात्तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान्।
 यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥३॥
 नानाछिद्रघटोदर-स्मितमहा-दीपप्रभा-भास्वरं
 ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते।
 जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत् समस्तं जगत्
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥४॥
 देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
 स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमिति भ्रान्ता भृश वादिनः।
 मायाशक्ति-विलासकल्पिमहा-व्यामोहसंहारिणे
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥५॥
 राहुग्रस्त-दिवाकरेन्दु-सदृशो माया-समाच्छादनात्
 सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत् सुषुप्तः पुमान्।
 प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥६॥
 बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्वस्थास्वपि
 व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा।
 स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
 तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥७॥
 विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसम्बन्धतः
 शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः।
 स्वप्ने जाग्रति वा या एष पुरुषो मायापरिभ्रामित-
 स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥८॥
 भूरम्भांस्यनलोऽनिलोम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
 नित्याभाति चराऽचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम्।
 नाऽन्यत् किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात् परस्माद्विभो-
 स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥९॥

सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन् स्तवे
 तेनास्य श्रवणात्तथार्थमननाद्धयानाच्च सङ्कीर्तनात् ।
 सर्वात्मत्व-महाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
 सिद्धयेत् तत् पुनरष्टधा परिणतं चैश्वर्यमव्याहृतम् ॥१०॥
 वटविटपिसमीपे भूमिभागे निषण्णं
 सकल-मुनिजनानां ज्ञानदातारमारात् ।
 त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिदेवं
 जनन-मरण-दुःखच्छेद-दक्षं नमामि ॥११॥
 चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
 गुरोस्तु मौनं व्याख्यान शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ॥१२॥
 ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्तये ।
 निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्तये नमः ॥१३॥
 निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम् ।
 गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्तये नमः ॥१४॥
 मौनव्याख्या-प्रकटित-परब्रह्मतत्त्वं युवानं
 वर्षिष्ठान्ते वसदृषिगणैरावृतं ब्रह्मनिष्ठैः ।
 आचार्येन्द्रं कलकलितरचिन्मुद्रमानन्दरूपं
 स्वात्मारामं मुदितवदनं दक्षिणामूर्तिमीडे ॥१५॥

॥ इति दक्षिणामूर्तिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३१३॥

॥ इति दत्तात्रेयस्तोत्राणि ॥



14. हनुमत्स्तोत्राणि

314. हनुमत्कवचम्

विनियोगः- अस्य श्रीहनुमत्कवचस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः, वीरहनुमान् देवता, अनुष्टुप्-छन्दः, मारुतात्मज इति बीजम् अञ्जनासूनुरिति शक्तिः, श्रीरामकिङ्कर इति कीलकम्, मम सर्वरक्षार्थं श्रीहनुमत्कवचजपं करिष्ये ।

ध्यायेद् बाल-दिवाकर-द्युतिनिभं देवारि-दर्पापहं
देवेन्द्र-प्रमुख-प्रशस्त-यशसं देदीप्यमानं रुचा ।
सुग्रीवादि-समस्त-वानरयुतं सुव्यक्ततत्त्वप्रियं
संरक्तारुण-लोचनं पवनजं पीताम्बरालङ्कृतम् ॥१॥

हनुमान् पूर्वतः पातु दक्षिणे पवनात्मजः ।
पातु प्रतीच्यामक्षघ्नः पातु सागरपारगः ॥२॥
उदीच्यामूर्ध्वगः पातु केसरी प्रियनन्दनः ।
अधस्ताद् विष्णुभक्तस्तु पातु मध्ये तु पावनिः ॥३॥
लङ्काविदाहकः पातु सर्वापद्भयो निरञ्जनः ।
सुग्रीवसचिवः पातु मस्तके वायुनन्दनः ॥४॥
भालं पातु महावीरो भुवोर्मध्ये निरञ्जनः ।
नेत्रे छायापहारी च पातु नः प्लवगेश्वरः ॥५॥
कपोलौ कर्णमूले तु पातु श्रीरामकिङ्करः ।
नासाग्रमञ्जनासूनुः पातु वक्त्रं हरीश्वरः ॥६॥
पातु कण्ठं तु दैत्यारिः स्कन्धौ पातु सुरार्चितः ।
भुजौ पातु महातेजाः करौ तु चरणायुधः ॥७॥
लङ्काविदाहकः पातु पृष्ठदेशे निरन्तरम् ।
नाभिं च रामदूतस्तु कटिं पात्वनिलात्मजः ॥८॥
गुह्यं पातु महाप्राज्ञः सक्थिनी च शिवाप्रियः ।
ऊरू च जानुनी पातु लङ्का-प्रासाद-भञ्जनः ॥९॥

जङ्घे पातु कपिश्रेष्ठो गुल्फौ पातु महाबलः ।
 अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करसन्निभः ॥१०॥
 अङ्गान्यमित-सत्त्वाढ्यः पातु पादाङ्गुलीः सदा ।
 सर्वाङ्गानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवान् ॥११॥
 हनूमत्कवचं यस्तु पठेद् विद्वान् विचक्षणः ।
 स एव पुरुषश्रेष्ठो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥१२॥
 त्रिकालमेककालं वा जपेन् मासत्रयं पुनः ।
 सर्वान् कामानवाप्नोति ऐश्वर्यं जयमाप्नुयात् ॥१३॥
 नाभिमात्रजले स्थित्वा सप्तवारं पठेद् यदि ।
 क्षया-ऽपस्मार-कुष्ठ-तापज्वर-निवारणम् ॥१४॥
 देवालयेऽश्वत्थमूले स्थित्वा पठति यः पुमान् ।
 स पुमान् जयमाप्नोति संग्रामे च स्थलान्तरे ॥१५॥
 यः करे धारयेन्नित्यं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
 लिखित्वा पूजयेद् यस्तु स पुमान् जयमाप्नुयात् ॥१६॥
 शृङ्खलाबन्धने यस्तु इमं जपति मानवः ।
 तत्क्षणान् मुक्तिमाप्नोति कारागहे तथैव च ॥१७॥
 भुर्जपत्रे लिखित्वा तु बध्नीयात् कण्ठदेशतः ।
 सर्वकार्यफलं तेषां सर्वत्र विजयो भवेत् ॥१८॥

॥ इति हनुमत्कवचं समाप्तम् ॥३१४॥

315. श्रीहनुमदष्टकस्तोत्रम्

श्रीरघुराज-पदाब्ज-निकेतन! पङ्कजलोत्तन! मङ्गलराशे!
 चण्डमहाभुज-दण्डसुरारि-विखण्डनपण्डित! पाहि दयालो!
 पातकिनं च समुद्धरं मां महतां हि सतामपि मानमुदारं
 त्वां भजतो मम देहि दयाघन! हे हनुमत्! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥१॥
 संसृतिताप-महानलदग्ध-तनूरुहमर्म-तनोरतिवेलं
 पुत्र-धन-स्वजनात्म-गृहादिषु सक्तमतेरतिकिल्बिषमूर्तेः ।
 केनचिदप्यमलेन पुराकृत-पुण्य-सुपुञ्जलवेन विभो वै
 त्वां भजतो मम देहि दयाघन! हे हनुमत्! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥२॥
 संसृतिकूप-मनल्पमघोरनिदाघ-निदानमजस्रमेषं
 प्राप्य सुदुःख-सहस्रभुजङ्ग-विषैकसमाकुल-सर्वतनोर्मे ।

घोरमहाकृपणापदमेव गतस्य हरे पतितस्य भवाब्धौ
 त्वां भजतो मम देहि दयाघन! हे हनुमत्! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥३॥
 संसृतिसिन्धु-विशाल-कराल-महाबलकाल-झषग्रसनार्तं
 व्यग्र-समग्रधियं कृपणं च महामद-नक्र-सुचक्र-हतासुम्।
 काल-महारसनोर्मि-निपीडितमुद्धर-दीनमनन्यगतिं मां
 त्वां भजतो मम देहि दयाघन! हे हनुमत्! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥४॥
 संसृतिघोर-महागहनेचरतो मणिरञ्जित-पुण्य-सुमूर्तेः
 मन्मथभीकर-घोरमहोग्र-मृगप्रवरार्दित-गात्रसुसन्धेः।
 मत्सरताप-विशेषनिपीडितबाह्यमतेश्च कथञ्चिदमेयं
 त्वां भजतो मम देहि दयाघन! हे हनुमत्! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥५॥
 संसृतिवृक्ष-मनेकशताघ-निदानमनन्त-विकर्मसुशाखं
 दुःखफलं करणादिपताशमनङ्ग-सुपुष्पमचिन्त्य-सुमूलम्।
 तं ह्यधिरुह्य हरे पतितं शरणागतमेव विमोचय मूढं
 त्वां भजतो मम देहि दयाघन! हे हनुमत्! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥६॥
 संसृतिपन्नग-वक्रभयं करदंष्ट्र-महाविषदग्ध-शरीरं
 प्राणविनिर्गम-भीतिसमाकुलमन्धमनाथमतीव विषण्णम्।
 मोहमहाकुहरे पतितं दययोद्धर मामजितेन्द्रियकामं
 त्वां भजतो मम देहि दयाघन! हे हनुमत्! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥७॥
 इन्द्रियनामक-चौरगणैर्हत-तत्त्वविवेक-महाधनराशिं
 संसृतिजाल-निपातितमेव महाबलिभिश्च विखण्डितकायम्।
 त्वत्पदपद्म-मनुत्तममाश्रितमाशु कपीश्वर! पाहि कृपालो!
 त्वां भजतो मम देहि दयाघन! हे हनुमत्! स्वपदाम्बुजदास्यम् ॥८॥
 ब्रह्म-मरुद्गण-रुद्र-महेन्द्र-किरीट-सकोटि-लसत्पदपीठं
 दाशरथिं जपति क्षितिमण्डल एष निधाय सदैव हृदब्जे।
 तस्य हनूमत एव शिवशङ्कर-मष्टकमेतदनिष्टहरं वै
 यं सततं हि पठेत् स नरो लभतेऽच्युत-रामपदाब्ज-निवासम् ॥९॥

॥ इति हनुमदष्टकं सम्पूर्णम् ॥३१५॥

316. हनुमदष्टकम्

वीर! त्वमादित्य रविं तमसा त्रिलोकी
 व्याप्ता भयं तदिह कोऽपि न हर्तुमीशः ।
 देवैः स्तुतस्तमवमुच्य निवारिता भी-
 र्जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥१॥
 भ्रातुर्भयादवसदद्रिवरे कपीशः
 शापान्मुने रघुवरं प्रतिवीक्षमाणः ।
 आनीयं तं त्वमकरोः प्रभुमार्त्तिहीनं
 जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥२॥
 विज्ञापयञ्जनकजा-स्थितिमीशवर्यं
 सीताविमार्गणपरस्य कपेर्गणस्य ।
 प्राणान् ररक्षिथ समुद्रतटस्थितस्य
 जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥३॥
 शोकान्वितां जनकजां कृतवानशोकां
 मुद्रां समर्प्य रघुनन्दननामयुक्ताम् ।
 हत्वा रिपूनरिपुरं हुतवान् कृशानौ
 जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥४॥
 श्रीलक्ष्मण निहतवान् युधि मेघनादो
 द्रोणाचलं त्वमुदपाटय औषधार्थम् ।
 आनीय तं विहितवानसुमन्तमाशु
 जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥५॥
 युद्धे दशास्यविहिते किल नागपाशै-
 र्बद्धां विलोक्य पृतनां मुमुहे खरारिः ।
 आनीय नागभुजमाशु निवारिता भी-
 र्जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥६॥
 भ्रात्रान्वितं रघुवरं त्वहिलोकमेत्य
 देव्यै प्रदातुमनसं त्वहिरावणं त्वाम् ।
 सैन्यान्वितं निहतवाननिलात्मजं द्राक्
 जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥७॥

वीर! त्वया हि वि विहितं सुरसर्वकार्यं
 मत्सङ्कटं किमिह यत्त्वयका न हार्यम्।
 एतद् विचार्य हर सङ्कटमाशु मे त्वं
 जानाति को न भुवि सङ्कटमोचनं त्वाम् ॥८॥
 रक्तवर्णो महाकायो रक्तलाङ्गूलवाञ्छुचिः।
 हनूमान् दुष्टदलनः सदा विजयतेतराम् ॥९॥
 हनुमदष्टकमेतदनुत्तमं सुकवि-भक्त-सुधी-तुलसीकृतम्।
 कपिलदेवबुधाऽनुकृतं तथा सुरगिराऽभयदं सकलार्थदम् ॥१०॥

॥ इति हनुमदष्टकं समाप्तम् ॥३१६॥

317. शत्रुञ्जयहनुमत्स्तोत्रम्

श्रीमन्तं हनुमन्तमार्तरिपुभिद्-भूभृत्तरुभ्राजितं
 चाल्पद्-बालधिबन्धवैरिनिचयं चामीकराद्रिप्रभम्।
 अष्टौ रक्त-पिशङ्ग-नेत्र-नलिनं भूभङ्गमङ्ग-स्फुरत्
 प्रोद्यच्चण्ड-मयूख-मण्डल-मुखं दुःखापहं दुःखिनाम् ॥१॥
 कौपीनं कटिसूत्र-मौञ्ज्यजिनयुग्देहं विदेहात्मजा
 प्राणाधीशपदारविन्दनिरतं स्वान्तं कृतान्तं द्विषाम्।
 ध्यात्वैवं समराङ्गणस्थितमथानीय स्व-हृत्पङ्कजे
 सम्पूज्याऽखिल-पूजनोक्त-विधिना सम्प्रार्थयेत् प्रार्थितम् ॥२॥
 हनुमन्नञ्जनीसूनो! महाबलपराक्रम!
 लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥३॥
 मर्कटाधिप! मार्तण्ड-मणल-ग्रास-कारक!
 लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥४॥
 अक्षयन्नपि पिङ्गाक्ष! क्षितिशोकक्षयङ्कर!
 लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥५॥
 रुद्रावतार! संसारदुःख-भारापहारक!
 लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥६॥

श्रीराम-चरणाम्भोज-मधुपायत-मानस!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥७॥
बालि-कोदरद-क्लान्त-सुग्रीवो		मोचनप्रभो!
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥८॥
सीता-विरह-वारीश-मग्न-सीतेशतारक!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥९॥
रक्षोराज-प्रतापाग्नि-दह्यमान-जगद्धन!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१०॥
ग्रस्ताऽशेष-जगत्-स्वास्थ्य-राक्षसाम्भोधिमन्दर!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥११॥
पुच्छ-गुच्छ-स्फुरद्-भूमि-जगद्-दग्धारिपत्तन!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१२॥
जगन्मनो-दुरुल्लङ्घ्य-पारावारविलङ्घन!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१३॥
स्मृतमात्र-समस्तेष्ट-पूरक!		प्रणतप्रिय!
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१४॥
रात्रिश्चर-चमूराशि-कर्तनैक-विकर्तन!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१५॥
जानकी-जानकीज्यानि	प्रेमपात्र!	परन्तप!
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१६॥
भीमादिक-महावीर-वीरवेशावतारक!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१७॥
वैदेही-विरहक्लान्त-रामरौषेक-विग्रह!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१८॥
वज्राङ्गनख-दंष्ट्रेश!		वज्रिवज्रावगुण्ठन!
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥१९॥
अखर्व-गर्व-गन्धर्व-पर्वतोद्भेदनस्वर!		
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥२०॥
लक्ष्मणप्राण-सन्त्राण-त्राता		तीक्ष्णकरान्वय!
लोलल्लाङ्गूलपातेन	ममाऽरातीन्	निपातय ॥२१॥

रामाधिविप्रयोगार्तं भरताद्यार्तिनाशन!
 लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥२२॥
 द्रोणाचल-समुत्क्षेप-समुत्क्षिप्तारि-वैभव!
 लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥२३॥
 सीताऽऽशीर्वाद-सम्पन्न!समस्तावयवाक्षत!
 लोलल्लाङ्गूलपातेन ममाऽरातीन् निपातय ॥२४॥
 इत्येवमश्वत्थ-तलोपविष्ट-शत्रुञ्जयं नाम पठेत् स्वयं यः।
 स शीघ्रमेवास्त-समस्तशत्रुः प्रमोदते मारुतज-प्रसादात् ॥२५॥
 ॥ इति लाङ्गूलास्त्रशत्रुञ्जयहनुमत्स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३१७॥

318. श्रीसङ्कष्टमोचनस्तोत्रम्

सिन्दूर-पूर-रुचिरो बलवीर्यसिन्धु-बुद्धिप्रभावनिधिरद्भुत-वैभव-श्रीः।
 दीनार्तिदाव-दहनो वरदो वरेण्यः सङ्कष्टमोचनविभुस्तनुतां शुभं नः ॥१॥
 सोत्साह-लङ्घित-महार्णव-पौरुषश्री-लङ्कापुरी-प्रदहन-प्रथितप्रभावः।
 घोराहव-प्रमथितारि-चमू-प्रवीरः प्राभञ्जनिर्जयति मर्कटसार्वभौमः ॥२॥
 द्रोणाचलानयन-वर्णित-भव्यमूर्तिः
 श्रीराम-लक्ष्मण-सहायक-चक्रवर्ती।
 काशीस्थ-दक्षिण-विराजित-सौधमल्लः
 श्रीमारुतिर्विजयते भगवान् महेशः ॥३॥
 नूनं स्मृतोऽपि दयते भजतां कपीन्द्रः
 सम्पूजितो दिशति वाञ्छित-सिद्धिवृद्धिम्।
 सम्मोदकप्रिय उपैति परं प्रहर्षं
 रामायण-श्रवणतः पठतां शरण्यः ॥४॥
 श्रीभारत-प्रवर-युद्धरथोद्धत-श्रीः
 पार्थैक-केतन-कराल-विशालमूर्तिः।
 उच्चैर्धनाघन-घटा-विकटाऽट्टहासः
 श्रीकृष्णपक्षभरणः शरणं ममाऽस्तु ॥५॥
 जङ्घालजङ्घ उपमातिविदूरवेगो
 मुष्टि-प्रहार-परिमूर्च्छित-राक्षसेन्द्रः।
 श्रीरामकीर्तित-पराक्रमणोद्धवश्रीः
 प्राकम्पनिर्विभुरुदञ्चतु भूतये नः ॥६॥

सीतार्ति-दारणपटुः प्रबलः प्रतापी
 श्रीराघवेन्द्र-परिम्भवर-प्रसादः
 वर्णीश्वरः सविधि-शिक्षित-कालनेमिः
 पञ्चाननोऽपनयतां विपदोऽधिदेशम् ॥७॥
 उद्यद्-भानुसहस्र-सन्निभतनुः पीताम्बरालङ्कृतः
 प्रोज्ज्वालानल-दीप्यमान-नयनो निष्पिष्ट-रक्षोगणः ।
 संवर्तोद्यत-वारिदोद्धत-रवः प्रोच्चैर्गदाविभ्रमः
 श्रीमान् मारुतनन्दनः प्रतिदिनं ध्येयो विपद्-भञ्जनः ॥८॥
 रक्षःपिशाचभय-नाशनमामयाधि-
 प्रोच्चैर्ज्वरापहरणं दमनं रिपूणाम् ।
 सम्पत्ति-पुत्रकरणं विजयप्रदानं
 सङ्कष्टमोचनविभोः स्तवनं नराणाम् ॥९॥
 दारिद्र्य-दुःख-दहनं विजयं विवादे
 कल्याण-साधनममङ्गल-वारणं च ।
 दाम्पत्य-दीर्घसुख-सर्वमनोरथासिं
 श्रीमारुतेः स्तवशतावृतिरातनोति ॥१०॥
 स्तोत्रं य एतदनुवासरमस्तकामः
 श्रीमारुतिं समनुचिन्त्य पठेत् सुधीरः ।
 तस्मै प्रसादसुसुखो वरवानरेन्द्रः
 साक्षात्कृतो भवति शाश्वतिकः सहायः ॥११॥
 सङ्कष्टमोचनस्तोत्रं शङ्कराचार्यभिक्षुणा ।
 महेश्वरेण रचितं मारुतेश्वरणेऽर्पितम् ॥१२॥

॥ इति सङ्कष्टमोचनस्तोत्रं समाप्तम् ॥३१८॥

319. हनुमत्स्तुतिः

आज्ञनेयमतिपटलाननं काञ्चनाद्रि-कमनीय-विग्रहम् ।
 पारिजात-तरुमूलवासिनं भावयामि पवमाननन्दनम् ॥१॥
 गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
 रामायण-महामाला-रत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥२॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
 बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत-राक्षसान्तकम् ॥३॥
 अञ्जनीनन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
 कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥४॥
 अतुलित-बलधामं स्वर्ण-शैलाभदेहं दनुजवनकृशानं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
 सकल-गुण-निधानं वानराणामधीशं रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि ॥५॥

॥ इति हनुमत्स्तुतिः समाप्ता ॥३१९॥

320. वीर-विंशतिकाख्यं श्रीहनुमत्स्तोत्रम्

लाङ्गूलमृष्टवियदम्बुधिमध्यमार्गमुत्प्लुत्य यान्तममरेन्द्रमुदो निदानम् ।
 आस्फालितस्वकभुजस्फुटिताद्रिकाण्डं द्राङ्मैथिलीनयनन्दनमद्य वन्दे ॥१॥
 मध्ये निशाचरमहाभयदुर्विषहां घोराद्भुतव्रतमियं यददश्चार ।
 पत्ये तदस्य बहुधापारिणामदूतं सीतापुरस्कृततनुं हनुमन्तमीडे ॥२॥
 यः पादपङ्कजयुगं रघुनाथपत्न्या नैराश्यरूपितविरक्तमपि स्वरागैः ।
 प्रागेव रागि विदधे बहु वन्दमानो वन्देऽञ्जनाजनुषमेष विशेषतुष्ट्यै ॥३॥
 ताञ्जानकीविरहवेदनहेतुभूतान् द्रागाकलय्य सदशोकवनीयवृक्षान् ।
 लङ्कालकानिव घनादुदपाटयद्यस्तं हेमसुन्दरकपिं प्रणमामि पुष्ट्यै ॥४॥
 घोषप्रतिध्वनितशैलगुहासहस्रसम्भ्रान्तनादितवलन्मृगनाथयूथम् ।
 अक्षक्षयक्षणविलक्षितराक्षसेन्द्रिमिन्द्रं कीपन्द्रपृतनावलयस्य वन्दे ॥५॥
 हेलाविलङ्घितमहार्णवमप्यमन्दं घूर्णद्गदाविहतिविक्षतराक्षसेषु ।
 स्वम्मोदवारिधिमपारमिवेक्षमाणं वन्देऽहमक्षयकुमारकमारकेशम् ॥६॥
 जम्भारिजित्प्रसभलम्भितपाशबन्धं ब्रह्मानुरोधमिव तत्क्षणमुद्वहन्तम् ।
 रौद्रावतारमपि रावणदीर्घदृष्टिसङ्कोच कारणमुदारहरिं भजामि ॥७॥
 दर्पोन्नमन्निशिचरेश्वरमूर्धचञ्चत्कोटीरचुम्बिनिजबिम्बमुदीक्ष्य हृष्टम् ।
 पश्यन्तमात्मभुयन्त्रणपिष्यमाणतत्काशयशोणितनिपातमपेक्षि वक्षः ॥८॥
 अक्षयप्रभृत्यमरविक्रमवीरनाशक्रोधादिव द्रुतमदुञ्चितचन्द्रहासाम् ।
 निद्रापिताभ्रघनगर्जनघोरघोषैः संस्तम्भयन्तमभिनौमि दशास्यमूर्तिम् ॥९॥
 आशंस्यमानविजयं रघुनाथधाम शंसन्तमात्मकृतभूरिपराक्रमेण ।
 दौत्ये समागमसमन्वयमादिशन्तं वन्दे हरेः क्षितिभृतः पृतनाप्रधानम् ॥१०॥

यस्यौचिती समुपदिष्टवतोऽधिपुच्छंदम्भान्धितां धियमपेक्ष्य विवर्धमानः ।
 नक्तञ्चराधिपतिरोषहिरण्यरेता लङ्कां दिधक्षुरपतत्तमहं वृणोमि ॥११॥
 क्रन्दन्निशाचरकुलां ज्वलनावलीढैः साक्षाद्गृहैरिव बहिः परिदेवमानाम् ।
 स्तब्धस्वपुच्छतटलग्नकृपीटयोनिदन्दह्यमाननगरीं परिगाहमानाम् ॥१२॥
 मूर्तेर्गृहासुभिरिव द्युपुरं व्रजद्भिव्योमि क्षणं परिगतं पतगैर्ज्वलद्भिः ।
 पीताम्बरं दधतमुच्छ्रितदीप्ति पुच्छं सेनां वहद्विहगराजमिवाहमीडे ॥१३॥
 स्तम्भीभश्चावगुरुबालधिलग्नवह्निज्वालोर्लललद्ध्वजपटामिव देवतुष्ट्यै ।
 वन्दे यथोपरि पुरो दिवि दर्शयन्तमद्यैव रामविजयाजिकवैजयन्तीम् ॥१४॥
 रक्षश्चयैकचितकक्षकपूश्चितौ यः सीताशुचौ निजविलोकनतो मृतायः ।
 दाहं व्यधादिव तदन्यविधेयभूतं लाङ्गूलदत्तदहनेन मुदे दम नोऽस्तु ॥१५॥
 आशुद्धये रघुपतिप्रणयैकसाक्ष्ये वैदेहराजदुहितुः सरिदीश्वराय ।
 न्यासं ददानमिव पावकमापतन्तमब्धौ प्रभञ्जनतनूजनुषं भजामि ॥१६॥
 रक्षास्वतृप्तिरुडशान्तिविशेषशोणमक्षक्षयक्षणविधानुमितात्मदाक्ष्यम् ।
 भास्वत्प्रभातरविभानुभरावभासं लङ्काभयङ्करममुं भगवन्तीमडे ॥१७॥
 तीर्त्वोदधिं जनकजार्पितमाप्य चूडारत्नं रिपोरपि पुरं परमस्य दग्ध्वा ।
 श्रीरामहर्षगलदश्चभिषिच्यमानं तं ब्रह्मचारिवरवानरमाश्रयेऽहम् ॥१८॥
 यः प्राणवायुजनितो गिरिशस्य शान्तः शिष्योऽपि गौतमगुरुर्मुनिशङ्करात्मा ।
 हृद्यो हरस्य हरिवद्धरितां गतोऽपि धीधैर्यशास्त्रविभवेऽतुलमाश्रये तम् ॥१९॥
 स्कन्धेऽधिवाह्य जगदुत्तरगीतिरीत्या यः पार्वतीश्वरमतोषयदाशुतोषम् ।
 तस्मादवाप च वरानपरानवाप्यान् तं वानरं परमवैष्णवमीशमीडे ॥२०॥
 उमापतेः कविपतेः स्तुतिर्बाल्यविजृम्भिता ।
 हनूमतस्तुष्टयेऽस्तु वीरविंशतिकाभिधा ॥२१॥

इति वीरविंशतिकाख्यं श्रीहनूमस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥२२०॥

॥ इति हनुमत्स्तोत्राणि ॥

15. नवग्रहस्तोत्राणि

321. सूर्याष्टकम्

यस्योदयेनाब्जवनं प्रसन्नं प्रीतो भवत्याशु रथाङ्गवर्गः ।
गावो मृगास्सम्मुदिताश्चरन्ति मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥१॥
आशाः समस्ता मुदिता भवन्ति गाढं तमो द्यौर्विजहाति विष्वक् ।
ग्राम्या जनाः कर्मणि संप्रवृत्ताः मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥२॥
स्वाहा-स्वधाकाररवं द्विजेन्द्राः कुर्वन्ति कुत्रापि च वेदपाठम् ।
पान्था मुदा सर्वदिशो व्रजन्ति मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥३॥
देवालये क्वापि नराश्च नार्यः पुष्पादिभिर्देववरं यजन्ति ।
गायन्ति नृत्यन्ति नमन्ति भक्त्या मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥४॥
छात्राः सतीर्थैरथवा वयस्यैः सार्धं हसन्तो निकटं गुरूणाम् ।
गच्छन्ति विद्याध्ययनाय शीघ्रं मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥५॥
शीतार्तदेहा मनुजाः प्रसन्नाः कुर्वन्ति कार्याणि समीहितानि ।
विद्यां यथा प्राप्य विदः प्रसन्ना मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥६॥
येनैहिकामुष्मिक-कार्यजातं देवादिसन्तोषकरं विभाति ।
योऽसौ विवस्वान् सकलार्थदाता मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥७॥
ब्रह्मेश-हर्यादि-समस्तदेवाः श्रुता हि नो चाक्षुषगोचरास्ते ।
साक्षादसौ दृष्टिपुरागतो यो मार्तण्डमाकाशमणिं तमीडे ॥८॥
सूर्याष्टकमिदं पुण्यं ध्यात्वा सूर्यं पठेद्यदि ।
रोगाः सर्वे विनश्यन्ति नूनं सूर्यप्रसादतः ॥९॥

॥ इति श्रीसूर्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥३२१॥

322. सूर्यमङ्गलस्तोत्रम्

भास्वान् काश्यप-गोत्रजो-ऽरुणरुचिर्यः सिंहराशीश्वरः
षट्त्रिंस्थो दश शोभनो गुरु-शशी भौमेषु मित्र सदा ।

शुक्रो मन्दरिपु-कलिङ्गजनितश्चा-ऽग्नीश्वरो देवते
मध्ये वर्तुल-पूर्वदिग्-दिनकरः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥
॥ इति सूर्यमङ्गलस्तोत्रम् ॥३२२॥

323. चन्द्रकवचम्

अस्य श्रीचन्द्रकवचस्तोत्रमन्त्रस्य गौतम-ऋषिः, अनुष्टुप-छन्दः,
श्रीचन्द्रो देवता, चन्द्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

समं चतुर्भुज वन्दे केयूरमुकुटोज्ज्वलम् ।
वासुदेवस्य नयनं शङ्करस्य च भूषणम् ॥१॥
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं शशिनः कवचं शुभम् ।
शशी पातु शिरोदेश भालं पातु कलानिधिः ॥२॥
चक्षुषी चन्द्रमा पातु श्रुती पातु निशापतिः ।
प्राणं क्षपाकरः पातु मुखं कुमुदबान्धवः ॥३॥
पातु कण्ठं च मे सोमः स्कन्धे जैवातृकस्तथा ।
करौ सुधाकरः पातु वक्षः पातु निशाकरः ॥४॥
हृदयं पातु मे चन्द्रो नाभिं शङ्करभूषणः ।
मध्यं पातु सुरश्रेष्ठः कटिं पातु सुधाकरः ॥५॥
ऊरू तारापतिः पातु मृगाङ्गो जानुनी सदा ।
अब्धिजः पातु मे जंघे पातु पादौ विधुः सदा ॥६॥
सर्वाण्यन्यानि चाङ्गानि पातु चन्द्रोऽखिलं वपुः ।
एतद्धि कवचं दिव्यं भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकम् ।
यः पठेच्छृणुयाद् वाऽपि सर्वत्र विजयी भवेत् ॥७॥
॥ इति चन्द्रकवचं सम्पूर्णम् ॥३२३॥

324. चन्द्राष्टाविंशतिनामस्तोत्रम्

अस्य श्रीचन्द्राष्टाविंशतिनामस्तोत्रस्य गौतम ऋषिः, सोमोदेवता, विराट्
छन्दः, चन्द्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

चन्द्रस्य शृणु नामानि शुभदानि महीपते ।
यानि श्रुत्वा नरो दुःखान् मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥१॥
सुधाकरश्च सोमश्च ग्लौरजः कुमुदप्रियः ।
लोकप्रियः शुभ्रभानुश्चन्द्रमा रोहिणीपतिः ॥२॥

शशी हिमकरो राजा द्विजराजो निशाकरः ।
 आत्रेय इन्दुः शीतांशुरोषधीशः कलानिधिः ॥३॥
 जैवातृको रमाभ्राता क्षीरोदार्णवसम्भवः ।
 नक्षत्रनायकः शम्भुशिरश्चूडामणिर्विभुः ॥४॥
 तापहर्ता नभोदीपो नामान्येतानि यः पठेत् ।
 प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तस्तस्य पीडा विनश्यति ॥५॥
 तद्दिने च पठेद्यस्तु लभेत् सर्वं समीहितम् ।
 ग्रहादीनां च सर्वेषां भवेच्चन्द्रबलं सदा ॥६॥
 ॥ इति श्रीचन्द्राष्टाविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३२४॥

325. चन्द्रमङ्गलस्तोत्रम्

चन्द्रः कर्कटकप्रभुः सितनिभश्चात्रेय-गोत्रोद्भव-
 श्चाग्रे यश्चतुरस्र-वारुणमुखश्चापोऽप्युमाधीश्वरः ।
 षट् सप्तानि दशैक-शोभनफल-शौरिः प्रियोऽर्को गुरुः
 स्वामी यामुनदेशजो हिमकरः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥
 ॥ इति चन्द्रमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥३२५॥

326. मङ्गलकवचम्

अस्य श्रीअङ्गारक-कवचस्तोत्रमन्त्रस्य कश्यप-ऋषिः, अनुष्टुप्-
 छन्दः, अङ्गारको देवता, भौमप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।
 रक्ताम्बरो रक्तवपुः किरीटी चतुर्भुजो मेषगमो गदाभृत् ।
 धरासुतः शक्तिधरश्च शूली सदा मम स्याद् वरदः प्रशान्तः ॥१॥
 अङ्गारकः शिरो रक्षेन् मुखं वै धरणीसुतः ।
 श्रवौ रक्ताम्बरः पातु नेत्रं मे रक्तलोचनः ॥२॥
 नासां शक्तिधरः पातु मुखं मे रक्तलोचनः ।
 भुजौ मे रक्तमाली च हस्तौ शक्तिधरस्तथा ॥३॥
 वक्षः पातु वराङ्गश्च हृदयं पातु रोहितः ।
 कटिं मे ग्रहराजश्च मुखं चैव धरासुतः ॥४॥
 जानुजङ्घे कुजः पातु पादौ भक्तप्रियः सदा ।
 सर्वाण्यन्यानि चाङ्गानि रक्षेन्मे मेषवाहनः ॥५॥

य इदं कवचं दिव्यं सर्वशत्रुनिवारणम् ।
 भूत-प्रेत-पिशाचानां नाशनं सर्वसिद्धिदम् ॥६॥
 सर्वरोगहरं चैव सर्वसम्पत्प्रदं शुभम् ।
 भुक्ति-मुक्तिप्रदं नृणां सर्व-सौभाग्य-वर्धनम् ।
 रोगबन्धविमोक्षं च सत्यमेतन्न संशयः ॥७॥

॥ इति मङ्गलकवचं सम्पूर्णम् ॥३२६॥

327. ऋणमोचनमङ्गलस्तोत्रम्

मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः ।
 स्थिरासनो महाकायः सर्वकर्मावरोधकः ॥१॥
 तो लोहिताक्षश्च सामगानां कृपाकरः ।
 धरात्मजः कुजो भौमो भूतिदो भूमिनन्दनः ॥२॥
 अङ्गारको यमश्चैव सर्वरोगापहारकः ।
 वृष्टे कर्ताऽपहर्ता च सर्वकामफलप्रदः ॥३॥
 एतानि कुजनामानि नित्यं यः श्रद्धया पठेत् ।
 ऋणं न जायते तस्य धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥४॥
 धरणी-गर्भसम्भूतं विद्युत्कान्ति-समप्रभम् ।
 कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥५॥
 स्तोत्रमङ्गारकस्यैतत् पठनीयं सदा नृभिः ।
 न तेषां भौमजा पीडा स्वल्पाऽपि भवति क्वचित् ॥६॥
 अङ्गारक महाभाग भगवन् भक्तवत्सल !
 त्वां नमामि ममाऽशेषमृणमाशु विनाशय ॥७॥
 ऋण-रोगादि-दारिद्र्यं य चाऽन्ये ह्यपमृत्यवः ।
 भय-क्लेश-मनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥८॥
 अतिवक्र दुराराध्य भोगमुक्तजितात्मनः ।
 तुष्टो ददासि साम्राज्यं रुष्टो हरसि तत्क्षणात् ॥९॥
 विरिञ्चि-शक्र-विष्णूनां मनुष्याणां तु का कथा ।
 तेन त्वं सर्वसत्त्वेन ग्रहराजो महाबलः ॥१०॥

पुत्रान् देहि धनं देहि त्वामस्मि शरणं गतः ।
 ऋण दारिद्र्य-दुःखेन शत्रूणां च भयात्ततः ॥११॥
 एभिर्द्वादशभिः श्लोकैर्य स्तौति च धरासुतम् ।
 महतीं श्रियमाप्नोति ह्यपरो धनदो युवा ॥१२॥

॥ इति ऋणमोचनमङ्गलस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३२७॥

328. अङ्गारकस्तोत्रम्

अस्य श्री-अङ्गारकस्तोत्रस्य विरूपाङ्गिरस ऋषिः, अग्निदेवता गायत्री
 छन्दः, भौमप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

अङ्गारकः शक्तिधरो लोहिताङ्गो धरासुतः ।
 कुमारो मङ्गलो भौमो महाकायो धनप्रदः ॥१॥
 ऋणहर्ता दृष्टिकर्ता रोगकृद्रोगनाशनः ।
 विद्युत्प्रभो व्रणकरः कामदो धनहृत् कुजः ॥२॥
 सामगानप्रियो रक्तवस्त्रो रक्तायतेक्षणः ।
 लोहितो रक्तवर्णश्च सर्वकर्मावबोधकः ॥३॥
 रक्तमाल्यधरो हेमकुण्डली ग्रहनायकः ।
 नामान्येतानि भौमस्य यः पठेत् सततं नरः ॥४॥
 ऋणं तस्य च दौर्भाग्यं दारिद्र्यं च विनश्यति ।
 धनं प्राप्नोति विपुलं स्त्रियं चैव मनोरमाम् ॥५॥
 वंशोद्योतकरं पुत्रं लभते नाऽत्र संशयः ।
 योऽर्चयेदह्नि भौमस्य मङ्गलं बहुपुष्पकैः ॥६॥
 सर्वा नश्यति पीडा च तस्य ग्रहकृता ध्रुवम् ॥७॥

॥ इति अङ्गारकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३२८॥

329. भौममङ्गलस्तोत्रम्

भौमो दक्षिणदिक्-त्रिकोण-यमदिग्-विघ्नेश्वरो रक्तभः
 स्वामी वृश्चिक-मेषयोः सुरगुरुश्चाऽर्कः शशी सौहृदः ।
 ज्योऽरिः षट्त्रिफलप्रदश्च वसुधा स्कन्दौ क्रमाद् देवते
 भारद्वाजकुलोद्भवः क्षितिसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

॥ इति भौममङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥३२९॥

330. बुधकवचम्

अस्य श्रीबुधकवचस्तोत्रमन्त्रस्य कश्यप-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, बुधो देवता, बुधप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

बुधस्तु पुस्तकधरः कुङ्कुमस्य समद्युतिः ।
 पीताम्बरधरः पातु पीतमाल्यानुलेपनः ॥१॥
 कटिं च पातु मे सौम्यः शिरोदेशं बुधस्तथा ।
 नेत्रे ज्ञानमयः पातु श्रोत्रे पातु निशाप्रियः ॥२॥
 घ्राणं गन्धप्रियः पातु जिह्वां विद्याप्रदो मम ।
 कण्ठं पातु विधोः पुत्रो भुजौ पुस्तकभूषणः ॥३॥
 वक्षः पातु वराङ्गश्च हृदयं रोहिणीसुतः ।
 नाभिं पातु सुराराध्यो मध्यं पातु खगेश्वरः ॥४॥
 जानुनी रोहिणेयश्च पातु जङ्घेऽखिलप्रदः ।
 पादौ मे बोधनः पातु पातु सौम्योऽखिलं वपुः ॥५॥
 एतद्धि कवचं दिव्यं सर्वपापप्रणासनम् ।
 सर्वरोगप्रशमनं सर्वदुःख-निवारणम् ॥६॥
 आयुरारोग्यशुभदं पुत्र-पौत्र-प्रवर्धनम् ।
 यः पठेच्छृणुयाद् वाऽपि सर्वत्र विजयी भवेत् ॥७॥

॥ इति बुधकवचं सम्पूर्णम् ॥३३०॥

331. बुधपञ्चविंशतिनामस्तोत्रम्

अस्य श्रीबुधपञ्चविंशतिनामस्तोत्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः, त्रिष्टुप्-छन्दः, बुधो देवता, बुधप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

बुधो बुद्धमतां श्रेष्ठो बुद्धिदाता धनप्रदः ।
 प्रियङ्गु-कलिकाश्यामः कञ्जनेत्रो मनोहरः ॥१॥
 ग्रहोपमो रौहिणयो नक्षत्रेशो दयाकरः ।
 विरुद्धकार्यहन्ता च सौम्यो बुद्धिविवर्धनः ॥२॥
 चन्द्रात्मजो विष्णुरूपी ज्ञानी ज्ञो ज्ञानिनायकः ।
 ग्रहपीडाहरो दार-पुत्र-धान्य-पशुप्रदः ॥३॥

लोकप्रियः सौम्यमूर्तिर्गुणदो गुणिवत्सलः ।
 पञ्चविंशतिनामानि बुधस्यैतानि यः पठेत् ॥४॥
 स्मृत्वा बुधः सदा तस्य पीडा सर्वा विनश्यति ।
 तद्दिने वा पठेद्यस्तु लभते स मनोगतम् ॥५॥

॥ इति बुधपञ्चविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३३१॥

332. बुधमङ्गलस्तोत्रम्

सौम्योदङ्मुख-पीतवर्ण-मगधश्चात्रेय-गोत्रोद्भवो
 बाणेशानदिशः सुहृच्छनिभृगुः शत्रु सदा शीतगुः ।
 कन्या युग्मपतिर्दशाष्ट-चतुरः षड्नेत्रकः शोभनो
 विष्णुः पौरुषदेवते शशिसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

॥ इति बुधमङ्गलस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३३२॥

333. बृहस्पतिकवचम्

अस्य श्रीबृहस्पतिकवचस्तोत्रमन्त्रस्य ईश्वर-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः,
 गुरुदेवता, गं बीजं, श्रीशक्तिः, क्लीं कीलकं, गुरुप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

अभीष्टफलदं देवं सर्वज्ञं सुरपूजितम् ।
 अक्षमालाधरं शान्तं प्रणमामि बृहस्पतिम् ॥१॥
 बृहस्पतिः शिरः पातु ललाटं पातु मे गुरुः ।
 कर्णौ सुरगुरुः पातु नेत्रे मेऽभीष्टदायकः ॥२॥
 जिह्वां पातु सुराचार्यो नासां मे वेदपारगः ।
 मुखं मे पातु सर्वज्ञो कण्ठं मे देवतागुरुः ॥३॥
 भुजावाङ्गिरसः पातु करौ पातु शुभप्रदः ।
 स्तनौ मे पातु वागीशः कुक्षिं मे शुभलक्षणः ॥४॥
 नाभिं देवगुरुः पातु मध्यं पातु सुखप्रदः ।
 कटिं पातु जगद्वन्द्य ऊरू मे पातु वाक्पतिः ॥५॥
 जानुजङ्घे सुराचार्यो पादौ विश्वात्मकस्तथा ।
 अन्यानि यानि चाङ्गानि रक्षन्मे सर्वतो गुरुः ॥६॥

इत्येतत् कवचं दिव्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥७॥

॥ इति बृहस्पतिकवचं सम्पूर्णम् ॥३३३॥

334. बृहस्पतिस्तोत्रम्

अस्य श्रीबृहस्पतिस्तोत्रस्य गृत्समद-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः,
बृहस्पतिर्देवता, बृहस्पतिप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

गुरुर्बृहस्पतिर्जीवः सुराचार्यो विदाम्बरः ।
वागीशो धिषणो दीर्घश्मश्रुः पीताम्बरो युवा ॥१॥
सुधादृष्टिर्ग्रहाधीशो ग्रहपीडापहारकः ।
दयाकरः सौम्यमूर्तिः सुरार्च्यः कुङ्कुमलद्युतिः ॥२॥
लोकपूज्यो लोकगुरुर्नीतिज्ञो नीतिकारकः ।
तारापतिश्चाङ्गिरसो वेदवैद्यपितामहः ॥३॥
भक्त्या बृहस्पतिं स्मृत्वा नामान्येतानि यः पठेत् ।
अरोगी बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् स भवेन्नरः ॥४॥
जीवेद् वर्षशतं मर्त्यो पापं नश्यति नश्यति ।
यः पूजयेद् गुरुदिने पीतगन्धाक्षताम्बरैः ॥५॥
पुष्पदीपोपहारैश्च पूजयित्वा बृहस्पतिम् ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पीडा शान्तिर्भवेद् गुरोः ॥६॥

॥ इति बृहस्पतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३३४॥

335. बृहस्पतिमङ्गलस्तोत्रम्

जीवश्चाङ्गिर-गोत्रजोत्तरमुखो दीर्घोत्तरा संस्थितः
पीतोऽश्वत्थ-समिद्ध-सिन्धुजनितश्चापोऽथ मीनाधिपः ।
सूर्येन्दु-क्षितिज-प्रियो बुध-सितौ शत्रूसमाश्वापरे
सप्ताङ्गद्विभवः शुभः सुरगुरुः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

॥ इति बृहस्पतिमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥३३५॥

336. शुक्रकवचम्

मृणाल-कुन्देन्दु-पयोज-सुप्रभं पीताम्बरं प्रसृतमक्षमालिनम् ।
 समस्तशास्त्रार्थविधिं महान्तं ध्यायेत् कविं वाञ्छितमर्थसिद्धये ॥१॥
 शिरो मे भार्गवः पातु भालं पातु ग्रहाधिपः ।
 नेत्रे दैत्यगुरुः पातु श्रोत्रे मे चन्दनद्युतिः ॥२॥
 पातु मे नासिकां काव्यो वदनं दैत्यवन्दितः ।
 वचनं चोशनाः पातु कण्ठं श्रीकण्ठभक्तिमान् ॥३॥
 भुजौ तेजोनिधिः पातु कुक्षिं पातु मनोव्रजः ।
 नाभिं भृगुसुतः पातु मध्यं पातु महीप्रियः ॥४॥
 कटिं मे पातु विश्वात्मा ऊरू मे सुरपूजितः ।
 जानुं जाड्यहरः पातु जङ्घे ज्ञानवतां वरः ॥५॥
 गल्फौ गुणनिधिः पातु पातु पादौ वराम्बरः ।
 सर्वाण्यङ्गानि मे पातु स्वर्णमालापरिष्कृतः ॥६॥
 य इदं कवचं दिव्यं पठति श्रद्धयान्वितः ।
 न तस्य जायते पीडा भार्गवस्य प्रसादतः ॥७॥

॥ इति शुक्रकवचं सम्पूर्णम् ॥३३६॥

337. शुक्रस्तवराजः

अस्य श्रीशुक्रस्तवराजस्य प्रजापतिर्ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, शुक्रो
 देवता, शुक्रप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

नमस्ते भार्गवश्रेष्ठ दैत्य-दानव-पूजित ।
 वृष्टिरोधप्रकर्त्रे च वृष्टिकर्त्रे नमो नमः ॥१॥
 देवयानिपितस्तुभ्यं वेदवेदाङ्गपारग ।
 परेण तपसा शुद्धः शङ्करो लोकसुन्दरः ॥२॥
 प्राप्तो विद्यां जीवनाख्यां तस्मै शुक्रात्मने नमः ।
 नमस्तस्मै भगवते भृगुपुत्राय वेधसे ॥३॥
 तारामण्डलमध्यस्थ स्वभासासिताम्बर ।
 यस्योदये जगत्सर्वं मङ्गलार्हं भवेदिह ॥४॥

अस्तं यस्ते ह्यरिष्टं स्यात्तस्मै मङ्गलरूपिणे ।
 त्रिपुरावासिनो दैत्यान् शिवबाणप्रपीडितान् ॥५॥
 विद्ययाऽजीवयच्छुक्रो नमस्ते भृगुनन्दन ।
 ययातिगुरवे तुभ्यं नमस्ते कविनन्दन ॥६॥
 बलिराज्यप्रदो जीवस्तस्मै जीवात्मने नमः ।
 भार्गवाय नमस्तुभ्यं पूर्वगीर्वाणवन्दित ॥७॥
 जीवपुत्राय यो विद्यां प्रादात्तस्मै नमो नमः ।
 नमः शुक्राय काव्याय भृगुपुत्राय धीमहि ॥८॥
 नमः कारणरूपाय नमस्ते कारणात्मने ।
 स्तवराजमिमं पुण्यं भार्गवस्य महात्मनः ॥९॥
 यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि लभते वाञ्छितं फलम् ।
 पुत्रकामो लभेत् पुत्रान् श्रीकामो लभते श्रियम् ॥१०॥
 राज्यकामो लभेद्राज्यं स्त्रीकामः स्त्रियमुत्तमाम् ।
 भृगुवारे प्रयत्नेन पठितव्यं समाहितैः ॥११॥
 अन्यवारे तु होरायां पूजयेद् भृगुनन्दनम् ।
 रोगार्तो मुच्यते रोगाद् भयार्तो मुच्यते भयात् ॥१२॥
 यद्यत् प्रार्थयते जन्तुस्तत्तत् प्राप्नोति सर्वदा ।
 प्रातःकाले प्रकर्तव्या भृगुपूजा प्रयत्नतः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नुयाच्छिवसन्निधिम् ॥१३॥

॥ इति शुक्रस्तवराजः सम्पूर्णः ॥३३७॥

338. शुक्रमङ्गलस्तोत्रम्

शुक्रो भार्गवगोत्रजः सितनिभः प्राचीमुखः पूर्वदिक्
 पञ्चाङ्गो वृषभस्तुलाधिप-महाराष्ट्राधिपोदुम्बरः ।
 इन्द्राणी मघवानुभौ बुध-शनी मित्रार्क-चन्द्रौ रिपू
 षष्ठो द्विर्दश-वर्जितो भृगुसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

॥ इति शुक्रमङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥३३८॥

339. शनिवज्रपञ्चकवचम्

नीलाम्बरो नीलवपुः कीरीटी गृधस्थितस्त्रासकरो धनुष्मान् ।
चतुर्भुजः सूर्यसुतः प्रसन्नः सदा मम स्याद् वरदः प्रशान्तः ॥१॥

ब्रह्मा उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शनिपीडाहरं महत् ।
कवचं शनिराजस्य सौरेरिदमुत्तमम् ॥२॥
कवचं देवतावासं वज्रपञ्जरसंज्ञकम् ।
शनैश्चरप्रीतिकरं सर्वसौभाग्यदायकम् ॥३॥
ॐ श्रीशनैश्चरः पातु भालं मे सूर्यनन्दनः ।
नेत्रे छायात्मजः पातु पातु कर्णौ यमानुजः ॥४॥
नासां वैवस्वतः पातु मुखं मे भास्करः सदा ।
स्निग्धकण्ठश्च मे कण्ठं भुजौ पातु महाभुजः ॥५॥
स्कन्धौ पातु शनिश्चैव करौ पातु शुभप्रदः ।
वक्षः पातु यमभ्राता कुक्षिं पात्वसितस्तथा ॥६॥
नाभिं ग्रहपतिः पातु मन्दः पातु कटिं तथा ।
ऊरू ममाऽन्तकः पातु यमो जानुयुगं तथा ॥७॥
पदौ मन्दगतिः पातु सर्वाङ्गं पातु पिप्पलः ।
अङ्गोपाङ्गानि सर्वाणि रक्षेन् मे सूर्यनन्दनः ॥८॥
इत्येतत् कवचं दिव्यं पठेत् सूर्यसुतस्य यः ।
न तस्य जायते पीडा प्रीतो भवति सूर्यजः ॥९॥
व्यय-जन्म-द्वितीयस्थो मृत्युस्थानगतोऽपि वा ।
कलत्रस्थो गतो वाऽपि सुप्रीतस्तु सदा शनिः ॥१०॥
अष्टमस्थे सूर्यसुते व्यये जन्मद्वितीयगे ।
कवचं पठते नित्यं न पीडा जायते क्वचित् ॥११॥
इत्येतत् कवचं दिव्यं सौरेर्यन्निर्मितं पुरा ।
द्वादशा-ऽष्टम-जन्मस्थ-दोषान्नाशयते सदा ।
जन्मलग्नस्थितान् दोषान् सर्वान्नाशयते प्रभुः ॥१२॥

॥ इति शनिवज्रपञ्जर-कवचं सम्पूर्णम् ॥३३९॥

340. शनैश्वरस्तोत्रम्

दशरथ उवाच

कोणोऽन्तको रौद्र-यमोऽथ बभ्रुः कृष्णः शनिः पिङ्गलमन्दसौरिः ।
 नित्यं स्मृतो यो हरते य पीडां तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥१॥
 सुराऽसुराः किंपुरुषोरगेन्द्रा गन्धर्व-विद्याधर-पन्नगाश्च ।
 पीडयन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥२॥
 नरा नरेन्द्राः पशवो मृगेन्द्रा वन्याश्च ये कीट-पतङ्गभृङ्गाः ।
 पीडयन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥३॥
 देशाश्च दुर्गाणि वनानि यत्र सेनानिवेशाः पुरपत्तनानि ।
 पीडयन्ति सर्वे विषमस्थितेन तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥४॥
 तिलैर्यवैर्माणगुडान्नदानैर्लोहेन नीलाम्बरदानतो वा ।
 प्रीणाति मन्त्रैर्निजवासरे च तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥५॥
 प्रयागकूले यमुनातटे च सरस्वतीपुण्डजले गुहायाम् ।
 यो योगिनां ध्यानगताऽपि सूक्ष्मस्तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥६॥
 अन्यप्रदेशात् स्वगृहं प्रविष्टस्तदीयवारे स नरः सुखी स्यात् ।
 गृहाद्गतो यो न पुनः प्रयाति तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥७॥
 स्रष्टा स्वयम्भूर्भुवनत्रयस्य त्राता हरीशो हरते पिनाकी ।
 एकस्त्रिधा ऋग्यजुःसाममूर्तिस्तस्मै नमः श्रीरविनन्दनाय ॥८॥
 शन्यष्टकं यः प्रयतः प्रभाते नित्यं सुपुत्रैः पशुबान्धवैश्च ।
 पठेत्तु सौख्यं भुवि भोगयुक्तः प्राप्नोति निर्वाणपदं तदन्ते ॥९॥
 कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः ।
 सौरिः शनैश्वरो मन्दः पिप्लादेन संस्तुतः ॥१०॥
 एतानि दश नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
 शनैश्वरकृता पीडा न कदाचिद् भविष्यति ॥११॥

॥ इति शनैश्वरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३४०॥

341. शनिमङ्गलस्तोत्रम्

मन्दः कृष्णनिभस्तु पश्चिममुखः सौराष्ट्रकः काश्यपः
 स्वामी नक्रभ-कुम्भयोर्बुध-सितौ मित्रे समश्चाऽङ्गिराः ।
 स्थानं पश्चिमदिक् प्रजापति-यमौ देवौ धनुष्यासनः
 षट्त्रिस्थः शुभकृच्छनी रविसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥
 ॥ इति शनिमङ्गलस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥३४१॥

342. राहुकवचम्

प्रणमामि सदा राहुं शूर्पाकारं किरीटिनम् ।
 सैहिकेयं करालास्यं लोकानामभयप्रदम् ॥१॥
 नीलाम्बरः शिरः पातु ललाटे लोकवन्दितः ।
 चक्षुषी पातु मे राहुः श्रोत्रे त्वर्धं शरीरवान् ॥२॥
 नासिकां मे धूम्रवर्णः शूलपाणिर्मुखं मम ।
 जिह्वां मे सिंहिकासूनुः कण्ठं मे कठिनाङ्घ्रिकः ॥३॥
 भुजङ्गेशो भुजौ पातु नीलमाल्याम्बरः करौ ।
 पातु वक्षःस्थलं मन्त्री पातु कुक्षिं विंधुन्तुदः ॥४॥
 कटिं मे विकटः पातु ऊरू मे सुरपूजितः ।
 स्वर्भानुर्जानुनी पातु जङ्घे मे पातु जाड्यहा ॥५॥
 गुल्फौ ग्रहपतिः पातु पादौ मे भीषणाकृतिः ।
 सर्वाण्यङ्गानि मे पातु नीलचन्दनभूषणः ॥६॥
 राहोरिदं कवचमृद्धिदवस्तुदं यो
 भक्त्या पठत्यनुदिनं नियतः शुचिः सन् ।
 प्राप्नोति कीर्तिमतुलां श्रियमृद्धिमायु-
 रारोग्यमात्मविजयं च हि तत्प्रसादात् ॥७॥
 ॥ इति राहुकवचं सम्पूर्णम् ॥३४२॥

343. राहुस्तोत्रम्

राहुर्दानवमन्त्री च सिंहिकाचित्तनन्दनः ।
 अर्धकायः सदा कोधी चन्द्रादित्यविमर्दनः ॥१॥

रौद्रो रुद्रप्रियो दैत्यः स्वभानुभानुभीतिदः ।
 ग्रहराजः सुधापायी राकातिथ्यभिलाषुकः ॥२॥
 कालदृष्टिः कालरूपः श्रीकण्ठहृदयाश्रयः ।
 विधुन्तुदः सैहिकेयो घोररूपो महाबलः ॥३॥
 ग्रहपीडाकरो दंष्ट्री रक्तनेत्रो महोदरः ।
 पञ्चविंशतिनामानि स्मृत्वा राहुं सदा नरः ॥४॥
 यः पठेन्महती पीडा तस्य नश्यति केवलम् ।
 आरोग्यं पुत्रमतुलां श्रियं धान्यं पशुस्तथा ॥५॥
 ददाति राहुस्तस्मै यः पठते स्तोत्रमुत्तमम् ।
 सततं पठते यस्तु जीवेद् वर्षशतं नरः ॥६॥

॥ इति राहुस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३४३॥

344. राहुमङ्गलस्तोत्रम्

राहुः सिंहलदेशजश्च निऋतिः कृष्णाङ्गशूर्पासनो
 यः पैठीनसि गोत्रसम्भवसमिद् दूर्वामुखो दक्षिणः ।
 यः सर्पाद्यधिदैवते च निऋतिः प्रत्याधिदेवः सदा
 षट्त्रिस्थः शुभकृच्च सिंहिकसुतः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

॥ इति राहुमङ्गलस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥३४४॥

345. केतुकवचम्

केतुं करालवदनं चित्रवर्मं किरीटिनम् ।
 प्रणमामि सदा केतुं ध्वजाकारं ग्रहेश्वरम् ॥१॥
 चित्रवर्णः शिरः पातु भालं धूम्रसमद्युतिः ।
 पातु नेत्रे पिङ्गलाक्षः श्रुती मे रक्तलोचनः ॥२॥
 घ्राणं पातु सुवर्णाभश्चिबुकं सिंहिकासुतः ।
 पातु कण्ठं च मे केतुः स्कन्धौ पातु ग्रहाधिपः ॥३॥
 हस्तौ पातु सुरश्रेष्ठः कुक्षिं पातु महाग्रहः ।
 सिंहासनः पातु मध्यं पातु महासुरः ॥४॥

ऊरू पातु महाशीर्षो जानुनी मेऽतिकोपनः ।
 पातु पादौ च मे क्रूरः सर्वाङ्गं नरपिङ्गलः ॥५॥
 य इदं कवचं दिव्यं सर्वरोगविनाशनम् ।
 सर्वशत्रुविनाशं च धारणाद् विजयौ भवेत् ॥६॥

॥ इति केतुकवचं सम्पूर्णम् ॥३४५॥

346. केतुपञ्चविंशतिनामस्तोत्रम्

केतुः कालः कलयिता धूम्रकेतुर्विवर्णकः ।
 लोककेतुर्महाकेतुः सर्वकेतुर्भयप्रदः ॥१॥
 रौद्रो रुद्रप्रियो रुद्रः क्रूरकर्मा सुगन्धधृक् ।
 पलाश-धूम-सङ्काशश्चित्र-यज्ञोपवीतधृक् ॥२॥
 तारागणविमर्दी च जैमिनेयो ग्रहाधिपः ।
 पञ्चविंशतिनामानि केतोर्यः सततं पठेत् ॥३॥
 तस्य नश्यति बाधा च सर्वकेतुप्रसादतः ।
 धन-धान्य-पशूनां च भवेद् वृद्धिर्न संशयः ॥४॥

॥ इति केतुपञ्चविंशतिनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३४६॥

347. केतुमङ्गलस्तोत्रम्

केतुर्जैमिनिगोत्रजः कुशसमृद् वायव्यकोणे स्थित-
 श्चित्राङ्गध्वज-लाञ्छनो हिमगुहो यो दक्षिणाशामुखः ।
 ब्रह्मा चैव सचित्र-चित्रसहितः प्रत्याधिदेवः सदा
 षट्त्रिस्थः शुभकृच्च बर्बरपतिः कुर्यात् सदा मङ्गलम् ॥

348. नवग्रहस्तोत्रम्

जपा-कुसुम-सङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
 तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥१॥
 दधि-शङ्ख-तुषाराभं क्षीरोदारण्व-सम्भवम् ।
 नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम् ॥२॥

धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्तिसमप्रभम् ।
 कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥३॥
 प्रियङ्गु-कलिकाश्यामं रूपेणाऽप्रतिमं बुधम् ।
 सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम् ॥४॥
 देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसन्निभम् ।
 बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम् ॥५॥
 हिमकुन्द-मृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम् ।
 सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम् ॥६॥
 नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम् ।
 छायामार्तण्डसम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम् ॥७॥
 अर्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम् ।
 सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम् ॥८॥
 पलाश-पुष्प-सङ्काशं तारकाग्रहमस्तकम् ।
 रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ॥९॥
 इति व्यासमुखोद्गीतं यः पठेत् सुसमाहितः ।
 दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्नशान्तिर्भविष्यति ॥१०॥
 नर-नारी-नृपाणां च भवेत् दुःस्वप्ननाशनम् ।
 ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्धनम् ॥११॥
 ग्रहनक्षत्रजाः पीडास्तस्करा-ऽग्नि-समुद्भवाः ।
 ताः सर्वाः प्रशमं यान्ति व्यासो ब्रूते न संशयः ॥१२॥

॥ इति नवग्रहस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३४८॥

349. नवग्रहपीडाहरस्तोत्रम्

ग्रहाणामादिरादित्यो लोकरक्षणकारकः ।
 विषमस्थानसम्भूतां पीडां हरतु मे रविः ॥१॥
 रोहिणीशः सुधामूर्तिः सुधामात्रः सुधाशनः ।
 विषमस्थानसम्भूतां पीडां हरतु मे विधुः ॥२॥

भूमिपुत्रो महातेजा जगतां भयकृत् सदा ।
 वृष्टिकृद् वृष्टिहर्ता च पीडां हरतु मे कुजः ॥३॥
 उत्पातरूपो जगतां चन्द्रपुत्रो महाद्युतिः ।
 सूर्यप्रियकरो विद्वान् पीडां हरतु मे बुधः ॥४॥
 देवमन्त्री विशालाक्षः सदां लोकहिते रतः ।
 अनेकशिष्यसम्पूर्णः पीडां हरतु मे गुरुः ॥५॥
 दैत्यमन्त्री गुरुस्तेषां प्राणदश्च महामतिः ।
 प्रभुस्ताराग्रहाणां च पीडां हरतु मे भृगुः ॥६॥
 सूर्यपुत्रो दीर्घदेहो विशालाक्षः शिवप्रियः ।
 मन्दचारः प्रसन्नात्मा पीडां हरतु मे शनिः ॥७॥
 महाशिरो महावक्त्रो दीर्घदंष्ट्रो महाबलः ।
 अतनुश्चोर्ध्वकेशश्च पीडां हरतु मे शिखा ॥८॥
 अनेकरूपवर्णेश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
 उत्पातरूपो जगतां पीडां हरतु मे तमः ॥९॥

॥ इति नवग्रहपीडाहरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३४९॥

350. एकश्लोकी-नवग्रहस्तोत्रम्

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
 गुरुश्च शुक्रः शनि-राहु-केतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

॥ इत्येकश्लोकी-नवग्रहस्तोत्रं समाप्तम् ॥३५०॥

॥ इति नवग्रहस्तोत्राणि ॥

16. वेदान्तस्तोत्राणि

351. वेदान्तस्तोत्रम्

श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गताः ।
मुक्तिर्नैज-सुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं
ह्यक्षादि-त्रितयं प्रमाणमखिलाऽऽम्नायैकवेद्यो हरिः ॥

352. निर्वाणदशकम्

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुर्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः ।
अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥१॥
न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणा ध्यानयोगादयोऽपि ।
अनात्माश्रयोऽहं ममाध्यासहीनात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥२॥
न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति ।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥३॥
न शाङ्ख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा ।
विशिष्टाऽनुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥४॥
न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं न पीनं न कुब्जं न ह्रस्वं न दीर्घम् ।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥५॥
न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा ।
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां तुरीयं तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥६॥
न शास्ता न शास्त्रं न शिक्षा न शिष्यो न च त्वं न चाऽहं न चाऽयं प्रपञ्चः ।
स्वरूपावबोधाद् विकल्पासहिष्णुस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥७॥
न चोर्ध्वं न चाऽधो न चान्तर्न बाह्यं न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वापरा दिक् ।
वियद्वयापकत्वादखण्डैकरूपस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥८॥

अपि व्यापकत्वादितत्त्वात् प्रयोगात् स्वतः सिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् ।
 जगत्तुच्छमेतत् समस्तं तदन्नस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥९॥
 न चैकं तदन्यद् द्वितीयं कुत स्यान्न चाऽकेवलत्वं न वा केवलत्वात् ।
 न शून्यं न चाऽशून्यमद्वैतकत्वात् कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥१०॥
 ॥ इति निर्वाणदशकं सम्पूर्णम् ॥३५२॥

353. निर्वाणषट्कम्

नमो बुद्ध्यहङ्कारचितानि नाऽहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे ।
 न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥१॥
 न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायुर्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः ।
 न वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥२॥
 न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
 न धर्मो न चाऽर्थो न कामो न मोक्षश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥३॥
 न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।
 अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥४॥
 न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता च जन्म ।
 न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥५॥
 अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो विधुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
 न चासङ्गतं नैव मुक्तिर्न मेयश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥६॥

॥ इति निर्वाणषट्कं सम्पूर्णम् ॥३५३॥

354. कैवल्याष्टकम्

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मङ्गलेभ्योऽपि मङ्गलम् ।
 पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम् ॥१॥
 आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मायामयं जगत् ।
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥२॥
 स गुरुः स पिता चाऽपि सा माता बान्धवोऽपि सः ।
 शिक्षयेच्चेत् सदा स्मर्तुं हरेर्नामैव केवलम् ॥३॥
 निःश्वासे न हि विश्वासः कदा रुद्धो भविष्यति ।
 कीर्तनीयमतो गल्याद्धरेर्नामैव केवलम् ॥४॥

हरिः सदा वसेतत्र यत्र भागवता जनाः ।
 गायन्ति भक्तिभावेन हरेर्नामैव केवलम् ॥५॥
 अहो दुःखं महादुःखं दुखाद् दुःखतरं यतः ।
 का चाऽर्थं विस्मृतं रत्नं हरेर्नामैव केवलम् ॥६॥
 दीयतां दीयतां कर्णो नीयतां नीयतां वचः ।
 गीयतां गीयतां नित्यं हरेर्नामैव केवलम् ॥७॥
 तृणीकृत्य जगत्सर्वं राजते सकलोपरि ।
 चिदानन्दमयं शुद्धं हरेर्नामैव केवलम् ॥८॥

॥ इति श्रीकेवल्यष्टकं सम्पूर्णम् ॥३५४॥

355. साधनपञ्चकम्

वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म स्वनुष्ठीयतां
 तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिरस्त्यज्यताम् ।
 पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसन्धीयता-
 मात्मेच्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥१॥
 सङ्गः सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढाधीयतां
 शान्त्यादिः परिचीयतां दृढतरं कर्माणि सन्त्यज्यताम् ।
 सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रतिदिनं तत्पादुके सेव्यतां
 ब्रह्मैकाक्षरमथ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं समाकर्ण्यताम् ॥२॥
 वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरः पक्षः समाश्रीयतां
 दुस्तर्कात् सुविरम्यतां श्रुतिमत्स्तर्कोऽनुसन्धीयताम् ।
 ब्रह्मैवाऽस्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां
 देहेऽहं मतिरुज्झ्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम् ॥३॥
 क्षुब्ध्यादिश्च चिकित्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौषधं भुज्यतां
 स्वाद्वन्नं न तु याच्यतां विधिवशात् प्राप्तेन सन्तुष्यताम् ।
 शीतोष्णादि विषह्यतां न तु वृथा वाक्यं समुच्चार्यता-
 मौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपा-नैष्ठुर्यं मुत्सृज्यताम् ॥४॥
 एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समाधीयतां
 पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्वाधितं दृश्यताम् ।
 प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चित्तबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां
 प्रारब्धं त्विह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्थीयताम् ॥५॥

यः श्लोकपञ्चकमिदं पठते मनुष्यः सञ्चिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य ।
तस्याऽऽशु संसृति-दवानलतीव्रघोर-तापः प्रशान्तिमुपयाति चित्तिप्रसादात् ॥

॥ इति साधनपञ्चकं सम्पूर्णम् ॥३५५॥

356. आत्मपञ्चकम्

नाऽहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गं नाऽहंकारः प्राणवर्गो न बुद्धिः ।
दारापत्यक्षेत्रवित्तादिदूरः साक्षी नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम् ॥१॥
रज्ज्वज्ञानाद् भाति रज्जुर्यथाऽहिः स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः ।
आप्तोक्त्याहिं भ्रान्तिनाशे स रज्जुर्जीवो नाऽहंदेशिकोक्त्याशिवोऽहम् ॥२॥
आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्यज्ञानानन्दरूपं विमोहात् ।
निद्रामोहात् स्वप्नवत्तत्र सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम् ॥३॥
मत्तो नाऽन्यत् किञ्चिदत्राऽस्ति विश्वं सत्यं बाह्यं वस्तु मायोपक्लृप्तम् ।
आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं मय्यद्वैते भाति तस्माच्छिवोऽहम् ॥४॥
नाऽहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो देहस्योक्ताः प्राकृता सर्वधर्माः ।
कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहंकारस्यैवं ह्यात्मनो मे शिवोऽहम् ॥५॥
नाऽहं जातो जन्ममृत्यु कुतो मे नाऽहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाऽहं चित्तं शोकमोहौ कुतो मे नाऽहं कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो मे ॥६॥

॥ इति आत्मपञ्चकम् सम्पूर्णम् ॥३५६॥

357. कौपीनपञ्चकम्

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्ते भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः ।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥१॥
मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः पाणिद्वये भोक्तुममत्रयन्तः ।
कन्थामपि स्त्रीमिव कुत्सयन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥२॥
देहाभिमानं परिहृत्य दूरादात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः ।
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥३॥
स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः स्वशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः ।
नाऽन्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥४॥

पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः पति पशूनां हृदि भावयन्तः ।
भिक्षाशना दिक्षु परिभ्रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥५॥

॥ इति कौपीनपञ्चकस्तोत्र सम्पूर्णम् ॥३५७॥

358. धन्याष्टकम्

तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् ।
ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति ॥१॥
आदौ विजित्य विषयान् मदमोह-राग-द्वेषादि-शत्रुगणमाहृतयोगराज्याः ।
ज्ञात्वाऽमृतं समनुभूय परात्मविद्याः कान्तासुखा बत गृहे विचरन्ति धन्याः ॥२॥
त्यक्त्वा गृहे रतिमतो गतिहेतुभूतामात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिबन्तः ।
वीतस्पृहा विषयभोगपदे विरक्ता धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः ॥३॥
त्यक्त्वा ममाऽहमिति बन्धकरे पदे द्वे मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च ।
कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि धन्याः ॥४॥
त्यक्त्वेषणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गां भैक्ष्यामृतेन परिकल्पित-देहयात्राः ।
ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं धन्या द्विजा रहसि ह्यद्यवलोकयन्ति ॥५॥
नासन्न सन्न सदसन्न महन्न चाणु न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेकबीजम् ।
यैर्बह्व तत्समनुपासितमेकचित्ता धन्या विरेजुरितरे भवपाशबद्धाः ॥६॥
अज्ञातपङ्कपरिमग्नमपेतसारं दुःखालयं मरण-जन्म-जरावसक्तम् ।
संसारबन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या ज्ञानासिना तदवशीर्य विनिश्चयन्ति ॥७॥
शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावैरेकत्वनिश्चितमनोभिरपेतमोहैः ।
साकं वनेषु विजितात्मपदस्वरूप शास्त्रेषु सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः ॥८॥
अहिमिव जनयोगं सर्वदा वर्जयेद्दयः कुणपमिव सुनारी त्यक्तकामो विरागी ।
विषमिव विषयान्यो मन्यमानो दुरन्तान् जयति परमहंसे मुक्तिभावं समेति ॥९॥

सम्पूर्णजगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमां

गाङ्गं वारिसमस्तवारिनिवहः पुण्या समस्ताः क्रियाः ।

वाचः प्राकृतसंस्कृता श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी

सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि ॥१०॥

॥ इति धन्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥३५८॥

359. मनीषापञ्चकम्

सत्याचार्यस्य गमने कदाचिन्मुक्तिदायकम् ।
 काशीक्षेत्रं प्रति सह गौर्या मार्गे तु शङ्करम् ॥१॥
 अन्त्यवेषधरं दृष्ट्वा गच्छ गच्छति चाऽब्रवीत् ।
 शङ्करः सोऽपि चाण्डालस्तं पुनः प्राह शङ्करम् ॥२॥
 अन्नमयादन्नमयमथवा चैतन्यमेव चैतन्यात् ।
 द्विजवर दूरीकर्तुं वाञ्छसि किं ब्रूहि गच्छ गच्छेति ॥३॥
 किं गङ्गाम्बुनि बिम्बितेऽम्बरमणौ चाण्डालवाटीपयः
 पूरे चान्तरमस्ति काञ्चनघटीसत्कुम्भयोर्बाम्बरे ।
 प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरङ्ग-सहजानन्दावबोधाम्बुधौ
 विप्रोऽयं श्वपचोऽयमित्यपि महान् कोऽयं विभेदभ्रमः ॥४॥
 जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते
 या ब्रह्मादि-पिपीलिकान्ततनुषु प्रीता जगत्साक्षिणी ।
 सैवाऽहं न च दृश्यवस्त्विति दृढप्रज्ञापि यस्यास्ति चे-
 च्चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥५॥
 ब्रह्मैवाऽहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रविस्तारितं
 सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाऽशेषं मया कल्पितम् ।
 इत्थं यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले
 चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥६॥
 शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरो-
 र्नित्यं ब्रह्म निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना ।
 भूतं भावि च दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके
 प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरित्येषा मनीषा मम ॥७॥
 या तिर्यङ् नरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा गूहते
 यद्भासा हृदयाक्षदेहविषयां भान्ति स्वतोऽचेतनाः ।
 तां भास्यै पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन्
 योगो निर्वृत्त-मानसो हि गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥८॥

यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत इमे शक्रादयो निर्वृता
 यश्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा मुनिर्निर्वृतः ।
 यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्मविद्
 यः कश्चित् स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम ॥९॥

॥ इति मनीषापञ्चकम् सम्पूर्णम् ॥३५९॥

360. विज्ञाननौका

तपो-यज्ञ-दानादिभिः शुद्धबुद्धिर्विरक्तो नृपादौ पदे तुच्छबुद्ध्या ।
 परित्यज्य सर्वं ययाऽऽप्नोति तत्त्वं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥१॥
 दयालुं गुणं ब्रह्मनिष्ठं प्रशान्तं समाराध्य मर्त्या विचार्य स्वरूपम् ।
 यदाप्नोति तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान् परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥२॥
 यदानन्दरूपं प्रकाशस्वरूपं निरस्तप्रपञ्चं परिच्छेदशून्यम् ।
 अहं ब्रह्मवृत्त्यैकगम्यं तुरीयं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥३॥
 यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधे ।
 मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥४॥
 निषेधे कृते नेति नेतीति वाक्यैः समाधिस्थितानां यदा भाति पूर्णम् ।
 अवस्थात्रयातीतमेकं तुरीयं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥५॥
 यदानन्दलेशैः समानन्ति विश्वं यदा भाति सत्त्वे तदा भाति सर्वम् ।
 यदालोचने रूपमन्यत् समस्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥६॥
 अनन्तं विभुं सर्वयोनिर्निरीहं शिवं सङ्गहीनं यदोङ्कारगम्यम् ।
 निराकारमृत्यूज्वलं मृत्युहीनं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥७॥
 यदानन्दसिन्धौ निमग्नः पुमान् स्यादविद्याविलासः समस्तप्रपञ्चः ।
 यदा न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥८॥
 स्वरूपानुसन्धानरूपां स्मृतिं यः पठेदादराद्भक्तिभावो मनुष्यः ।
 शृणोतीह वा नित्यमुद्युक्तचित्तो भवेद् विष्णुरत्रैव वेदप्रमाणात् ॥९॥
 विज्ञाननावं परिगृह्य कश्चित्तरेद्यदज्ञानमयं भवाब्धिम् ।
 ज्ञानासिना यो हि विच्छिद्य तृष्णां विष्णोः पदं याति स एव धन्यः ॥१०॥

॥ इति विज्ञाननौका सम्पूर्णा ॥३६०॥

361. द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम्

गूढजहीहि धनागमतृष्णां कुरु सदबुद्धिं मनसि वितृष्णाम् ।
 यल्लभते निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥१॥
 अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम् ।
 पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा विहिता नीतिः ॥२॥
 का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः ।
 कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय यदिदं भ्रातः ॥३॥
 मा कुरु जन-धन-यौवनगर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम् ।
 मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं प्रविश विदित्वा ॥४॥
 कामं क्रोधं मोहं लोभं त्यक्त्वाऽऽत्मानं भावय कोऽहम् ।
 आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनिगूढाः ॥५॥
 सुरमन्दिर-तरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं वासः ।
 सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः ॥६॥
 शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं विग्रहसन्धौ ।
 भव समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥७॥
 त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः ।
 सर्वस्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदाज्ञानम् ॥८॥
 प्राणायामं प्रत्याहारं नित्याऽनित्यविवेकविचारम् ।
 जाप्यसमेत-समाधिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम् ॥९॥
 नलिनीदलगतसलिलं तरलं तद्गुञ्जीवितमतिशयचपलम् ।
 विद्धि व्याध्यभिमानग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥१०॥
 का तेषादशदेशे चिन्तावातुल तव किं नास्ति नियन्ता ।
 यस्त्वां हस्ते सुदृढनिबद्धं बोधयति प्रभवादिविरुद्धम् ॥११॥
 गुरुचरणाम्बुज-निर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः ।
 सेन्द्रियमानस-नियमादेवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ॥१२॥
 द्वादशपञ्जरिकामय एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः ।
 येषां चित्ते नैव विवेकस्ते पच्यन्ते नरकमनेकम् ॥१३॥

॥ इति द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रम् समाप्तम् ॥३६१॥

362. न्यासदशकम्

अहं मद्रक्षणभरो मद्रक्षणफलं तथा ।
 न मम श्रीपतरेरेवेत्यात्मानं निक्षिपेद् बुधः ॥१॥
 न्यस्याम्यकिञ्चनः श्रीमन्ननुकूलोऽन्यवर्जितः ।
 विश्वासप्रार्थनापूर्वमात्मरक्षाभरं त्वयि ॥२॥
 स्वामी स्वशेषं स्ववशं स्वभरत्वेन निर्भरम् ।
 स्वदत्तस्वधिया स्वार्थं स्वस्मिन्त्यस्यति मां स्वयम् ॥३॥
 श्रीमन्नभीष्टवरद त्वामस्मि शरणं गतः ।
 एतद्देहावसाने मां त्वत्पादं प्रापय स्वयम् ॥४॥
 त्वच्छेषत्वे स्थिरधियं त्वत्प्राप्तयेकप्रयोजनम् ।
 निषिद्धकाम्यरहितं कुरु मां नित्यकिङ्करम् ॥५॥
 देवीभूषणहेत्यादिजुष्टस्य भगवंस्तव ।
 नित्यं निरपराधेषु कैङ्कर्येषु नियुङ्क्ष्व माम् ॥६॥
 मां मदीयं च निखिलं चेतनाचेतनात्मकम् ।
 स्वकैङ्कर्योपकरणं वरद स्वीकुरु स्वयम् ॥७॥
 त्वमेव रक्षकोऽसि मे त्वमेव करुणाकरः ।
 न प्रवर्तय पापानि प्रवृत्तानि निवारय ॥८॥
 अकृत्यानां च करणं कृत्यानां वर्जनं च मे ।
 क्षमस्व निखिलं देव प्रणतार्तिहर प्रभो ॥९॥
 श्रीमन्नियतपञ्चाङ्गं मद्रक्षणभरार्पणम् ।
 अचीकरत् स्वयं स्वस्मिन्नतोऽहमिह निर्भरः ॥१०॥

इति न्यासदशकं सम्पूर्णम् ॥३६२॥

363. चपटपञ्जरिकास्तोत्रम्

दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
 कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१॥
 प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे ।
 अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिबुकसमर्पितजानुः ।
 करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥२॥

यावद्वित्तोपार्जनसक्तस्तावन्नजपरिवारो रक्तः ।
 पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्ता पृच्छति कोऽपि न गेहे ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥३॥
 जटिलो मुण्डी लुञ्जितकेशः काषायाम्बर-बहुकृतवेषः ।
 पश्यन्नपि च न पश्यति मूढ उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥४॥
 भगवद्गीता किञ्चिदधीता गङ्गाजल-लव-कणिका पीता ।
 सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चा ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥५॥
 अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
 वृद्धौ याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥६॥
 बालस्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः ।
 वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः परमे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥७॥
 पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
 इह संसारे खलु दुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥८॥
 पुनरपि रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः ।
 पुनरप्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥९॥
 वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ।
 नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१०॥
 नारीस्तनभर-नाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम् ।
 एतन् मांसवसादिविकारं मनसि विचारय बारम्बारम् ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥११॥
 कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को मे तातः ।
 इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१२॥

गेयं गीतानामसहस्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्रम् ।
 नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१३॥
 यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं तावत् पृच्छसि गेहे ।
 गतवति वायौ देहापाये भार्या बिभ्यति तस्मिन्काये ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१४॥
 सुखतः क्रियते रामाभोगः पश्चाद्भन्त शरीरे रोगः ।
 यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न मुञ्चति पापाचरणम् ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१५॥
 रथ्याचर्पट-विरचितकन्धः पुण्याऽपुण्य-विवर्जित-पन्थः ।
 नाऽहं न त्वं नाऽयं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१६॥
 कुरुते गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् ।
 ज्ञानविहीनः सर्वमतेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन ।
 भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते (ध्रुवपदम्) ॥१७॥

॥ इति चर्पटपञ्जारिकास्तोत्रम् ॥३६३॥

364. परा-पूजा

पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चासनम् ।
 स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ॥१॥
 निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च ।
 निरालम्बस्योपवीतं पुष्पं निर्वासनस्य च ॥२॥
 निर्लेपस्य कुतो गन्धो रम्यस्याभरणं कुतः ।
 नित्यतृप्तस्य नैवेद्यस्ताम्बूलं च कुतो विभोः ॥३॥
 प्रदक्षिणं ह्यनन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः ।
 वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते ॥४॥
 स्वयं प्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः ।
 अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्भासनं भवेत् ॥५॥
 एवमेव परा-पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
 एकबुद्ध्या तु देवेश! विधेया ब्रह्मवित्तमैः ॥६॥

॥ इति परा-पूजा समाप्ता ॥३६४॥

365. शयनस्तोत्रम्

आस्तीर्य सर्वत इदं परमात्मरूपं प्रावार्य सर्वत इदं परमात्मरूपम् ।
 शेते सुखेन निजलाभविनिर्वृतात्मा श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥१॥
 सम्पूर्णवैदिकविधानसुतोषितेशो गार्हस्थ्यभोगविधिदोषविवेकभूमिः ।
 त्यक्तेषणो विगतमानमदादि शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥२॥
 मायामयत्वमखिलेषु सदात्मकत्वं निर्णय वेदवचनाद् गुरुवाक्यतोऽपि ।
 त्यक्तक्रियोऽहिरिव दिष्टभुगेव शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥३॥
 धृत्वा वपुर्गुरुवरस्य निधाय पूर्ण बोधं हृदि क्नु गतं निजकर्म पूर्वम् ।
 गच्छत्वनेन किमिति स्वसुखेन शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥४॥
 स्वजो गुरुर्निजसुखोन्नतिबोधहेतुरीशोऽपि भाति निजरूपतयैव नित्यम् ।
 नेहेति वेदवचनानि निषिद्य शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥५॥
 सङ्गाद्भयं परिमृशन् जपताविरुद्धं कर्माचरन् विततजङ्गलकोणकेषु ।
 शून्यालये कलशकारगृहेऽपि शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥६॥
 त्रैलोक्यराज्यमथवा कमलासनस्य विष्णोः शिवस्य विभवं च तृणाय मत्वा
 कौपीनमप्यधिकमित्यहह प्रशेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥७॥
 आत्मानुसन्धिगलिताखिलवासनो यो विस्मृत्य विश्वमखिलं सशरीरमेतत् ।
 खादन् हसन् भ्रमणमाकलयश्च शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥८॥
 बाहूपधानविनिषण्णशिराः शिलायां मञ्चे तटे द्युसरितो रविचन्द्रदीपे ।
 आलिङ्गितस्वधिषणावनतिस्तु श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥९॥
 चिन्मुद्रयाऽल्पकरसूचितचित्तवृत्तिः स्थित्या स्वया प्रकटयन्नधिकारिवर्गे ।
 ब्राह्मी स्थितिं बहुलपुण्यचयेन शेते श्रीदेशिकेन्द्रकरुणालयदृष्टिदृष्टः ॥१०॥
 द्रोणाचले स्वकृतपुण्यमयेन केन भाग्योदयेन गुरुणा निजबोधदाने ।
 संदत्तचिन्मयसुखावचनीयनिद्रा कृष्णो मुनिः स्वपिति देशिकदृष्टिदृष्टः ॥११॥
 इदं हि जनुषः फलं जननमृत्युविच्छेदकृत्
 स्वकीयसुखचिद्धने यदिह लब्धविश्रान्तिता ।
 ततोऽपि च महत्फलं यदधिकारिवर्गे निजां
 दधात्यतुलसंविदं तत इदं गुरोराश्रयः ॥१२॥

॥ इति शयनस्तोत्रं समाप्तम् ॥३६५॥

366. भ्रष्टाष्टकम्

विश्वं सत्यं मनुते तनुते कर्माणि लोकसंसिद्धयै ।
 वाचा मथ्या जगदिति जल्पति नो वेत्ति यो महाभ्रष्टः ॥१॥
 ब्रह्मैवेदं जल्पति दोषाऽदोषोत्तमाधमान् पश्यन् ।
 नग्नो भूत्वा विचरस्यवधूतत्वं प्रदर्शय भ्रष्टः ॥२॥
 कृत्याऽकृत्यमशेषं त्यक्तुमशक्तं श्रुतेरगोचरताम् ।
 आत्मनि जल्पन् हास्यास्पदतामित्येष मानवो भ्रष्टः ॥३॥
 पाशाष्टक-सङ्कट-श्लिष्टतनुर्मृष्टभोजन-प्रीतः ।
 शिष्टोऽहं मन्वानः कष्टमहो दुष्टमानवो भ्रष्टः ॥४॥
 आत्मैवेदं जल्पँल्लोकोक्तीरसहमानमेधावी ।
 स्तुतिवाक्यानि श्रोतुं धावंस्तुष्टो न किं भवेद् भ्रष्टः ॥५॥
 यस्मिन् स्वस्य च निष्ठा तद्धर्मिष्ठा न शिष्टगणनायाम् ।
 कुर्वन् कर्म हतोऽयं यद्यपि शिष्टो न किं भवेद् भ्रष्टः ॥६॥
 कर्तृत्वं भोक्तृत्वं मन्वानः स्वात्मनि प्रभौ शम्भौ ।
 रोदिति हा किं कृतमिति किं वा भोक्तव्यमित्यसौ भ्रष्टः ॥७॥
 चिन्मात्रं स्वात्मनं देहं मन्वान एजते यमतः ।
 सर्वात्मानं बुद्ध्वा ब्रह्माऽपि स्यादहो किल भ्रष्टः ॥८॥
 भ्रष्टाष्टकमेतद् यत्प्रविचारयतीह मानवो धन्यः ।
 मान्यः स्याल्लोकेषु भ्रष्टत्वं वेत्ति निजचारित्रात् ॥९॥

॥ इति भ्रष्टाष्टकं समाप्तम् ॥३६६॥

367. शिष्टस्तोत्रम्

भज विश्रान्तिं त्यज रे भ्रान्तिं निश्चिनु शैवं निजरूपम् ।
 हेयादेयातीतं सच्चित्सुखरूपस्त्वं भव शिष्टः ॥१॥
 दृश्यमशेषं त्वत्तोऽभिन्नं मा भैषीः किल भूमानम् ।
 विद्ध्यात्मानं वेदनरूपं वेदशिरःस्थ भव शिष्टः ॥२॥
 तृणवत् त्यज धन-वनिता-पुत्रान् लोकं शोकं भेदभवम् ।
 इदमहमित्थं कलनां हित्वा पूर्णानन्दो भव शिष्टः ॥३॥

कृत्वाऽकृत्ये त्यज रे दूरे विधिगोचरतां माऽगास्त्वम् ।
 मानागोचररूपं ज्ञात्वा किं त्वं कर्ता भव शिष्टः ॥४॥
 लोकविलक्षणचरितो भूया लोकातीतं पदमिच्छन् ।
 पावय सकलां पृथिवीमेनामात्मारामो भव शिष्टः ॥५॥
 निन्दास्तोत्रे मानाऽमानौ समदृष्टेस्ते किं कुरुताम् ।
 कुरुतां लोकः कामं स्वेष्टं का ते हानिर्भव शिष्टः ॥६॥
 शैवः शाक्तो गणपतिभक्तो वैष्णवसौराविति नाना ।
 अज्ञात्वाऽयं जातो लोके स त्वं शम्भुर्भव शिष्टः ॥७॥
 जलबुद्बुदवज्जगदिदमखिलं पश्यन्नात्मनि तिष्ठ त्वम् ।
 को वा मोहः शोकः को वा द्वैतदृशस्तव भव शिष्टः ॥८॥
 अजपामन्त्रं देशिकवचनाल्लब्ध्वा देवं स्वात्मानम् ।
 ज्ञात्वा सहजावस्थायां बस भावातीतो भव शिष्टः ॥९॥
 शिष्टस्तोत्र ब्रह्मिष्ठानां तुष्टिकर स्यादिति कलये ।
 उक्तावस्था सर्वेषां स्याद् गुरुकृपया किल बुद्धिमताम् ॥१०॥

॥ इति शिष्टस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३६७॥

368. कामनापञ्चकम्

योऽत्रावतीर्य शकलीकृतदैत्यकीर्तियोऽयं च भूसुरवरार्चित-रम्यमूर्तिः ।
 तद्दर्शनोत्सुकधियां कृततृप्तिपूर्तिः सीतापतिर्जयति भूपति चक्रवर्ती ॥१॥
 ब्राह्मी मृतेत्यविदुषामपलापमेतत् सोढुं न चाऽर्हति मनो मम निःसहायम् ।
 वाञ्छाम्यनुप्लवमतो भवतः सकाशाच्छ्रुत्वा तवैव करुणार्णवनामराम ॥२॥
 देशद्विषोऽभिभवितुं किल राष्ट्रभाषा श्रीभारतेऽमरगिरं विहितुं खरारे ।
 याचामहेऽनवरतं दृढसंघशक्तिं नूनं त्वया रघुवरेण समर्पणीया ॥३॥
 त्वद्भक्तिभावितहृदां दुरितं द्रुतिं वै दुःखं च भो यदि विनाशसीह लोके ।
 गोभूसुरामरगिरां दयितोऽसि चेत्त्वं नून तदा तु विपद हर चिन्तितोऽद्य ॥४॥
 बाल्येऽपि पितृवचसा निकषा मुनीशान्
 गत्वा रणेऽप्यवधि येन च ताटिकाऽऽख्या ।
 निर्भर्त्सिताश्च जगतीतलदुष्टसङ्घाः
 श्रीर्वेदवाक्प्रियतमोऽवतु वेदवाचम् ॥५॥

॥ इति कामनापञ्चकं सम्पूर्णम् ॥३६७॥

369. तत्त्वमसिस्तोत्रम्

मनःकल्पितमेवेदं जगज्जीवेशकल्पनम् ।
 तदेकं सम्परित्यज्य निर्वाणमनुभूयताम् ॥१॥
 सति सर्वस्मिन् सर्वज्ञत्वं सत्यल्पे वा स्वल्पज्ञत्वम् ।
 सर्वालपस्याभावे कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥२॥
 सत्यां व्यष्टौ जीवोपाधिः सति सर्वस्मिन्नाशोपाधिः ।
 व्यष्टि-समष्टयोर्ज्ञाने कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥३॥
 सत्यज्ञाने जीवत्वोक्तिर्मायासत्त्वे त्वीशत्वोक्तिः ।
 मायाविद्याबोधे कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥४॥
 सति वा कार्ये कारणतोक्तिः कारणतत्त्वे कार्यत्वोक्तिः ।
 कार्यकारणभावे कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥५॥
 सति भोक्तव्ये भोक्ताऽयं स्याद्दातव्ये वा दाता स स्यात् ।
 भोग्यो विध्यो भावे कस्माज्जीवेशौ वा तत्त्वमसि ॥६॥
 सत्यज्ञाने गुरुणा बाध्यं सति द्वैते शिष्यैर्भाव्यम् ।
 अद्वैतात्मनि गुरुशिष्यौ कौ त्यज रे भेदं तत्त्वमसि ॥७॥
 सत्यद्वैते प्राप्तौ प्रलः सति वा द्वैते बाधे यत्नः ।
 द्वैताऽद्वैते ते सङ्कल्पस्त्यज रे शेषं तत्त्वमसि ॥८॥
 साक्षित्वं यदि दृश्यं सत्यं दृश्यासत्त्वे साक्षी त्वं कः ।
 उभयभावे दर्शनमपि किं तूष्णीं भव रे तत्त्वमसि ॥९॥
 अज्ञानामलविग्रह-निजसुख-जृम्भणमेतन्नेतरथा ।
 तस्मान्नैवादेयं हेयं तूष्णीं भव रे तत्त्वमसि ॥१०॥
 ब्रह्मैवाऽहं ब्रह्मै व त्वं ब्रह्मैवैकं नाऽन्यत् किञ्चित् ।
 निश्चित्येत्यं निजसमसुखभुक् तूष्णीं भव रे तत्त्वमसि ॥११॥
 एतत् स्तोत्रं प्रपठता विचार्य गुरुवाक्यतः ।
 प्राप्यते ब्रह्मपदवीं सत्यं सत्यं न संशयः ॥१२॥

॥ इति तत्त्वमिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३६९॥

॥ इति वेदान्तस्तोत्राणि ॥

17. प्रकीर्ण-स्तोत्राणि

370. श्रीगणेशप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूर-पूरपरिशोभित-गण्डयुग्मम् ।
उदण्डविघ्न-परिखण्डन-चण्डदण्डमाखण्डलादि-सुरनायकवृन्द-वन्द्यम् ॥१॥
प्रातर्नमामि चतुरानन-वन्द्यमानमिच्छानुकूलंमखिलं च वरं ददानम् ।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिप-यज्ञसूत्रं पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ॥२॥
प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोक-दावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ।
अज्ञान-कानन-विनाश-हव्यवाहमुत्साह-वर्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥३॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् ।
प्रातरुत्थाय सततं प्रपठेत् प्रयतः पुमान् ॥४॥

॥ इति गणेशप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥३७०॥

371. भगवत्प्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि फणिराजतनौ शयानं नागा-ऽमरा-ऽसुर-नरादि-जगन्निदानम् ।
वेदैः सहामरगणैरुपगीयमानं कान्तारकेतनवतां परमं निधानम् ॥१॥
प्रातर्भजामि भवसागरवारिपारं देवर्षि-सिद्ध-निवहैर्विहितोपहारम् ।
संदृप्त-दानव-कदम्ब-मदापहारं सौन्दर्य-राशि-जलराशि-सुताविहारम् ॥२॥
प्रातर्नमामि शरदम्बर-कान्तिकान्तं पादारविन्द-मकरन्दजुषां भवान्तम् ।
नानावतार-हृतभूमिभरं कृतान्तं पाथोजकम्बुरथ पादकरं प्रशान्तम् ॥३॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं ब्रह्मानन्देन कीर्तितम् ।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥

॥ इति भगवत्प्रातः स्मरणं सम्पूर्णम् ॥३७१॥

372. ब्रह्मप्रातः स्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् ।
 यत्स्वप्न-जागर-सुषुप्तमवैति नित्यं तद्ब्रह्मनिष्कलमहं न च भूतसङ्घः ॥१॥
 प्रातर्भजामि मनसा वचसामगम्यं वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
 यं नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचंस्तं देवदेवमजमच्युतमाहुरग्रयम् ॥२॥
 प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं पूर्णं सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम् ।
 यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तौ रज्वां भुजङ्गम इव प्रतिभासितं वै ॥३॥
 श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्रयविभूषणम् ।

प्रातःकाले पठेद् यस्तु स गच्छेत् परमं पदम् ॥४॥

॥ इति ब्रह्मप्रातः स्मरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३७२॥

373. श्रीविष्णुप्रातः स्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम् ।
 ग्राहाभिभूत-वरवारणमुक्तिहेतुं चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥१॥
 प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः ।
 नारायणस्य नरकार्णवतारणस्य पारायण-प्रवणविप्रपरायणस्य ॥२॥
 प्रातर्भजामि भजनामभयङ्करं तं प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
 यो ग्राहवक्त्रपतितांघ्रिगजेन्द्रघोर-शोकप्रणाशनकरो धृतशङ्खचक्रः ॥३॥
 श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातःकाले पठेन्नरः ।

लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥४॥

॥ इति श्रीविष्णुप्रातः स्मरणस्तोत्रं समाप्तम् ॥३७३॥

374. श्रीशिवप्रातः स्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
 खट्वाङ्गशूल-वरदाभयहस्तमीशं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥१॥
 प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्द्धदेहं सर्ग-स्थिति-प्रलय-कारणमादिदेवम् ।
 विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥२॥
 प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।
 नामादिभेदरहितं षडभावशून्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥३॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।
ते दुःखजालं बहुजन्मसञ्चितं हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥४॥

॥ इति श्रीशिवप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥३७४॥

375. श्रीरामप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं मन्दस्मितं मधुरभाषिविशालभालम् ।
कर्णावलम्बि-चलकुण्डलशोभि गण्डं कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥१॥
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः ॥२॥
प्रातर्भजामि रघुनाथपदारविन्दं पद्माङ्कुशादिशुभरेखि सुखावहं मे ।
योगीन्द्र-मानस-मधुव्रत-सेव्यमानं शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ॥३॥
प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति ।
यत्पार्वती स्वपतिना सहभोक्तुकामा प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ॥४॥
प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं नीलाम्बुदोत्पलसितेतररत्ननीलाम् ।
आमुक्त-मौक्तिकविशेष-विभूणाढ्यांध्येयांसमस्तमुनिभिर्जनमुक्तिहेतुम् ॥५॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेद्धि नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥६॥

॥ इति श्रीरामप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥३७५॥

376. श्रीचण्डीप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां सद्रत्नवन्मकर-कुण्डलहार-भूषाम् ।
दिव्यायुधोर्जित-सुनीलसहस्रहस्तां रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥१॥
प्रातर्नमामि महिषासुर-चण्डमुण्ड-शुम्भासुर-प्रमुखदैत्य-विनाशदक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहन-शीललीलां चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ॥२॥
प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम् ।
संसारबन्धन-विमोचनहेतुभूता मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णो ॥३॥

श्लोकत्रयमिदं देव्याश्चण्डिकायाः पठेन्नरः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥४॥

॥ इति श्रीचण्डीप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥३७६॥

377. श्रीसूर्यप्रातःस्मरणस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ।
 सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं ब्रह्मा-हरात्मकलमक्षयमचिन्त्यहेतुम् ॥१॥
 प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिर्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैर्तनुमर्चितं च ।
 वृष्टिप्रमोचन-विनिग्रहहेतुभूतं त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥२॥
 प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।
 तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्तिं गोकण्ठबन्धन-विमोचनमादिदेवम् ॥३॥
 श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातःकाले पठेत्तु यः ।
 सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ॥४॥

॥ इति सूर्यप्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥३७७॥

378. प्रभाते कर-दर्शनम्

कराग्रे वसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती ।
 करमूले तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम् ॥

इति प्रभाते कर-दर्शनम् ॥

379. प्रातःस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द उत्तिष्ठ गरुडध्वज ।
 उत्तिष्ठ कमलाकान्त त्रैलोक्यं मङ्गलं कुरु ॥१॥
 मङ्गलं भगवान् विष्णुः मङ्गलं गरुडध्वजः ।
 मङ्गलं पुण्डरीकाक्षः मङ्गलायतनं हरिः ॥२॥
 मूकं करोति वाचालं पङ्क्तु लङ्घयते गिरिम् ।
 यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥३॥
 नमो ब्रह्मण्यदेवाय गो-ब्राह्मण-हिताय च ।
 जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥४॥
 कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
 नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥५॥
 त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
 त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥६॥

॥ इति प्रातःस्मरणमङ्गलस्तोत्रम् समाप्तम् ॥३७९॥

380. भगवद्भक्तस्मरणम्

प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक-
 व्यासा-ऽम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान् ।
 रुक्मा-ङ्गदा-ऽर्जुन-वसिष्ठ-विभीषणादीन्
 पुण्यानिमान् परमभागवतान् स्मरामि ॥

381. एकश्लोकी-रामायण

आदौ राम-तपोवनादि-गमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
 वैदेही-हरणं जटायुमरणं सुग्रीव-सम्भाषणम् ।
 बालीनिर्दलनं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं
 पश्चात् रावण-कुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम् ॥

382. एकश्लोकी-भागवतम्

आदौ देवकि-देवगर्भ-जननं गोपीगृहे वर्धनं
 मायापूतनि-जीवितापहरणं गोवर्द्धनोद्धारणम् ।
 कंसच्छेदन-कौरवादिहननं कुन्तीसुतापालनं
 एतद्भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ॥

383. एकश्लोकी-महाभारतम्

आदौ पाण्डव-धार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनं
 द्यूते श्रीहरणं वने विचरणं मत्स्यालये वर्तनम् ।
 लीला-गो-ग्रहणं रणे विहरणं सन्धिक्रियाजृम्भणं
 पश्चाद् भीष्म-सुयोधनादि-हननं चैतन्महाभारतम् ॥

384. चतुःश्लोकी-भागवतम्

श्रीभगवानुवाच

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
 स-रहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥१॥
 यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
 तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥२॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
 पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥३॥
 ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
 तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः ॥४॥
 यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
 प्रविष्टान्यप्रविष्टानि यथा तेषु न तेष्वहम् ॥५॥
 एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
 अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥६॥
 एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
 भवान् कल्प-विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥७॥

॥ इति चतुःश्लोकीभागवतम् ॥३८४॥

385. सप्तश्लोकी गीता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
 यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥१॥
 स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
 रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंधाः ॥२॥
 सर्वतः पाणिपाद तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
 सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३॥
 कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद् यः ।
 सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥४॥
 ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
 छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥५॥
 सर्वस्य चाऽहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
 वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेवविदेव चाऽहम् ॥६॥
 मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
 मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः ॥७॥

॥ इति सप्तश्लोकी गीता समाप्ता ॥३८५॥

386. नारद-स्तुतिः

जयति जगति मायां यस्य कायाध्वस्ते
 वचन-रचनमेकं केवलं चाकलय्य ।

ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं
सकल-कुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नतोऽस्मि ॥

॥ इति नारदस्तुतिः सम्पूर्णा ॥३८६॥

387. भृगु-स्तुतिः

दैत्यमंत्री गुरुस्तेषां प्रणवश्च महाद्युतिः ।
प्रभुस्ताराग्रहाणां च पीडां दहतु मे भृगुः ॥

388. व्यास-स्तुतिः

व्यासं वसिष्ठ-नप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥१॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् वादरायणः ॥२॥
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णं प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥३॥
नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे ।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम् ॥४॥
वदन-कमल-निर्यद्यस्य पीयूषमाद्यं पिबति जनवरोऽयं पातु सोऽयं गिरं मे ।
वदनवन-विहारः सत्यवत्या कुमारः प्रणतदुरितहारः शार्ङ्ग-धन्वावतारः ॥

॥ इति व्यास-स्तुतिः समाप्ता ॥३८८॥

389. शुक-स्तुतिः

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूत-हृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥१॥
स्व-सुख-निभृतचेतास्तद् व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजित-रुचिर-लीला-ऽऽकृष्ट सारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिल-वृजिनघ्नं व्यास-सूनुं नतोऽस्मि ॥२॥

॥ इति शुक-स्तुतिः समाप्ता ॥३८९॥

390. गुरुस्तुतिः

अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराऽचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥१॥
अखण्डानन्दबोधाय शिष्य-सन्तापहारिणे ।
सच्चिदानन्दरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥२॥
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥३॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४॥

॥ इति गुरुस्तुतिः समाप्ता ॥३९०॥

391. राधा-कृष्णध्यानम्

नव-ललित-वयस्कौ नव्य-लावण्य-पुञ्जौ
नवरस-चलचित्तौ नूतन-प्रेमवृत्तौ ।
नव-निधुवन-लीला कौतुकेनातिलोलौ
स्मर निभृत-निकुञ्जे राधिका-कृष्णचन्द्रौ ॥१॥
द्रुत-कनक-सुगौर-स्निग्ध-मेघौघ-नील-
च्छविभिरखिल-वृन्दारण्यनुद्धासयन्तौ ।
मृदुल-नव-दुकूले नीलपीते दधानौ
स्मर निभृत-निकुञ्जे राधिका-कृष्णचन्द्रौ ॥२॥
कान्तिः सितामृशति निन्दित-शारदेन्दु-
र्यत्रैकतो विलसितामसिताङ्गशोभम् ।
वृन्दावनेऽपि कृत-यामुन-गाङ्गसङ्गं
राधा-मुकुन्द-युगलं तदहं नमामि ॥३॥

॥ इति राधाकृष्णध्यानं समाप्तम् ॥३९१॥

392. राधा-कृष्ण-युगलस्तोत्रम्

अनादिमाद्यं पुरुषोत्तममोत्तमं श्रीकृष्णचन्द्रं निजभक्त-वत्सलम् ।
स्वयं त्वसङ्ख्यण्डपतिं परात्परं राधापतिं त्वां शरणं ब्रजाम्यहम् ॥१॥
गोलोकनाथस्त्वमतीवलीलो लीलापतीयं निजलोकलीला ।
वैकुण्ठनाथोऽसि सदा त्वमेव लक्ष्मीस्तदेवं वृषभानुजा हि ॥२॥

त्वं रामचन्द्रो जनकात्मजेयं भूमौ हरिस्त्वं कमलालयेयम् ।
 यज्ञावतारोऽसि यदा तदेयं श्रीदक्षिणास्त्री प्रतिपत्तिमुख्याः ॥३॥
 त्वं नारसिंहोऽसि रमा हृदीयं नारायणस्त्वं च नरेण युक्तः ।
 तदा त्वियं शान्तिरतीव साक्षाच्छायेव याता च तवानुरूपा ॥४॥
 त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्था कालो यदेमां च विदुः प्रधानम् ।
 महान्यदा त्वं जगदङ्कुरोऽसि राधा हृदेयं संगुणा च माया ॥५॥
 यदाऽन्तरात्मा विदितश्चतुर्भिस्तदा त्वियं लक्षणरूपवृत्तिः ।
 यदा विराड्-देहधरस्त्वमेव तदाऽखिलं वा भुवि धारणेयम् ॥६॥
 श्यामं च गौरं विदितं द्विधा महस्तवैव साक्षात् पुरुषोत्तमोत्तमम् ।
 गोलोकधामाधिपतिं परेशं परात्परं त्वां शरणं ब्रजाम्यहम् ॥७॥
 सदा पठेद् यो युगलस्त्वं परं गोलोकधामं परमं प्रयाति सः ।
 इहैव सौन्दर्य-समृद्ध-सिद्धयो भवन्ति तस्याऽपि निसर्गतः पुनः ॥८॥

॥ इति श्रीराधाकृष्ण-युगलस्तोत्रं समाप्तम् ॥३९२॥

393. वेदव्यासाष्टकम्

कविकलास्तविवेकदिवाकरं समवलोक्य तमोवलितं जनम् ।
 करुणा भुवि दर्शितविग्रहं मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥१॥
 भरतवंशसमुद्भरणेच्छया स्वजननीवचसा परिनोदितः ।
 अजनयत्तनयत्रितयं प्रभुर्मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥२॥
 मत्तिबलादि निरीक्ष्य कलौ नृणां लघुतरं कृपया निगमाम्बुधेः ।
 समकरोदिह भागमनेकधा मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥३॥
 सकलधर्मनिरूपणसागरं विविधचित्रकथासमलंकृतम् ।
 व्यरचयच्च पुराणकदम्बकं मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥४॥
 श्रुतिविरोधसमन्वयदर्पणं निखिलवादिमतान्ध्यविदारणम् ।
 प्रथितवानपि सूत्रसमूहकं मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥५॥
 यदनुभाववशेन दिवं गतः समधिगम्य महास्त्रसमुच्चयम् ।
 कुरुचमूमजयद्विजयो द्रुतं मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥६॥
 समरवृत्तविबोधसमीहया कुरुवरेण मुदा कृतयाचनः ।
 सपदिसूतमदादमलेक्षणं मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥७॥

वननिवासपरौ कुरुदम्पती सुतशुचा तपसा च विकर्षितौ ।
 मृततनूजगुणं समदर्शयन्मुनिवरं तमहं सततं भजे ॥८॥
 व्यासाष्टकमिदं पुण्यं ब्रह्मानन्देन कीर्तितम् ।
 यः पठेन्मनुजो नित्यं स भवेच्छास्त्रापारगः ॥९॥

इति श्रीवेदव्यासाष्टकं समाप्तम् ॥३९३॥

394. तुलसीकवचम्

अस्य श्रीतुलसीकवचस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमहादेव-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः,
 श्रीतुलसीदेवता, मनसीप्सितकामनासिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

तुलसी श्रीमहादेवी नमः पङ्कजधारिणी ।
 शिरो मे तुलसी पातु भालं पातु यशस्विनी ॥१॥
 दृशौ मे पद्मनयना श्रीसखी श्रवणे मम ।
 घ्राणं पातु सुगन्धा मे मुखं च सुमुखी मम ॥२॥
 जिह्वां मे पातु शुभदा कण्ठं विद्यामयी मम ।
 स्कन्धौ कहारिणी पातु हृदयं विष्णुवल्लभा ॥३॥
 पुण्यदा मे पातु मध्यं नाभिं सौभाग्यदायिनी ।
 कटिं कुण्डलिनी पातु ऊरू नारदवन्दिता ॥४॥
 जननी जानुनी पातु जङ्घे सकलवन्दिता ।
 नारायणप्रिया पादौ सर्वाङ्ग सर्वरक्षिणी ॥५॥
 सङ्कटे विषमे दुर्गे भये वादे महाहवे ।
 नित्यं हि सन्धयोः पातु तुलसी सर्वतः सदा ॥६॥
 इतीदं परमं गुह्यं तुलस्याः कवचामृतम् ।
 मर्त्यानाममृतार्थाय भीतानामभयाय च ॥७॥
 मोक्षाय च मुमुक्षूणां ध्यानिनां ध्यानयोगकृत् ।
 वशाय वश्यकामानां विद्यायै वेदवादिनाम् ॥८॥
 द्रविणाय दरिद्राणां पापिनां पापशान्तये ॥९॥
 अन्नाय क्षुधितानां च स्वर्गाय स्वर्गमिच्छताम् ।
 पशव्यं पशुकामानां पुत्रदं पुत्रकांक्षिणाम् ॥१०॥
 राज्याय भ्रष्टराज्यानामशान्तानां च शान्तये ।
 भक्त्यर्थं विष्णुभक्तानां विष्णौ सर्वान्तरात्मनि ॥११॥

जाप्यं त्रिवर्ग-सिद्ध्यर्थं गृहस्थेन विशेषतः ।
 उद्यन्तं चण्डकिरणमुपस्थाय कृताञ्जलिः ॥१२॥
 तुलसीकानने तिष्ठन्नासीनो वा जपेदिदम् ।
 सर्वान् कामानवाप्नोति तथैव मम सन्निधिम् ॥१३॥
 मम प्रियकरं नित्यं हरिभक्तिविवर्धनम् ।
 या स्यान्मृतप्रजा नारी तस्या अङ्गं प्रमार्जयेत् ॥१४॥
 सा पुत्रं लभते दीर्घजीविनं चाप्यरोगिणम् ।
 बन्ध्याया मार्जयेदङ्गं कुशैर्मन्त्रेण साधकः ॥१५॥
 साऽपि संवत्सरादेव गर्भं धत्ते मनोहरम् ।
 अश्वत्थे राजवश्यार्थी जपेदग्नेः सूरूपभाक् ॥१६॥
 पलाशमूले विद्यार्थी तेजोऽर्थ्यभिमुखो रवेः ।
 कन्यार्थी चण्डिकागेहे शत्रुहृत्यै गृहे मम ॥१७॥
 श्रीकामो विष्णुगेहे च उद्याने स्त्री वशा भवेत् ।
 किमत्र बहुनोक्तेन शृणु सैन्येश तत्त्वतः ॥१८॥
 यं यं काममभिध्यायेत्तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।
 मम गेहगतस्त्वं तु नरकस्य वधेच्छया ॥१९॥
 जपन् स्तोत्रं च कवचं तुलसीगतमानसः ।
 मण्डलत्तारकं हन्ता भविष्यसि न संशयः ॥२०॥

॥ इति तुलसीकवचं सम्पूर्णम् ॥३९४॥

395. तुलसीस्तोत्रम्

जगद्धात्रि नमस्तुभ्यं विष्णोश्च प्रियवल्लभे ।
 यतो ब्रह्मादयो देवाः सृष्टि-स्थित्यन्त-कारिणः ॥१॥
 नमस्तुलसि कल्याणि नमो विष्णुप्रिये शुभे ।
 नमो मोक्षप्रदे देवि! नमः सम्पत्प्रदायिके ॥२॥
 तुलसी पातु मा नित्यं सर्वापद्भयोऽपि सर्वदा ।
 कीर्तिताऽपि स्मृता वाऽपि पवित्रयति मानवम् ॥३॥
 नमामि शिरसा देवीं तुलसीं विलसत्तनुम् ।
 यां दृष्ट्वा पापिनो मर्त्या मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषात् ॥४॥
 तुलस्या रक्षितं सर्वं जगदेतच्चराऽचरम् ।
 यां विनिर्हन्ति पापानि दृष्ट्वा वा पापिभिरैः ॥५॥

नमस्तुलस्यतितरां यस्यै बद्ध्वा बलिं कलौ ।
 कलयन्ति सुखं सर्वं स्त्रियौ वैश्यास्तथाऽपरे ॥६॥
 तुलस्या नाऽपरं किञ्चिद् दैवते जगतीतले ।
 यया पवित्रितो लोको विष्णुसङ्गेन वैष्णवः ॥७॥
 तुलस्यां सकला देवा वसन्ति सततं यतः ।
 अतस्तामर्चयेल्लोके सर्वान् देवान् समर्चयन् ॥९॥
 नमस्तुलसि सर्वज्ञे पुरुषोत्तमवल्लभे ।
 पाहि मां सर्वपापेभ्यः सर्वसम्पत्प्रदायिके ॥१०॥
 इति स्तोत्रं पुरा गीतं पुण्डरीकेण धीमता ।
 विष्णुमर्चयता नित्यं शोभनस्तुलसीदलः ॥११॥
 तुलसी श्रीमहालक्ष्मीर्विद्याऽविद्या यशस्विनी ।
 धर्म्या धर्मानना देवी देवीदेवमनः प्रिया ॥१२॥
 लक्ष्मीप्रियसखी देवी द्यौर्भूमिरचला चला ।
 षोडशैतानि नामानि तुलस्याः कीर्तयेन्नरः ॥१३॥
 लभते सुतरां भक्तिमन्ते विष्णुपदं लभेत् ।
 तुलसी भूर्महालक्ष्मीः पद्मिनी श्रीर्हरिप्रिया ॥१४॥
 तुलसि श्रीसखि शुभे पापहारिणि पुण्यदे ।
 नमस्ते नारदनुते नारायणमनः प्रिये! ॥१५॥

॥ इति तुलसीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥३९५॥

396. तुलसीमाहात्यम्

पापानि यानि रविसूनुपटस्थितानि
 गो-ब्रह्म-बाल-पितृ-मातृवधादिकानि ।
 नश्यन्ति तानि तुलसीवनदर्शनेन
 गोकोटिदानसदृशं फलमाप्नुवन्ति ॥१॥
 पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
 वासुदेवादयो देवो वसन्ति तुलसीवने ॥२॥
 तुलसीकाननं यत्र यत्र पद्मवनानि च ।
 वसन्ति वैष्णवा यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥३॥

यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवताः ।
 यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसि! त्वां नमाम्यहम् ॥४॥
 तुलसि श्रीसखि शुभे पापहारिणि पुण्यदे! ।
 नमस्ते नारदनुते नारायणमनःप्रिये ॥५॥
 राजद्वारे सभामध्ये सग्रामे शत्रुपीडने ।
 तुलसी-स्मरणं कुर्यात् सर्वत्र विजयी भवेत् ॥६॥
 तुलस्यमृतजन्माऽसि सदा त्वं केशवप्रिये ।
 केशवार्थे विचिन्वामि वरदा भव शोभने ॥७॥
 मोक्षैकहेतोर्धरणीधरस्य विष्णोः स्मरतस्य पुरो प्रियस्य ।
 आराधनार्थं पुरुषोत्तमस्य छिन्दे दलं ते तुलसि क्षमस्व ॥८॥
 कृष्णारम्भे तथा पुण्ये विवाहे चाऽर्थसंग्रहे ।
 सर्वकार्येषु सिद्ध्यर्थं प्रस्थाने तुलसीं स्मरेत् ॥९॥
 यः स्मरेत् तुलसीं सीतां रामं सौमित्रिणा सह ।
 विनिर्जित्य रिपून् सर्वान् पुनरायाति कार्यकृत् ॥१०॥
 या दृष्टा निखिलाऽघसङ्घ-शमनी स्पृष्टा वपुः पावनी
 रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी ।
 प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
 न्यस्ता तच्चरणे विमुक्ति-फलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥११॥
 खादन् मांसं पिबन् मद्यं सङ्गच्छन्नन्यजादिभिः ।
 सद्यो भवति पूतात्मा कर्णयोस्तुलसीधृता ॥१२॥
 चतुःकर्णे मुखे चैकं नाभावेकं तथैव च ।
 शिरस्येकं तथा प्रोक्तं तीर्थे त्रयमुदाहृतम् ॥१३॥
 अन्नोपरि तथा पञ्च भोजनान्ते दलत्रयम्
 एवं श्रीतुलसी ग्राह्या दशधा मङ्गलप्रदा ॥१४॥

॥ इति श्रीतुलसीमाहात्म्यं समाप्तम् ॥३९६॥

397. अश्वत्थस्तोत्रम्

श्रीनारद उवाच

अनायासेन लोकोऽयं सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
 सवदेवात्मकं चैकं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणु देव मुनेऽश्वत्थ शुद्धं सर्वात्मकं तरुम् ।
 यत्प्रदक्षिणतो लोकः सर्वान् कामान् समश्नुते ॥२॥
 अश्वत्थाद् दक्षिणे रुद्रः पश्चिमे विष्णुरास्थितः ।
 ब्रह्मा चोत्तरदेशस्थ पूर्व त्विन्द्रादिदेवताः ॥३॥
 स्कन्धोपस्कन्धपत्रेषु गो-विप्र-मुनयस्तथा ।
 मूलं वेषाः पयो यज्ञा संस्थिता मुनिपुङ्गव ॥४॥
 पूर्वादिदिक्षु संयाता नदी-नद-सरोऽब्धयः ।
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ह्यश्वत्थ संश्रयेद् बुधः ॥५॥
 त्वं क्षीर्यफलकश्चैव शीतलश्च वनस्पते ।
 त्वामाराध्य नरो विद्यादैहिकाऽऽमुष्मिकं फलम् ॥६॥
 चलद्दलाय वृक्षाय सर्वदाश्रितविष्णवे ।
 बोधिसत्त्वाय देवाय ह्यश्वत्थाय नमो नमः ॥७॥
 अश्वत्थ यस्मात्त्वयि वृक्षराज नारायणस्तिष्ठति सर्वकालम् ।
 अतः श्रुतस्त्वं सततं तरुणां धन्योऽसि चारिष्टविनाशकोऽसि ॥८॥
 क्षीरदस्त्वं च येनेह येन श्रीस्त्वां निषेवते ।
 सत्येन तेन वृक्षेन्द्र मामपि श्रीर्निषेवताम् ॥९॥
 एकादशात्मरुद्रोऽसि वसुनाथशिरोमणिः ।
 नारायणोऽसि देवानां वृक्षराजोऽसि पिप्पल ॥१०॥
 अग्निगर्भः शमीगर्भो देवगर्भः प्रजापतिः ।
 हिरण्यगर्भः भूगर्भो यज्ञगर्भो नमोऽस्तु ते ॥११॥
 आयुर्बलं यशो वर्च प्रजाः पशुवसूनि च ।
 ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥१२॥
 सततं वरुणो रक्षेत् त्वामाराद् दृष्टिराश्रयेत् ।
 परितस्त्वां निषेवन्तां तृणानि सुखमस्तु ते ॥१३॥
 अक्षिस्पन्दं भुजस्पन्दं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम् ।
 शत्रूणां च समुत्थानं ह्यश्वत्थ शमय प्रभो ॥१४॥
 अश्वत्थाय वरेण्याय सर्वैश्वर्यप्रदायिने ।
 नमो दुःस्वप्ननाशाय सुस्वप्नफलदायिने ॥१५॥

मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
 अग्रतः शिवरूपाय वृक्षराजाय ते नमः ॥१६॥
 यं दृष्ट्वा मुच्यते रोगैः स्पृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।
 यदाश्रयाच्चिरञ्जीवो तमश्चर्त्तुं नमाम्यहम् ॥१७॥
 अश्वत्थः सुमहाभागः सुभगः प्रियदर्शनः ।
 इष्टकामांश्च मे देहि शत्रुभ्यस्तु पराभवम् ॥१८॥
 आयुः प्रजां धनं धान्यं सौभाग्यं सर्वसम्पदम् ।
 देहि देव महावृक्ष त्वामहं शरणं गतः ॥१९॥
 ऋग्यजुःसाममन्त्रात्मा सर्वरूपी परात्परः ।
 अश्वत्थो वेदमूलोऽसावृषिभिः प्रोच्यते सदा ॥२०॥
 ब्रह्महा गुरुहा चैव दरिद्रो व्याधिपीडितः ।
 आवृत्य लक्षसङ्ख्यं तत् स्तोत्रमेतत् सुखी भवेत् ॥२१॥
 ब्रह्मचारी हविष्याशी त्वधःशायी जितेन्द्रियः ।
 पापोपहतचित्तोऽपि व्रतमेतत् समाचरेत् ॥२२॥
 एकहस्तं द्विहस्तं वा कुर्याद् गोमयलेपनम् ।
 अर्चेत् पुरुषसूक्तेन प्रणवेन विशेषतः ॥२३॥
 मौनी प्रदक्षिणं कुर्यात् प्रागुक्तफलभाग् भवेत् ।
 विष्णोर्नामसहस्रेण हयच्युतस्यापि कीर्तनात् ॥२४॥
 पदे पदान्तरं गत्वा करचेष्टाविवर्जितः ।
 वाचि स्तोत्रं मनो ध्याने चतुरङ्गं प्रदक्षिणम् ॥२५॥
 अश्वत्थः स्थापितो येन तत्कुलं स्थापितं ततः ।
 धनायुषां समृद्धिस्तु नरकात्तारयेत् पितृन् ॥२६॥
 अश्वत्थमूलमाश्रित्य शाकान्नोदकदानतः ।
 एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिब्राह्मणभोजनम् ॥२७॥
 अश्वत्थमूलमाश्रित्य जप-होम-सुरार्चनात् ।
 अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मणो वचनं यथा ॥२८॥
 एवमाश्रितोऽश्वत्थः सदाऽऽश्वासाय कल्पते ।
 यज्ञार्थं छेदितेऽश्वत्थे ह्यक्षयं स्वर्गमाप्नुयात् ॥२९॥
 छिन्नो येन वृथाऽश्वत्थश्छेदिताः पिदूदेवताः ।
 अश्वत्थः पूजितो यत्र पूजिताः सर्वदेवताः ॥३०॥

॥ इति अश्वत्थस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥३१७॥

398. मङ्गलस्तोत्रम्

गणाधिपो भानु-शशी-धरासुतो बुधो गुरुभार्गवसूर्यनन्दनाः ।
 राहुश्च केतुश्च परं नवग्रहाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥१॥
 उपेन्द्र इन्द्रो वरुणो हुताशनस्त्रिविक्रमो भानुसखश्चतुर्भुजः ।
 गन्धर्व-यक्षोरग-सिद्ध-चारणाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥२॥
 नलो दधीचिः सगरः पुरुरवा शाकुन्तलेयो भरतो धनञ्जयः ।
 रामत्रयं वैन्यबली युधिष्ठिरः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥३॥
 मनु-मरीचि-भृगु-दक्ष-नारदाः पाराशरो व्यास-वसिष्ठ-भार्गवाः ।
 वाल्मीकि-कुम्भोद्भव-गर्ग-गौतमाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥४॥
 रम्भा शची सत्यवती च देवकी गौरी च लक्ष्मीश्च दितिश्च रुक्मिणी ।
 कूर्मो गजेन्द्रः सचराऽचरा धरा कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥५॥
 गङ्गा च क्षिप्रा यमुना सरस्वती गोदावरी वेत्रवती च नर्मदा ।
 सा चन्द्रभागा वरुणा त्वसी नदी कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥६॥
 तुङ्ग-प्रभासो गुरुचक्रपुष्करं गया विमुक्ता बदरी वटेश्वरः ।
 केदार-पम्पासरसश्च नैमिषं कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥७॥
 शङ्खश्च दूर्वासित-पत्र-चामरं मणिः प्रदीपो वररत्नकाञ्चनम् ।
 सम्पूर्णकुम्भः सुहुतो हुताशनः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा ॥८॥
 प्रयाणकाले यदि वा सुमङ्गले प्रभातकाले च नृपाभिषेचने ।
 धर्मार्थकामाय जयाय भाषितं व्यासेन कुर्यात्तु मनोरथं हि तत् ॥९॥

॥ इति मङ्गलस्तोत्रं समाप्तम् ॥३९८॥

399. ऋणमोचनस्तोत्रम्

देवताकार्यसिद्ध्यर्थं	सभा-स्तम्भ-समुद्भवम् ।
श्रीनृसिंह महावीरं	नमामि ऋणमुक्तये ॥१॥
लक्ष्यालिङ्गित-वामाङ्ग	भक्तानां वरदायकम् ।
श्रीनृसिंह महावीरं	नमामि ऋणमुक्तये ॥२॥
आन्त्रनालाधरं	शङ्खचक्राब्जा-ऽऽयुध-धारिणम् ।
श्रीनृसिंह महावीरं	नमामि ऋणमुक्तये ॥३॥

स्मरणात्	सर्वपापघ्नं	कद्रूज-विषनाशनम् ।
श्रीनृसिंह	महावीरं	नमामि ऋणमुक्तये ॥४॥
सिंहनादेन	महता	दिग्दन्तिभयनाशनम् ।
श्रीनृसिंह	महावीरं	नमामि ऋणमुक्तये ॥५॥
प्रह्लादवरदं	श्रीशं	दैत्येश्वर-विदारणम् ।
श्रीनृसिंह	महावीरं	नमामि ऋणमुक्तये ॥६॥
क्रूरग्रहैः	पीडितानां	भक्तानामभयप्रदम् ।
श्रीनृसिंह	महावीरं	नमामि ऋणमुक्तये ॥७॥
वेद-वेदान्त-यज्ञेशं		ब्रह्म-रुद्रादि-वन्दितम् ।
श्रीनृसिंह	महावीरं	नमामि ऋणमुक्तये ॥८॥
य इदं पठते		नित्यमृणमोचन-संज्ञितम् ।
अनृणी जायते सद्यो धनं शीघ्रमवाप्नुयात् ॥९॥		

॥ इति ऋणमोचनस्तोत्रं समाप्तम् ॥३९९॥

400. हनुमद्रक्षा

वामे करे वैरिभिदं वहन्तं शैलं परिशृङ्खल-हारटङ्कम् ।	
दधानमच्छं तु सुवर्णवर्णं भजे ज्वलत्कुण्डलमाञ्जनेयम् ॥१॥	
पद्मरागमणि-कुण्डलत्विषा पाटलीकृत-कपोल-मस्तकम् ।	
दिव्य-हेम-रुदलीवनान्तरे भावयामि पवमाननन्दनम् ॥२॥	
उद्यदादित्य-सङ्काशमुदार-भुजविक्रमम् ।	
कन्दर्प कोटि-लावण्यं सर्वविद्या-विशारदम् ॥३॥	
श्रीरामहृदयानन्दं भक्तकल्पमहीरुहम् ।	
अभयं वरदं दोर्भ्यां कलये मारुतात्मजम् ॥४॥	
वामहस्त-महाकृच्छ्र-दशास्यकर-मर्दनम् ।	
उद्यद्वीक्षण-कोदण्डं हनूमन्तं विचिन्तयेत् ॥५॥	
हनुमान्नञ्जनीसूनुर्वायुपुत्रो महाबलः ।	
रामेष्टः फाल्गुनसखः पिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः ॥६॥	
उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः ।	
लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥७॥	

एवं द्वादशनामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः ।
 स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत् ।
 तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत् ॥८॥
 उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
 आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥
 स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कृताञ्जलिम् ।
 कुण्डलद्वय-संशोभि मुखाम्भोज हरिं भजे ॥१०॥
 मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
 वातात्मज वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥११॥

॥ इति हनुमद्रक्षा समाप्ता ॥४००॥

401. रात्रि-शयन-स्तुतिः

जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः ।
 अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ॥१॥
 अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः ।
 कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ॥२॥
 सर्पापसर्प भद्रं ते दूरं गच्छ महाविष ।
 जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर ॥३॥
 विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति-संहार-कारिणीम् ।
 निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥४॥
 तिस्रो भार्याः कफल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती ।
 तासां स्मरणमात्रेण चौरो गच्छति निष्फलः ॥५॥

॥ इति रात्रि-शयन-स्तुतिः सम्पूर्णा ॥४०१॥

402. पिप्पल-स्तुतिः

अश्वत्थ हुतभुग्वास गोविन्दस्य गदाप्रिय ।
 अशेषं हर मे पापं वृक्षराज! नमोऽस्तु ते ॥१॥
 मूले ब्रह्मा त्वचि विष्णुः शाखायां शंकर एव च ।
 पत्रे पत्रे सर्वदेवा वासुदेवाय ते नमः ॥२॥

403. गरुडस्तुतिः

श्रीविष्णुवाहं प्रणमामि भक्त्या सर्पाशनं दुःखहरं खगेशम् ।
 मनोहरं वासुसमानवेगं छन्दोमयं ज्ञानधनं प्रशान्तम् ॥१॥
 विष्णुपुत्राय शान्ताय बल-बुद्धियुताय च ।
 पक्षीन्द्रायाऽतिवेगाय गरुडाय नमो नमः ॥२॥

404. दीप-स्तुतिः

दीपो ज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः ।
 दीपो हरतु मे पापं सन्ध्यादीप! नमोऽस्तु ते ॥१॥
 शुभं करोतु कल्याणमारोग्यं सुख-सम्पदाम् ।
 मम बुद्धि-प्रकाशं च दीपज्योति! नमोऽस्तु ते ॥२॥
 शुभं भवतु कल्याणमारोग्यं पुष्टिवर्धनम् ।
 आत्मतत्त्वप्रबोधाय दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते ॥३॥

405. तुलसी-स्तुतिः

देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चिताऽसि मुनीश्वरैः ।
 नमो नमस्ते तुलसि! पापं हर हरिप्रिये ॥१॥
 यन्मूले सर्वतीर्थानि यन्मध्ये सर्वदेवताः ।
 यदग्रे सर्ववेदाश्च तुलसि! त्वां नमाम्यहम् ॥२॥

406. हनुमत्स्तुतिः

मनोजवं मारुत-तुल्य-वेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
 वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥१॥
 उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
 आदाय तेनैव ददाह लङ्का नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥२॥

407. कुबेर-स्तुतिः

धनाध्यक्षाय देवाय नरयानोपवेशिने ।
 नमस्ते गजराजाय कुबेराय महात्मने ॥

408. शङ्ख-स्तुतिः

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ।
निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य! नमोऽस्तु ते ॥

409. दत्तात्रेय-स्तुतिः

पीताम्बरालङ्कृत-पृष्ठभागं भस्मावगुण्ठा-ऽखिल-रुक्मदेहम् ।
विद्युत्सदा-पिङ्गजटाभिरामं श्रीदत्तयोगीशमहं नतोऽस्मि ॥१॥
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि-लक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥२॥

410. भगवत्स्तुतिः

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥१॥
पिता माता गुरुर्भाता सखा बन्धुस्त्वमेव मे ।
विद्या सत्कर्म वित्तं च पुरस्पृष्टे च पार्श्वयोः ॥२॥

411. नवनागस्तुतिः

अनन्तं वासुकिं शेषं पद्मनाभं च कम्बलम् ।
शङ्खपालं धृतराष्ट्रं तक्षकं कालियं तथा ॥१॥
एतानि नवनामानि नागानां च महात्मनाम् ।
सायङ्काले पठेन्नित्यं प्रातःकाले विशेषतः ।
तस्य विषभयं नास्ति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥२॥

412. मुकुन्द-स्तुतिः

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥

413. अन्नपूर्णास्तुतिः

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शङ्कर-प्राणवल्लभे ।
ज्ञान-वैराग्य-सिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति ॥

414. शीतलास्तुतिः

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता ।
शीतले त्वं जगद्धात्री शीतालायै नमो नमः ॥१॥
वन्देऽहं शीतलां देवीं रासभस्थां दिगम्बराम् ।
मार्जनी-कलशोपेतां शूर्पालंकृत-मस्तकाम् ॥२॥
वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोग-भयापहाम् ।
यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥३॥

415. लेखनीस्तुतिः

कृष्णानने द्विजिह्वे च चित्रगुप्तकरस्थिते ।
सदक्षराणां पत्रे च लेख्यं कुरु सदा मम ॥

416. कालीस्तुतिः

काली काली महाकाली कालिके परमेश्वरी ।
सर्वानन्दकरे देवि नारायणि! नमोऽस्तु ते ॥

417. महाकालीस्तुतिः

या कालिका रोगाहरा सुवन्द्या वैश्यैः समस्तैर्व्यवहारदक्षैः ।
जनैर्जनानां भयहारिणी च सा देवमाता मयि सौख्यदात्री ।

418. महालक्ष्मीस्तुतिः

वन्दे लक्ष्मीं परशिवमयीं शुद्धजाम्बूनदाभां
तेजोरूपां कनकवसनां सर्वभूषोज्ज्वलाङ्गीम् ।
बीजापूरं कनक-कलशं हेमपद्मं दधाना-
माद्यां शक्तिं सकलजननीं विष्णुवामाङ्कसंस्थाम् ॥१॥
सुरा-ऽसुरेन्द्रादि-किरीट-मौक्तिकैर्युक्तं सदा यत्तव पादपङ्कजम् ।
परावरं पातु वर सुमङ्गलं नमामि भक्त्या तव कामसिद्धये ॥२॥

भवानि त्वं महालक्ष्मीः सर्वकामप्रदायिनि ।
सुपूजिता प्रसन्ना स्यान्महालक्ष्म्यै नमोऽस्तु ते ॥३॥

419. महासरस्वतीस्तुतिः

शुक्लां ब्रह्म-विचार-सार-परमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणा-पुस्तक-धारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फटिक-मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिता
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥१॥
या कुन्देन्दु-तुषार-हार धवला या शुभवस्त्रावृता
या वीणा-वरदण्ड-मण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्मा-ऽच्युत-शङ्कर-प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मा पातु सरस्वती भगवती निःशेष-जाड्यापहा ॥२॥
वीणाधरे विपुल-मङ्गलदानशीले
भक्तार्तिनाशिनि विरञ्चिहरीशवन्द्ये ।
कीर्तिप्रदेऽखिलमनोरथदे महाहर्षे
विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥३॥
शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे ।
सर्वदा सर्वदाऽस्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥४॥

420. जन्मभूमिदर्शनफलम्

कपिला-गोसहस्रं च यो ददाति दिने दिने ।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥१॥
जन्मान्तरसहस्रेण यत्पापं समुपार्जितम् ।
तत्सर्वं नाशमाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥२॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात् ॥३॥

421. रमेशस्तोत्रम्

प्रातः स्मरामि वरकुण्डलशोभिगण्डं शीतांशु-मण्डलमुखंसितवारिजाक्षम् ।
आताम्र-कमल-मुदिताधरविम्बजृम्भं ध्यातृप्रहर्षकरहासरसं रमेशम् ॥१॥
प्रातर्भजामि धृतकौस्तुभकम्बुकण्ठं स्फीतात्मवक्षसिं विराजितभूरिहारम् ।
भीत-स्वभक्त-भयभञ्जनपाणिपद्मं शातोदरार्पित-जगद्भरमब्जनाभम् ॥२॥

प्रातर्नमामि शुभकिङ्किणि मेखलाङ्गं पीताम्बरं करिकरोरुमुदारजानुम् ।
 ध्यातांघ्रियुग्मरुचिरं जितकञ्जजात-वातादिदेव-वरमौलिमणिं मुकुन्दम् ॥३॥
 वादिराजयति-प्रोक्तं श्लोकत्रयमिदं सदा ।
 प्रातःकाले पठेन्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४॥
 मन्त्रविदो विष्णुभक्तास्तैर्याः प्रोक्तास्तथाऽऽशिषः ।
 ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदिति स्फुटम् ॥५॥

॥ इति पूजाकाण्डे रमेशस्तोत्रं समाप्ता ॥४२१॥

422. ब्रह्मस्तोत्रम्

जितं ते पुण्डरीकाक्ष! पूर्णषाड्-पुण्यविग्रह ।
 परानन्द परब्रह्म नमस्ते चतुरात्मने ॥

423. कार्तिकेयस्तोत्रम्

स्कन्द उवाच

योगीश्वरो महासेनः कार्तिकेयोऽग्निनन्दनः ।
 स्कन्दः कुमारः सेनानी स्वामी शङ्करसम्भवम् ॥१॥
 गाङ्गेयस्ताम्रचूडश्च ब्रह्मचारी शिखिध्वजः ।
 तारकारिरुमापुत्रः क्रोञ्चारिश्च षडानन ॥२॥
 शब्दब्रह्मसमुद्रश्च सिद्धः सारस्वती गुहः ।
 सनत्कुमारी भगवान् भोगमोक्षफलप्रदः ॥३॥
 शरजन्मा गणाधीशपूर्वजो मुक्तिमार्गकृत् ।
 सर्वागमप्रणेता च वाञ्छितार्थप्रदर्शनः ॥४॥
 अष्टाविंशतिनामानि मदीयानीति यः पठेत् ।
 प्रत्यूषं श्रद्धया युक्तो मूको वाचस्पतिर्भवेत् ॥५॥
 महामन्त्रमयानीति मम नामानुकीर्तनम् ।
 महाप्रज्ञामवाप्नोति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥६॥

॥ इति कार्तिकेयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४२३॥

424. भैरव-स्तुतिः

कलकलित-कपालः कुण्डली दण्डपाणि-
 स्तरुण-तिमिर-नील-व्याल-यज्ञोपवीती ।

क्रतुसमय-सपर्या
जयति वटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥

425. रामचन्द्रस्तुतिः

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नव-कमलदल-स्पर्द्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामाङ्गारूढसीता-मुखकमल-मिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥१॥
कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परमपदप्राप्तये प्रस्थितस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम ॥२॥
राज्यं येन पटान्त-लग्न-तृणं वत्यक्तं गुरोराज्ञया
पाथेयं परिगृह्य कार्मुकवरं घोरं वनं प्रस्थितः ।
स्वाधीनः शशिमौलिचापविजये प्राप्तो न वै विक्रियां
पायाद् वः स विभीषणाग्रजनिहा रामाभिधानो हरिः ॥३॥

इति रामचन्द्रस्तुतिः ॥४२५॥

426. विष्णु-स्तुतिः

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटव कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्त्रित्यथ जैनशासरताः कर्मेति मीसांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥१॥
यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र-रुद्र-मरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्याऽन्तं न विदुः सुरा-ऽसुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥२॥
शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।

लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
 वन्दे विष्णुं भव-भय-हरं सर्वलोकैकनाथम् ॥३॥
 नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षि-शिरोरुबाहवे ।
 सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥४॥
 आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
 सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥५॥

॥ इति विष्णु-स्तुति समाप्ता ॥४२६॥

427. शिव-स्तुतिः

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
 सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानी-सहितं नमामि ॥१॥
 असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
 सुरतरुवरशाखालेखनीपत्रमूर्वी ।
 लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
 तदपि तव गुणानामीशपारं न याति ॥२॥
 वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
 वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
 वन्दे सूर्य-शशाङ्क-वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
 वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवंशङ्करम् ॥३॥
 स्मशानेष्वक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
 श्रिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
 अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
 तथाऽपि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥४॥
 निरावलम्बस्य ममाऽवलम्बं विपाटिताशेष-विपत्कदम्बम् ।
 मदीय-पापाचल-पातशम्बं प्रवर्ततां वाचि सदैव बम् बम् ॥५॥
 पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसम्भवः ।
 त्राहि मां पार्वतीनाथ! सर्वपापहरो भव ॥६॥

॥ इति शिव-स्तुतिः समाप्ता ॥४२७॥

428. बुद्ध-स्तुतिः

ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं
पश्याऽनङ्गशरातुरं जनमिमं त्राताऽपि नो रक्षसि ।
मिथ्याकारुणिकोऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतोऽन्यः पुमान् ?
शश्वन्मारवधूभिरित्यभिहितो बुद्धो जिनः पातु वः ॥

429. जिन-स्तुतिः

आबाहूदगत-मण्डलाग्ररुचयः सन्नद्धवक्षः स्थलः
सोष्माणो व्रणिनो विपक्षहृदय-प्रोन्माथिनः कर्कशाः ।
उत्सृष्टाम्बर-दृष्टि-विभ्रमभरा यस्य स्मराग्रेसरा
योधा वारवधूस्तनाश्च न दधुः क्षोभं स वोऽव्याजिनः ॥

430. जिनेन्द्र-स्तुतिः

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥

431. महावीर-स्तुतिः

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भ्रान्ति ध्रौव्यं-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः ।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो
महावीरः स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥

432. मारुतिस्तोत्रम्

मनोजवं मारुत-तुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥
ॐ नमो भगवते विचित्रवीरहनुमते प्रलयकालानल-
प्रभाप्रज्वलनाय, प्रतापवज्रदेहाय, अञ्जनीगर्भसम्भूताय, प्रकट-विक्रम-
वीर-दैत्य-दानव-यक्ष-रक्षोगण-ग्रहबन्धनाय, भूतग्रहबन्धनाय,
प्रेतग्रहबन्धनाय, पिशाचग्रह-बन्धनाय, ब्रह्माग्रहबन्धनाय,

ब्रह्मराक्षसग्रहबन्धनाय, वीरग्रह-बन्धनाय, मारीग्रहबन्धनाय, एहि-एहि,
 आगच्छ-आगच्छ आवेशय-आवेशय मम हृदये प्रवेशय-प्रवेशय स्फुर-
 स्फुर, प्रस्फुर-प्रस्फुर, सत्यं कथय व्याघ्रमुख-बन्धनं, सर्पमुखबन्धनं,
 राजमुखबन्धनं, नारीमुखबन्धनं, सभामुखबन्धनं, शत्रुमुखबन्धनं,
 सर्वमुखबन्धनं, लङ्कप्रासादभञ्जनं, कामुकं मे वशमानय, क्लीं क्लीं
 क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीं राजानं वशमानय, श्रीं ह्रीं क्लीं स्त्रिय आकर्षय-
 आकर्षय शत्रून् मर्दय-मर्दय, मारय-मारय, चूर्णय चूर्णय, खे-खे,
 श्रीरामचन्द्राज्ञया मम कार्यसिद्धिं कुरु कुरु ॐ हां ह्रीं हें हौं हः फट्
 स्वाहा, विचित्रवीर हनूमन्! मम सर्वशत्रून् भस्म कुरु-कुरु, हन-हन
 हुं फट्-स्वाहा। एकादश-शतवारं जपित्वा सर्वशत्रून् वशमानयति
 नाऽन्यथेति।

॥ इति मारुतिस्तोत्रं समाप्तम् ॥४३२॥

433. मृत्युष्टकम्

मार्कण्डेय उवाच

नारायणं सहस्राक्षं पद्मनाभं पुरातनम्।
 प्रपन्नोऽस्मि हृषीकेशं किं नो मृत्युः करिष्यति? ॥१॥
 गोविन्दं पुण्डरीकाक्षमनन्तमजमव्ययम्।
 केशवं च प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति? ॥२॥
 वासुदेवं जगद्योनिं भानुवर्णमतीन्द्रियम्।
 दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति? ॥३॥
 शङ्ख-चक्रधरं देवं छन्दोरूपिणमव्ययम्।
 अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति? ॥४॥
 वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम्।
 माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति? ॥५॥
 पुरुषं पुष्करं पुण्यं क्षेमबीजं जगत्पतिम्।
 लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति? ॥६॥
 भूतात्मानं महात्मानं यत्रयोनिमयोनिजम्।
 विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति? ॥७॥

सहस्रशीर्षसं देवं व्यक्ताऽव्यक्तं सनातनम् ।
 महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किं नो मृत्युः करिष्यति ? ॥८॥
 इत्युदीरितमार्कण्यं स्तोत्रं तस्य महात्मनः ।
 अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैश्च पीडितः ॥९॥
 इत्येन विजितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता ।
 प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥१०॥
 मृत्ववष्टकमिदं पुण्यं मृत्युप्रशमनं शुभम् ।
 मार्कण्डेय-हितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ॥११॥
 य इदं पठेत् भक्त्या त्रिकाले नियतः शुचिः ।
 नाऽकाले तस्य मृत्युः स्यान् नरस्याऽच्युतचेतसः ॥१२॥
 हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुरातनं नारायणं शाश्वतमादिदेवम् ।
 सञ्चिन्त्य सूर्यादि-विराजमानं मृत्युं स योगी जितवांस्तदैव ॥१३॥
 ॥ इति मृत्ववष्टकं समाप्तम् ॥४३३॥

434. कोविधिः को निषेधः

भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे विशीर्णे
 मायामोहौ क्षयमुपगतौ नष्टसन्देहवृत्तेः ।
 शब्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं
 निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥१॥
 यस्मिन्विश्वं सकलभुवनं सामरस्यैकभूत-
 मुर्वीह्यापोऽनलमखिलं जीवमेवं क्रमेण ।
 यत्क्षाराब्धौ समरसतया सैन्धवैकत्वभूतं
 निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥२॥
 कस्मात्कोऽहं किमपि च भवान्कोऽयमत्र प्रपञ्चः
 स्वं स्वं वेद्यं गगनसदृशं पूर्णतत्त्वप्रकाशम् ।
 आनन्दाख्यं समरसघने ब्राह्मन्तर्विहीने
 निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥३॥
 कार्याऽकार्ये किमपि सततं नैव कर्तृत्वमस्ति
 जीवन्मुक्तस्थितिरेवगतो दग्धवस्त्रावभासः ।

एवं देहे प्रविलयंगते त्यक्तमानो विमुक्तो
निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को विधिः को निषेधः ॥४॥

इति को विधिः को निषेधः ॥४३४॥

435. असज्जन-सम्पर्क-निन्दा

अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे ।
पावको लोहसङ्गेन मुद्गरैरभिहन्यते ॥१॥
अन्तर्मलिनसंसर्गाच्छ्रुतवानपि दुष्यति ।
यच्चक्षुः सन्निकर्षेण कर्णोऽभूत्कुटिलाश्रयः ॥२॥
दुष्टता दुष्टसंसर्गाददुष्टमपि गच्छति ।
सुराबिन्दुनिपातेन पञ्चगव्यघटो यथा ॥३॥
अणुरप्यसतां सङ्गो सद्गुणंहन्ति विस्तृतम् ।
गुणरूपान्तरं याति तक्रयो गाद्यथा पयः ॥४॥
दुर्वृत्तः क्रियते धूर्तैः श्रीमानात्मविवृद्धये ।
किं नाम खलसंसर्गः कुरुते नाश्रयाशवत् ॥५॥
आनन्दमृगदावाग्निः शीलशाखिमदद्विपः ।
ज्ञानदीपमहावायुरयं खलसमागमः ॥६॥
असत्सङ्गाद्गुणज्ञोऽपि विषयासक्तमानसः ।
अकस्मात्प्रलयं याति गीतरक्तो यथा मृगः ॥७॥
आहत्य रक्ष्यमाणापि यत्नेनान्तर्विरागिणी ।
असन्मैत्री च वेश्या च श्रीश्च कस्य कदा स्थिरा ॥८॥

इति असज्जनसम्पर्कनिन्दा ॥४३५॥

436. सत्सङ्गमहत्त्वम्

महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
रथ्याम्बु जाह्नवीसङ्गात् त्रिदशैरपि वन्द्यते ॥१॥
महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः ।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम् ॥२॥

मलयाचलसङ्गेन त्विन्धनं चन्दनायते ।
 तथा सज्जनसङ्गेन दुर्जनः सुजनायते ॥३॥
 चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः ।
 चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतलं साधुसङ्गतिः ॥४॥
 साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
 कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥५॥
 करोति निर्मलाधारस्तुच्छस्यापि महर्घताम् ।
 अम्बुनो बिन्दुरल्पोऽपि शुक्तौ मुक्ताफलं भवेत् ॥६॥
 मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः ।
 पङ्कच्छिदः फलत्येव निकर्षेणाविलं पयः ॥७॥
 अलब्ध्वाऽपि धनं राज्ञः संश्रिता यान्ति सम्पदम् ।
 महाहृदसमीपस्थं पश्य नीलं वनस्पतिम् ॥८॥

इति सत्सङ्गमहत्त्वम् ॥४३६॥

437. स्थान-महिमा

नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति ।
 स एव प्रच्युतः स्थानाच्छुना पि परिभूयते ॥१॥
 किञ्चिदाश्रयसंयोगाद्भक्ते शोभामसाध्वपि ।
 कान्ताविलोचने न्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ॥२॥
 कुस्थानस्य प्रवेशेन गुणवानपि पीड्यते ।
 वैश्वानरोऽपि लोहस्थः कारुकैरभिहन्यते ॥३॥
 पदस्थितस्य पद्मस्य मित्रे वरुणभास्करो ।
 पदच्युतस्य तस्यैव क्लेशदाहकरावुभौ ॥४॥
 राजा कुलवधूर्विप्रा मन्त्रिणश्च पयोधराः ।
 स्थानभ्रष्टा न शोभन्ते दन्ताः केशा नखा नराः ॥५॥
 अश्वं शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च ।
 पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्ति योग्या अयोग्याश्च ॥६॥
 आश्रयवशेन सततं गुरुता लघुता च जायते जन्तोः ।
 विन्ध्ये विन्ध्यसमानाः करिणो बत दर्पणे लघवः ॥७॥

अतिमात्रभास्वरत्वं पुष्यति भानोः परिग्रहादनलः ।
अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरिग्रहीतः ॥८॥

इति स्थान-महिमा ॥४३७॥

438. महामारी-स्तोत्रम्

देव्युवाच

पुरा ब्रह्मा तु मां स्पृष्ट्वा समाहूयाऽब्रवीद्वचः ।
शृणु मे वचनं पुत्रि कुरुष्वद्याथ सादरम् ॥१॥
कलौ जना दुराचारा राजनाश्च तथाविधाः ।
अतो गत्वा भुवं देवि मृत्युरूपा भवाशु च ॥२॥
परद्रव्यापहर्तारः परस्त्रीनिरताः सदा ।
देवस्वहरणे सक्ता ब्रह्मस्वहरणे नृप ॥३॥
तेषां दोषवशात्त्वं तु जनान् संहर नित्यशः ।
ब्रह्मणैवं समादिष्टा इन्द्राद्यैः सुरसत्तमैः ॥४॥
भुवं समागता तत्र जनान् ज्ञात्वाऽथ पापिनः ।
राज्ञां दोषान्युरस्कृत्य ग्रामे ग्रामे वराम्यहम् ।
तत्रापि पापिनो हत्वा पुनर्ग्रामान्तरं भजे ॥५॥
एवं देशानटित्वाऽहं सर्वान्संहृत्य वै जनान् ।
पुनर्गच्छामि सदनं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥६॥
एवं मदागमं ज्ञात्वा बुद्धिमान्पुण्यकृत्तरः ।
विचार्य शास्त्रतो नित्यं जागरुको भवेदलम् ॥७॥
पतन्ति मूषिका यत्र नृत्यन्ति विरमन्ति च ।
तद् - गृहं तत्क्षणं त्यक्त्वा सकुटुम्बो वने विशेत् ॥८॥
तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत महादेव्याः समीरिताम् ।
जपित्वा च महामन्त्रं पठित्वा स्तोत्रमुत्तमम् ॥९॥
ॐ नमो भगवति महामारिकेमृत्युरूपिणि सकुटुम्बं मामव स्वाहा ।
वने जलाशयं गत्वा ऊर्ध्वबाहुरधोमुखः ।
वीरासने चोपविश्य जपेन्मन्त्रं सहस्रशः ॥१०॥
संस्थाप्य प्रतिमां तत्र धूपदीपोहारकैः ।
सम्पूज्य विधिवत्पञ्चाजुहुयात्प्रत्यहं नरः ॥११॥

हरिद्राचूर्णमिश्रेण चित्रान्नेनैर संयुतः ।
 समिद्धिः खादिरैर्भक्त्या ब्राह्मणैश्च समन्वितः ॥१२॥
 पत्नीपुत्रात्मभृत्यैश्च जुहुयादनुवासरम् ।
 होमान्ते च पठेन्नित्यं स्तोत्रमेतज्जितेन्द्रियः ॥१३॥
 नमो देवि महादेवि सर्वशोकवशङ्करि ।
 सर्वदा सर्वतो मह्यं कृपां कुरु कृपामयि ॥१४॥
 मेरौ कैलासशिखरे हेमाद्रौ गन्धमादने ।
 नित्यप्रियकृतावासे मद्यमांसबलिप्रिये ॥१५॥
 महासैन्यसमायुक्ते सर्वप्राणिविहिंसके ।
 सर्वाभिचारिके देवि सर्व त्वं रक्ष सर्वदा ॥१६॥
 यत्र कुत्र स्थले वापि यस्मिन् कस्मिन् यदा कदा ।
 रक्ष मां रक्ष मां देवि सपुत्रपशुभृत्यकम् ॥१७॥
 माङ्गल्यं मङ्गलं देहि महामङ्गलदायिनी ।
 लोकानामभये सर्वमङ्गले मङ्गलप्रिये ॥१८॥
 इति स्तुत्वा महादेवी भक्तिभावेन संयुतः ।
 भुञ्जीत स्वजनैर्युक्तो देवीं तां मनसा स्मरन् ॥१९॥
 यदा स्वगृहचैत्येषु ध्वांक्षरावो भवेन्मुहुः ।
 काकशान्तिं ततः कृत्वा ग्रहं गन्तुमुपक्रमेत् ॥२०॥
 सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे स्वलंकृत्य ततो गृहम् ।
 ब्राह्मणैर्बन्धुभिः सार्धं संविशेद्गृहमात्मनः ॥२१॥
 स्वस्तिवाचन - विप्रेभ्यः शान्तिसूक्तोक्तिपूर्वकम् ।
 दक्षिणां च हिरण्यादि दद्याच्छाठ्यविवर्जितः ॥२२॥
 ब्राह्मणान्भोजयित्वा च देवीं तां प्रार्थयेद्गृहे ।
 गच्छ गच्छ महादेवि स्वस्थानं मङ्गलं कुरु ॥२३॥
 एवं कृत्यविधानेन मारिकाशान्तिरुत्तमा ।
 जायते नाऽत्र सन्देहः सत्यं सत्यं समीरितम् ॥२४॥
 इत्येतत्कथितं देव्या देवेभ्यः स्वात्मसम्भवम् ।
 महात्म्यं पठितं येन सोऽपि माङ्गल्यमाप्नुयात् ॥२५॥
 लिखितं पुस्तकं यस्य गृहे तिष्ठति सर्वदा ।
 तस्य मारीभयं नास्ति सत्यं सत्यं मयेरितम् ॥२६॥

पुस्तकं पूजयेद्यस्तु श्रद्धया परया मुदा ।
 सोऽपि माङ्गल्यमाप्नोति इहाऽमुत्र परां गतिम् ॥२७॥
 सर्वं त्यक्त्वा साधये देवीं यत्नैर्धनेरपि ।
 स्तोष्यन्ति परया भक्त्या सर्वकामार्थसिद्धये ॥२८॥
 विडाला यत्र नश्यन्ति यत्र नश्यन्ति मूषिकाः ।
 स्थानं तं तु परित्यज्य स्थानशून्यं च कारयेत् ॥२९॥

इति महामारीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४३८॥

439. श्रमिक-प्रशस्तिः

तपसि दिनकरे तप्ते सति न ग्रीष्मेऽप्यस्ति विरामः
 लोकोऽयं सततं विधीयते श्रमेरतीव ललामः ।
 पश्यति न हितव कोऽपि कामनां श्रमिक न वह निजशिरसि यातनाम् ॥१॥
 रक्तरञ्जिता गृहमालेयं वाटिका च रमणीया तव
 कृतिरस्ति वससि तरुमूले पीडा नहि गणनीया ।
 श्रोतुमपीहेच्छति न याचनां श्रमिक न वह निजशिरसि यातनाम् ॥२॥
 तव रक्तेन सिञ्चितं मधुरं धान्यमाकरे दत्त्वा अतिसखे
 विहरति ददाति नहि क्षुधयाऽऽकुलमपि दष्टा ।
 ना नायं पश्यति न वेदनां श्रमिक न वह निजशिरसि यातनाम् ॥३॥
 त्वमपि मानवस्तवाधिकारो भवति भूतले नित्यं
 नहि ददाति शोषको मानवो ह्युपनेतुं कुरु कृत्यम् ।
 पश्य राक्षसीमस्य भावनां श्रमिक न वह निजशिरसि यातनाम् ॥४॥

। इति श्रमिक-प्रशस्तिः ॥४३९॥

440. त्वमेव ब्रूहि स्तोत्रम्

आसीद्धराधामललामरूपो नासीदहो कस्य गुरुर्गरीयान् ।
 देशः स एवाद्य त्वदीयप्रेयान् हेयानधस्तिष्ठति सर्वदेशात् ॥१॥
 अभूदयोध्या भवदीयमेध्या पुरी पुरा देवपुरादपीह ।
 म्लेच्छैरुपेतामवलोक्य ते तां नो दूयते किं वद चारुचेतः ॥२॥
 पुरा सुराक्रान्तवसुन्धराया व्यथा त्वया किं न निराकृता सा ।
 तत्ते बलं क्वास्ति खरः शरो वा बोधातिनो हन्त कथं न हंसि ॥३॥

मन्ये महापापकलापकारीं चेद्रावणो हन्त हतस्त्वयैव ।
 किं तद्विधानद्य न पश्यसीह यद्वा त्वमस्माकमिवासि न भीतः ॥४॥
 सीतातिभीता दशकन्धरेण नीता त्वया शान्तिमितो न भेदः ।
 नानाऽबला हाऽद्य खला हरन्ति नायासि कारुण्यमतोऽस्ति खेदः ॥५॥
 नोचेदयाधन दयामधुना करोषि सन् दीनबन्धुरपि निष्ठुरतां तनोषि ।
 कस्यान्तिकं व्रजतु भारतमेतद्य लोकाभिराम घनश्याम त्वमेव ब्रूहि ॥६॥

॥ इति त्वमेव ब्रूहि स्तोत्रम् ॥४४०॥

441. गणेश-स्तुतिः

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूर-पूरपरिशोभित-गण्डयुग्मम् ।
 उदण्डविघ्न-परिखण्डन-चण्डदण्डमाखण्डलादि-सुरनायकवृन्द-बन्धम् ॥१॥
 गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः ।
 द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः ॥२॥
 विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः ।
 द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
 विश्वं तस्य भवेद् वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित् ॥३॥

442. सत्यरूप-स्तुतिः

सत्यरूपं सत्यसन्धं सत्यनारायणं हरिम् ।
 यत्सत्यत्वेन जगतस्तं सत्यं त्वां नमाम्यहम् ॥१॥
 त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव! श्रीनाथ! विष्णो! भवदाज्ञया वै ।
 प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारं यात्रामनुवर्तयिष्ये ॥२॥

443. द्वादश-देवविशेष-स्तुतिः

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
 उज्जयिन्यां महाकालमोङ्गारे ममलेश्वरम् ॥१॥
 केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
 वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥२॥

वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
 सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥३॥
 द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिः फलं लभेत् ॥४॥

444. दुःस्वप्न-नाशन-सूर्यस्तुतिः

आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः ।
 तृतीयं भास्करः प्रोक्तं चतुर्थं च प्रभाकरः ॥१॥
 पञ्चमं च सहस्रांशुः षष्ठं चैव त्रिलोचनः ।
 सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमं च विंभावसु ॥२॥
 नवमं दिनकृत् प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मकः ।
 एकादशं त्रयीमूर्तिर्द्वादशं सूर्य एव च ॥३॥
 द्वादशैतानि नामानि प्रातःकाले पठेन्नरः ।
 दुःस्वप्ननाशनं सद्यः सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥४॥

445. दुःस्वप्ननाशनदेव-स्मरणम्

अविमुक्त-चरण-युगलं दक्षिणमूर्तेश्च कुक्कुटचतुष्कम् ।
 स्मरणं वाराणस्यां निहन्ति दुःस्वप्नमशकुनं च ॥

446. सूर्याश्वस्तुतिः

अवतु नः सवितस्तुरगावली समतिलंविततुंगपयोधरा ।
 स्फुरितमध्यगतारुणनायका मरकतकलतेव नभश्चियाः ॥

॥ इति सूर्याश्वस्तुतिः ॥ १४४६ ॥

447. सूर्याकिरणस्तोत्रम्

करजालपूर्वचेष्टितं दस्तदभीष्टप्रदमस्तु तिग्मभासः ।
 क्रियते भवबन्धनाद्विमुक्तिः प्रणतानामुपसेवितेन येन ॥१॥
 युष्माकमम्बरमणोः प्रथमे मयूखास्ते मंगलं विदधतूदयरागभाजः ।
 कुर्वन्ति ये दिवसजन्ममहोत्सवेषु सिन्दूरपाटलमुखीरिव दिक्पुरन्ध्रीः ॥२॥

सिन्दूराणीव सीदत्कृपणकुलवधूमूर्ध्नि ये संचरन्त,
 प्रेक्ष्यन्तः दिक्षु शैलाः शिखरभुवि लसत्पद्मरागांकुरा यैः ।
 धुन्वन्ते ध्वान्तधाराः स दुरितचयैर्दूदृश्यः सदृश्याः
 पान्तु त्वा पद्मबन्धोकरथकिरणाः पूरणा पद्मबन्धो ॥३॥

।। इति सूर्याकिरणस्तोत्रम् ॥४४७॥

448. ऋषिस्तुतिः

भृगु-र्वशिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः ।
 रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥१॥
 सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरि-पिङ्गलौ च ।
 सप्त स्वराः सप्त रसातलानि कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥२॥
 सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवनादि सप्त ।
 भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥३॥
 इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेद् स्मरेद् वा शृणुयाच्च तद्वत् ।
 दुःखप्रणाशस्त्विह सुप्रभाते भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात् ॥४॥

449. सप्त-चिरजीवि-स्तुतिः

अश्वत्थामा बलिव्यासो हनूमांश्च विभीषणः ।
 कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥१॥
 सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।
 जीवेद् वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः ॥२॥

450. पुण्यजन-स्तुतिः

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।
 पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥

451. हकारादि-पञ्चदेव-स्तुतिः

हरं हरिं हरिश्चन्द्रं हनुमन्तं हलायुधम् ।
 पञ्चकं हं स्मरेन्नित्यं घोरसङ्कटनाशनम् ।

452. पञ्चदेवी-स्तुतिः

उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम् ।
प्रातरेव स्मरेन्नित्यं सौभाग्यं वद्धते सदा ॥

453. पञ्चकन्यास्तुतिः

अहल्या द्रौपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा ।
पञ्चकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

454. सप्तर्षि-स्मरणम्

कश्यपोऽत्रिभरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥१॥
तेषां वंशानुवंशानां वेदमन्त्रस्य द्रष्टृणाम् ।
संस्मरामि सदा चैव भक्त्या धर्ममार्गप्रदर्शकान् ।

455. सप्तपुरी-स्तुतिः

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

456. राजर्षिस्तुतिः

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च ।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम् ॥

457. अनिरुद्धादिदेव-स्तुतिः

अनिरुद्धं गजं ग्राहं वासुदेवं महाद्युतिम् ।
सङ्कर्षणं महात्मानं प्रद्युम्नं च तथैव च ॥१॥
मत्स्यं कूर्मं च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च ।
नारसिंहं च नागेन्द्रं सृष्टिसंहारकारकम् ॥२॥
विश्वरूपं हृषीकेशं गोविन्दं मधुसूदनम् ।
त्रिदशैर्वन्दितं देवं दृढभक्तिमनूपमम् ॥३॥
एतानि प्रातरुत्थाय संस्मरिष्यन्ति ये नराः ।
सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते स्वर्गलोकमवाप्नुयुः ॥४॥

458. प्रातर्वन्दनीय-स्तुतिः

प्रातःकाले पिता माता ज्येष्ठभ्राता तथैव च ।
आचार्याः स्थविराश्चैव वन्दनीया दिने दिने ॥

459. प्रातर्दर्शनम्

कपिलां दर्पणं धेनुं भाग्यवन्तं च भूपतिम् ।
आचार्यम् अन्नदातारं प्रातः पश्येद् बुधो जनः ॥१॥
श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितिं तथा ।
प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स विमुच्यते ॥२॥

460. पृथ्वी-स्तुतिः

स्वर्गैकोभिरदोनिवासि-पुरुषारब्धाति-शुद्धाध्वर -
स्वाहाकार-वषट्क्रियोत्थममृतं स्वादीय आदीयते ।
आम्नाय-प्रवणैरलङ्कृतजुषेऽमुष्मै मनुष्यैः शुभै-
र्दिव्यक्षेत्र-सरित्-पवित्रवपुषे देव्यै पृथिव्यै नमः ॥१॥
समुद्रवसने देवि! पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपति नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे ॥२॥

461. दन्तधावन-स्तुतिः

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते! ॥

462. कुम्भस्तुतिः

देव-दानव-संवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि यदा कुम्भ! विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥१॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥२॥
शिवः स्वयं त्वमेवाऽसि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः स-पैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः ॥३॥

463. षोडश-मातृका-स्तुतिः

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
 देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥१॥
 जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
 दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥२॥

464. शैलपुत्री-स्तुतिः

जगत्पूज्ये जगद्-वन्द्ये सर्व-शक्ति-स्वरूपिणि ।
 सर्वात्मिकेशि! कौमारि! जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥

465. ब्रह्मचारिणी-स्तुतिः

त्रिपुरां त्रिगुणाधारां मार्गज्ञान-स्वरूपिणीम् ।
 त्रैलोक्य-वन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं प्रणमाम्यहम् ॥

466. चन्द्रघण्टा-स्तुतिः

कालिकां तु कलातीतां कल्याण-हृदयां शिवाम् ।
 कल्याण-जननीं नित्यं कल्याणीं प्रणमाम्यहम् ॥

467. कूष्माण्डास्तुतिः

अणिमादि-गुणौदारां मकराकार-चक्षुषम् ।
 अनन्त-शक्ति-भेदां तां कामाक्षीं प्रणमाम्यहम् ॥

468. स्कन्दमातास्तुतिः

चण्डवीरां चण्डमायां चण्ड-मुण्ड-प्रभञ्जनीम् ।
 तां नमामि च देवेशीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम् ॥

469. कात्यायनीस्तुतिः

सुखानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवैर्नमस्कृताम् ।
 सर्वभूतात्मिकां देवीं शाम्भवीं प्रणमाम्यहम् ॥

470. कालरात्रिस्तुतिः

चण्डवीरां चण्डमायां रक्तबीज-प्रभञ्जनीम् ।
तां नमामि च देवेशीं गायत्रीं गुणशालिनीम् ॥

471. महागौरीस्तुतिः

सुन्दरीं स्वर्ण-सर्वाङ्गी सुख-सौभाग्य-दायिनीम् ।
सन्तोषजननीं देवीं सुभदां प्रणमाम्यम् ॥

472. सिद्धिदास्तुतिः

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भय-दुर्गविनाशिनि ।
प्रणमामि सदा भक्त्या दुर्गा दुर्गति-नाशिनीम् ॥

473. सिद्धिलक्ष्मीस्तुतिः

आकारब्रह्मरूपेण ॐकारं विष्णुमव्ययम् ।
सिद्धिलक्ष्मि! परालक्ष्मि! लक्ष्यलक्ष्मि! नमोऽस्तु ते ॥१॥
याः श्रीः पद्मवने कदम्बशिखरे राजगृहे कुञ्जरे ।
श्वेते चाऽश्वयुते वृषे च युगले यज्ञे च यूपस्थिते ।
शङ्खे देवकुले नरेन्द्रभवने गङ्गातटे गोकुले
या श्रीस्तिष्ठति सर्वदा मम गृहे भूयात् सदा निश्चला ॥२॥
या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी
गम्भीरावर्तनाभिः स्तनभरनमिता शुद्धवक्त्रोत्तरीया ।
लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणि-गण-खचितैः स्नापिता हेमकुम्भै-
नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता ॥३॥

१. प्रथमं	शैलपुत्री	च	द्वितीयं	ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं	चन्द्रघण्टेति		कूष्माण्डेति	चतुर्थकम् ॥१॥
पञ्चमं	स्कन्दमातेति		षष्ठं	कात्यायनीति च ।
सप्तमं	कालरात्रिश्च		महागौरीति	चाऽष्टमम् ॥२॥
नवमं	सिद्धिदात्री	च	नवदुर्गाः	प्रकीर्तिताः ।

474. शनिस्तुतिः

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रान्तको यमः ।
 सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलाश्रय-संस्थितः ॥१॥
 एतानि शनि-नामानि जपेदश्वत्थसन्निधौ ।
 शनैश्चरकृता पीडा न कदाऽपि भविष्यति ॥२॥

475. शनिपत्नी-नामस्तुतिः

ध्वजिनी धामनी चैव कङ्काली कलहप्रिया ।
 कण्टकी कलही चाऽथ तुरङ्गी महिषी अजा ॥१॥
 शनेर्नामानि पत्नीनामेतानि सञ्जपन् पुमान् ।
 दुःखानि नाशयेन्नित्यं सौभाग्यमेधते सुखम् ॥२॥

476. ग्रहस्तुतिः

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
 गुरुश्च शुक्रः शनि-राहु-केतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

477. गङ्गास्तुतिः

शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले मज्जज्जनात्तारिणी
 पारावारविहारिणी भव-भय-श्रेणी-समुत्सारिणी ।
 शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लोदलाकारिणी
 काशीप्रान्त-विहारिणी विजयते गङ्गामनोहारिणी ॥

478. यमुना-स्तुतिः

अयि मधुरे मधुमोद-विलासिनि शैलविहारिणि वेगभरे
 परिजन-पालिनि दुष्टनिषूदिनि वाञ्छितकाम-विलासधरे ।
 ब्रजपुरवासि-जनार्दित-पातक-हारिणि विश्वजनोद्धरिके
 जय यमुने जय भीतिनिवारिणि सङ्कटनाशिनि पावय माम् ॥

479. माला-स्तुतिः

महामाये महामाले सर्वशक्ति-स्वरूपिणि !
 चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥१॥
 अविघ्नं कुरु माले ! त्वं गृह्णामि दक्षिण करे ।
 जपकाले च सिद्धयर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥२॥

480. विष्णोरेकादशनाम-स्तुतिः

राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन !
 कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन ! ॥१॥
 इत्येकादश-नामानि पठेद्यो पाठयेद्यतिः ।
 जन्मकोटि-सहस्राणां पातकादेव मुच्यते ॥२॥
 हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे ।
 यज्ञेश नारायण कृष्ण विष्णो निराश्रयं मां जगदीश रक्ष ॥३॥

481. सत्यनारायणाष्टकम्

आदिदेवं जगत्कारणं श्रीधरं लोकनाथं विभुं व्यापकं शङ्करम् ।
 सर्वभक्तेष्टदं मुक्तिदं माधवं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥१॥
 सर्वदा लोक-कल्याण-पारायणं देव-गो-विप्र-रक्षार्थ-सद्विग्रहम् ।
 दीन-हीनात्म-भक्ताश्रयं सुन्दरं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥२॥
 दक्षिणे यस्य गङ्गा शुभा शोभते राजते सा रमा यस्य वामे सदा ।
 यः प्रसन्नाननो भाति भव्यश्च तं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥३॥
 सङ्कटे सङ्गरे यं जनः सर्वदा स्वात्मभीनाशनाय स्मरेत् पीडितः ।
 पूर्णकृत्यो भवेद् यत्प्रसादाच्च तं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥४॥
 वाञ्छितं दुर्लभं यो ददाति प्रभुः साधवे स्वात्मभक्ताय भक्तिप्रियः ।
 सर्वभूताश्रयं तं हि विश्वम्भरं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥५॥
 ब्राह्मणः साधु-वैश्यश्च तुङ्गध्वजो येऽभवन्विश्रुता यस्य भक्त्याऽमराः ।
 लीलया यस्य विश्वं ततं तं विभुं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥६॥

येन चाब्रह्मबालतृणं धार्यते सृज्यते पाल्यते सर्वमेतज्जगत् ।
 भक्तभावप्रियं श्रीदयासागरं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥७॥
 सर्वकामप्रदं सर्वदा सत्प्रियं वन्दितं देववृन्दैर्मुनीन्द्रार्चितम् ।
 पुत्र-पौत्रादि-सर्वेष्टदं शाश्वतं सत्यनारायणं विष्णुमीशं भजे ॥८॥
 अष्टकं सत्यदेवस्य भक्त्या नरः भावयुक्तो मुदा यस्त्रिसन्ध्यं पठेत् ।
 तस्य नश्यन्ति पापानि तेनाऽग्निना इन्धनानीव शुष्काणि सर्वाणि ॥९॥

॥ इति सत्यनारायणाष्टकं समाप्तम् ॥४८१॥

482. सत्यनारायण-स्तुतिः

ध्यायेत् सत्यं गुणातीतं गुणत्रय-समन्वितम् ।
 लोकनाथं त्रिलोकेशं कौस्तुभाभरणं हरिम् ॥१॥
 नीलवर्णं पीतवस्त्रं श्रीवत्सपदभूषितम् ।
 गोविन्दं गोकुलानन्दं ब्रह्माद्यैरपि पूजितम् ॥२॥
 सत्यनारायणं देवं वन्देऽहं कामदं प्रभुम् ।
 लीलया विततं विश्वं येन तस्मै नमो नमः ॥३॥

483. वेङ्कटेश-द्वादशनाम-स्तोत्रम्

श्रीवेङ्कटेशमतिसुन्दरमोहनाङ्गं श्रीभूमिकान्तमरविन्ददलायताक्षम् ।
 प्राणप्रियं परमकारुण-कम्बुराशिं ब्रह्मेशवन्द्यममृतं वरदं नमामि ॥१॥
 अखिल-विवुध-वन्द्यं विश्वरूपं सुरेशमभय-वरदहस्तं कंजजाक्षं रमेशम् ।
 जलधरनिभकान्तिं श्रीमहिभ्यां समेतं परमपुरुषमाद्यं वेङ्कटेशं नमामि ॥२॥
 वेङ्कटेशो वासुदेवो वारिजासनवन्दितः ।
 स्वामि-पुष्करिणीवासः शङ्ख-चक्र-गदाधरः ॥३॥
 पीताम्बरधरो देवो गरुडारूढशोभितः ।
 विश्वात्मा विश्वलोकेश-विजयो वेङ्कटेश्वरः ॥४॥
 एतानि द्वादशनामानि त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ॥५॥

इति श्रीवेङ्कटेश-द्वादशनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४८३॥

484. विश्वनाथनगरीस्तोत्रम्

यत्र देवपतिदेहिनां मुक्तिरेव भवतीति निश्चितम् ।
 पूर्वपुण्यनिचयेन लभ्यते विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥१॥
 स्वर्गतः सुखकरी दिवौकसां शैलराजतनयाऽतिवल्लभा ।
 दुण्डि-भैरव-विदारितविघ्ना विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥२॥
 यत्र तीर्थमलं मणिकर्णिका सा सदाशिवसुखप्रदायिनी ।
 या शिवेन रचिता निजायुधैर्विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥३॥
 सर्वदा अमरवृन्दवन्दिता गजेन्द्रमुखवारितविघ्ना ।
 कालभैरवकृतैकशासना विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥४॥
 यत्र मुक्तिरखिलैस्तु जन्तुभिर्लभ्यते मरणमात्रतः शुभा ।
 साऽखिलामरणणस्पृहणीया विश्वनाथनगरी गरीयसी ॥५॥
 उरगं तुरगं खगं मृगं वा करिणं प्रसरिणं खरं नरं वा ।
 सकृदाप्लुत एव देवनद्यां लहरी किं न वरं चरीकरीति ॥६॥

॥ इति विश्वनाथनगरीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥४८४॥

485. मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
 हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥
 वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं बलितं मधुरम् ।
 चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥
 वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
 नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥
 गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
 रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥
 करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम् ।
 वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥
 गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
 सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥

गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम् ।
 इष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥
 गोपी मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
 दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

॥ इति मधुराष्टकं समाप्तम् ॥४८५॥

486. पाण्डुरङ्ग-स्तुतिः

समचरणसरोजं सान्द्रनीलाम्बुदाभं
 जघन-निहित-पाणिं मण्डनं मण्डनानाम् ।
 तरुण-तुलसिमाला-कन्धरं कञ्जनेत्रं
 सदय-धवलहासं विट्ठलं चिन्तयामि ॥

487. कृष्णस्तुतिः

श्रियाश्लिष्टो विष्णुः स्थिर-चर-गुरुर्वेदविषयो
 धियां साक्षी शुद्धो हरिरसुरहन्ताब्जनयनः ।
 गदी शङ्खी चक्री विमलवनमाली स्थिररुचिः
 शरण्यो लोकेशो मम भवतु कृष्णोऽक्षि विषयः ॥

488. तीर्थ-स्तुतिः

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
 नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥१॥
 कुरुक्षेत्र-गया-गंगा-प्रभास-पुष्कराणि च ।
 एतानि पुण्यतीर्थानि स्नानकाले भवन्तिह ॥२॥
 त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता ।
 याचितं देहि मे तीर्थं तीर्थराज! नमोऽस्तु ते ॥३॥
 पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
 आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम ॥४॥
 विष्णु-पादाब्ज-सम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि ।
 धर्मद्रवेति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि! ॥५॥

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥६॥

॥ इति तीर्थ-स्तुतिः समाप्ता ॥४८८॥

489. शिव-शिवा-स्तुतिः

ॐ नमः शिवाय शान्ताय पञ्चवक्त्राय शूलिने ।
नन्दि-भृङ्गि-महाव्यालगण-युक्ताय शम्भवे ॥१॥
शिवायै हरकान्तायै प्रकृत्यै सृष्टिहेतवे ।
नमस्ते ब्रह्मचारिण्यै जगद्वात्र्यै नमो नमः ॥२॥
संसारभय-सन्तापात् पाहि मां सिंहवाहिनि ।
राज्य-सौभाग्य-सम्पत्तिं देहि मामम्ब पार्वति ॥३॥

490. वामन-स्तुतिः

देवेश्वराय देवाय देवसम्भूतिकारिणे ।
प्रभवे सर्ववेदानां वामनाय नमो नमः ॥१॥
नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
प्रणमामि सदा भक्त्या बालवामनरूपिणे ॥२॥
नमः शार्ङ्गधनु-र्बाणपाणये वामनाय च ।
यज्ञभुक् फलदात्रे च वामनाय नमो नमः ॥३॥

491. इन्द्र-स्तुतिः

ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तो महाबलः ।
शतयज्ञाभिधो देवस्तस्मादिन्द्राय ते नमः ॥

492. शशाङ्क-स्तुतिः

ज्योत्स्नानां पतये तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः ।
नमस्ते रोहिणीकान्त! सुधावास! नमोऽस्तु ते ॥१॥
नमो मण्डलदीपाय शिरोरत्नाय धूर्जटे ।
कलाभिर्वर्द्धमानाय नभश्चन्द्राय चारवे ॥२॥

493. रवि-स्तुतिः

ग्रहाणामादिरादित्यो लोकरक्षणकारकः ।
विषमस्थानसम्भूतां पीडां दहतु मे रविः ॥

494. चन्द्र-स्तुतिः

रोहिणीशः सुधामूर्तिः सुधागात्रो सुधाशनः ।
विषमस्थानसम्भूतां पीडां दहतु मे विधुः ॥

495. कुज-स्तुतिः

भूमिपुत्रो महातेजा जगतोभयकृत्सदा ।
वृष्टिकृद्-वृष्टिहर्ता च पीडां दहतु मे कुजः ॥

496. बुध-स्तुतिः

उत्पातरूपी जगतां चन्द्रपुत्रो महाद्युतिः ।
सूर्यप्रियकरो विद्वान् पीडां दहतु मे बुधः ॥

497. गुरु-स्तुतिः

देवमन्त्री विशालाक्षो सदा लोकहिते रतः ।
अनेक-शिष्य-सम्पूर्णः पीडां दहतु मे गुरुः ॥

498. भृगु-स्तुतिः

दैत्यमन्त्री गुरुस्तेषां प्रणवश्च महाद्युतिः ।
प्रभुस्ताराग्रहाणां च पीडां दहतु मे भृगुः ॥

499. शनि-स्तुतिः

सूर्यपुत्रो दीर्घदेहो विशालाक्षः शिवप्रियः ।
मन्दचारः प्रसन्नात्मा पीडां दहतु मे शनिः ॥

500. राहु-स्तुतिः

महाशीर्षी महावक्त्रो महादंष्ट्रो महायशाः ।
अतनुश्चोर्ध्वकेशश्च पीडां दहतु मे तमः ॥

501. केतु-स्तुतिः

अनेकरूपवर्णेश्च शतशोऽथ सहस्रशः ।
उत्पातरूपी घोरश्च पीडां दहतु मे शिखी ॥

502. अर्द्धश्लोकी-भागवतम्

श्लोकाद्धै तथा प्रोक्तं भगवत्याऽखिलार्थदम् ।
सर्वं खल्विदमेवाऽहं नाऽन्यदस्ति सनातनम् ॥

503. गुरुतत्त्व-विवेचनम्

अन्धेनाऽन्धीकृतं विश्वं सचक्षुस्तु सचक्षुषम् ।
दिदृक्षा चेद्भज त्वं तु देशिकेन्द्रं सचक्षुषम् ॥१॥
अन्धस्य गुरुरेकाक्षस्तस्य द्वयक्षो गुरुर्मतः ।
द्वयक्षाणामपि सर्वेषां गुरुस्त्र्यक्षो न तत्समः ॥२॥
सहस्राक्षादयः सर्वे द्वयक्षा एव हि केवलम् ।
कार्यध्येय-दृशो यस्मात् त्र्यक्षशिष्यपदे स्थिताः ॥३॥
त्र्यक्षस्तु भगवानादिपुरुषः शङ्करो भवः ।
सृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि कायमध्येऽथ संदिशन् ॥४॥
उभयातीतममलं तृतीयाक्षस्य गोचरम् ।
ददाति प्रार्थितस्तुष्टं श्रीगुरुः परमेश्वरः ॥५॥
स आदिनाथो भगवाननादिर्ज्ञानाम्बुधिः स्वात्मरतिर्महात्मा ।
श्रीदेशिकेन्द्रः करुणाम्बुराशिर्नानास्वरूपैश्चरतीह लोके ॥६॥
क्वचिच्च किञ्चित् कुरुते मनस्वी क्वचिन्न किञ्चित् कुरुते प्रमत्तः ।
बालो यथा क्रीडति सर्वलोके तथैव स क्रीडति पामरेषु ॥७॥
स लभ्यते केनचिदेव पुंसा विज्ञायते केनचिदेव पुंसा ।
प्रस्तूयते केनचिदेव पुंसा शृणोति वा तं स नरोऽपि धन्या ॥८॥

॥ इति गुरुतत्त्वविवेचनं सम्पूर्णम् ॥५०३॥

504. अनन्त-स्तुतिः

अनन्त संसार-महासमुद्रे मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव ! ।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तसूत्राय नमो नमस्ते ॥

505. वैष्णवीदेवी-स्तुतिः

वन्देऽहं युवतीं नित्यां कृष्णवर्णां चतुर्भुजाम् ।
 रविमण्डलमध्यस्थां गायत्रीं सुखदां नृणाम् ॥१॥
 शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारिणीं दुःखदारिणीम् ।
 वैष्णवीं गरुडारूढां भक्तानां भयहारिणीम् ॥२॥
 अनन्यशरणां ज्ञात्वा प्रपद्ये शरणं तव ।
 त्वदेकशरणं मातः त्राहि मां शरणागताम् ॥३॥
 श्लोकमेतत् त्रयं नित्यं मध्याह्ने तु विशेषतः ।
 सायं-प्रातः पठेन्नित्यं सर्वकामप्रदा भवेत् ॥४॥

॥ इति वैष्णवी-स्तुतिः समाप्ता ॥५०५॥

506. सिद्धशारदा-स्तुतिः

सरस्वतीं शारदां च कौमारीं ब्रह्मचारिणीं ।
 वागीश्वरीं बुद्धिदात्रीं भारतीं भुवनेश्वरीम् ॥१॥
 चन्द्रघण्टां मरालस्थां जगन्मातरमुत्तमाम् ।
 वरदायिनीं सदा वन्दे चतुर्वर्गफलप्रदाम् ॥२॥
 द्वादशैतानि नामानि सततं ध्यानसंयुतः ।
 यः पठेत् तस्य जिह्वाग्रे नूनं वसति शारदा ॥३॥

॥ इति सिद्धशारदा स्तुतिः समाप्ता ॥५०६॥

507. अक्षमाला-स्तुतिः

श्रीगायत्रीं त्रयीं विद्यां प्रणम्य परमेश्वरीम् ।
 'अक्षमाला-स्तुतिं' दिव्यां करोमि सुखदां सताम् ॥१॥
 अथाऽव्यक्ताऽऽदिशक्तिर्या महादेवीन्दिरेश्वरीम् ।
 उमोर्ध्वकेशी ऋग्वेदा 'ऋ'रूपा ऋद्धिदायिनी ॥२॥
 लृप्तधर्माऽति 'ल'नाम्नी त्वेकाक्षरविहारिणी ।
 ऐन्द्री ह्योङ्काररूपा या चौपासनफलप्रदा ॥३॥
 अण्डमध्यस्थिता देवी 'अः'कार-मनुरूपिणी ।
 षोडशीं लोकपूज्यां तां सर्वदा संस्मराम्यहम् ॥४॥

ततो व्यञ्जनवर्णस्थां कमलां खगवाहनाम् ।
 गङ्गां च धर्मदां देवीं 'ड'क्षरां प्रणमाम्यहम् ॥५॥
 चण्डिकां सततं वन्दे देवीं छन्दोऽनुगां पराम् ।
 जयन्तीं क्षणनिर्घोषां 'जं'रूप-वृषवाहनाम् ॥६॥
 टङ्कवर्णान्वितां दिव्यां 'ठ-ठ'शब्द-निनादिनीम् ।
 डमरूभूषणां देवीं ढक्काहस्तां नमाम्यहम् ॥७॥
 'ण'वर्णरूपिणीं दिव्यां तप्तकाञ्चनभूषणाम् ।
 धावरां^१ सततं वन्दे दण्डकारण्यवासिनीम् ॥८॥
 धर्मशीलां नदीरूपां परब्रह्मात्मिकां तथा ।
 फलदां बहुनेत्रां च भवानीं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥९॥
 मालिनीं तां महामायां पञ्चविंशतिवर्णिकाम् ।
 नत्वा पुनः स्मराम्यत्र य-क्षवर्णात्मिकाद्भुताम् ॥१०॥
 यक्षिणां योगमायां तां रामां लक्ष्मीं सुखप्रदाम् ।
 वरदां शारदां दिव्यां षण्मुखीं च सरस्वतीम् ॥११॥
 हरि-रुद्रप्रियां देवीं क्षमाशीलां नवात्मिकाम् ।
 पञ्चाशद्वर्णरूपां तां स्मरामि सर्वदा शुभाम् ॥१२॥
 यस्य स्मरणमात्रेण प्रसन्नां वर्णमात्रिका ।
 सम्भूयात् सा सदा लोके सर्वमङ्गलकारिणी ॥१३॥
 नेत्रद्वय-ख-युग्मेऽब्दे श्री'द्विजेन्द्र'-विनिर्मिता ।
 ज्येष्ठमासेऽत्र काश्यां वै प्रोदगता साऽक्षमालिका ॥१४॥
 इति रत्नमयीं देवीं गायत्री-तुष्टिकारिणीम् ।
 स्तुतिं पठन्नरो नित्यं ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥१५॥

॥ इति अक्षमालास्तुतिः सम्पूर्णा ॥५०७॥

508. तीर्थाष्टकम्

मातृतीर्थम्-नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां तारणाय च ।
 हितायाऽत्र परत्रार्थं यैस्तु माता प्रपूजिता ॥१॥
 पितृतीर्थम्- वेदैरपि च किं पुत्र! पिता येन प्रपूजितः ।
 एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथा तीर्थं नरेष्विह ॥२॥

गुरुतीर्थम्-अज्ञान-तिमिरान्धत्वं गुरुं शीघ्रं प्रणाशयेत् ।
 तस्मात् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणां हितचिन्तकः ॥३॥
 भक्ततीर्थम्- तीर्थभूतो हरेर्भक्तः स्वयं पूतश्च पावकः ।
 येन भस्मीकृतो लोके पापपुञ्जो हि सुव्रतः ॥४॥
 पतितीर्थम्- प्रयाग-पुष्करसमौ पत्युः पादौ स्मृतावतः ।
 स्नातव्यं सततं स्त्रीभिस्तीर्थभूते सरोवरे ॥५॥
 पत्नीतीर्थम्- नास्ति पत्नीसमं तीर्थं भूतले तारणाय तु ।
 यस्य गेहे सती नारी स धन्यः पुरुषो मतः ॥६॥
 मित्रतीर्थम्- सम्पत्तौ च विपत्तौ च यस्तिष्ठति सदाऽत्र वै ।
 मित्रतीर्थं परं लोके मुनिभिः परिभाषितम् ॥७॥
 विप्रतीर्थम्- जङ्गमं विप्रतीर्थं तद् वेदपूतं च निर्मलम् ।
 यस्य वाक्-सलिलेनैव शुद्ध्यन्ति मलिनो जनाः ॥८॥
 तीर्थाष्टकमिदं पुण्यं श्रीं द्विजेन्द्रं विनिर्मितम् ।
 सेवितव्यं सदा भक्त्या भुक्ति-मुक्तिप्रदायकम् ॥९॥
 ॥ इति तीर्थाष्टकं समाप्तम् ॥५०८॥

509. गुर्वष्टकम्

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं जगद्गुरुम् ।
 नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं सर्वसंस्थितम् ॥१॥
 परात्परतरं ध्येयं नित्यमानन्द-कारणम् ।
 हृदयाकाश-मध्यस्थं शुद्ध-स्फटिक-सन्निभम् ॥२॥
 अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराऽचरम् ।
 तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥३॥
 गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
 गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥४॥
 अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
 चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥५॥
 चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम् ।
 विन्दु-नाद-कलातीतं तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥६॥
 अनेक-जन्म-सम्प्राप्त-कर्मबन्ध-विदाहिने ।
 आज्ञज्ञान-प्रदादेन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥७॥

शिष्याणां मोक्षदानाय लीलया देहधारिणे ।
 सदेहेऽपि विदेहाय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥८॥
 गुर्वष्टकमिदं स्तोत्रं सायं-प्रातस्तु यः पठेत् ।
 स विमुक्तो भवेल्लोकात् सद्गुरो कृपया ध्रुवम् ॥९॥
 ॥ इति गुर्वष्टकं सम्पूर्णम् ॥५०९॥

510. श्रीभैरवाष्टकम्

श्रीभैरवो रुद्रमहेश्वरो यो महामहाकाल अधीश्वरोऽथ ।
 यो जीवनाथोऽत्र विराजमानः श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥१॥
 पद्मासनासीनमपूर्वरूपं महेन्द्रचर्मोपरि शोभमानम् ।
 गदा-ऽब्ज-पाशान्वित-चक्रचिह्नं श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥२॥
 यो रक्त-गौरश्च चतुर्भुजश्च पुरःस्थितोद्भासित-पानपात्रः ।
 भुजङ्गभूयोऽमितविक्रमो यः श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥३॥
 रुद्राक्षमाला-कलिकाङ्गरूपं त्रिपुण्ड्रयुक्तं शशिभालशुभ्रम् ।
 जटाधरं श्वानवरं महान्तं श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥४॥
 यो देवदेवोऽस्ति परः पवित्रः भुक्तिञ्च मुक्तिञ्च ददाति नित्यम् ।
 योऽनन्तरूपः सुखदो जनानां श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥५॥
 यो विन्दुनाथोऽखिलनादनाथः श्रीभैरवीचक्रप-नागनाथः ।
 महादभुतो भूतपतिः परेशः श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥६॥
 ये योगिनो ध्यानपरा नितान्तं स्वान्तःस्थमीशं जगदीश्वरं वै ।
 पश्यन्ति पारं भवसागरस्य श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥७॥
 धर्मध्वजं शङ्कररूपमेकं शरण्यमित्थं भुवनेषु सिद्धम् ।
 'द्विजेन्द्र'-पूज्यं विमलं त्रिनेत्रं श्रीभैरवं तं शरणं प्रपद्ये ॥८॥
 भैरवाष्टकमेतद् यः श्रद्धा-भक्ति-समन्वितः ।
 सायं-प्रातः पठेन्नित्यं स यशस्वी सुखी भवेत् ॥९॥

॥ इति भैरवाष्टकं सम्पूर्णम् ॥५१०॥

511. भगवती-स्तुतिः

प्रातः स्मरामि शरदिन्दु-करोज्ज्वलाभां
 सद्रत्नवन्मकर-कण्डल-बारभूषाम् ।

दिव्यायुधोर्जित-सुनील-सहस्रहस्तां

रक्तोत्पलाभ-चरणां

भवतीं

परेशाम् ॥१॥

प्रातर्नमामि

महिषासुर-चण्ड-मुण्ड

-

शुम्भासुर-प्रमुखदैत्य-विनाशदक्षाम्

।

ब्रह्मेन्द्र-रुद्र-मुनि-मोहन-शील-लीलां

चण्डीं

समस्त-सुर-मूर्तिमनेकरूपाम् ॥२॥

प्रातर्भजामि

भजतामभिलाषदात्रीं

धात्रीं

समस्त-जगतां

दुरितापहन्त्रीम् ।

संसार-बन्धन-विलोचन-हेतुभूतां

मायां

परां

समधिगम्य

परस्य

विष्णोः ॥३॥

॥ इति भगवती-स्तुतिः समाप्ता ॥५११॥

512. दशमहाविद्या-नामानि

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।

भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥१॥

बगला सिद्धिविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।

एता दश महाविद्याः सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः ॥२॥

513. काली-स्तुतिः

रक्ता-ऽब्धि-पोतारुण-पद्मसंस्थां पाशाङ्कुशेष्वास-शराऽसि-बाणान् ।

शूलं कपालं दधतीं कराऽब्जै रक्तां त्रिनेत्रां प्रणमामि देवीम् ।

514. तारा-स्तुतिः

मातर्नीलसरस्वति प्रणमतां सौभाग्य सम्पत्प्रदे

प्रत्यालीढ-पदस्थिते शवहृदि स्मेराननाम्भोरुहे ।

फुल्लेन्दीवरलोचने त्रिनयने कर्त्री खपालोत्पले

खड्गञ्जादधती त्वमेव शरणं त्वामीश्वरीमाश्रये ॥१॥

वाचामीश्वरि भक्तकल्पलतिके सर्वार्थसिद्धीश्वरि ! ।

गद्य-प्राकृत-पद्यजात-रचना-सर्वार्थसिद्धिप्रदे ! ।

नीलेन्दीवर-लोचनत्रययुते

कारुण्यवारांनिध!

सौभाग्यामृत-वर्द्धनेन कृपया सिञ्चत्वमस्मादृशम् ॥२॥

515. षोडशी-स्तुतिः

बालव्यक्त-विभाकरामितनिभां भव्यप्रदां भारतीम्

ईषत्फुल्ल-मुखाम्बुज-स्मितकरैराशा-भवान्धापहाम् ।

पाशं साभयमङ्कुशं च वरदं संविभ्रतीं भूतिदां

भ्राजन्तीं चतुरम्बुजाकृतिकरैर्भक्त्या भजे षोडशीम् ॥१॥

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्वाहुं त्रिलोचनाम् ।

पाशा-ऽङ्कुश-शरांश्चापं धारयन्तीं शिवां भजे ॥२॥

516. भुवनेश्वरी-स्तुतिः

उद्यद्दिनद्युति-मिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनवययुक्ताम् ।

स्मेरमुखीं वरदाङ्कुश पाशा-भीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥१॥

जगज्जनानन्दकरीं जयाख्यां यशस्विनीं यन्त्रसुयज्ञयोनिम् ।

जितामितामित्र-कृतप्रपञ्चां भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥२॥

हरौ प्रसुप्ते भुवनत्रयान्ते अवतारन्नाभिजपद्भजन्मा ।

त्रिधिस्ततोऽन्धे विदधारयत्पदं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥३॥

517. छिन्नमस्ता-स्तुतिः

नाभौ शुद्ध-सरोज-वक्त्र-विलसद्-बाधूक-पुष्पारुणं

भास्वद्-भास्कर-मण्डलं तदुदरे तद्योनिचक्रं महत् ।

तन्मध्ये विपरीत-मैथुनरत-प्रद्युम्न-सत्कामिनी-

पृष्ठस्थां तरुणार्क-कोटि-विलसत्तेजःस्वरूपां भजे ॥

518. त्रिपुरभैरवी-स्तुतिः

उद्यद्भानु-सहस्रकान्तिमरुण-क्षौमां शिरोमालिकां

रक्तालिल-पयोधरां जपपटीं विद्यामभीतिं वरम् ।

हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्-वक्त्रारविन्दश्रियं

देवीं बद्ध-हिमांशु-रत्नमुकुटां वन्दे समन्द-स्मिताम् ॥

519. धूमावती-स्तुतिः

प्रातर्या स्यात् कुमारी कुसुम-कलिकया जापमालां जपन्ती
 मध्याह्ने प्रौढरूपा विकसित-वदना चारुनेत्रा निशायाम्।
 सन्ध्यायां वृद्धरूपा गलित-कुचयुगा मुण्डमालां वहन्ती
 सा देवी देवदेवी त्रिभुवनजननी कालिका पातु युष्मान्॥

520. बगला-स्तुतिः

मध्ये सुधाब्धि-मणि-मण्डप-रत्नवेद्यां
 सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम्।
 पीताम्बराभरण-माल्य-विभूषिताङ्गीं
 देवीं . स्मरामि धृत-मुद्गर-वैरिजिह्वाम् ॥१॥
 चलत्कनक-कुण्डलोल्लसित-चारुगण्डस्थलां
 लसत्कनक-चम्पक-द्युतिमदिन्दु-बिम्बाननाम् ।
 गदाहत-विपक्षकां कलित-लोलजिह्वां चलां
 स्मरामि बगलामुखीं विमुख-वाङ्-मनःस्तम्भिनीम् ॥२॥
 जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
 गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥३॥
 प्रभातकाले प्रयतो मनुष्यः पठेत् सुभक्त्या परिचिन्त्य पीताम्।
 द्रुतं भवेत् तस्य समस्त-वृद्धिर्विनाशमायाति च तस्य शत्रुः ॥४॥

521. मातङ्गी-स्तुतिः

श्यामां शुभ्रांशुभालां त्रिकमल-नयनां रत्नसिंहासनस्थां
 भक्ताभीष्ट-प्रदात्रीं सुर-निकरकरा-सेव्यकञ्जाङ्घ्रि-युगमाम्।
 नीलाम्भोजांशुकान्तिं निशिचर-निकरारण्य-दावाग्निरूपां
 पाशं खड्गं चतुर्भिर्वर-कमलकरैः खेटकं चाङ्कुशं च ॥१॥
 नमस्ते मातङ्ग्यै मृदुमुदित-तन्वै तनुमतां
 परश्रेयोदार्य कमलचरण-ध्यान-मनसाम्।

सदा संसेव्यायै सदसि विबुधैर्दिव्य-धिषणै-
द्रयाद्रायै देव्यै दुरितदलनोद्दण्डमनसे ॥२॥

522. कमलात्मिका-स्तुतिः

ध्यानम्

कान्त्या काञ्चन-सन्निभां हिमगिरि-प्रख्यश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्त-हिरण्मया-ऽमृत-घटैरासिच्यमानां श्रियम् ।
बिभ्राणां वरमब्ज-युग्ममभयं हस्तैः किरीटोज्ज्वलां
क्षौमाबद्ध-नितम्ब-बिम्ब-ललितां वन्देऽरविन्दस्थिताम् ।

स्तुतिः

त्रैलोक्य-पूजिते देवि! कमले विष्णुवल्लभे! ।
यथा त्वमचला कृष्णे तथा भव मयि स्थिरा ॥१॥
ईश्वरी कमला लक्ष्मीश्चला भूतिर्हरिप्रिया ।
पद्मा पद्मालया सम्यगुच्चैः श्रीपद्मधारिणी ॥२॥
द्वादशैतानि नामानि लक्ष्मीं सम्पूज्य यः पठेत् ।
स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत् तस्य पुत्र-दारादिभिः सह ॥३॥

॥ इति श्रीकमलात्मिका-स्तुतिः समाप्ता ॥५२२॥

523. विपरित महाकाली-स्तुतिः

टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं सम्बिभ्रती चन्द्रकलावतंसा ।
पिङ्गोर्ध्वकेशा-ऽसित-भीमदंष्ट्रा भूयाद् विभूत्यै मम भद्रकाली ॥

524. ललिताम्बिका-स्तुतिः

सिन्दूरासृग-विग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीन वक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्ण - रत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थ - रक्तचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥

525. ललिता-महात्रिपुरसुन्दरी-स्तुतिः

आब्रह्माण्ड - पिपीलिकान्त - तनुभूत् - सुजृम्भमाणा स्फुटम्

जाग्रत् - स्वप्न - सुषुप्तिभासकतया सर्वत्र या दीव्यति ।
सा देवी जगदम्बिका भगवती श्रीराजराजेश्वरी
श्रीविद्या करुणानिधिः शुभकरी भूयात् सदा श्रेयसे ॥

526. सीता-स्तुतिः

उद्भव - स्थिति - संहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥

527. विश्वकर्मा-स्तवः

नारायणाब्ज-जनितस्य विधेः सुतस्य धर्मात्मजस्य गृहवास्तुसुतं वरेण्यम् ।
स्वर्गादि-लोकरचना-कुशलं तमद्य श्रीविश्वकर्मविश्रुतं सततं नमामः ॥१॥
नमामि विश्वकर्माणं द्विभुजं विश्ववन्दितम् ।
गृहवास्तु - विधातारं महाबल - पराक्रम् ॥२॥
प्रसीद विश्वकर्मस्त्वं शिल्पविद्या - विशारद ।
दण्डपाणे! नमस्तुभ्यं तेजोमूर्तिधरं प्रभो! ॥३॥
इति विश्वकर्मा-स्तव समाप्तः ॥५२७॥

528. शयनकालीन-भगवत्स्मरणम्

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः ।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः ॥१॥
नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि ।
नमोऽस्तु नर्मदे तुभ्यं त्राहि मां विषसर्पतः ॥२॥
सर्पाप सर्प भद्रं ते दूरं गच्छ महाविष ।
जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर ॥३॥
आस्तीकवचनं श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते ।
शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्ष - फलं यथा ॥४॥
एतान् गरुडमन्त्रास्तु निशायां पठते यदि ।
मुच्यते सर्पबाधाभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥५॥
इति शयनकालीन-भगवत्स्मरणं सम्पूर्णम् ॥५२८॥

धार्मिक ग्रन्थ एवं पुराण

1. सचित्र सम्पूर्ण रामायण (भा.टी.)
(दो रंग में छपी रंगीन डीलक्स एडीशन आठों काण्ड (रंगीन चित्रों) सहित)
2. सचित्र सम्पूर्ण रामायण तुलसीकृत (भा.टी.)
आठों काण्ड (रंगीन चित्रों) सहित
3. सचित्र सम्पूर्ण रामायण तुलसीकृत
भा.टी. (मध्यम)
4. रामायण तुलसीकृत मूल गुटका (23x36/32) नया
5. योग वशिष्ठ (महारामायण बड़ा)
6. सचित्र सम्पूर्ण श्रीमद्बाल्मीकिय
रामायण (सचित्र एवं बड़ा)
7. सचित्र सम्पूर्ण सुखसागर हिन्दी (1040 पेजों में)
8. सचित्र सुखसागर भाषा सजिल्द गुटका
9. महाभारत ग्लेज भाषा (बड़ा)
10. श्री शिव महापुराण (सचित्र एवं बड़ा)
11. ★ श्री शिव महापुराण (डिमाई साईज गुटका)
12. श्री हरिवंश महापुराण बड़ा (सचित्र एवं बड़ा)
13. श्री हरिवंश महापुराण गुटका (सचित्र)
14. श्री विष्णु महापुराण (बड़ा)
15. श्री विष्णु महापुराण भाषा गुटका
16. श्रीमद्देवी भागवत महापुराण (सचित्र एवं बड़ा)
17. श्रीमद्देवी भागवत महापुराण गुटका (सचित्र)
18. ★ श्री मार्कण्डेय महापुराण (सचित्र एवं बड़ा)
19. ★ श्री गणेश महापुराण (सचित्र एवं बड़ा)
20. ★ श्री गरुड़ पुराण (बड़ा)
21. बड़ा सचित्र प्रेम सागर (श्रीकृष्ण लीलाओं सहित)
22. सम्पूर्ण सचित्र अष्टावक्र गीता (विवेक श्री कौशिक)
23. सम्पूर्ण मनुस्मृति (भाषा टीका सहित)
24. दृष्टान्त महासागर (अशोक कुमार बंसल)
25. श्रीमद्भागवत गीता (हिन्दी-संस्कृत) (बड़ी)
26. श्रीमद्भागवत गीता (हिन्दी-संस्कृत) (गुटका)
27. श्रीमद्भागवत गीता (बड़ी रंगीन चित्रों सहित
दो रंग में छपी)
28. सचित्र श्रीमद्भागवत गीता (ग्लेज रेक्सीन)
29. ★ श्रीमद्भागवत गीता ग्लेज सादा जिल्द
30. श्रीमद्भागवत गीता ग्लेज (गुटका लाल अक्षरों में)
31. श्रीमद्भागवत गीता ग्लेज गुटका (मिनी.नई)
32. श्रीमद्भागवत गीता गुटका रेक्सीन डीलक्स (मिनी)
33. श्रीमद्भागवत गीता (ताबीजी प्लास्टिक डिब्बी में)
34. श्री दुर्गा सप्तशती (बड़ी रंगीन चित्रों सहित दो
रंगों में छपी)
35. श्री दुर्गा सप्तशती भाषा ग्लेज रेक्सीन
36. श्री दुर्गा सप्तशती भाषा ग्लेज सजिल्द
37. श्री दुर्गा सप्तशती भाषा ग्लेज लैमिनेशन
38. श्री दुर्गा सप्तशती गुटका रेक्सीन डीलक्स मिनी
39. श्री दुर्गा सप्तशती भा.टी. रेक्सीन (मोटे अक्षरों
में) (डिमाई)
40. श्री दुर्गा सप्तशती भा.टी. (लैमिनेशन
टाईटिल) (डिमाई)
41. श्री दुर्गा सप्तशती (हरे रंग में छपी)
42. श्री दुर्गा सप्तशती (लाल अक्षरों में छपी)
43. श्री चण्डी पाठ/दुर्गा पाठ भाषा बड़ा
44. ★ चण्डी कवच स्तोत्र
45. व्रत और त्यौहार कार्ड ग्लेज (हिन्दी नया) (ग्लेज)
46. व्रत और त्यौहार (मारवाड़ी-चम्पा देवी) (ग्लेज)
47. बड़ा व्रत और त्यौहार (लेडिज संगीत व घरेलू
टिप्स सहित) डीलक्स
48. सम्पूर्ण भारतीय पर्व उत्सव एवं त्यौहार, व्रत
कथाएं (लोकगीत सहित सजिल्द)
49. न्यू कुकरी बुक शिक्षा
-नई पुस्तकें-
50. आओ अयोध्या और चित्रकूट चले (रंगीन
चित्रों के साथ)
51. क्यों-हिन्दू धर्म की रिति रिवाज एवं मान्यतायें
52. गृहस्थ गीता (चित्रों सहित)
53. चाणक्य नीति
54. विदूर नीति
55. रत्न और रूद्राक्ष
56. बच्चों के नाम
57. स्वप्न फल विचार

अन्य धार्मिक पुस्तकें

1. शिव सहस्रनाम भाषा टीका सहित (लाल अक्षरों में)
2. शिव सहस्रनाम-(नामावली गुटका)
3. विष्णु सहस्रनाम भाषा टीका सहित (लाल अक्षरों में)
4. विष्णु सहस्रनाम (नामावली गुटका)
5. गोपाल सहस्रनाम भाषा टीका सहित (लाल अक्षरों में)
6. ★ हनुमान सहस्रनाम भाषा टीका सहित
7. ★ हनुमान सहस्रनाम (नामावली गुटका)
8. ★ दुर्गा सहस्रनाम भाषा टीका सहित
9. ★ गणेश सहस्रनाम भाषा टीका सहित
10. ★ गणेश सहस्रनाम (नामावली गुटका)
11. श्री लक्ष्मी सहस्रनाम भाषा टीका सहित
12. श्री ललिता सहस्रनाम (नामावली सहित)
13. श्री गजेन्द्र मोक्ष भाषा टीका सहित (गुटका डीलक्स)
14. सर्वदेव पूजा पद्धति (पं. ज्वाला प्रसाद कृत)
15. सर्वदेव प्राण प्रतिष्ठा (पं. ज्वाला प्रसाद कृत)
16. काली उपासना (पं. ज्वाला प्रसाद कृत)
17. भैरव उपासना (पं. नरेन्द्र शर्मा कृत)
18. शनि उपासना (राजेन्द्र प्रसाद "आशू" कृत)
19. शिव महिम्न स्तोत्र (आचार्य रामनाथ शर्मा कृत)
20. ★ शिवाष्टक रूद्राष्टक एवं लिगांष्टक
21. ★ आदित्य हृदय स्तोत्र भाषा टीका (सूर्यपाठ गुटका)
22. आदित्य हृदय स्तोत्र बड़ा (नया प्रिन्ट लाल)
23. कर्मकाण्ड भास्कर भाषा टीका (पं. ज्वाला प्रसाद जी)
24. सर्वदेव पूजा भास्कर (पं. प्रेम शंकर शास्त्री)
25. बृहद् नित्य कर्म पद्धति (बड़ा)
26. नित्य कर्म पद्धति (छोटा)
27. ★ दुर्गा पूजन विधान (हवन विधि स.) (डिमाई साईज)
28. ★ काली पूजन विधान (डिमाई साईज)
29. ★ शिव पूजन विधान (डिमाई साईज)
30. ★ हनुमान पूजन विधान (डिमाई साईज)
31. ★ महालक्ष्मी (दीपावली) पूजन वि. (डिमाई साईज)
32. ★ सरस्वती पूजन विधान (डिमाई साईज)
33. ★ गणेश पूजन विधान (अर्थवशीर्ष व होम पद्धति सहित डिमाई साईज)
34. दुर्गा कवच भाषा टीका सहित (लाल रंग में छपा)
35. दुर्गा कवच (गुटका रंगीन चित्रो सहित)
36. नारायण कवच भा.टी. सहित (गुटका डीलक्स)
37. काली कवच भा.टी. सहित (गुटका दो रंग में डीलक्स)
38. श्री गायत्री मन्त्र (कवच एवं हवन विधि सहित)
39. नित्य कर्म पूजन, जप, तप, व्रत व गीता सार सहित
40. सिद्ध एवं अमोघ श्री शिव कवच (गुटका-रंगीन)
41. कवच संग्रह (16 कवच भाषा टीका)
42. 21 स्तोत्र संग्रह
43. एकमुखी पंचमुखी हनुमान कवच (बड़ा)
44. हनुमान कवच (गुटका रंगीन)
45. हनुमान साठिका एवं बाहुक
46. श्री सिद्ध हनुमान महाउपासना (पूजन एवं जीवनी)
47. एकादशी माहात्म्य (भाषा टीका सहित)
48. एकादशी माहात्म्य (भाषा)
49. कष्टनिवारक गुरुजी के प्रभावशाली दोने-टोटेके और उपाय
49. ★ एकादशी माहात्म्य भाषा (कच्चा रोपड़)
50. एकादशी व्रत कथा (लम्बी साईज में)
51. कार्तिक माहात्म्य (भाषा)
52. कार्तिक कहानी व भजन संग्रह (डिमाई)
53. कार्तिक मास नित्यपाठ भजन
54. तुलसी चालीसा एवं पूजन सहित
55. माघ माहात्म्य भाषा
56. वैशाख मास माहात्म्य भाषा
57. पुरुषोत्तम माहात्म्य भाषा
58. श्रावण माहात्म्य भाषा
59. ★ 55 चालीसा पाठ संग्रह एवं आरती सहित
60. ★ चालीसा पाठ संग्रह एवं रामायण मनका (रंगीन)
61. सजिल्द चालीसा पाठ संग्रह (नीली स्याही में आरती सहित)
62. चालीसा पाठ संग्रह (लाल स्याही में छपा)
63. चालीसा पाठ संग्रह (छोटा गुटका लाल छपा)
64. चालीसा पाठ संग्रह गुटका (रंगीन चित्रों में)
65. श्री हनुमान ज्योतिष
66. श्री सन्तान गोपाल स्तोत्र (भाषा टीका)
67. श्री राम रक्षा स्तोत्र (भाषा टीका सहित बड़ा)
68. श्री राम रक्षा स्तोत्र भाषा टीका सहित (गुटका डीलक्स)
69. रामायण 108 मनका गुटका पॉकेट
70. रामायण 108 मनका गुटका (पॉकेट साईज लाल)
71. रामायण मनका 108 (लैमीनेशन रंगीन बड़ी)

- | | |
|---|--|
| 72. रामायण मनका 108 (गुटका रंगीन चित्रों में) | 83. नवग्रह स्तोत्र |
| 73. बड़ा गरुड़ पुराण (भाषा टीका सहित) | 84. नवग्रह पूजन |
| 74. गरुड़ पुराण जिल्द (सचित्र हिन्दी में) बड़ा साईज | 85. ★ सिद्ध मन्त्र माला |
| 75. गरुड़ पुराण (भाषा हिन्दी) | 86. ★ पार्वती मंगल |
| 76. बगलामुखी स्तोत्र (भाषा टीका सहित) | 87. ★ श्री ऋणमोचन मंगल स्तोत्र |
| 77. कुबेर पूजा | 88. श्री राधा कृष्ण कृपा कटाक्ष स्तोत्र |
| 78. सिद्ध श्री बगलामुखी महाउपासना एवं महासाधना | 89. नवग्रह चालीसा (डीलक्स दो रंग में छपा) |
| 79. वर्षभर की गणेश चतुर्थी व्रत कथा | 90. श्री सूक्त (लक्ष्मी सूक्त, पुरुष सूक्त सहित) |
| 80. करवा चौथ गणेश चौथ व्रत कथा | 91. श्री सूक्तम् (बड़ी, रंगीन श्री यंत्र के साथ) |
| 81. महामृत्युंजय जप विधि (नया) | 92. ★ कनकधारा स्तोत्र (लक्ष्मी स्तोत्र सहित) |
| 82. महामृत्युंजय जप कष्ट निवारण | 93. शाचोच्चार (विवाह के मंत्र सहित) |

व्रत कथाएँ (लम्बे साईज में) (ग्लेज पेपर)

- | | |
|--|--|
| 1. सप्तवार व्रत कथा (सचित्र) (ग्लेज) | 16. बृहस्पतिवार व्रत कथा |
| 2. श्री माँ वैभव लक्ष्मी व्रत कथा (लाल) | 17. शुक्रवार व्रत कथा |
| 3. श्री माँ वैभव लक्ष्मी व्रत कथा | 18. शनिवार व्रत कथा |
| 4. श्री गणपति मनोकामनापूर्ण व्रत कथा | 19. रविवार व्रत कथा |
| 5. अद्भुत एवं वैभव श्री साई व्रत कथा | 20. पूर्णमासी व्रत कथा |
| 6. अद्भुत एवं वैभव श्री सरस्वती व्रत कथा | 21. प्रदोष व्रत कथा |
| 7. चौथ माता व्रत कथा | 22. एकादशी व्रत कथा |
| 8. श्री दीपावली पूजन (लाल छपी) | 23. नवरात्र व्रत कथा |
| 9. श्री दीपावली पूजन (काली) | 24. करवा चौथ, गणेश चौथ व्रत कथा |
| 10. श्री महालक्ष्मी पूजा
(हाथी पूजा व धागा पूजन सहित) | 25. करवा चौथ, अहोई,
दीपावली, भैया दूज |
| 11. सत्यनारायण व्रत कथा
(भाषा टीका सहित) पाँच अध्याय | 26. सम्पूर्ण करवा चौथ व्रत कथा |
| 12. सत्यनारायण व्रत कथा (भाषा-हिन्दी) | 27. सम्पूर्ण अहोई अष्टमी व्रत कथा |
| 13. सोमवार व्रत कथा (सोलह सोमवार) | 28. हरितालिका व्रत कथा |
| 14. मंगलवार व्रत कथा | 29. ऋषि पंचमी व्रत कथा |
| 15. बुधवार व्रत कथा | 30. अनन्त व्रत कथा |

श्री साई बाबा सम्बन्धी साहित्य

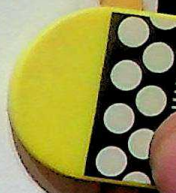
- | | |
|---|---|
| 1. साई आरती भजन संग्रह | 8. ★ Shri Sai Chalisa
(Eng. & Hindi 60 Picture) |
| 2. साई आरती संग्रह (शिरडी वाली) (सुगुणोपासना) | 9. ★ श्री साई प्रश्नोत्तरी (डॉ. वीणा चावला) |
| 3. ★ श्री साई आरती (मराठी-हिन्दी) (सुगुणोपासना) | 9. श्री साई चालीसा (लाल रंग में) |
| 4. ★ Shri Sai Aarti Sangrah (Marathi-Eng) | 10. श्री साई चालीसा (मिनी हरा 2 रंग में छपा) |
| 5. श्री साई चालीसा (55 रंगीन
चित्रों व साई बावनी के साथ) | 11. ★ श्री साई चालीसा
(लैमिनेशन रंगीन बड़ा साईज) |
| 6. ★ श्री साई चालीसा (लघु चित्र) | 12. साई बाबा 101 भजन माला |
| 7. साई चालीसा चित्र (प्लास्टिक पात्र) | |

13. साई की अमर कहानी
14. श्री साई मंत्र माला (108 मंत्रों का संग्रह)
15. साई वन्दना
16. साई का जीवन परिचय
17. साई व्रत कथा (बृहस्पतिवार व्रत कथा)
18. अद्भुत एवं वैभव श्री साई व्रत कथा
(नौ व्रतों वाली)
19. श्री साई स्तवन मंजरा (दासगुण जी कृत)
20. साई का इतिहास एवं भजन
21. श्री साई शरणम्
22. श्री शिरडी के साई बाबा
23. श्री साई महापुराण (पूरी व्याख्या सहित)
24. प्रश्न आपके उत्तर साई बाबा के
25. साई बाबा के नाम भजन संग्रह
26. ★ साई बाबा के चरणों में
भजन संग्रह (रमेश मैहरोत्रा कृत)
27. ★ साई अनमोल भजन रस
28. श्री साई बावना (दो रंग में छपा डीलक्स)
29. श्री साई बावनी (छोटी)
30. श्री साई भजन सागर
31. श्री साई भजनामृत (दलीप मदान कृत)
32. श्री साई अमृतवाणी
33. साई सुख की खान (रमेश मैहरोत्रा)
34. श्री साई रक्षा मंत्र (दो रंग में डीलक्स)
35. श्री साई चिन्तन (रमेश मैहरोत्रा जी)
36. श्री साई कष्ट निवारण मन्त्र
37. श्री साई नाम लेखन पुस्तिका
38. श्री साई भक्ति मंत्र संग्रह
39. श्री साई शिक्षा मन्त्र
40. श्री साई मनका माला
41. श्री साई गणेश रिद्धि-सिद्धि मन्त्र
42. श्री साई बजरंग बाण
43. श्री साई समर्थ पाठ
44. श्री साई कवच
45. श्री साई पितृदोष निवारण मंत्र
46. श्री साई दुःख निवारण मंत्र
47. श्री साई रोग-दरिद्र निवारण
48. श्री साई श्रद्धा-सबूरी पाठ
49. श्री साई गुरु वाणी
50. श्री साई संकटमोचन मन्त्र
51. श्री साई महामृत्युंजय मंत्र
52. श्री साई सन्तान प्राप्ति मंत्र
53. श्री साई गुरु मंत्र
54. श्री साई शिव शक्ति मंत्र
55. श्री साई शनि नवग्रह शान्ति मंत्र
56. श्री साई सुख-शान्ति मंत्र
57. श्री साई लक्ष्मी प्राप्ति मंत्र
58. श्री साई दया-कृपा प्राप्ति पाठ
59. श्री साई सहस्रनामावली
(1000 नाम हिन्दी व इंग्लिश में)
60. साई गीता सार (श्रीमती उमा शर्मा जी)
61. श्री साई कृति (सर्व दुःख निवारण मंत्र)
62. श्री साई कष्ट निवारणी जप (मनका 108)
63. श्री साई सच्चरित्र
64. श्री साई सच्चरित्र (एम.एस. शर्मा)
65. श्री साई सच्चरित्र गुटका छप रहा है
66. श्री साई गीता
67. साई के गुरुकुल में (वीणा चावला कृत)
68. साई से वार्तालाप (वीणा चावला कृत)
69. साई स्तुति (वीणा चावला कृत)
70. साई का आशीर्वाद व जागृति
71. सबका मालिक एक
72. श्री साई दिव्य आत्मा
73. श्री साई दर्शन
74. ★ Shri Sai Sacharitra
(Eng. By M.S. Sharma)
75. Shirdi Sai Baba &
His Life Story (English)
76. Adbhut Avm Vaibhav
Sai Varta Katha (Eng.)
77. Your Questions &
Sai Baba's Answers (Eng.)
78. Sai Ke Gurukul Mein
(In Sai School) (Eng.)
79. Master World of Sai
(Eng.-Sai Sacharitra)
80. Sai the Celestial Master (Eng.)
81. Shri Sai Sacharitra (Tamil)
82. Your Question Sai Baba Answer (Tamil)

ली

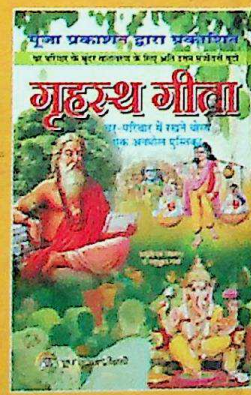
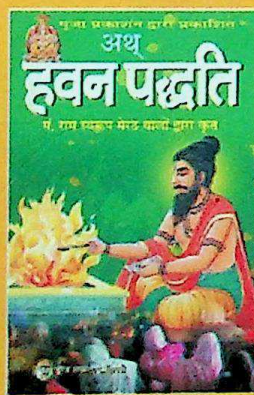
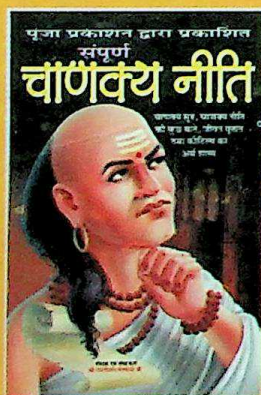
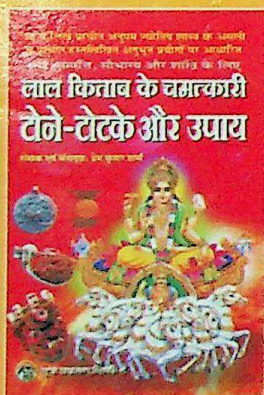
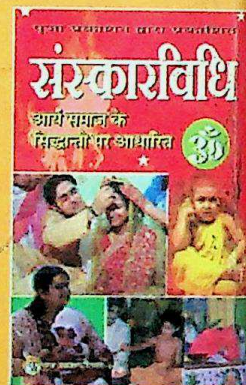
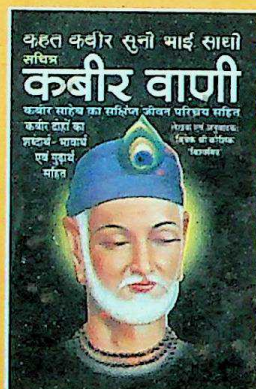
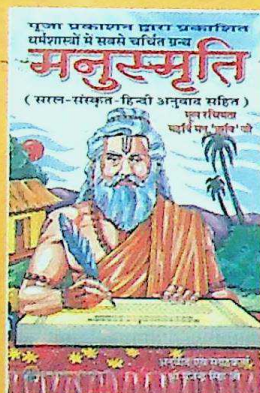
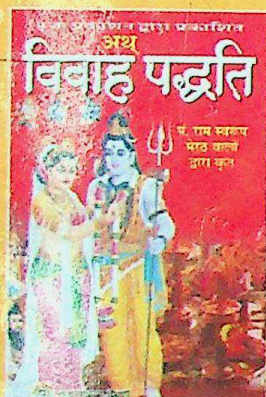
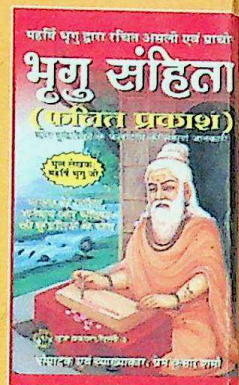
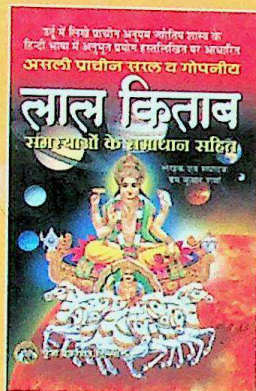
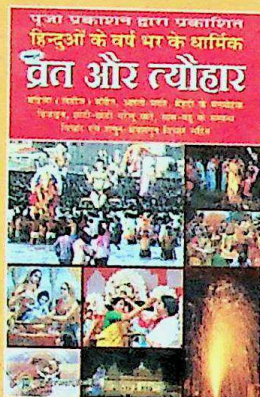
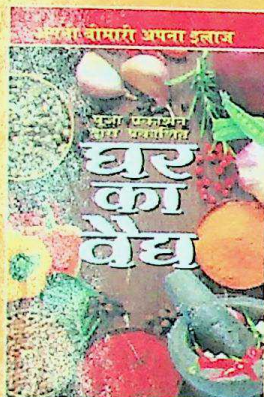
)

त)
)





पूजा प्रकाशन द्वारा प्रकाशित अन्य प्रकाशन



प्रकाशक:- पूजा प्रकाशन

PUBLISHED BY: POOJA PARKASHAN, DELHI (INDIA)

Email: gargbooks@yahoo.co.in, sales@poojaparkashan.com

Website: www.poojaparkashan.com

ISBN 978-93-81804-90-2



9 789381 804902